प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी कहानी में लोकतत्त्व

(सन् १९१०-१९४० ई०)

[इलाहाबाद युनिवर्सिटी की डी० फिल्० उपाधि हेतु प्रस्तुत]

शोध-प्रबन्ध

निर्देशक

साहित्यमहोपाध्याय डॉ० केशव चन्द्र सिनहा

एम० ए०, डी० फिल०, डी० लिट्०, साहित्यरत्न (दर्शन)

डिप०—संस्कृत, बंगला, फ्रेंच, जर्मन, रूसी, चीनी इत्यादि

ज्योतिर्विद, चिकित्सक, बहुभाषाविद्

प्राध्यापक—हिन्दी तथा अन्य प्रान्तीय भाषा विभाग

अनुशिक्षक—उत्तर प्रदेश स्टेट सर्विसेज परीक्षा पूर्व प्रशिक्षण केन्द्र

इलाहाबाद युनिवर्सिटी, इलाहाबाद

उत्तरप्रदेश, (भारत)

प्रस्तुतकर्ता

सत्यनारायण तिवारी

एम०ए०

हिन्दी विभाग

इलाहाबाद युनिवर्सिटी, इलाहाबाद

उत्तरप्रदेश, (भारत)

फरवरी १९७३ ई०

अपनी बात

अपनी बात

बाल्यावस्था में मग्न तथा आश्चर्यप्रवृत्ति से युक्त भला कौन ऐसा प्राणी होगा, जिसने `बूढ़ी दादी` -- नानी ` से सागृह कहानी न सुनी हो ? और की तो मैं नहीं जानता, किन्तु मैंने सुनी है और `हूं-हूं` करते हुए कितनी बार निद्रादेवी की गोद का आनन्द भी प्राप्त किया है। बाल्यावस्था की सहचरी विद्यार्थी जीवन में मनोरंजन का सम्बल बनी। प्राय: हिन्दी पाठ्यपुस्तकों में दो-चार कहानियां पढ़ने के लिए अवश्य मिल जाती थीं। इन्हें पढ़ते हुए उस समय एक बात अवश्य आश्चर्य चकित करने वाली यह थी कि प्राय: वही कहानियां बार-बार पुस्तकों में मिलती हैं, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार दादी द्वारा सुनाई गई कहानी नानी ने भी सुनाई। तो क्या इतनी ही कहानियां हिन्दी साहित्य में हैं? बस। और अधिक आश्चर्य तब हुआ जब हिन्दी कहानी उद्भव और विकास जैसे प्रश्न का उत्तर मिला-- कि पाश्चात्य प्रभाव के फलस्वरूप यूरोप तथा अमेरिका के कथा-साहित्य के अनुकरण में अथवा संस्कृत कथा साहित्य,जातक कथाओं आदि की परम्परा में हिन्दी कहानी विकसित हुई है। तो क्या लोककथाओं से इन कहानियों का कोई सम्बन्ध नहीं है ? मैं सोचने लगा कि इनमें भी घटना है, पात्र हैं,वार्तालाप हैं,फलागम हैं और यही सब तत्त्व तो साहित्यिक कहानियों में भी हैं, फिर साहित्यिक परम्परा का आलोचक वर्ग इनके महत्त्व को स्वीकार करने से क्यों कतराता है ? यह प्रश्न बीज रूप से हृदय-प्रदेश में छिपा रहा और जब शोध-विषय के निर्वाचन का समय आया, तब वही अज्ञात बीज उचित अवसर पाकर `प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी कहानी में लोकतत्त्व` के रूप में अंकुरित हो उठा और साहित्य-वाचस्पति (पद्मभूषण) श्रद्धेय गुरुदेव डा० रामकुमार वर्मा की संशोधक लेखनी ने `रेखनी टाई` की गांठ की तरह युगीन सीमा (सन् १९१०ई०- १९४०ई० तक) की गांठ लगा दी और प्रस्तुत शोध-विषय को सीमाबद्ध करके उसके प्रति न्यायपूर्ण दृष्टिकोण का उन्मेष किया।

( ) रुचि के अतिरिक्त भी प्रस्तुत कार्य इसलिए भी आवश्यक था, कि यद्यपि प्रेमचन्द और उनके युग में लिखित कथा-कहानी के साहित्यिक पक्ष एवं आलोचनात्मक पक्ष के सम्बन्ध में बहुत कुछ लिखा गया है, किन्तु उसका एक पक्ष अछूता

ही रहा है वह पक्ष है, हिन्दी कहानी का लोकतत्वपरक अध्ययन । इस उपेक्षा का सम्भावित कारण डा० विजयेन्द्र स्नातक के शब्दों में --"असंस्कृत मनोदशाओं के अवशेषों में प्रवहमान् लोकवार्ता, लोकसाहित्य,लोककथा आदि का अध्ययन साहित्य निर्माण में विशेष उपयोगी नहीं हो सकता, किन्तु लोकतत्वों की जड़ें इतनी गहरी हैं,कि उन्हीं के सहारे अतीत के गर्भ में छिपी न जाने कितनी बहुमूल्य मणियों को प्राप्त किया जा सकता है । इतना ही नहीं, बल्कि उन्हीं के शब्दों में --" संसार के समस्त सत्साहित्यों की आधार-शिला इन लोकतत्वों पर आधृत है ।" इसीलिए प्रस्तुत प्रबन्ध में द्विवेदीयुगीन हिन्दी कहानी के निर्माण में योग प्रदान करने वाले तथा लोकवार्ता के विभिन्न तत्वों के अनुसन्धान को लक्ष्य मानकर द्विवेदीयुगीन कहानी में उपलब्ध होने वाले लोकतत्वों का शोधपूर्ण अध्ययन प्रस्तुत किया गया है । इसमें सन्देह नहीं कि प्रस्तुत अध्ययन एवं अनुसन्धान कार्य इस विशिष्ट दिशा में एक मौलिक प्रयास ही नहीं, अपितु एक बहुत बड़े अभाव की पूर्ति करते हुए अपना एकाकी स्थान रखता है । शोध-प्रबन्ध को इस रूप में प्रस्तुत करते हुए मुझे आत्मिक सुख का अनुभव हो रहा है ।

इस शोध-प्रबन्ध के प्रस्तुतीकरण में अवधि-विस्तार के प्रसंग में मुझे कलासंकाय के डीन तथा प्राचीन इतिहास विभाग के अध्यक्ष प्रो० पण्डित गोवर्द्धनराय शर्मा का अविस्मरणीय सहयोग प्राप्त हुआ है, उनकी कृपा का मैं हृदय से आभारी हूं ।

शोध-प्रबन्ध को इस रूप में प्रेषित करने में मुझे अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है, जिनमें आर्थिक,पारिवारिक, शारीरिक एवं दैवी बाधाएं प्रमुख रही हैं, फिर भी "भगवती" की अनुकम्पा मुझ पर महान रही, जिसके फलस्वरूप यह शोध-प्रबन्ध आज मुझे प्रेषित करने का सुअवसर प्राप्त हुआ ।

प्रस्तुत महत्वपूर्ण शोध कार्य में शोध-सामग्री के संकलन हेतु विविध स्थानों के पुस्तकालयों,नागरी प्रचारिणी सभा,वाराणसी

के आर्य भाषा पुस्तकालय के मन्त्री पण्डित सुधाकर जी पाण्डेय(सदस्य-लोकसभा एवं अध्यक्ष- हिन्दी साहित्य सम्मेलन,प्रयाग) के प्रति विशेष आभारी हूं, जिनकी असीम कृपा एवं सहयोग से वाराणसी अध्ययन-काल में लेशमात्र भी असुविधा नहीं हुई और इन्हीं की कृपा से स्वर्गीय शिवप्रसाद रुद्र`काशिकेय` जी का अमोघ आशीर्वाद भी प्राप्त हुआ, फलस्वरूप `इन्दु` की फाइलों के साथ-साथ काशी सपड़ा मुहाल के पीछे भवन में अन्यान्य पत्र-पत्रिकाओं के साथ कुछ पाण्डुलिपियों को देखने का अवसर भी प्राप्त हुआ । समय-समय पर आगरा विश्वविद्यालय के पुस्तकाध्यक्ष,प्रयाग के हिन्दी साहित्य सम्मेलन संग्रहालय तथा भारती भवन पुस्तकालय के कार्यरत कर्मचारियों तथा प्रबन्धाधिकारियों के प्रति अत्यन्त आभारी हूं,जिनकी पुस्तकीय सहायता एवं स्नेहसिक्त व्यवहार से शोधकार्य के सम्पादन में बहुमूल्य सहयोग प्राप्त हुआ है । इलाहाबाद विश्वविद्यालय के वृहद् पुस्तकालय में कार्यरत कर्मचारियों तथा अधिकारियों के प्रति अपना आभार हृदय से व्यक्त करता हूं ।

इस सन्दर्भ में अपने सहयोगियों-- डा०विमलेशकान्ति वर्मा, डा० विद्याधर त्रिपाठी, डा० आशा वर्मा, डा० मीरा जायसवाल, डा० शोभारानी श्रीवास्तव,डा० हीरालाल सिंह और श्री मधुकेश शुक्ल एम०ए० के प्रति अपना हार्दिक धन्यवाद प्रेषित करता हूं,जिन्होंने समय-समय पर अपने गुरु-आदर्शों,कर्तव्यनिष्ठ जीवन-प्रसंगों एवं मार्मिक क्षणों में भी जीवन के प्रति आत्म-चेतन तथा एकनिष्ठ रहकर कार्य को पूरा करने की प्रणाली का आदर्श प्रस्तुत कर मुझे आगे बढ़ने की सतत् प्रेरणा देते रहे हैं ।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध गुरुवर्य साहित्यमहोपाध्याय डा० केशवचन्द्र जी सिन्हा, एम०ए०,डी०फिल्०,डी०लिट्०, साहित्य रत्न(प्रथम), डिप०--संस्कृत,बंगला,फ्रेंच,जर्मन,रूसी,चीनी इत्यादि,ज्योतिर्विद,चिकित्सक, बहुभाषाविद् के स्नेहसिक्त निर्देशन में सम्पन्न करने का सुअवसर प्राप्त हुआ । इस अवसर पर पूज्य गुरुवर के प्रति शब्दों द्वारा औपचारिकता निभाने में मन को शान्ति नहीं मिलती । समय-समय पर उनके बहुमूल्य सहयोग के प्रति आजीवन ऋणी रहूंगा ।

शोध-प्रबन्ध को सुचारु रूप से टंकित रूप देने में हिन्दी टंकक का अपना एक विशिष्ट स्थान रहता है । प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के टंकक श्री रामहित त्रिपाठी ने अपनी पूरी क्षमता का प्रदर्शन किया है । मैं आज इस अवसर पर उन्हें अपना हार्दिक धन्यवाद देता हूँ ।

अन्त में शोधकार्य के समापन के इस शुभ अवसर पर जगज्जननी माँ शारदे की अखण्ड ज्ञान ज्योति का स्मरण करते हुए विद्वज्जनों की सेवा में शोध-प्रबन्ध सादर प्रेषित है ।

सत्यनारायण तिवारी

(सत्यनारायण तिवारी)

श्री बसंतपंचमी ।
माघ शुक्ल ५, सं० २०२६ ।

--।।------------।।--

विषयानुक्रम

(द्वितीय खण्ड)

(तृतीय खण्ड)

अध्याय चार -- भाषा पक्ष में लोकतत्व

(चतुर्थ खण्ड)

अन्त्येष्टि क्रिया, गोदान, मरणासन्न को जमीन देना, दाह व संस्कार, पिण्डदान: तथा श्राद्ध ।

(३) लोक प्रथाएं -- सती प्रथा, जौहर प्रथा, विवाह प्रथा-(अ) मूल रूप,(ब) परिवर्तित रूप (स) विकसित रूप, भोज प्रथा, जन्मोत्सव भोज, नामकरण संस्कार के अवसर पर भोज, विवाह-भोज,मृतक-भोज, बर्षी भोज, गया श्राद्ध का भोज, बहु विवाह प्रथा , दूसरा विवाह, कर लेने की प्रथा , पर्दा प्रथा , पति का नाम न लेने की प्रथा, बलि प्रथा, जाति विशेष की प्रथाएं ।

(४) लोकविश्वास : मूढ़ाग्रह-- प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी कहानी में लोक विश्वास, शकुन-अपशकुन, स्वप्न-विचार, प्राकृतिक महोत्पात, तन्त्र, मंत्र,यंत्र,तावीज, भूत-प्रेत, मान-मनौती, जीव के बदले जीव,मृतात्मा-अन्य विश्वास,भाग्य तथा कर्मफल।

(५) लोक देवता : देवियाँ -- सामान्य विवेचन (क) प्रथम कोटि, डीह बाबा, ठाकुर बाबा, चौरा, नागदेवता,पीपल,तुलसी,दुर्गा माता तथा अन्य देवियां, वन देवी, (ख) द्वितीय कोटि-- सूर्यनारायण, हनुमान: महावीर, गंगा-यमुना, समुद्र देवता(ग) तृतीय कोटि-श्री रामचन्द्र जी, भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र, भगवान शिव, सत्यनारायण।

(ii)

(६) लोक वस्त्राभूषण : श्रृंगार प्रसाधन--क- वस्त्रात्मक,ख-आभूषणात्मक, ग- अन्य श्रृंगार प्रसाधन-बालक, बालिका,पुरुष:वस्त्र, टोपी, कंटोप,साफा,पगड़ी,कमरी,फरिया,जामा जोड़ा तथा पटका,पीताम्बर, स्त्रियों से सम्बद्ध वस्त्र-- रेशमी साड़ी,चुनरी,लंहगा,चोली,दुपट्टा,चोली, आभूषणात्मक--नथुनी,हार,करनफूल,बाली,टप,अनन्त,कड़ा,चूड़ा, तोड़ा,कंगन,चूड़ी,अंगूठी,छल्ला,मुंदरी,करधनी,पैजनिया,पायल,अन्य श्रृंगार प्रसाधन --उबटन,काजल,कजरी का लगाना,बेसन का प्रयोग,तेल एवं उबटन,टिकुली ,सेंदुर,मेंहदी,महावर,कृत्रिम श्रृंगार,लोकजीवन के अन्य पक्ष लोक व्यंजन,भोज्यपदार्थ, लोकवाद्य ।

क्रमशः

---||----------||---

(प्रथम खण्ड)

अध्याय एक

—०—

पूर्वपीठिका

प्रथम खण्ड

अध्याय एक

पूर्व पीठिका

(क) आलोच्यकाल का सीमा-निर्धारण

वर्तमान युग विज्ञान का युग है । आज का वैज्ञानिक अपने नवीन अन्वेषणों के आधार पर वेगवती नदियों की तीव्र-से-तीव्र धारा को रोक सकता है, काट सकता है और बांट सकता है, किन्तु काल के प्रवाह को न रोका जा सकता है, न काटा जा सकता है और न तो बांटा ही जा सकता है । इसकी आदि मध्य सीमायें अनन्त हैं । यह होते हुए भी मानव ने अपनी सुविधा की दृष्टि से काल के प्रवाह में आने वाले गुण विशेष के प्राबल्य के आधार पर काल के प्रवाह को मुख्यरूप से चार भागों में विभक्त किया है --- सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग । इसी प्रकार साहित्यिक काल में भी अध्ययन की सुविधा के लिए हिन्दी साहित्य के इतिहास को कई कालों एवं उपकालों में विभक्त किया गया है । इस काल-विभाजन का भी प्रमुख आधार है--- एक तो युग-विशेष में विशिष्ट साहित्यिक प्रवृत्ति, जिसके आधार पर वीरगाथा काल, भक्तिकाल तथा रीतिकाल इत्यादि नामकरण किया गया है और दूसरा व्यक्ति-विशेष के साहित्यिक व्यक्तित्व तथा साहित्य के क्षेत्र में साहित्यिक योगदान के आधार पर भारतेन्दु युग एवं द्विवेदी युग इत्यादि का नामकरण व्यक्तिविशेष के नाम पर ही किया गया है । प्रेमचन्द युग भी इसी दूसरे वर्ग के अन्तर्गत आता है । किन्तु यह कहना कि अमुक तिथि से लेकर अमुक तिथि तक लिखा गया साहित्य प्रेमचन्दयुगीन है और अमुक तिथि के पश्चात् लिखा गया साहित्य प्रेमचन्दयुगीन साहित्य की सीमा से परे है, कदापि उचित न होगा । क्योंकि जिन साहित्यिक मूल प्रवृत्तियों के आधार पर कालविशेष का नामकरण

किया जाता है, वह न तो किसी एक निश्चित तिथि से प्रारम्भ होता है और न उन प्रवृत्तियों का प्रभाव एक निश्चित तिथि पर समाप्त ही हो जाता है । फिर भी अध्ययन की सुविधा के लिए आलोच्य विषय की दृष्टि से प्रेमचंद युग की पूर्व सीमा तथा उत्तर सीमा की एक अनुमानित तिथि निर्धारित कर लेना न्यायसंगत होगा ।

प्राय: 'प्रेमचन्दयुग' का अर्थ प्रेमचन्द का जीवनकाल समझा जाता है, अर्थात् जन्म से लेकर मृत्यु तक का समय । प्रेमचन्द का जन्म ३१ जुलाई, सन् १८८०ई० को हुआ था और मृत्यु ८ अक्टूबर सन् १९३६ई० को । इस प्रकार उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचन्द (जिनके नाम के आधार पर ही युगविशेष का नामकरण किया गया है) के जन्म और मृत्यु की उपर्युक्त तिथि के मध्य का समय प्रेमचन्दयुग माना जा सकता है । यह सत्य है कि प्रेमचन्द की मृत्यु सन् १९३६ई० में हुई, परन्तु उनका आकर्षक व्यक्तित्व, उनके द्वारा व्यवहृत भाषा एवं शैली तथा उनकी प्रेरणाएं उनकी मृत्यु के पश्चात् भी कथाकारों को प्रभावित करती रहीं । वे मृत्यु के दिन ही समाप्त नहीं हो गईं, इसलिए निःसंकोच कहा जा सकता है कि प्रेमचन्दयुग सन् १९३६ई० के पश्चात् भी चलता रहा । यह प्रभाव निश्चय ही उनकी मृत्यु के पश्चात् भी लगभग चार वर्षों तक अर्थात् सन् १९४०ई० तक बना रहा । इसी बात को ध्यान में रखते हुए हिन्दी जगत के सुप्रसिद्ध आलोचक डा०रामविलास शर्मा जैसे विद्वानों ने भी प्रेमचन्दयुग की उत्तर सीमा सन् १९४०ई०-४१ तक निश्चित की है[1] ।

जहाँ तक विवेच्य युग की पूर्व सीमा के निर्धारण का प्रश्न है, स्पष्टरूप से कहा जा सकता है कि जब उत्तर सीमा का निर्धारण करते समय विद्वानों ने मृत्यु-तिथि का आधार नहीं ग्रहण किया तो पूर्व सीमा के निर्धारण में भी जन्म तिथि को आधार मानना न्यायसंगत नहीं कहा जा सकता । फिर जब तक

---

१ डा० रामविलास शर्मा : 'प्रेमचन्द' (भूमिका), पृ० १

नवजात शिशु बड़ा होकर अपने व्यक्तित्व एवं कृतित्व से साहित्यिक जगत को प्रभावित ही नहीं कर सका, तब सीमा का प्रश्न कैसा ? अस्तु प्रेमचन्द की प्रथम रचना को ही पूर्व सीमा-निर्धारण का आधार बनाना युक्तिसंगत होगा ।

वस्तुतः मुंशी जी ने अपना साहित्यिक जीवन सन् १९०१ई० से ही प्रारम्भ किया था । अपने मित्र को अपनी स्थिति का बोध कराते हुए ,उन्होंने स्वयं इस बात को स्वीकार कर लिया है,"..... सन् १९०१ई० में लिटररी जिन्दगी शुरू की"।[1] इससे इतना तो स्पष्ट ही हो जाता है कि उन्होंने सन् १९०१ई० में साहित्यिक जगत् में प्रवेश पा लिया था, किन्तु अभी तक सब उनकी रचनाएं प्रकाश में नहीं आ पाई थीं । इस दृष्टि से विचारणीय बात यह भी है कि हिन्दी साहित्य जगत् में आने के पूर्व प्रेमचन्द उर्दू में "नवाबराय" के नाम से अपनी रचनाएं किया करते थे । उर्दू के क्षेत्र में उनकी सर्वप्रथम रचना "असरारे मआबिद" (देवस्थान रहस्य) बनारस के एक साप्ताहिक उर्दू पत्र "आवाज़ए खल्क़" में ८ अक्टूबर सन् १९०३ई० से धारावाहिक छपना शुरू हुआ । इस सम्बन्ध में स्वयं मुंशी जी ने अपनी आत्मकथा "जीवनसार" में लिखा है कि मेरा एक उपन्यास १९०२ में निकला और दूसरा १९०४ में । १७ जुलाई सन् १९२९ के एक खत में उन्होंने मुंशी दयानरायन निगम को लिखा— सन १९०१ से लिटररी जिन्दगी शुरू की । "रिसाला" "ज़माना" में लिखता रहा । कई बरस तक मुख्तलिफ मज़ामीन लिखे । सन् १९०४ई० में एक हिन्दी नाविल "प्रेमा" लिखकर इण्डियन प्रेस से शाया कराया । किन्तु प्रेमा पर प्रकाशन का वर्ष १९०७ अंकित है और छोटी कहानी जहां तक जैसे उन्होंने सबसे पहले १९०७ में ही लिखी, इसके पूर्व छोटे-छोटे लेखों और समीक्षाओं का सिलसिला ही चलता रहा[2] । इस पहली छोटी कहानी के विषय में अमृतराय का यह कथन उल्लेखनीय है—"और मुंशी जी ने सन् १९०७ई० में अपनी पहली छोटी कहानी लिखी— बिलकुल पहली — "दुनिया का सबसे अनमोल रतन"। क्या है दुनिया का सबसे अनमोल रतन ? एक काली

---

१ अमृतराय : "कलम का सिपाही", पृ० ४
२ ,, : ,, पृ० ६१

पाने वाले पिता के दो बूंद आंसू ? नहीं । अपने पति के साथ चिता पर भस्म होने वाली एक सती स्त्री की राख ? नहीं। खून की वह आखिरी बूंद[1] जो देश की आजादी के लिए गिरे, वही दुनिया का सबसे अनमोल रतन है । इसी वर्ष 'दुनिया का सबसे अनमोल रतन और दूसरी अन्य चार कहानियों का संग्रह 'सोजेवतन' के नाम से प्रकाशित हुआ । यह ब्रिटिश शासन के विरुद्ध नवाबराय का स्पष्ट स्वर था, जिसकी प्रतिक्रिया भी शीघ्र हुई और १० जून सन् १९०९ को जिलाधीश के समक्ष नवाबराय को उपस्थित होना पड़ा । अधिकारियों की दृष्टि में उपर्युक्त संग्रह में संगृहीत कहानियों में विद्रोह का स्वर भरा हुआ था, परिणामतः शासन द्वारा 'सोजेवतन' की समस्त प्रतियां जप्त कर जला डाली गईं, किन्तु नवाबराय छूट गए, इस शर्त पर कि हर चीज जो कुछ भी लिखी जाय उसे पहले जिलाधीश महोदय को दिखला दी जाय । यह शर्त कुछ अटपटी-सी थी, क्योंकि उन्हें 'छपे हमारे लिखना नहीं, यह तो रोज का धन्धा ठहरा ।[2].....इसलिए कुछ दिनों के लिए नवाबराय मरहूम (स्वर्गवासी) हुए । लेकिन उस दिन से नवाबराय फिर साहित्य संसार के समक्ष नहीं आए । इस प्रकार नवाबराय के बलिदानस्वरूप साहित्य संसार को कुछ ही समय पश्चात् सन् १९१०ई० के अक्टूबर-नवम्बर में 'प्रेमचन्द' प्राप्त हुए और इस नये नाम के साथ छपने वाली पहली कहानी 'बड़े घर की बेटी' है । इसके विपरीत राजेश्वर गुरु[3] के मतानुसार पहली कहानी 'ममता' सन् १९०९-१० ई० में जमाना में छपी ।

उसी समय प्रेमचन्द ने इस बात का अनुभव किया कि उर्दू, जिसमें वे अब तक लिखते आए हैं, देश के अल्पसंख्यक वर्ग की भाषा है । और यदि वे इस देश के अधिकांश लोगों के निकट पहुंचना चाहते हैं, तो उन्हें उस बहुसंख्यक वर्ग की भाषा - हिन्दी - को ही वरण करना होगा । परिणामतः सन् १९१३ई० में

---

१ अमृतराय : 'कलम का सिपाही', पृ०९७

२ ,, ,, पृ०११३

३ राजेश्वर गुरु : 'प्रेमचन्द' : एक अध्ययन', पृ०२६

प्रेमचन्द ने हिन्दी में लिखना आरम्भ किया और सन् १९१६ई० में हिन्दी में उनका प्रथम उपन्यास 'सेवासदन' तथा इसी वर्ष 'सरस्वती' में उनकी प्रथम कहानी 'पंच-परमेश्वर' प्रकाशित हुई । सम्भवतः इसी आधार पर महाराजकुमार डा० रघुबीरसिंह ने 'हिन्दी गल्प मंजरी' की प्रस्तावना में लिखा है कि," सन् १९१६ई० में प्रेमचन्द भी हिन्दी साहित्य संसार में एकबारगी कूद पड़े[1] ।" किन्तु ध्यान देने की बात है कि सन् १९१२-१३ई० में प्रेमचन्द का प्रथम कहानी संग्रह 'सप्तसरोज' हिन्दी में प्रकाशित हो चुका था । यदि यह कहा जाय कि 'सप्तसरोज' में संगृहीत कहानियां उर्दू में प्रकाशित हो चुकी थीं तो उर्दू में प्रकाशित 'पंचायत' शीर्षक कहानी को ही 'सरस्वती' पत्रिका में छापते समय बदलकर[2] आचार्य पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी ने 'पंच परमेश्वर' शीर्षक कर दिया था । यही नहीं, बल्कि हम ऊपर देख चुके हैं कि सन् १९०७ई० में (प्रेमचन्द के शब्दों में सन् १९०४ई० में ही) 'प्रेमा' शीर्षक उपन्यास हिन्दी में प्रकाशित हो चुका था । वस्तुतः सन् १९१६ई० तक तो प्रेमचन्द काफी ख्याति अर्जित कर चुके थे और उनकी लेखनी की प्रौढ़ता, परिपक्वता, शक्तिमत्ता तथा जागृति से हिन्दी संसार भी परिचित हो चुका था । वे हिन्दी में इसके पूर्व रचना भी करते रहे थे, ऐसी स्थिति में जब कि सन् १९०४ई० से लेकर १९१६ई० के मध्य प्रथम उपन्यास एवं प्रथम कहानी दोनों ही के प्रकाशन के विषय में विद्वानों में मतभेद है, तब नवाबराय के मर्हूम होने के पश्चात् क्योंकि 'प्रेमचन्द' के रूप में उनका आविर्भाव सन् १९१०ई० और इसी नाम से छपने वाली प्रथम कहानी 'बड़े घर की बेटी' की तिथि ही प्रेमचन्दयुग की पूर्व सीमा (सन् १९१०ई०ही) मानी जानी चाहिए । जब कि इसी नाम से युग का नामकरण भी हुआ है, तो यह सीमा मान लेना अनुचित भी न होगा । इस प्रकार व्यावहारिक विवेचन एवं औचित्य की दृष्टि से प्रेमचन्दयुग की पूर्व सीमा सन् १९१०ई० तथा उत्तर सीमा सन् १९४०ई०तक मान लेना प्रत्येक दृष्टि से तर्कसंगत होगा । इसीलिए प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में प्रेमचन्द-युगीन सीमा की अवधि सामान्यतया १९१०ई० से १९४०ई० के मध्य स्वीकृत की गई है ।

---

१ डॉ० रघुबीर सिंह : "हिन्दी गल्प मंजरी" (प्रस्तावना)

२ अमृतराय : 'कलम का सिपाही', पृ०१४६

(ख) कथा साहित्य में प्रेमचन्द-युग का योगदान एवं महत्व

हिन्दी कथा-साहित्य के क्षेत्र में प्रेमचन्द-युग का अपना विशिष्ट महत्व एवं योगदान है। वस्तुतः प्रेमचन्द का युग एक प्रकार की अराजकता का युग था। क्या भाषा, क्या शैली, क्या वस्तु, क्या समाज, क्या राजनीति और क्या धर्म- चिन्तन के प्रत्येक क्षेत्र में प्राचीन भारतीय विचारधारा के साथ पाश्चात्य विचारधारा का योग तो हो ही रहा था, इसके साथ ही साथ भारतीय जनमानस में नवीन विचारों के अंकुर भी फूट रहे थे। इन समस्त विचारधाराओं के संघर्ष के कारण भारत का जनमानस उद्वेलित हो उठा था। स्थिरता नाम की वस्तु किसी भी क्षेत्र में दिखाई नहीं देती थी। ऐसे ही समय में अद्वितीय व्यक्तित्व वाले प्रेमचन्द का, युगनेता के रूप में हिन्दी-साहित्य-संसार में आगमन होता है, जिसे विद्वानों ने हिन्दी साहित्य के इतिहास में एक महान घटना के रूप में स्वीकार किया है। इसीलिए प्रेमचन्द की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए डा० रामविलास शर्मा ने कहा है--"प्रेमचन्द युगको देखते हुए हम कह सकते हैं कि क्या राजनीति में, क्या साहित्य में, उस समय उन्हीं का व्यक्तित्व सबसे अधिक क्रान्तिकारी था। जब हम प्रेमचन्द-युग की राजनीतिक और साहित्यिक शिथिलता पर विचार करते हैं, तो उनकी महत्ता हमारी दृष्टि में दुगुनी हो जाती है।"[1] प्रेमचन्द ने अपने समय की प्रत्येक विचारधारा को पचाकर एक नवीन वस्तु प्रस्तुत की, परन्तु वह नवीन वस्तु मात्र विचारधाराओं का सम्मिश्रण ही नहीं था, वरन् अपने मौलिक तत्वों के योग से सर्वथा भिन्न भी था। इस दृष्टि से कथा-साहित्य के क्षेत्र में प्रेमचन्द का महत्वपूर्ण योगदान मूल्य एवं मानकों का स्थिरीकरण ही माना जा सकता है। प्रेमचन्द ने ये मूल्य मानक न केवल साहित्य के सिद्धान्त पक्ष को ही प्रदान किया, बल्कि सामाजिक जीवन को भी दिया। उन्होंने कथा के क्षेत्र में नये-नये प्रयोग किए, कथा साहित्य को नवीन धारा दी, कथा कारों को नवीन दृष्टि प्रदान की और अनेक कहानीकारों को अपने मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित भी किया। यही कारण है कि प्रेमचन्द के नाम पर युग का

---

१ डा० रामविलास शर्मा : "प्रेमचन्द" (भूमिका), पृ० २।

नामकरण उचित रूप में हुआ है ।

वस्तुत: नई प्रतिभा को पहचानना, उभारा देना, आगे ले आना प्रेमचन्द जैसे सहृदय कलाकार की बहुत बड़ी विशेषता है । उनकी दृष्टि में छोटे-बड़े, नये और पुराने लिखने वालों में किसी भी प्रकार का भेद-भाव नहीं था । पुरानों में सबसे बड़ा नाम 'प्रसाद' का है । 'प्रसाद' के 'चन्द्रगुप्त' नाटक की आलोचना करते हुए 'माधुरी' में मुंशी जी ने लिखा कि 'प्रसाद जी गड़े मुर्दे उखाड़ने' में लगे रहते हैं, किन्तु दूसरे वर्ष जब 'कंकाल' शीर्षक उपन्यास प्रकाश में आया तो प्रेमचन्द लहालोट हो गये और उसका स्वागत करते हुए लिखा — '... यह प्रसाद जी का पहला उपन्यास है, पर आज हिन्दी में बहुत कम ऐसे उपन्यास हैं, जो इसके सामने रखे जा सकें । मुझे अब तक आपसे यह शिकायत थी कि आप क्यों प्राचीन वैभव का राग अलापते हैं, ऐसी चीज़ क्यों नहीं लिखते जिसमें वर्तमान समस्याओं और गुत्थियों को सुलझाया गया हो.... शायद यह मेरी प्रेरणा का फल है कि प्रसाद जी ने इस उपन्यास में तत्कालीन सामाजिक समस्याओं को हल करने की चेष्टा की है, और खूब की है । मेरी पहली शिकायत पर कुछ लोगों ने मुझे खूब आड़े हाथों लिया था, पर अब मुझे वह कठोर बातें बहुत प्रिय लग रही हैं । अगर ऐसी ही पथ-भ्रष्ट कलाकृतियों के साथ ऐसी सुन्दर वस्तु निकल आये तो मैं आज भी उनको सहने के लिए तैयार हूँ ।'[1]

नवीन साहित्यकार के रूप में उनकी सबसे बड़ी उपलब्धि जैनेन्द्र हैं, जिनपर आज हिन्दी साहित्य को गर्व है । न केवल जैनेन्द्र, बल्कि नवीन साहित्यकारों की एक पूरी टोली ही प्रेमचन्द के साथ थी, जो उन्हीं के द्वारा गृहीत तथा निर्णीत मार्ग का अनुसरण करते हुए स्वतन्त्र रूप से अपनी रचनाएं कर रहे थे । वे तो एक कुशल अध्यापक की भांति नवोदित विद्यार्थी की प्रतिभा को पहचान कर कभी उत्साहित और कभी प्रताड़ित भी करते रहते थे । यही कारण है कि नवीन प्रतिभासम्पन्न कथाकारों को देखकर उनके हृदय में द्वेष-भाव कभी टिक नहीं पाया, जो प्राय: प्रतिष्ठित साहित्यकारों में देखा जाता है । १६मार्च सन् १९३०ई० के अपने एक पत्र में उन्होंने, कानपुर के श्री रमाशंकर अवस्थी को जो कुछ लिखा वह इस बात

1. द्रष्टव्य — अमृतराय : 'कलम का सिपाही', पृ०४८६-४८७ ।

का प्रमाण है—'आपके क्लास में यदि कुछ साहित्यिक रुचि के छात्र हों तो उन्हें कुछ लिखते रहने की प्रेरणा करते रहिए । युवक कभी-कभी सुन्दर गल्प लिख जाते हैं, जो हम लोगों से नहीं बन पड़ती । हमारी रीति अभ्यास में है । उनकी कल्पना नवीनता और विचित्रता तो उनके साथ है ।[1]'

देखने में बात तो छोटी है, परन्तु कितने लोग ऐसे हैं, जो इतने उदार और निश्छल ढंग से इसे कह सकते हैं । वे देखते तो सब की ओर हैं, लेकिन उनका ध्यान प्रौढ़ लेखकों पर नहीं है, क्योंकि उनके लिखने का ढर्रा निश्चित हो चुका है, वे मंज गये हैं, उनमें परिपक्वता आ चुकी है, अतः उन्हें पढ़ने भी । लेकिन जो अभी इस क्षेत्र में नवागत कलाकार हैं, उन्हें आवश्यकता है एक सच्चे सहृदय मित्र की और प्रेमचन्द के समान दूसरा कौन मित्र हो सकता है, भले ही वे अवस्था में बड़े हैं अथवा महान कलाकार हैं, इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता । वे सबसे पहले मित्र हैं और तब कुछ और । यही कारण है कि वीरेश्वरसिंह जैसे नवीन लेखक की एक कहानी पढ़ी और पत्र लिखकर भेज दिया कि 'चांद' में आपकी कहानी पढ़कर बड़ा आनन्द आया । कई जगह तो मन मुग्ध हो गया । ... मैं अब आपकी पढ़ाई में विघ्न तो नहीं डालना चाहता लेकिन कभी-कभी कुछ लिखा करें तो एहसान समझूंगा ।[2]' इस प्रकार के प्रेरणात्मक पत्र वे प्रायः प्रतिभासम्पन्न नवीन कहानीकारों को भेजा करते थे ।

प्रेमचन्द स्वयं एक जाने-माने सिद्धहस्त कथा-लेखक एवं शैलीकार थे । हिन्दी भाषा में जब उनकी कहानियों का पहला संग्रह 'सप्तसरोज' के नाम से प्रकाशित हुआ, तब न केवल गल्प लेखनकला के आदर्श ऊंचे हो गए, वरन् बहुत-से कहानी-लेखकों पर प्रेमचन्द का प्रभाव भी पड़ा । अवधेय है कि हिन्दी में प्रेमचन्द के आने के पूर्व भी इस परम्परा के कई लेखक कहानी लिखते रहे थे, किन्तु प्रेमचन्द के मौलिक व्यक्तित्व और उनकी सम्पूर्ण कला का कथा साहित्य और कथाकारों पर ऐसा गहरा प्रभाव पड़ा है कि वे ही इस परम्परा के प्रवर्तक माने जाते हैं तथा

---

१ अमृतराय : 'कलम का सिपाही', पृ० ५८८ ।

२ ,, : ,, पृ०५६० ।

उन्हीं के नाम पर युग-विशेष का नामकरण भी हुआ है । यह सच है कि उन्होंने सिद्धान्तों का प्रतिपादन नहीं किया ,किन्तु उनकी रचनाओं में कुछ ऐसे सामान्य तत्व उभरे हैं,जो तत्कालीन कहानीकारों के लिए सिद्धान्तों के समान ही महत्व रखते हैं । विवेच्ययुगीन अधिकांश कहानीकार इन्हीं सिद्धान्तों के आधार पर कहानियां लिख रहे थे । प्रेमचन्द के पूर्व हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में प्राय: मौलिक कहानीकारों का अभाव था । इस दृष्टि से उन्होंने न केवल मौलिक कहानियों का सूत्रपात किया, वरन् कहानी जो किसी समय बूढ़ी दादी अथवा बूढ़ी नानी के कहने तथा छोटे-छोटे बच्चों के मनोरंजन की वस्तु थी, अब कलापूर्ण साहित्यिक वस्तु के रूप में प्रतिष्ठित हो गई । इस प्रकार स्पष्टरूप से कहा जा सकता है कि प्रेमचन्द के आगमन से अभिजात्य कथा-साहित्य एक नवीन मोड़ लेता है ।

नवीन विधाओं का जन्म एवं भूमिका

प्रेमचन्द-युग की एक अन्य विशेषता यह है कि इस युग में हिन्दी साहित्य के गद्य क्षेत्र में दो नवीन विधाओं— उपन्यास और कहानी —का प्रादुर्भाव हुआ । दोनों ही विधाओं का आधुनिक रूप पश्चिम से आया,इससे इन्कार नहीं किया जा सकता,क्योंकि विवेच्य विषय कहानी से सम्बन्धित है, अत: यहां पर मात्र कहानी का ही विवेचन करना समीचीन होगा । प्रेमचन्दयुगीन कहानीकारों ने यद्यपि कहानी को पश्चिमी रूप में ही ग्रहण किया है,तथापि भारतीय समाज का चित्रण करते हुए,उच्च कलाकार एवं राष्ट्रप्रेमी होने के नाते, उन समस्त पाश्चात्य तत्वों का परित्याग भी किया है,जो भारतीय समाज के प्रतिकूल जान पड़ते थे । इतना ही नहीं, बल्कि भारतीय समाज की विविध विशेषताओं को,जो उनके व्यक्तित्व का ही अंग बन चुकी थीं, उनको पाश्चात्य सिद्धान्तों के साथ जोड़ी भी गयी हैं । फलस्वरूप उनके सिद्धान्तों ने नवीन रूप ग्रहण किया है और इस रूप में कहानी भी नवीन स्वरूप में प्रतिष्ठित हुई है ।

यहां पर यह कहना ऐसा भी उचित होगा कि हिन्दी कहानी की प्राचीनता में सन्देह नहीं किया जा सकता । भारतीय साहित्य में "कहानी"

का रूप भी था और समृद्ध साहित्य भी उपलब्ध है, किन्तु वर्तमान अर्थबोध में हिन्दी कहानी अपना सम्बन्ध प्राचीन कथा-साहित्य से नहीं जोड़ पाती। एक आलोचक ने तो कहानी की प्राचीनता प्रमाणित करने के लिए तथा कुछ नवीन कहने की धुन में आकर गोकुलनाथ कृत "चौरासी वैष्णवन की वार्ता" को ही हिन्दी कहानी का पहला उपलब्ध संग्रह मानने का आग्रह दिखलाया है[१]। इस सम्बन्ध में डा० शिवदानसिंह चौहान ने विस्तृत विवेचन करते हुए निष्कर्ष रूप में कहा है कि "अत: यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि हिन्दी में आधुनिक कहानी की परम्परा का सूत्रपात और विकास जयशंकर 'प्रसाद' की कहानी 'ग्राम' और प्रेमचन्द की कहानी "पंचपरमेश्वर" से होता है[२]।"

इसी सन्दर्भ में यह भी उल्लेखनीय है कि विवेच्य युग के पूर्व काल तक कहानी में चमत्कार-वृत्ति की ही प्रधानता रही है। कहानीकार प्राय: हवाई किले बनाकर मानव-बुद्धि को आश्चर्यचकित करता रहता था, किन्तु प्रेमचन्द ने सर्वप्रथम कथाकारों की कल्पना को धरती पर उतार लाए और इससे भी बढ़कर उन्होंने एक महत्वपूर्ण कार्य यह भी किया कि "कथाकारों के साथ-साथ पाठकों को भी धरती पर उतारा। हिन्दी उपन्यास के पाठक को इस बात से भयभीत रहने लगे थे कि कहीं उनके पैरों के नीचे ही कोई रहस्यमय सुरंग न निकल आये या सड़क पर जाता हुआ व्यक्ति कोई डाकू या जासूस न हो इन्हें प्रेमचन्द ने बताया कि धरती पर [हंसने] वाली हंसती-रोती दुनिया हजार तिलस्मों से बढ़कर है, क्योंकि यह तो हमारी ही समस्याएं हैं, हमारी ही उलझनें हैं, जिन्हें हमने ही पैदा किया और हम ही इन्हें सुलझायेंगे भी। पाठकों को दी गई यह नूतन दृष्टि प्रेमचन्द की अनमोल देन है, जिसका महत्व सम्भवत: उस युग के बड़े-से-बड़े महापुरुष के कृतित्व से बढ़कर है[३]।" इस प्रकार साहित्य में सजीवमानव की प्राण प्रतिष्ठा हुई। इस प्राण प्रतिष्ठा के

१ द्रष्टव्य--'सरस्वती संवाद' का गद्य विशेषांक, पृ०१६२
२ डा० शिवदान सिंह चौहान : "हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष", पृ०१७५
३ डा० श्याम वर्मा : "आधुनिक हिन्दी गद्य शैली का विकास", पृ०२९५

साथ-ही-साथ अब यह भी आवश्यक हो गया कि "प्रेमचन्द मानव को उसके असली रंग में प्रस्तुत करें । यदि वह रोता है तो उसके रोने का कारण बताए बिना, उन परिस्थितियों के सम्यक् मनोवैज्ञानिक व्याख्या किए बिना पात्र की सजीवता का निर्वाह नहीं हो सकता । इसलिए कथा-साहित्य में मनोवैज्ञानिकता का प्रवेश करा देने का श्रेय प्रेमचन्द को ही है ।"[1] इस प्रकार प्रेमचन्द आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य के प्रथम और महान कलाकार सिद्ध होते हैं । प्रेम

नवीन वस्तु-वादों का समावेश

प्रेमचन्द-युग की अन्यतम विशेषताओं में से एक विशेषता यह भी है कि इसी समय साहित्य के क्षेत्र में नवीन विचारधारा एवं नवीन विधाओं के साथ-ही-साथ नवीन वस्तु -वादों का समावेश भी हुआ ।[2] वस्तुतः ये वाद दार्शनिक एवं राजनीतिक परम्पराओं का यौगिक (कम्पाउण्ड) थे । वस्तुतः प्रेमचन्दयुगीन आदर्शोन्मुखिता तथा प्रसाद की प्रेम पद्धति निश्चय ही भारतीय आत्मा से सम्बद्ध है, किन्तु प्रेमचन्द पूर्व किसी भी साहित्यकार ने वादों के ऊपर इतने विस्तार से नहीं लिखा और न तो किसी साहित्यकार के वाद के सम्बन्ध में इतना अधिक विवाद ही उत्पन्न हुआ था । विवेच्य युग के अगुआ कहानीकार प्रेमचन्द ने स्वयं न केवल इन वादों की चर्चा ही की, बल्कि इनका खण्डन और मण्डन भी किया । फलस्वरूप जो "वाद" उन्होंने हिन्दी साहित्य को प्रदान किया, वह हिन्दी साहित्य के लिए अब तक अपरिचित ही था । यह बात अलग है कि अपने इस वाद को जो संज्ञा उन्होंने प्रदान की वह हमें स्वीकार न हो । ये वाद मुख्यरूप से राजनीतिक चेतना के ही परिणाम कहे जा सकते हैं । मार्क्स ने राजनीति के साथ-साथ साहित्य में भी यह वाद-विवाद उत्पन्न कर दिया था कि संसार में व्यक्ति का अधिक महत्त्व है कि समाज का ? और ऐसी स्थिति में साहित्यकार का क्या दायित्व है ? विवेच्य युग में, इस सम्बन्ध में स्पष्टतः दो वर्ग उभर आये थे — एक (वर्ग) व्यक्ति के महत्त्व का समर्थक था तो दूसरा वर्ग समाज को अधिक महत्त्व देने के पक्ष में था । जहाँ तक प्रेमचन्द तथा

---

१ डा० देवराज : "आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान", पृ०२९ ।

२ नरेन्द्र कोहली : "प्रेमचन्द के साहित्य सिद्धान्त", पृ० १३८ ।

उनके सहयोगियों का सम्बन्ध है, वे दोनों में से किसी भी पक्ष के साथ नहीं थे, उन्होंने यदि किसी भी पक्ष का समर्थन किया तो वह पक्ष था सत्य का । क्योंकि आज जनसाधारण या समाज ही सत्य के अधिक सन्निकट है,इसलिए वे इसी ओर झुकते दृष्टिगत होते हैं ।

कथावस्तु का व्यापक विस्तार

विषयवस्तु की दृष्टि से कथा साहित्य में विवेच्य युग का अपना एक विशिष्ट महत्व है । प्रेमचन्दयुगीन कथाकारों ने,जब कथा साहित्य में सदेह जीवित मानव की प्राणप्रतिष्ठा की तो विषय की दृष्टि से भी कथात्मक-विधा को उन्मुक्त क्षेत्र मिला । यही कारण है कि इन कथाओं में देशोद्धार,समाज-सुधार,लोकजीवन में प्रचलित आस्थाओं-अनास्थाओं,देवी-देवताओं इत्यादि विविध विषयों का वर्णन उपलब्ध होता है । यही नहीं,बल्कि चिरबंदिनी नारि ने अपने समानाधिकार के दावे के साथ साहित्य में प्रवेश किया है और दृढ़ तथा उदात्त कण्ठ से पिछली शताब्दी की कल्पित अवास्तविक नारी-मूर्ति के चित्रण का प्रतिवाद किया है[१] । ईश्वर का स्थान मानवता ने ग्रहण किया,परिणामत: पीड़ित मानवता की सहायता और उसके प्रति सहानुभूति का स्वर प्रबल हो उठा । इस दृष्टि से विवेच्य युगीन कथा-साहित्य में तीन धरातल उपलब्ध होते हैं--ग्रामीण नागरिक,मध्यवर्ग तथा नागरिक श्रमिक वर्ग । इन क्षेत्रों के अनुकूल ही भाषा और शैली भी अपना रूप ग्रहण करती है ।

प्रेमचन्दयुग: भाषा एवं शैलीगत महत्व

प्रेमचन्दयुगीन कहानीकारों के समक्ष भाषा और शैली की भी विकट समस्या थी । विवेच्य युग के पूर्व शायद ही किसी भी साहित्यिक वर्ग के समक्ष भाषा एवं शैली की इतनी विकट समस्या उपस्थित हुई हो । वस्तुत: प्रेमचन्द स्वयं भाषा की दृष्टि से,कबीर के समान एक संधिस्थल पर खड़े थे ।आचार्य पण्डित महावीर प्रसाद द्विवेदी जैसे दृढ़ सुलक्ष एवं ईमानदार व्यक्ति के हाथों

---

१ आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी : `हिन्दी साहित्य की भूमिका`,पृ० १२५ ।

भाषा परिमार्जित और परिष्कृत हो चुकी थी और हिन्दी गद्य सब कुछ आत्मसात् कर अभिव्यक्ति की आकांक्षा लेकर आगे बढ़ रहा था, ऐसे समय में हिन्दी भाषा के ऊपर बहुमुखी प्रभाव भी पड़ रहा था । एक ओर तो अंग्रेजी भाषा की स्पष्ट भाव-व्यंजना तथा दूसरी ओर बंगला की सुकुमार, मधुर, कोमल कांत पदावली भी अपना प्रभाव डाल रही थी । स्वयं द्विवेदी जी मराठी भाषा से प्रभावित थे, उन्हें [illegible] गम्भीरता अत्यधिक प्रिय थी । उर्दू अपने सरल प्रवाहपूर्ण एवं मुहावरेदानी से युक्त होकर 'हिन्दुस्तानी' नाम से हिन्दी पर प्रभाव डाल रही थी । संस्कृत का क्या कहना ! वह तो अपनी मातामही थी ही । द्विवेदी जी ने इन सब का सफल संयोजन करके, सभी प्रकार के भाव-विचारों को कहानी कहने के प्रौढ़ ढंग की शैली में डाल दिया था । यह सब होते हुए भी युग की नैतिकता एवं सुधारवादी दृष्टिकोण के कारण भाषा नीरस तथा व्याकरण का कठोर बन्धन उसे और भी शिथिल करता जा रहा था । भाषागत इस नीरसता एवं जड़ता को उर्दू से हिन्दी में आने वाले विवेच्य युगीन कथाकारों ने कुशलतापूर्वक बहुत-कुछ अंशों में दूर किया ।

प्रेमचन्द स्वयं उर्दू से हिन्दी में आये थे और अपने साथ उर्दू की मिठास, प्रवाह तथा मुहावरेदानी भी लाए थे । उन्हें उर्दू का अच्छा ज्ञान था, अत: उनके मन में उर्दू तथा हिन्दी दोनों भाषाओं के प्रति स्वाभाविक मोह था,[1] क्योंकि राजनीति के क्षेत्र में प्रेमचन्द गांधी जी का प्रभाव स्वीकार करते थे, इसीलिए 'यदि महात्मा गांधी हिन्दू-मुसलमानों की एकता चाहते हैं, तो मैं भी हिन्दी और उर्दू को मिलाकर हिन्दुस्तानी बनाना चाहता हूँ ।'[2] उनकी दृष्टि में चाहे जो हो किसी भाषा के शब्द क्यों न हों यदि लोकभाषा में घुल-मिल गये हों तो उनका प्रयोग धड़ल्ले से किया जा सकता है । यही कारण है कि प्रेमचन्दयुगीन कहानीकारों ने लोकभाषा का खुलकर प्रयोग किया है । स्वयं प्रेमचन्द ने भी तुलसी की तरह 'संस्कीरत' को छोड़ 'भाखा' को अपनाया, क्योंकि 'जो जनसाधारण है, वह जनसाधारण की भाषा में लिखता है ।'[2] जिसका एकमात्र आधार था—बोधगम्यता । यही कारण है कि

---

१ शिवरानी देवी : 'प्रेमचन्द घर में', पृ०१२८ ।

२ प्रेमचन्द : 'कुछ विचार', पृ० २० ।

उन्होंने जनसाधारण की भाषा का सशक्त शब्दों में समर्थन ही नहीं किया, वरन् उसका प्रचार भी स्वयं अपने हाथों में ले लिया । पहले तो उनकी भाषा में उर्दू का रंग बहुत गाढ़ा था, किन्तु कालान्तर में अपने परिश्रम के आधार पर हिन्दी के निकट वे आते गये और एक दिन उसपर ऐसा अधिकार जमा लिया कि वह टस-से-मस नहीं हो सकी । कैसा भी भाव हो, कैसा भी विचार हो, चाहे जैसी परिस्थिति अथवा वातावरण हो, प्रेमचन्द की भाषा इन सब को इतने सहज ढंग से व्यक्त करती है कि कहीं भी कृत्रिमता, अस्वाभाविकता और बनावटीपन की झलक नहीं आने पाती । इसीलिए यदि, "प्रेमचन्द अपने-आपको 'कलम का मजदूर' कहते थे, आलोचक उन्हें 'कलम का बादशाह' और उनकी भाषा को 'जादुई भाषा'"[1] । इस दृष्टि से रामेश्वर गुप्त ने बड़े मार्के की बात कही--"भारतेन्दु ने यदि खड़ी बोली को साहित्य के मंदिर में स्थान दिया और द्विवेदी जी ने इसे सुस्थिर आकार दिया तो प्रेमचन्द ने इसे जीवनीशक्ति से सप्राण करके उन्मुक्त प्रचार दिया । खड़ी बोली के राष्ट्रभाषा हिन्दी तक के पथ की प्रशस्ति में प्रेमचन्द साहित्य का बड़ा हाथ है.... उनकी सरल, सजीव, सार्थक कहानियां पढ़ने के लिए बड़ी जनसंख्या ने हिन्दी सीखी .... जहां खड़ी बोली के विकास की चर्चा होगी वहां भारतेन्दु युग और द्विवेदी युग का सही उत्तराधिकारी प्रेमचन्द युग को ही स्वीकार किया जायेगा ।"[2]

निश्चय ही हिन्दी कथा-साहित्य में जितना सम्मान इस 'जादुई भाषा' का हुआ उतना काव्य में अलंकृत गद्य का नहीं । इस लोकप्रियता का कारण विषय और भाषा की सरलता में निहित है । सरल बात सरल ढंग से कहना श्रेष्ठ साहित्य का सम्भवतः अपवाद गुण है, जो वस्तुतः लोककथाओं का प्राण है और जिसे निश्चय ही अभिजात्य साहित्य ने लोक से ग्रहण किया है । यही कारण है कि "प्रेमचन्द का गद्य उस देहाती भाषा की दृढ़ भूमि पर निर्मित हुआ है, कहावतें, मुहावरे, उपमाएं उन्होंने वहीं से सीखी हैं, भाषा की सरलता के लिए उन्हें वहीं से प्रेरणा मिली । प्रेमचन्द की कला का रहस्य एक शब्द में उनका देहातीपन है, ग्रामीण होने के कारण वह समाज में बैठकर उसके सभी तारों से सम्बन्ध स्थापित कर लेते हैं । अपनी भाषा के लिए, अपने चित्रण के लिए वह आवश्यकतानुसार अपने

---

१ श्याम वर्मा : 'आधुनिक गद्य शैली का विकास', पृ०२३०।
२ डा० रामेश्वर गुप्त : 'प्रेमचन्द : एक अध्ययन', पृ०[illegible] ।

देहात के अनुभव पर निर्भर थे और उसने उन्हें कहीं धोखा नहीं दिया[१]।"

भाषा के समान ही शैली के क्षेत्र में भी प्रेमचन्द अद्वितीय कलाकार थे। उन्होंने लोक कहानियों के ही समान वर्णनात्मक शैली का प्रयोग किया। इस दृष्टि से भी प्रेमचन्द ने कथा को सुसंगठित, सुनियोजित क्रमबद्ध उत्तरोत्तर प्रवर्द्धमान बना दिया, जिसमें अनावश्यक अंशों को काट-छांट कर अलग कर दिया[२]। इस देन के लिए उन्हें कथा साहित्य का प्रथम ब्यूटी एक्सपर्ट कहा जाता है। इस दृष्टि से शैली के क्षेत्र में उन्होंने परम्परा द्वारा प्राप्त शैली को ही घिस-मांजकर परिष्कृत रूप दे दिया था, जो किसी-न-किसी रूप में आज भी चल रहा है। प्रेमचन्द के सहयोगी कथाकारों ने भी शैली के क्षेत्र में --बैठकी बातों के लटके की शैली, व्यंग्य-विनोद की शैली, लोक कथाओं में व्यवहृत वर्णन की शैली, गद्य-पद्य मिश्रित चम्पू इत्यादि लोकप्रचलित विभिन्न शैलियों का प्रयोग कर वस्तुतः कहानी को लोक कहानी के समीप लाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि प्रेमचन्द स्वयं में एक पूर्ण परम्परा हैं, जो प्रत्येक क्षेत्र में मौलिक हैं तथा आचार्य हजारीप्रसाद के शब्दों में वे "हिन्दी कथा साहित्य की प्रौढ़ता के सबूत हैं[३]।" प्रेमचन्द ने भारतेन्दु के समान भारत की दुर्दशा पर मात्र रोना, मैथिलीशरण 'भारत भारती' में हम कौन थे क्या हो गये हैं और क्या होंगे अभी- द्वारा मात्र ग्लानि व्यक्त करना प्रेमचन्द का ध्येय न था,- कुछ करो- कृतं न शोचामि गतं न मन्ये- का सिद्धान्त लेकर 'कलम का सिपाही' साहित्य क्षेत्र में उतरा और देश की कराहती आत्मा की अभिव्यक्ति और उसके मन और शरीर के घाव को साहस के साथ दिखाया, वह प्रेम पूर्व हम नहीं पाते। क्योंकि वे जनसाधारण के थे, अतः जनसाधारण की भाषा और शैली में उसी की लोकप्रिय विधा कहानी के माध्यम से, जनसामान्य के सुख-दुःख को चित्रित किया। इस प्रकार निःसंकोच कहा जा सकता है कि प्रेमचन्द जनजीवन

---

१ डा० रामविलास शर्मा : 'प्रेमचन्द', पृ०१७६।

२ डा० देवराज : 'आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान', पृ०७१

३ आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी : 'हिन्दी साहित्य की भूमिका', पृ०१३५

के सर्वाधिक सफल कलाकार एवं लोकनायक थे । .... वे वास्तविक अर्थ में जनसमूह के चितेरे थे । उनकी महत्ता निर्विवाद है ।`[१]

<u>प्रेमचन्दयुग : जनवादी कथा साहित्य</u>

प्रेमचन्दयुगीन कहानीकार जनवर्ग से सम्बद्ध थे । उन्होंने समाज में जन्म लिया, बढ़े हुए और जनवर्ग के मध्य जीवनयापन करते हुए नाना प्रकार की दुःखात्मक एवं सुखात्मक अनुभूतियों का रसास्वादन भी किया था । यही कारण है कि उन्होंने जनवर्ग की कहीं उपेक्षा नहीं की । यदि वे ऐसा करते तो जहां एक ओर साहित्य का क्षेत्र संकीर्ण हो जाता, वहीं दूसरी ओर जनसामान्य में उसका अधिक आदर भी न होता । वस्तुत: जनवर्ग की उपेक्षा करने वाला साहित्य शीघ्र ही नष्ट भी हो जाता है । इस दृष्टि से वह सामाजिक विकास का साधन न बनकर समाज के पतन का कारण बनता है और साहित्य का प्रमुख लक्ष्य-`जनता की सेवा` भ्रष्ट हो जाता है, इसीलिए किसी भी देश और किसी भी साहित्य के महान साहित्यकारों ने जनवर्ग की उपेक्षा नहीं की और जनता के मध्य रहकर वर्गविशेष के लिए नहीं, बल्कि जनता के लिए ही अपनी रचनाएं प्रस्तुत की । विवेच्य युग के सर्वमान्य नेता प्रेमचन्द स्वयं `अपनी कौम की अपनी जाति, देश की सेवा करने` के लक्ष्य को लेकर ही साहित्य के क्षेत्र में उतरे थे । इस सेवाव्रत में भाग लेने वाले जनसेवियों के हाथों में हथियार भिन्न-भिन्न हो सकते हैं । कुछ लोग व्याख्यान देने में पटु होते हैं, वे घूम-घूम कर अपने व्याख्यानों से लोगों को जगाते फिरते हैं, कुछ लोगों में संगठन करने की कला होती है, वे विशृंखलित समाज को संगठित कर उनके मस्तिष्क कैकवरुद्ध वातायनों को उन्मुक्त करते हैं, किन्तु प्रेमचन्द के हाथ में है लेखनी और जब `सेवाव्रती` प्रेमचन्द अपने हाथ में लेखनी लेकर साहित्य के क्षेत्र में उतरे तो फिर जनवर्ग की उपेक्षा का प्रश्न ही नहीं उठता ।

वे दूरदर्शी थे । उन्होंने जनभाषा और जनसाहित्य के महत्त्व को समझा और बड़ी ही सूझ-बूझ के साथ, भाषाभिव्यक्ति के लिए जनता की रुचि के अनुकूल ही जनप्रिय लोकविधा कहानी का ही चयन किया । उन्हीं के मतानुसार `लोग किस्से कहानियां प्रायः बहुत पसन्द करते हैं । मैं अपने किस्से कहानियों से लोगों

१ डॉ० राजेश्वर गुरु : `प्रेमचन्द : एक अध्ययन`, पृ० २७८ ।

को उनके समाज के असली रूप को उनकी आंखों के सामने लाऊंगा और उन्हें सोचने के लिए मजबूर करूंगा ।[1]" इस प्रकार वे मात्र मनोरंजन के लिए लिखने वालों में से नहीं थे, उनका लक्ष्य तो ऐसी कहानियों की रचना करना था, जो मृत समाज में भी गति उत्पन्न कर दे । यह गति कब उत्पन्न होती है ? जनता की रुचि कब जाग्रत होती है ? वह किसी रचना का स्वागत करने के लिए कब आतुर होता है? स्वयं प्रेमचन्द जी के शब्दों में --"कहानी कहने और सुनने की वस्तु है । हम वही बात कहना-सुनना पसन्द करते हैं, जो हमारे जीवन के निकट हो, जिसमें हमारी सहानुभूति हो । जिसका जीवन से किसी भी प्रकार का सम्पर्क नहीं, उसे पढ़ना और सुनना व्यर्थ समझेंगे ।[2]" इस प्रकार कहानी जो अब तक मात्र कहने-सुनने की वस्तु थी, बच्चों के मनोरंजन की वस्तु थी, कल्पनालोक में विचरने की वस्तु थी, जो लोकवर्ग की सर्वाधिक प्रिय वस्तु थी, उसकी प्रतिष्ठा अभिजात्य साहित्य में भी हुई, किन्तु उसकी मूल प्रकृति सुरक्षित ही रही ।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी कहानी जन-जन की कहानी है । प्रेमचन्द तत्कालीन कहानी-साहित्य को किस प्रकार जन-कथा का रूप देने में सफल हो सके ? किस प्रकार अपने सहयोगियों को जनप्रिय कथाकार बनाने में सफल हो सके? इन सभी का रहस्य लोक कहानी की कहानी में निहित है ।

<u>जनसाहित्य के प्रेरणा स्रोत : लोकतत्व</u>

सच पूछा जाय तो विश्व के सम्पूर्ण जन साहित्य की पृष्ठभूमि तथा भाव-भूमि के प्रेरणा स्रोत लोक तत्व ही हैं । लोकतत्वों की आधार शिला पर ही जन साहित्य का भव्य भवन निर्मित होता है । इस दृष्टि से जन-साहित्य और लोकतत्व का घनिष्ठ सम्बन्ध है । यही नहीं, बल्कि जहां एक और मनीषियों द्वारा जन शब्द का प्रयोग साधारण जनता के अर्थ में किया गया है, वहां

---

१ अमृतराय : "कलम का सिपाही", पृ०५० ।

२ प्रेमचन्द : "हिन्दी की आदर्श कहानियाँ" (सम्पादक- भूमिका), पृ०६ ।

लोक शब्द भी जन सामान्य के लिए प्रयुक्त हुआ है, उदाहरणार्थ--

अज्ञान तिमिरांधस्य लोकस्य तु विचेष्टतः ।
ज्ञानांजन शलाकाभिर्नेत्रोन्मीलन कारकम् ।। (महाभारत)

इसी प्रकार श्रीमद्भगवद्गीता में लोकसंग्रह शब्द जन-साधारण के लिए ही प्रयुक्त किया गया है --

कर्मणैव हि संसिद्धि मास्थिता जनकादयः ।
लोकसंग्रहमेवापि संपश्यन्कर्तुमर्हसि ।।

ऋग्वेद का एक उदाहरण द्रष्टव्य है, जिसमें जन शब्द का प्रयोग साधारण जनता के लिए किया गया है --

या इमे रोदसी उभे अहमिंद्र मतुष्टवं ।
विश्वामित्रस्य रक्षति ब्रह्मेदं भारतं जनं ।।

तो क्या लोक साहित्य और जन साहित्य एक ही है ? क्या इन दोनों में किसी प्रकार का अन्तर नहीं है ? यह सत्य है कि लोक तत्वों को ही आधार मानकर जनसाहित्य का निर्माण होता है और लोक तथा जन शब्द का प्रयोग अनेक स्थानों पर समान अर्थ में ही हुआ भी है, फिर भी लोक साहित्य और जन साहित्य में यत्किंचित् अन्तर भी है । इनका अन्तर स्पष्ट करते हुए, आदिम साहित्य का अन्तर भी जान लेना समीचीन होगा । यह विवेचन इसलिए भी आवश्यक है कि आदिम साहित्य से लेकर शिष्ट अथवा अभिजात्य साहित्य के "ऐतिहासिक विकासक्रम की बात ध्यान में न रखने के कारण प्रायः 'लोक साहित्य' को 'आदिम-साहित्य' और 'जन-साहित्य' के साथ अपला किया जाता है ।"[१] आदिम साहित्य जनसामान्य के उस युगविशेष का साहित्य है, जब समाज का गठन अनिश्चततम पारस्परिक सहयोग पर आधृत था । उस समाज में न तो नगर और ग्राम का विभाजन था, न शिष्ट और अशिष्टकी भावना थी और न वर्णों तथा व्यवसायों के विभाजन का कठोर बन्धन । परन्तु लोक साहित्य उस युगविशेष का साहित्य है, जिसमें शिष्ट और अशिष्ट, सामान्य और विशेष का भेद स्पष्ट हो चला था । लोकसाहित्य में प्रयुक्त

---

१ नामवर सिंह : 'इतिहास और आलोचना', पृ० १६१ ।

लोक-विशेषण ही उसके समानान्तर उस समाज में शिष्ट साहित्य के अस्तित्व का संकेत करता है । इस प्रकार लोक साहित्य आदिम साहित्य की अपेक्षा विकसित समाज की देन है । फिर भी लोक साहित्य में आदिम साहित्य के प्रतीकों,कथानकों, कथानक रूढ़ियों के साथ-साथ किंवदन्तियां गढ़ने (मिथमेकिंग) की प्रवृत्ति को उत्तराधिकार रूप में प्राप्त करने के नाते सुरक्षित रखता है । यही कारण है कि लोक - साहित्य में आदिम मानस के तत्व प्राप्त होते हैं ।

जनसाहित्य और लोक साहित्य के मध्य विभाजन-रेखा खींचना यद्यपि कठिन कार्य है,तथापि सामान्यरूप से इतना तो कहा ही जा सकता है कि जन साहित्य औद्योगिक क्रान्ति द्वारा उद्भूत समाज-व्यवस्था की भूमिका में प्रवेश करने वाले जनसामान्य का साहित्य है । इसीलिए दोनों एक-दूसरे से भिन्न हैं । जहां लोक साहित्य जनता द्वारा जनता के लिए ही रचा गया साहित्य है,वहां जन-साहित्य जनता के लिए व्यक्तिविशेष द्वारा लिखा गया साहित्य है । लोकसाहित्य में रचयिता व्यक्ति का कोई महत्व नहीं होता । वह तो जनसमूह के अभिव्यक्ति का माध्यम मात्र होता है, अत: लोक में घुल-मिल जाता है,परन्तु जनसाहित्य में रचयिता व्यक्ति का अपना विशिष्ट महत्व होता है । उसकी अपनी अलग स्थिति बनी रहती है । जनसाहित्य और लोकसाहित्य में एक अन्तर यह भी है कि लोक साहित्य जन-साहित्य की भांति लिखित एवं प्रकाशित नहीं होता । वह तो लोकवर्ग में उत्पन्न होकर लोककण्ठ में ही जीवित रहता है । इस प्रकार दोनों में अन्तर होते हुए भी, जिस प्रकार लोक साहित्य में आदिम मानस के तत्व उपलब्ध होते हैं,उसी प्रकार जन-साहित्य में आदिम साहित्य और लोक साहित्य दोनों के ही तत्व मिलते हैं । क्योंकि प्रेमचन्दयुगीन कथासाहित्य जनसाहित्य है,जिसकी रचना वर्गविशेष के लिए नहीं, बल्कि सामान्य जनवर्ग की दृष्टि से की गई और उसके रचयिता भी जनवर्ग से ही सम्बद्ध थे,इसीलिए उसमें आदिम साहित्य तथा लोक साहित्य दोनों के ही तत्व उपलब्ध होते हैं । इस दृष्टि से विवेच्य युगीन कहानी में लोक जीवन के विविध पक्षों का चित्रण हुआ है,जिससे कहानी पढ़ते हुए पाठक अथवा श्रोता दोनों को ही लोक-कहानी के समान ही आनन्दानुभव होता है ।

(ग) लोकतत्व : विवेचन

लोकतत्व का अर्थ -- प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी कहानी में उपलब्ध लोकतत्वों का विवेचन करने के पूर्व लोकतत्व का क्या अर्थ है ? यह जान लेना आवश्यक है । लोकतत्व से हमारा अभिप्राय लोकवार्ता के विभिन्न तत्वों से है । लोकतत्व एवं लोकवार्ता के विवेचन के पूर्व प्रस्तुत सन्दर्भ में `लोक` शब्द के अर्थ का निरूपण भी आवश्यक है । वस्तुत: `लोक` शब्द की उत्पत्ति, उसकी प्राचीनता, उसके विभिन्न अर्थों तथा परिभाषाओं का भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों ने इतना अधिक और सविस्तार विवेचन किया है कि साहित्यिक जगत् में `लोक` शब्द का अर्थ किसी से छिपा नहीं रह गया है । अस्तु विस्तार-भय से इसके विस्तृत विवेचन में न जाकर, यहां संक्षेप में ही विवेचन अभीष्ट है ।

बहुधा `लोक` शब्द दो अर्थों में प्रयुक्त हुआ है-- एक तो विश्व अथवा समाज और दूसरा जनसामान्य अथवा जनसाधारण । साहित्य और संस्कृति के एक भेद-विशेष की ओर संकेत करने वाले आधुनिक विशेषण के रूप में इसका अर्थ ग्राम्य अथवा जनपद या जनपदीय भी ग्रहण किया गया है । इस दृष्टि से मात्र गांवों अथवा जनपदों में ही नहीं, बल्कि नगरों, पर्वतों, जंगलों और टापुओं में भी बसने वाला ऐसा मानव समाज जो अपने पूर्वजों से परम्परा द्वारा प्राप्त रीति-रिवाजों तथा आदिम विश्वासों के प्रति आस्थावान होने के कारण अर्द्ध सभ्य या असभ्य,[१] अशिक्षित, ग्रामीण या देहाती कहा जाता है, लोक का प्रतिनिधित्व करता है । प्रस्तुत विवेचन में `लोक` शब्द अपने इसी अर्थ में ग्रहण किया गया है । इस रूप में `लोक` शब्द अंग्रेजी के `फ़ोक` का पर्यायवाची है । इस प्रकार अंग्रेजी का `फ़ोकलोर` हिन्दी में `लोकवार्ता` तथा `फ़ोक लिटरेचर` लोकसाहित्य बना और `फ़ोक`, `लोक` के रूप में स्थायी होकर लोकप्रिय बन गया है । लोकवार्ताविद् तथा लोकसाहित्य के

---

१ `लोक` शब्द का अर्थ `जनपद` या `ग्राम्य` नहीं है बल्कि नगरों और गांवों में फैली हुई वह समूची जनता है, जिसके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियां नहीं हैं । ये लोग नगर के परिष्कृत रुचिसम्पन्न सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं और परिष्कृत रुचि वाले लोगों की समूची विलासिता और सुकुमारता को जिन्दा रखने के लिए जो वस्तुएं आवश्यक होती हैं उनको उत्पन्न करते हैं ।
--डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी : `विचार और वितर्क` (नवीन संस्क०), पृ०१९४।

(ग) लोकतत्व : विवेचन

लोकतत्व का अर्थ -- प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी कहानी में उपलब्ध लोकतत्वों का विवेचन करने के पूर्व लोकतत्व का क्या अर्थ है ? यह जान लेना आवश्यक है । लोकतत्व से हमारा अभिप्राय लोकवार्ता के विभिन्न तत्वों से है । लोकतत्व एवं लोकवार्ता के विवेचन के पूर्व प्रस्तुत सन्दर्भ में `लोक` शब्द के अर्थ का निरूपण भी आवश्यक है । वस्तुत: `लोक` शब्द की उत्पत्ति, उसकी प्राचीनता, उसके विभिन्न अर्थों तथा परिभाषाओं का भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों ने इतना अधिक और सविस्तार विवेचन किया है कि साहित्यिक जगत् में `लोक` शब्द का अर्थ किसी से छिपा नहीं रह गया है । अस्तु विस्तार-भय से इसके विस्तृत विवेचन में न जाकर, यहां संक्षेप में ही विवेचन अभीष्ट है ।

बहुधा `लोक` शब्द दो अर्थों में प्रयुक्त हुआ है-- एक तो विश्व अथवा समाज और दूसरा जनसामान्य अथवा जनसाधारण । साहित्य और संस्कृति के एक भेद-विशेष की ओर संकेत करने वाले आधुनिक विशेषण के रूप में इसका अर्थ ग्राम्य अथवा जनपद या जनपदीय भी ग्रहण किया गया है । इस दृष्टि से मात्र गांवों अथवा जनपदों में ही नहीं, बल्कि नगरों, प्रान्तों, कस्बों और टापुओं में भी बसने वाला ऐसा मानव समाज जो अपने पूर्वजों से परम्परा द्वारा प्राप्त रीति-रिवाजों तथा आदिम विश्वासों के प्रति आस्थावान होने के कारण कहीं सभ्य या असभ्य,[1] अशिक्षित, ग्रामीण या देहाती कहा जाता है, लोक का प्रतिनिधित्व करता है । प्रस्तुत विवेचन में `लोक` शब्द अपने इसी अर्थ में ग्रहण किया गया है । इस रूप में `लोक` शब्द अंग्रेजी के `फ़ोक` का पर्यायवाची है । इस प्रकार अंग्रेजी का `फ़ोकलोर` हिन्दी में `लोकवार्ता` तथा `फ़ोक लिटरेचर` लोकसाहित्य बना और `फ़ोक`, `लोक` के रूप में रूढ़ होकर लोकप्रिय बन गया है । लोकवार्ताविद् तथा लोकसाहित्य के

---

१ `लोक` शब्द का अर्थ `जनपद` या `ग्राम्य` नहीं है बल्कि नगरों और गांवों में फैली हुई वह समूची जनता है, जिसके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियां नहीं हैं । ये लोग नगर के परिष्कृत रुचिसम्पन्न सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं और परिष्कृत रुचि वाले लोगों की समूची विलासिता और सुकुमारता को जीवित रखने के लिए जो वस्तुएं आवश्यक होती हैं उनको उत्पन्न करते हैं ।
--डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी : `विचार और वितर्क` (नवीन संस्क०), पृ०१८४।

मर्मज्ञ डा० सत्येन्द्र ने 'लोक' को 'फ़ोक' का पर्याय स्वीकार करते हुए, 'लोक' और 'लोकतत्व' की परिभाषा इस प्रकार दी है —" 'लोक' मनुष्य समाज का वह वर्ग है, जो अभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता और पाण्डित्य की चेतना अथवा अहंकार से शून्य है और जो परम्परा के प्रवाह में जीवित रहता है। ऐसे लोक की अभिव्यक्ति में जो तत्व मिलते हैं, वे 'लोक-तत्व' कहलाते हैं।"[1]

अंग्रेजी शब्द 'फ़ोकलोर' का हिन्दी पर्यायवाची 'लोकवार्ता' शब्द प्रचलित तथा इसके आधुनिक अर्थ से भली भांति परिचित कराने का श्रेय श्री कृष्णानन्द गुप्त को है। सन् १९४५-४६ई० में 'लोक-वार्ता-परिषद्' टीकमगढ़ से प्रकाशित 'लोकवार्ता' नामक त्रैमासिक पत्रिका के सम्पादन द्वारा उन्होंने समूचे हिन्दी जगत् का ध्यान इस ओर आकर्षित किया है।

<u>फ़ोकलोर की परिभाषा</u> अंग्रेजी शब्द 'फ़ोकलोर' का इतिहास भी महत्वपूर्ण है, "यह शब्द सन् १८४६ में डब्ल्यू०जे० थामस ने सभ्य जातियों में मिलने वाले असंस्कृत समुदाय की प्रथाओं, रीति-रिवाजों तथा मूढ़ाग्रहों को अभिव्यक्त करने के लिए गढ़ा था।"[2] पहले इस शब्द की परिभाषा संकुचित थी, अतः यह शब्द साधारण लोक की मौखिक और लिखित परम्पराओं तथा लोकमानस सौन्दर्यबोध से सम्बन्धित परम्परागत अभिव्यक्तियों तक ही सीमित रहा। किन्तु धीरे-धीरे इस शब्द का अर्थ व्यापक होता गया और वर्तमान समय में इस शब्द की सीमा में वे सभी तत्व समाहित माने जाते हैं, जिसकी परिभाषा मेरू एडवर्ड लीच ने इस प्रकार दी है—'लोकवार्ता एक संघात्मक शब्द है, जो किसी भी एक जातीय सभ्यता की कृत्रिमता-विमुक्त जनसमूह के सम्पूर्ण संचित ज्ञान का भाण्डार अर्थात् उसकी रीति-रिवाज लोक-विश्वास, लोकपरम्पराओं, लोककथाओं, जादू-टोने की क्रियाओं, लोकोक्तियों, लोकगीत आदि का परिचायक है, जो कि न केवल उसे साधारण मौखिक बन्धनों से परस्पर आबद्ध रखता है, बल्कि जिनके बीच

---

१ डा० सत्येन्द्र : 'लोक साहित्य-विज्ञान', 'मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोकतात्विक अध्ययन', पृ० ३ ।

२ 'फ़ोकलोर : इन साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका', वाल्यूम ६, पृ० ४४६ ।

भावात्मक सत्ता के सूत्र भी हैं, जो उनकी हर अभिव्यंजना को न केवल अपने रंग में अनुरंजित कर देते हैं,बल्कि उन्हें निराली और निजी विशिष्टता भी प्रदान करते हैं।"[1]

'फ़ोकलोर' के विकसित अर्थ एवं व्यापक प्रयोग की दृष्टि से श्री जे०एल०मिश्र की परिभाषा भी बड़े महत्व की है।--" ऐसे सभी प्राचीन विश्वासों,प्रथाओं और परम्पराओं का सम्पूर्ण योग,जो सभ्य समाज के अल्प-शिक्षित लोगों के बीच आज तक प्रचलित है,'फ़ोकलोर' है। इसकी परिधि में परियों की कहानियां, लोकानुश्रुतियां, पुराण-गाथाएं, अन्धविश्वास,उत्सव-रीतियां,परम्परागत खेल या मनोरंजन, लोकगीत प्रचलित कहावतें,कला,कौशल,लोक-नृत्य और ऐसी अन्य सभी बातें सम्मिलित की जा सकती हैं।"[2]

'फ़ोकलोर' की व्यापक और वैज्ञानिक परिभाषा श्रीमती चार्लट सोफ़िया बर्न ने अपनी पुस्तक 'द हैण्डबुक आफ फ़ोकलोर' में इस प्रकार दी है --" यह एक जातिबोधक शब्द की भांति प्रतिष्ठित हो गया है, जिसके अन्तर्गत पिछड़ी जातियों में प्रचलित अथवा अपेक्षाकृत समुन्नत जातियों के असंस्कृत समुदायों में अवशिष्ट,रीति-रिवाज,कहानियां,गीत,कहावतें आती हैं। प्रकृति के चेतन तथा जड़ जगत के सम्बन्ध में, मानव स्वभाव तथा मनुष्यकृत पदार्थों के संबंध में, भूत-प्रेतों की दुनिया तथा उसके साथ मनुष्यों के सम्बन्ध में,जादू-टोना,सम्मोहन, वशीकरण,तावीज,भाग्य,शकुन,रोग तथा मृत्यु के सम्बन्ध में आदिम तथा असभ्य विश्वास इसके क्षेत्र में आते हैं। और भी, इसमें विवाह,उत्तराधिकार,बाल्यकाल तथा प्रौढ़ जीवन के रीति-रिवाज एवं अनुष्ठान और त्यौहार,युद्ध आखेट,मत्स्य व्यवसाय,पशु-पालन आदि विषयों के भी रीति-रिवाज और अनुष्ठान इसमें आते हैं, तथा धर्मगाथाएं,अवदान(लीजेंड)लोककहानियां,साके(बैलड),गीत,किंवदन्तियां,पहेलियां तथा लोरियां भी इसके विषय हैं। संक्षेप में लोक की मानसिक सम्पन्नता के अन्तर्गत जो भी वस्तु आ सकती है,सभी इसके क्षेत्र में हैं। वह किसान के हल की आकृति नहीं, जो लोकवार्ताकार को अपनी ओर आकर्षित करती है,किन्तु वे उपचार तथा अनुष्ठान हैं,

---

[1] 'फ़ोकलोर' : स्टैण्डर्ड डिक्शनरी आफ फोकलोर माइथोलाजी एण्ड लीजेण्ड', प्रथम भाग,पृष्ठ०१।

[2] ,, ,, ,,

जो किसान कौ उर्वरभूमि जोतने के समय करता है । चाउ अथवा वंशी की बनावट नहीं, वरन् वे टोटके जो मछुआ समुद्र पार करते समय करता है, पुल अथवा निवास का निर्माण नहीं, वरन् वह बलि जो उसको बनाते समय की जाती है और उसके उपयोग में लाने वालों के विश्वास । लोकवार्ता वस्तुत: आदिम मानव की मनोवैज्ञानिक अभिव्यक्ति है, वह चाहे दर्शन, धर्म, विज्ञान तथा औषध के क्षेत्र में हुई हो, चाहे सामाजिक संगठन तथा अनुष्ठानों में अथवा विशेषत: इतिहास तथा काव्य और साहित्य के अपेक्षाकृत बौद्धिक प्रदेश में ।"[1]

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर स्पष्टरूप से कहा जा सकता है कि लोकवार्ता या लोकतत्व का क्षेत्र अत्यधिक विस्तृत है । इस विस्तृत क्षेत्र में फैले हुए विभिन्न तत्वों को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है-- (१) लोकसाहित्य, (२) रीति-रिवाज और (३) लोक प्रचलित विश्वास तथा अन्ध-परम्पराएं । क्योंकि इन तत्वों में जनसाधारण का स्वर निहित रहता है, अत: इनके माध्यम से हम जनवर्ग का दु:ख-सुख, हर्ष-विषाद तथा उनकी अनुभूतियों का अनुभव करते हैं । इसीलिए वह हमारे जीवन के अधिक निकट हैं । इसलिए नहीं कि वे आज के हैं, वरन् इसलिए कि लोकतत्वों में ही जनसामान्य की आशाओं-आकांक्षाओं तथा आत्मभावों से सम्बद्ध सामग्री निहित रहती है, जिनके आधार पर जनसंस्कृति और लोकसंस्कृति का हम अनुमान कर सकते हैं ।

लोकतत्वों के मूल में लोकमानस की भूमिका : अर्थ एवं महत्व

उपर्युक्त प्रत्येक लोकतत्वों के मूल में लोकमानस की भूमिका निहित रहती है । इसलिए किसी भी साहित्य का लोकतात्विक निरूपण करते हुए लोकमानस का विवेचन भी आवश्यक हो जाता है, क्योंकि लोकतत्वों अथवा लोकवार्ता के मूल में लोकमानस ही निहित रहता है, अत: लोकतत्व का अन्वेषण लोकमानस के आधार पर ही सम्भव है । यही कारण है कि विद्वानों ने आदिम मानव मानस की सीधी और सच्ची अभिव्यक्ति को ही लोकवार्ता माना है । डा० सत्येन्द्र ने लोक-साहित्य की परिभाषा देते हुए लिखा है कि --"लोक साहित्य के अन्तर्गत वह समस्त

१ वही : "द हैण्डबुक आफ फ़ोकलोर" --डा० सत्येन्द्र द्वारा अनुदित--"ब्रजलोक-साहित्य का अध्ययन" से उद्धृत -, पृ०४-५ ।

बोली या भाषागत अभिव्यक्ति आती है,जिसमें--

(अ) आदिम मानस के अवशेष उपलब्धों,

(आ)परम्परागत मौखिक क्रम से उपलब्ध बोली या भाषागत अभिव्यक्ति हो,जिसे किसी की कृति न कहा जा सके,जिसे श्रुति ही माना जाता हो, और जो लोकमानस की प्रवृत्ति में समाई हुई हो,

(इ) कृतित्व हो,किन्तु वह लोकमानस के सामान्य तत्वों से युक्त हो कि उसके किसी व्यक्तित्व से सम्बद्ध रहते हुए भी,लोक उसे अपने व्यक्तित्व की कृति स्वीकार करे।[1]

डा० सत्येन्द्र ने 'मानस' शब्द का प्रयोग सोकोलोव वाई० एम० की 'रशन फोकलोर' नामक पुस्तक में प्रयुक्त 'संस्कृति' शब्द के स्थान पर किया है। इस पुस्तक का अंग्रेजी अनुवाद न्यूयार्क से सन् १९५०ई० में प्रकाशित हुआ है। इसके अनुवादक कैथराइन रूथ स्मिथ हैं। सोकोलोव ने लोकवार्ता की प्रवृत्ति पर विचार करते हुए लिखा है --' लोकवार्ता की वस्तु और रूप में प्राचीन संस्कृतियों के अवशेषों की उपस्थिति न मानना असम्भव है।' इसका तात्पर्य स्पष्ट है कि लोकवार्ता में प्राचीन संस्कृतियों के अवशेष अवश्य होते हैं। यही लोकसाहित्य का प्रधान तत्व है। इसी 'संस्कृति' शब्द के स्थान पर डा० सत्येन्द्र ने 'मानस' शब्द का प्रयोग किया है। इस शब्द के प्रयोग का भी एक कारण है,वह यह कि डा० सत्येन्द्र ने लोकसाहित्य को वाणीगत अभिव्यक्ति माना है।[2] इस वाणीगत अभिव्यक्ति में संस्कृति की छाप को सुरक्षित रखने वाला यही तत्व है। इसी मानस के अनुरूप ही लोकसाहित्य में वस्तु और रूप प्रकट होते हैं,इसीलिए 'आदिम' मानस शब्द का प्रयोग किया गया है। 'आदिम' शब्द अंग्रेजी के 'प्रिमिटिव' का पर्याय है। ऐतिहासिक दृष्टि से 'आदिम मानव' में जो गुण,धर्म एवं विशेषतायें होंगी,उसी का बोधक यह शब्द है। ये गुण,धर्म तथा विशेषतायें आदिम जातियों में तो प्रत्यक्ष रूप से होंगी ही,परन्तु

---

१ डा० सत्येन्द्र : 'लोकसाहित्य विज्ञान',पृ०४-५ ।

२ ,, : ,, ,,

अप्रत्यक्षरूप से अत्यन्त सभ्य जातियों में भी होंगी । कितना ही सभ्य से सभ्य व्यक्ति क्यों न हो, उसके भीतर कहीं-न-कहीं आदिम संस्कार अवश्य छिपे रहते हैं,क्योंकि जैसा कि फ्रेज़र ने अपनी पुस्तक `फोकलोर इन द ओल्ड टेस्टामेण्ट` में लिखा है कि आरम्भ में विश्व की सभी जातियां असभ्य और बर्बर थीं, जिस बर्बरावस्था में आज भी कुछ जंगली जातियां विद्यमान हैं और आज का सुसभ्य मानव भी उस बर्बरावस्था से ही विकसित होकर आज का सुसभ्य स्वरूप पाया है।[१] इसी प्रकार जैसे सभ्य बनकर भी मानव असभ्य तथा बर्बर मानव का परिवर्तित रूप है, उसी प्रकार मनुष्य की अभिव्यक्तियों में भी आदिम अभिव्यक्ति के तत्व बच ही जाते हैं । लोकवार्ता में इन्हीं आदिम मानव मानस के तत्वों का अध्ययन किया जाता है,जिससे लोक साहित्य का भी घनिष्ठ सम्बन्ध है । इस प्रकार लोकमानस वह निर्णायक तत्व है,जिसके आधार पर यह निश्चित किया जा सकता है कि द्विवेदीयुगीन हिन्दी कहानी में लोकवार्ता का कितना अंश समाविष्ट है ।

लोकमानस : स्पष्टीकरण

प्रस्तुत सन्दर्भ में लोकमानस का स्पष्टीकरण भी आवश्यक प्रतीत होता है । अत: कतिपय उदाहरणों द्वारा लोकमानस का स्पष्टीकरण किया जा रहा है । इस दृष्टि से लोकजीवन में जन्म-मृत्यु और विवाह-- ये तीनों ही संस्कार बड़े ही महत्व के हैं । लोकजीवन में इन तीनों से सम्बन्धित विभिन्न प्रकार के रीति-रिवाज एवं लोकाचारों का भी अपना विशिष्ट महत्व होता है । इनमें से जन्म और मृत्यु का सम्बन्ध आदिम मानव की आश्चर्य वृत्ति से था और तथा विवाह आवश्यकता की दृष्टि से महत्वपूर्ण था । आदिम मानव जन्म के रहस्य को समझने में अपने को असमर्थ पाता था । अचानक एक शिशु का जन्म कैसे हुआ ? यह उसके सामने एक जटिल प्रश्न था, जिसका समाधान उसने अमानवीय शक्ति में ढूढ़ निकाला और जन्म का श्रेय किसी अमानवीय शक्ति को प्रदान किया । जिस प्रकार आदिम मानव मानव जन्म के रहस्य को नहीं समझ पाता था,उसी प्रकार मृत्यु

---

१ द्रष्टव्य-- जेम्स फ्रेज़र : `फोकलोर इन द ओल्ड टेस्टामेण्ट` (भूमिका)

भी आदिम मानव मानस के लिए अत्यधिक रहस्यमय बात थी । जो व्यक्ति कुछ क्षण पूर्व अन्य साधारण जीवों की भाँति व्यवहार करता था, वह अचानक अचल कैसे गया ? उसका जीव तत्व कहाँ चला गया ? उसमें विविध परिवर्तन कैसे हो गए ? ऐसे परिवर्तन साधारण मानव में तो नहीं दिखाई देते । परिणामत: आश्चर्यचकित मानव ने जन्म की ही भाँति मृत्यु का कारण भी किसी अमानवीय शक्ति को मानकर, लोकमानस में यह कल्पना की होगी कि जो प्राणी पहले शिशु रूप में अचानक सब को आश्चर्य चकित कर इस लोक में आया था, पुन: अपने उसी लोक को चला गया तथा इच्छा होने पर फिर कभी भी हम सब को आश्चर्यचकित कर वह आ सकता है । मृत व्यक्ति किसी दूसरे लोक में चला गया है, यह कल्पना करके मृतक के सम्बन्धियों, घनिष्ठ मित्रों तथा परिवार के सदस्यों ने यह कामना की कि उसे शान्ति मिले, वह अपने लोक में सुखमय जीवन व्यतीत करे, उसे किसी भी प्रकार का कष्ट न हो, इन बातों के लिए आदिम मानव ने विविध प्रकार के समाधान खोज निकाले । यही समाधान मृत्यु से सम्बन्धित विभिन्न रीति-रिवाज एवं लोकाचार हैं । उदाहरण के लिए आदिम मानव मानस ने सोचा होगा कि मृत व्यक्ति को जो वस्तुएँ प्रिय थीं, जो उसके जीवन के लिए आवश्यक थीं, जो उसके मनोरंजन का कारण थीं, जिनकी उन्हें कभी भी आवश्यकता पड़ सकती थी आदि वस्तुएं यदि मृतक के शव के साथ रख दी जायेंगी, तो यथासमय वह उनका उपयोग कर लेगा । मिस्र में मृतक के शव के साथ विभिन्न खाद्य सामग्री वस्त्र , अस्त्र-शस्त्र तथा दैनिक जीवन की उपयोगी वस्तुओं का मिलना लोकमानस के उपर्युक्त विश्वास का ही द्योतक है।कि मृत-व्यक्तियों आज भी विशेषकर हिन्दू समाज में मृत व्यक्ति के अन्य लोक में सुख-सुविधा की दृष्टि से स्वजना: के जिन नित्य-प्रति के जीवन में उपयोगी वस्तुओं को दान स्वरूप प्रदान करने की परम्परा प्रचलित है ।

इसी प्रकार मृत व्यक्तियों के दूसरे लोक अर्थात् पितरों के लोक का भी स्थान लोकमानस के अनुसार ही खोज निकाला है । शव को भूमि में गाड़ने की प्रथा भारत में ही नहीं, बल्कि विश्व के अनेक देशों में तथा असभ्य जंगली जातियों में भी प्रचलित है ,' जो आज भी आदिम मानव मानस के स्तर पर ही पाया जाता है । इस क्रिया के मूल में लोकमानस और आदिम मानव की यही

चिन्तन-प्रक्रिया विद्यमान है कि मृतक व्यक्ति फिर से जीवित हो सकता है,अत: उसका दाह-संस्कार करके कष्ट नहीं देना चाहिए । रिवर्स नामक पाश्चात्य विद्वान् ने तो जंगली तथा असभ्य जातियों के मृत्यु से सम्बन्धित विचारों का विश्लेषण करके स्पष्टरूप से कहा है कि उनकी दृष्टि में मृत्यु के पश्चात् भी दूसरे जीवन की स्थिति विद्यमान है । वे सोचते हैं कि दूसरे लोक में भी वह व्यक्ति ठीक उसी प्रकार कार्य करता है, सोचता है और जीवित रहता है,जिस प्रकार मृत्यु के पूर्व वह रहता था[1] ।

मृतक संस्कार से सम्बन्धित लोकाचारों के समान ही विवाह संस्कार से सम्बन्धित विभिन्न रीति-रिवाजों एवं लोकाचारों के मूल में भी लोकमानस की प्रवृत्ति देखी जा सकती है । इस संस्कार के अवसर पर वर-वधू दोनों के वस्त्रों में गांठ लगाकर उनको एक में आबद्ध करने की सर्वमान्य अत्यधिक व्यापक लोक-प्रथा है । इस प्रथा का प्रचलन न केवल भारत में है,वरन् इंगलैण्ड,अफ्रीका आदि विभिन्न देशों में भी प्राप्त होती है । आज भी यह प्रथा आदिम जातियों में भी प्रचलित है । आदिम जातियों में वस्त्रों में गांठ न लगाकर वर और वधू के वस्त्रों को सम्पृक्त कर घास से बांधने की प्रथा विद्यमान है । इस प्रकार यह स्वयं सिद्ध है कि उपर्युक्त प्रथा का प्रचार एवं प्रसार किसी एक देश में नहीं हुआ है,बल्कि क्योंकि यह प्रथा वहां भी प्राप्त है,जिससे किसी देश अथवा जाति का सम्पर्क नहीं है,वरन् इसका मूल लोकमानस प्रवृत्ति में ही निहित है,जिसके अनुसार वर-वधू दोनों के वस्त्रों में गांठ लगाकर लोकमानस दोनों को सदा सर्वदा के लिए एक-दूसरे से सम्बन्धित होने की सूचना देता है[2] ।

इसी प्रकार प्रत्येक लौकिक रीति-रिवाजों,लोकविश्वासों, लोक देवी-देवताओं आदि सभी के मूल में लोकमानस पर आदिम मानव मानस प्रवृत्ति को देखा जा सकता है, जो स्वयं में एक अध्ययन और अनुसन्धान का रोचक विषय है ।

---

१ द्रष्टव्य — डब्लू०एच०आर०रिवर्स : 'साइकोलोजी एण्ड एथनोलोजी',पृ०४३,४६,४८ ।
२ ई० वेस्टरमार्क :'शार्ट हिस्ट्री आफ मैरिज',पृ०१८७-८८ ।

लोकतत्व निरूपण की अल्पताएं

उपर्युक्त विवेचन द्वारा लोकवार्ता तत्व के अध्ययन में लोकमानस का अध्ययन और उसका महत्व निर्विवाद है, किन्तु साहित्य में प्राप्त कौन-कौन से अवशेष आदिम मानस के हैं, यह निश्चितरूप से नहीं कहा जा सकता। डा० सत्येन्द्र ने कतिपय लोकमानस के तत्वों का संकेत अवश्य किया है, किन्तु अंततः उनका भी यही कथन है कि 'लोकवार्ता जिन अवशेषों का अध्ययन करती है, वे अवशेष केवल मूल आदिम मनुष्य के हैं, इस बात को निश्चयपूर्वक आज किसी भी शास्त्र अथवा विज्ञान को कहने का अधिकार नहीं है। क्योंकि आरम्भिक आदिम मनुष्य इतना प्रागैतिहासिक है और मनुष्य के अनुमान के भी इतने परे है कि उसके सम्बन्ध में निश्चितरूप से कुछ भी कहना अवैज्ञानिक माना जायगा।'[१]

इस प्रकार विवेच्य युगीन हिन्दी कहानी में उपलब्ध लोकजीवन के विविध पक्षों से सम्बद्ध विभिन्न रीति-रिवाजों, लोकाचारों, विश्वासों आदि के विषय में भी उक्त कथन की ही पुष्टि होती है। अतएव विवेच्य विषय के सन्दर्भ में भी मात्र संकेत ही किया जा सकता है जिसमें आदिम मानव मानस की झलक मिलती है। इसी प्रकार कथानक रूढ़ियों के अध्ययन में भी इसी प्रकार की कठिनाइयां पाई जाती हैं, क्योंकि साहित्य के आविर्भाव काल से लेकर आज तक न जाने कितनी बार साहित्य लोकवार्ता से प्रभावित हुआ है और न जाने कितनी बार साहित्य ने लोकवार्ता को प्रभावित भी किया है। इस कथन की पुष्टि में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का मत उल्लेखनीय है --'भारतीय साहित्य का अत्यन्त महत्वपूर्ण भाग लोक साहित्य पर आधारित था। कहना व्यर्थ है कि यहां के लोक कथानकों का अध्ययन बहुत सहज नहीं है। न जाने कितनी बार वह साहित्य के ऊपरले स्तर के ग्रन्थों से प्रभावित हुआ है और कितनी बार उसने उसे प्रभावित भी किया है।'[२] परिणामतः कथानक रूढ़ियों के अध्ययन में भी ऐसी ही कठिनाइयां आती हैं, जिनका विस्तृत विवेचन आगे किया गया है।

१ डा० सत्येन्द्र : 'मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोकतात्विक अध्ययन', पृ०१५
२ आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी : 'विचार और वितर्क', पृ०२०१।

(घ) प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी कहानी में उपलब्ध सामान्य लोकतात्विक विशेषताएं

प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी कहानी लोकतत्व समन्वित जन-जन की कहानी है, जिसका लोकतत्वपरक अध्ययन सभी दृष्टियों से किया जा सकता है। विवेच्ययुगीन हिन्दी कहानी के निर्माण में लोकवार्ता के अनेक तत्वों का अत्यधिक योगदान रहा है, जिसका विस्तृत अनुशीलन प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में किया गया है। विवेच्ययुगीन कहानी में उपलब्ध लोकतत्वों का विस्तृत विवेचन करने के पूर्व उनकी विशेषताओं का संकेत कर देना समीचीन होगा। अतएव अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से प्रेमचन्दयुगीन कहानी में प्राप्त उपर्युक्त सभी प्रकार के लोकतत्वों को तीन मुख्य खण्डों में विभक्त किया गया है--

(१) कथापक्ष में लोकतत्व।

(२) भाषा पक्ष में लोकतत्व।

(३) लोकजीवन के विविध पक्ष।

(१) कथा पक्ष में लोकतत्व

लोकवार्ता की विस्तृत सीमा के अन्तर्गत 'लोकसाहित्य' का क्षेत्र भी अत्यधिक व्यापक है, जिसका एक बहुत बड़ा भाग लोककथा-कहानियों का है और लोककथा संसार के समस्त कथा-साहित्य का जनक तथा लोकगीत समस्त काव्य की जननी है, किन्तु लोकप्रिय विधा हिन्दी कहानी के विषय में प्रायः दो धारणाएं रही हैं-- हिन्दी कहानी संस्कृत कथा साहित्य, जातक कथाओं आदि की परम्परा में विकसित हुई है अथवा हिन्दी कहानी का जन्म पाश्चात्य प्रभाव के फलस्वरूप योरोप तथा अमेरिका के कथा साहित्य के अनुकरण में हुआ है। किन्तु वर्तमान शताब्दी में ही क्या हिन्दी कहानी में प्राचीन कथा-कहानियों के तत्व निहित नहीं हैं? क्या हिन्दी कहानी पूर्णरूप से लोककहानी के तत्वों से हीन है? क्या हिन्दी कहानी के विकास में लोककथाओं का योग नहीं है? इत्यादि विभिन्न शंकाओं का समाधान करने की दृष्टि से लोककहानी के विकासक्रम का निरूपण करते हुए इस बात को सिद्ध किया गया है कि किस प्रकार एक लोक कहानी साहित्यिक कहानी के रूप में अभिव्यक्ति पाती है। इस क्रम में हिन्दी कहानी के विकास में

हमारी ग्राम कथाओं अथवा जनकथाओं का महत्वपूर्ण योगदान रहा है । न जाने कितनी लोक कहानियां तो अपने मूल रूप में साहित्यिक रूप ग्रहण कर बैठी हैं और न जाने कितनी लोक कहानियां यत्किंचित् परिवर्तन के साथ साहित्यिक कहानियों के रूप में प्रतिष्ठित हो गई हैं । यही नहीं, वरन् लोककहानियों की अनेक विशेषताएं अभिजात्य कथावर्ण में छिपकर इस प्रकार घुल-मिल गई हैं कि सहज रूप से उनका पता भी नहीं चल पाता । आरम्भिक काल की कहानियों का तो प्रेरणास्रोत ही लोककहानियां एवं लोककथानक रहे हैं । व इस बात को स्वयं प्रेमचन्द,सुदर्शन तथा जैनेन्द्र जैसे प्रमुख कहानीकारों ने स्वीकार किया है । इतना ही नहीं, बल्कि लोक-गीतों,लोकोक्तियों आदि के आधार पर भी कहानियां लिखी गई हैं ।

यही नहीं,बल्कि लोक कथा कहानियों में बारम्बार प्रयुक्त होने वाली समानधर्मी घटनाएं एवं समानजातीय विचार अभिजात्य कोटि के कथा साहित्य तक यात्रा करते हुए कथानक रूढ़ि बन गए हैं । भारतीय साहित्य में अति प्राचीनकाल से ही कथानक को गति और झुकाव देने के लिए इनका प्रयोग किया जाता रहा है । विवेच्ययुगीन कहानीकारों ने भी लोककथा कहानियों की परम्परा प्रथित अनेकानेक कथानक रूढ़ियों के आधार पर अपनी कहानियों का ताना-बाना बुना है । विवेच्ययुगीन कहानी में व्यवहृत कथानक रूढ़ियां मूलत: लोक कथा कहानियों की देन हैं । ऐसी रूढ़ियां कम ही मिलेंगी,जिनका परम्परा प्रथित लोक कथाओं से कोई सम्बन्ध न हो ।

(२) भाषा पक्ष में लोकतत्व

कथानक रूढ़ियों के समान ही प्रेमचन्दयुगीन कहानीकारों ने कुछ मिलाकर जिस भाषा का प्रयोग किया है, वह सामान्य जन की बोलचाल की भाषा ही है । विवेच्ययुग के अगुआ कहानीकार प्रेमचन्द दूरदर्शी थे,अत: उन्होंने जनभाषा और जन साहित्य के महत्व को समझते हुए जहां एक ओर भावाभिव्यक्ति के लिए जनरुचि के अनुकूल जनप्रिय लोकप्रिय कहानी का चयन किया, वहीं दूसरी ओर जनसामान्य की भाषा को भी अपनाया । परिणामत: लोक शब्दावली लोकोक्तियों,मुहावरों आदि का इतना अधिक प्रयोग मिलता है कि इनकी सूची मात्र

भी असम्भव प्रतीत होता है ।

द्विवेदीयुगीन कहानीकारों ने भाषा के ही समान लोकशैली के विभिन्न रूपों का ही प्रयोग किया है । कहानी का विकास ही मौखिक परम्परा से हुआ है और कहानी का आनन्द भी कहने और सुनने में है, अत: कहने का 'ढंग' शैली है । आज का कहानीकार कहता कम है, लिखता अधिक है । फिर भी आरम्भिक काल की कहानी में लोक कहानी की सीधी-सादी वर्णनात्मक शैली का ही प्रयोग होता रहा है । इतना ही नहीं, बल्कि लोक प्रचलित व्यंग्य तथा गद्य-पद्य मिश्रित चम्पू आदि परम्परागत शैली के अतिरिक्त बैठे ठालों की लटके की शैली का भी प्रयोग इन कहानीकारों ने किया है । इसके साथ ही साथ लोकशैलीगत विभिन्न प्रवृत्तियों--, लोकगीतों के समान वर्ण, शब्द और वाक्यों की पुनरावृत्ति -- के प्रयोग द्वारा कहानी में नवीन आकर्षण भी उत्पन्न किया है । अवधेय है कि तत्कालीन सामाजिक स्थिति के प्रति कहानीकारों ने सामाजिक, धार्मिक आदि परिस्थितियों पर करारा व्यंग्य भी किया है, जो वस्तुत: लोक की शैली ही है । इस शैली का सुन्दर प्रयोग प्रेमचन्द, श्रीमती शिवरानी देवी, कृपाशंकर मिश्र, श्रीमती शारदाकुमारी, राजा राधिकारमणप्रसाद सिंह आदि विभिन्न कहानी-लेखक एवं लेखिकाओं ने किया है । चम्पू शैली के सर्वश्रेष्ठ कलाकार श्री चण्डीप्रसाद 'हृदयेश' हैं, किन्तु शिवपूजनसहाय इनसे पीछे नहीं हैं । कुछ कहानियों में इसी शैली का प्रयोग प्रेमचन्द, कुमारी मालती शर्मा, ठाकुर श्रीनाथ सिंह आदि ने भी किया है । उपर्युक्त बैठे ठालों की शैली का सुन्दर प्रयोग श्री भारतीय, विनोदशंकर व्यास तथा भगवतीप्रसाद वाजपेयी और राजा राधिकारमणप्रसाद सिंह आदि ने किया है । लोकगीतों में पुनरावृत्ति की प्रवृत्ति का सर्वाधिक प्रयोग होता है, क्योंकि प्रस्तुत प्रवृत्ति मुख्यत: से लोकगीतों से सम्बद्ध है । इसमें वर्ण, शब्द और वाक्यों की आवृत्ति के साथ-साथ वस्तुओं की भी दुहराहट होती है । लोकगीतों में जिस प्रकार 'टेक' का अपना विशिष्ट महत्त्व होता है, उसी प्रकार कहानी में भावों की स्पष्टता के लिए कहानीकारों ने इस लोकगत प्रवृत्ति का भी प्रयोग किया है । इस दृष्टि से मोहनलाल महतो 'वियोगी', सुदर्शन, आचार्य चतुरसेन शास्त्री, बी०पी० श्रीवास्तव, श्रीमती तारा पाण्डेय विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं ।

भाषागत लोकतत्वों में अलंकारों का भी विशेष महत्व होता है। प्राय: अलंकार कविता की वस्तु मानी जाती है, किन्तु विवेच्ययुगीन कहानीकारों ने गद्यात्मक विधा कहानी में सादृश्यमूलक अलंकारों का प्रयोग लोकमानस के अनुकूल एवं उपयुक्त ढंग से किया है। अवधेय है कि कहानीकारों ने स्पष्ट भावाभिव्यक्ति के लिए ही इनका प्रयोग किया है। उपमा अलंकार के प्रयोग में गृहीत उपमान प्राकृतिक जगत,पशु-पक्षी जगत और लोकजीवन से ही सम्बन्धित हैं,जो सुन्दर तथा अकृत्रिम हैं। इस प्रकार भाषा,शैली,अलंकार आदि सभी दृष्टियों से विवेच्ययुगीन हिन्दी कहानी लोक कहानी के अधिक निकट है।

(३) लोकजीवन के विविध पक्ष

विवेच्ययुगीन हिन्दी कहानी में उपलब्ध लोकजीवन के पर्व,व्रत,उत्सव,रीति-रिवाज,लोकाचार,प्रथाएं और परम्पराएं तथा लोकविश्वास एवं पूर्वाग्रह आदि लोकवार्ता के अविभाज्य अंग हैं जिनका वर्णन विवेच्ययुगीन कहानीकारों ने किया है। शास्त्रीयता की दृष्टि से भले ही इनका कोई महत्व न हो,किन्तु लोकजीवन में इनका विशेष महत्व है और लोकमानस से इनका घनिष्ठ सम्बन्ध भी है। ये कहानीकार जनवर्ग से सम्बद्ध थे,यही कारण है कि समाज में उल्लास का वातावरण उत्पन्न करने वाले तथा नीरस जीवन में रस का संचार करने वाले लोकजीवन के विविध पर्व,व्रत,उत्सवों का वर्णन किया है। इनके साथ ही साथ विवेच्ययुगीन कहानी में जन्म,विवाह तथा मृत्यु आदि के अवसरों पर किए जाने वाले विभिन्न रीति-रिवाजों तथा लोकाचारों का भी यथास्थान वर्णन किया गया है। इतना ही नहीं, बल्कि अत्यन्त प्राचीनकाल से चली आती हुई "दिव्य प्रथा" के साथ-ही-साथ मध्ययुगीन "सती" और "जौहर" प्रथा का भी चित्रांकन किया है। प्राचीनकाल से लेकर वर्तमान काल तक लोकजीवन में प्रचलित भीख,बहुविवाह,बलि आदि विविध प्रथाओं का उल्लेख करना भी ये कहानीकार भूले नहीं हैं।

लोकजीवन में प्रचलित विश्वासों को आज का शिष्ट समुदाय भले ही अन्धविश्वास एवं पूर्वाग्रह कह दे, किन्तु लोकजीवन में इनका भी अपना विशेष महत्व है। प्रेमचन्द युगीन लोकप्रिय एवं लोकग्राहिणी [illegible]

कहानीकारों द्वारा शकुन,अपशकुन,स्वप्नविचार,तन्त्र-मन्त्र, दुआ-ताबीज तथा अलौकिक शक्तियों के अतिरिक्त विभिन्न विषयों से सम्बद्ध विश्वासों का वर्णन किया गया है । लोकजीवन धर्ममय है, जिसका मूलभूत आधार है-- लोकविश्वास । इसी विश्वास के आधार पर वह विविध लोकदेवी तथा लोकदेवताओं के प्रति अटूट श्रद्धा एवं अगाध विश्वास रखता है,जिसका मूल लोकमानस में निहित है । किसी भी शुभ कार्य के समय अथवा संकट की स्थिति में वह इन्हें स्मरण करना नहीं भूलता । इतना ही नहीं, बल्कि समय-समय पर इनको प्रसन्न करने के लिए विविध प्रकार के अनुष्ठानों का आयोजन भी करता रहता है । इन विविध लोकदेवी तथा लोकदेवताओं का प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी कहानी में यथास्थान उल्लेख हुआ है ।

लोकजीवन में लोकसज्जा प्रसाधनों के अन्तर्गत बारह आभूषणों एवं सोलह शृंगार का विशेष महत्व है । आभूषणात्मक शृंगार-प्रसाधन सोलह शृंगार प्रसाधनों में से एक उपादान मात्र है । प्रेमचन्दयुगीन कहानी साहित्य में अन्य पन्द्रह शृंगार प्रसाधनों का भी उल्लेख यथास्थान हुआ है । इन पन्द्रह उपादानों में से पान अंजन जैसे उपादान तो वर्तमान जनजीवन में लोकव्यसन का रूप धारण कर चुके हैं । वस्तुतः चित्र-विचित्र सामान्य लोकजीवन के का चित्रण करते हुए इन शृंगार प्रसाधनों का वर्णन आवश्यक न जानकर ही कहानीकारों ने किया है । स्त्री वर्ग में आभूषण प्रियता आज भी देखी जा सकती है ।इसीप्रकार लोकाचार,लोकमनोरंजन,लोकगमनागमन के साधन,लोक अस्त्र-शस्त्र के साथ-साथ हर्षोल्लास के वातावरण से परिपूर्ण लोकजीवन में वाद्य यन्त्रों का भी विशेष महत्व होता है । प्रेमचन्दयुगीन कहानीकार जनजीवन के चितेरे थे,अतएव उन्होंने हर्षोल्लास के वातावरण में कहानी के अन्तर्गत विविध अवसरों पर गीतों के साथ ही साथ विभिन्न लोकवाद्यों का उल्लेख तथा वर्णन द्वारा अपनी कहानी में विशेष आकर्षण उत्पन्न किया है । पाठक इन कहानियों को पढ़ता हुआ आनन्दातिरेक का अनुभव करता है और वाद्य यन्त्रों की झनकार के साथ-ही-साथ उसके हृदय के तार भी झंकृत हो उठते हैं ।

उपर्युक्त विवेचनाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी कहानी सामान्य रूप से लोकोन्मुखी है, जिसमें

लोकवार्ता से सम्बद्ध विभिन्न लोकतत्वों को ग्रहण किया गया है ।

आलोच्य विषय के ऊपर शोधकार्य

हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कथाकार के रूप में प्रेमचन्द का स्थान अद्वितीय है । यही कारण है कि उनका साहित्य सर्वाधिक पठित भी है और उनपर लिखित साहित्य की मात्रा भी पर्याप्त है । डा० इन्द्रनाथ मदान,[1] हंसराज रहबर,[2] अमृतराय,[3] शचीरानी गुर्टू,[4] श्रीमती शिवरानी देवी 'प्रेमचन्द',[5] डा० रामेश्वर गुरु,[6] और नरेन्द्र कोहली[7] आदि अनेक विद्वानों द्वारा प्रणीत ग्रन्थ इस बात के प्रमाण हैं ।

लोकतत्वों की महत्ता को ध्यान में रखते हुए, हिन्दी साहित्य में लोकतत्वपरक अध्ययन एवं अनुसन्धान से सम्बन्धित अनेक कार्य हुए हैं । इस दृष्टि से डा० सत्येन्द्र का नाम[8] अग्रगण्य है । उन्होंने हिन्दी काव्य का लोकतात्विक अध्ययन प्रस्तुत किया है । डा० सत्येन्द्र के अतिरिक्त डा० ओमप्रकाश शर्मा[9] संत साहित्य की लौकिक पृष्ठभूमि, डा० चन्द्रा जोशी[10] ने उपन्यासों में लोकतत्व पर डा० रवीन्द्र 'भ्रमर' ने मध्ययुगीन भक्ति काव्य में लोकतत्व,[11] डा० विमलेशकान्ति वर्मा ने भारतेन्दुयुगीन हिन्दी काव्य पर[12] तथा श्री चन्द्रभानु ने रामचरितमानस में लोकवार्ता[13]

---

१ डा० इन्द्रनाथ मदान : 'प्रेमचन्द : चिन्तन और कला'
२ हंसराज रहबर : 'प्रेमचन्द : जीवन और कृतित्व'
३ अमृतराय : 'कलम का सिपाही', सं० 'प्रेमचन्द स्मृति'
४ शचीरानी 'गुर्टू' : 'प्रेमचन्द और गोर्की' (सं०)
५ श्रीमती शिवरानी देवी 'प्रेमचन्द' : 'प्रेमचन्द घर में'
६ डा० रामेश्वर गुरु : 'प्रेमचन्द : एक अध्ययन'
७ नरेन्द्र कोहली : 'प्रेमचन्द के साहित्य सिद्धान्त'
८ डा० सत्येन्द्र : 'मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोकतात्विक अध्ययन'
९ ओमप्रकाश शर्मा : 'हिन्दी साहित्य की लौकिक पृष्ठभूमि'
१० चन्द्रा जोशी : 'हिन्दी उपन्यासों में लोकतत्व'
११ डा० रवीन्द्र भ्रमर : 'हिन्दी भक्ति साहित्य में लोकतत्व'
१२ डा० विमलेशकान्ति वर्मा : 'भारतेन्दु युगीन हिन्दी काव्य में लोकतत्व
१३ चन्द्रभानु : 'रामचरितमानस में लोकवार्ता' ।

पर अनुसन्धान कार्य किया है और अपने शोध-प्रबन्ध हिन्दी प्रेमियों के समक्ष प्रस्तुत किए हैं । किन्तु आधुनिक हिन्दी साहित्य की लोकप्रिय विधा कहानी का लोकतत्व की दृष्टि से अध्ययन एवं अनुसन्धान का प्रयत्न अभी तक नहीं किया गया है । प्रस्तुत प्रबन्ध इस दिशा में प्रथम प्रयास है ।

<u>प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध का महत्व एवं उसकी मौलिकता</u>

प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी कहानी का लोकतत्वपरक अध्ययन अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण है । जब हम अपने अतीत का ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं,तब प्राय: इतिहास के सहारे अपनी जिज्ञासा को तुष्ट करने का प्रयत्न करते हैं । परन्तु क्या इतिहास हमें तत्कालीन समय का सम्यक् ज्ञान प्राप्त कराने में समर्थ है? निश्चय ही नहीं । क्योंकि इतिहास तो एक वर्ग-विशेष के विषय में उसके ऐश्वर्य, उसके शासन-प्रबन्ध,उसके द्वारा किए गए युद्ध और सन्धि आदि के सम्बन्ध में ही लेखा-जोखा प्रस्तुत कर देता है । वह वर्ग-विशेष है--राजवर्ग । किन्तु हम जनसाधारण के विषय में कुछ भी जानना चाहते हैं, तो इतिहास मौन हो जाता है और हमारी जिज्ञासा ज्यों-की-त्यों बनी रह जाती है,जिसकी तुष्टि के लिए लोकतत्वपरक अध्ययन की आवश्यकता पड़ती है । क्योंकि किसी युग में प्रचलित विश्वासों,रीति-रिवाजों,प्रथा प्रथाओं,परम्पराओं एवं रहन-सहन की प्रचलित प्रणालियों के लोक-तात्विक व्याख्या द्वारा हम उस युग-विशेष के विषय में ज्ञान प्राप्त करने में समर्थ होते हैं ।जैसा कि डा० ईवान वैंट्ज ने अपनी पुस्तक "फेरीफेथ इन कैल्टिक कन्ट्रीज़" की भूमिका में लिखा है कि "लगभग सारे साहित्यों के मूल स्रोत जनसाधारण के विश्वास उनकी कथाएं और उनके गीत हुआ करते हैं और वर्तमान समय के साहित्यों का अधिकांश उनके संस्कार और रीति-रिवाज हैं, वर्तमान समय में जब साहित्य का ज्ञान प्राप्त करने के लिए पुरातत्व विज्ञान और जातीय नृ-शास्त्र का ज्ञान अति आवश्यक है ।"[1] इस रूप में आगे भी जब हम यह अपेक्षा करते हैं कि साहित्य के माध्यम से हमारी भावी पीढ़ी लोक संस्कृति का ज्ञान प्राप्त करे, तो हमें अपने साहित्य के

---

१ डा० ईवान वैंट्ज : "फेरीफेथ इन कैल्टिक कन्ट्रीज़" (भूमिका)

समाधान इन्हीं लोकतत्वों से ढूंढना पड़ता है । प्राय: कहा जाता है कि साहित्य समाज का दर्पण है अर्थात् कोई भी समाज अपने समकालीन साहित्य में बिम्ब-प्रतिबिंब भाव से अंकित रहता है । अतएव युग-विशेष की जन संस्कृति का अनुमान हम इन्हीं लोकतत्वों के आधार पर ही लगाते हैं । जैसा कि डा० सत्यैन्द्र ने कहा है कि "यदि हम किसी महान साहित्य के मर्म को जानना चाहते हैं तो भी लोकतत्वों की उस साहित्य में शोध अत्यन्त आवश्यक है,क्योंकि वाणी का यथार्थ मूल स्रोत लोकोद्गार का साधारण दीप्र है ।" किसी भी कहानीकार की महत्ता का यथार्थ ज्ञान हम उसकी लोकतात्विक शैली को लेकर कर सकते हैं । कोई भी साहित्यकार अपनी साहित्यिक कृति में जितने अधिक लोकतत्वों का आधार ग्रहण कर आगे बढ़ता है,उसका साहित्य उतना ही महान,सर्वसम्मत,सर्वकालिक होता है । ऐसे साहित्य का जनमानस में सर्वाधिक प्रसार और प्रचार भी होता है । वस्तुत: किसी भी साहित्यकार की महानता को परखने की यह भी एक कसौटी है । लोकतत्वों से हीन साहित्य कभी भी न तो इतने महत्व का होता है और न जनमानस द्वारा समादृत ही होता है । इतना ही नहीं, बल्कि भविष्य में तो उसका महत्व और भी नगण्य हो जाता है ।उसका स्थान तो साहित्य के इतिहास की सूची में ही रह जाता है । तुलसी के "रामचरितमानस" और सूरदास के "सूरसागर" की भाँति वह जन-जन के कण्ठ में अपना स्थान नहीं बना पाते क्योंकि "रामचरितमानस" और "सूरसागर" के पद इसीलिए इतने लोकप्रिय हैं कि उनमें जनमानस का रहस्योद्घाटन हुआ है । मानव जीवन की विश्वासगत आस्थाएं,उसकी परम्पराएं सबकुछ उनमें निहित हैं ।

प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी कहानी का लोकतात्विक अध्ययन भी इस दृष्टि से महत्वपूर्ण ही नहीं,आवश्यक भी है । प्रेमचन्दयुगीन कहानी में उपलब्ध लोकतत्वों के आधार पर भारतीय रीति-रिवाजों,प्रथाओं,परम्पराओं के साथ-साथ आन्तरिक जीवन की मनोवैज्ञानिक गहराइयों को भी समझा जा सकता है । भारतवर्ष में बसने वाली विभिन्न जातियों के सांस्कृतिक वैशिष्ट्य तथा उनकी मूलभूत सांस्कृतिक दृष्टि को समझने के लिए भी लोकतत्वों का अध्ययन आवश्यक है। इनमें सामाजिक एवं कौटुम्बिक जीवन की सुन्दर व्याख्या मिलती है । पति-पत्नी, भाई-बहन,माता-पुत्री के मध्य प्रेम और वात्सल्य के चित्रों के मध्य कटुता तथा मानव

का शाश्वत विरोध और सास-बहू के विरोध एवं संघर्ष के साथ-साथ सब सौतिया डाह की मार्मिक विवेचना भी उपलब्ध होती है । इसी प्रकार भारतीय संस्कृति के जिन पक्षों के विषय में हमारे शास्त्र सहायक नहीं सिद्ध होते, उन पक्षों से सम्बद्ध विभिन्न रहस्यों का उद्घाटन भी ये करते हैं और इन्हीं के द्वारा हम मानव के सोचने-समझने और कल्पना करने की प्रक्रिया का भी अनुमान लगाने में समर्थ हो पाते हैं । इन्हीं लोकतत्वों के आधार पर मनोवैज्ञानिकों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि यद्यपि आज संस्कृतियों में अनेक भिन्नताएं दिखलाई देती हैं, फिर भी उनका मूल एक है । विभिन्न जातियों एवं वर्गों में विभक्त मानव वस्तुतः एक है । उसके विकास की प्रक्रिया भी एक ही है । इतना ही नहीं, बल्कि ग्रामीण जनजातियों में प्रचलित विभिन्न विश्वासों के अध्ययन के आधार पर आज उन्नत समझी जाने वाली जातियों के अनेकानेक पौराणिक आख्यानों का रहस्य भी इनमें प्राप्त होता है और विभिन्न दर्शन व शास्त्रों के मूलभूत विचार भी इन्हीं के माध्यम से समझ में आ जाते हैं । अस्तु, लोकतत्वों के अध्ययन का महत्व न केवल नृतत्वशास्त्र और समाजशास्त्र की दृष्टि से है, बल्कि अन्य अनेक दृष्टियों से भी लोकतत्वों का अध्ययन आवश्यक और महत्वपूर्ण है ।

प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी कहानी का लोकतत्व की दृष्टि से अध्ययन अनुसन्धान इसलिए भी अधिक महत्वपूर्ण है, क्योंकि हिन्दी साहित्य में लिखित कहानियों के अन्तर्गत सर्वप्रथम लोककथा-कहानियों की कथानक रूढ़ियों, शैली एवं शैलीगत प्रवृत्तियों का गुम्फन किया गया है । इतना ही नहीं, बल्कि इन्हीं के आधार पर न जाने कितनी कहानियों का ताना-बाना बुना गया है । यद्यपि ये कहानियां प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी कहानीकारों द्वारा लिखी गयी हैं, तथापि लोकतत्वों से अभिमण्डित इन कहानियों का रूप कुछ ऐसा हो गया है कि इन कहानियों को पढ़ते समय पाठक अथवा श्रोता अपने को भूल-सा जाता है, इतना ही नहीं, बल्कि समस्त दृष्टियों से विवेच्ययुगीन हिन्दी कहानी लोकोन्मुखी है । फलस्वरूप इन कहानियों में जहां रस और अनुभूति तत्व प्रतिबिम्बित हुआ है, वहीं दूसरी ओर लोक कहानी के समान इन कहानियों में रोचकता भी होती है ।

हिन्दी के ऐसे महत्वपूर्ण कहानीकार मुंशी प्रेमचन्द एवं उनके युग के सम्बन्ध में यद्यपि लिखित साहित्य की मात्रा पर्याप्त है, फिर भी कतिपय ज्ञाताज्ञात कारणों से प्रेमचन्द और उनके युग में लिखित हिन्दी कहानी का एक पक्ष अछूता रहा है-- वह है, हिन्दी कहानी का लोकतात्विक अध्ययन । जब कभी भी हिन्दी कहानी का विवेचन किया जाता रहा है,तब साहित्य तत्व-विवेचन की दृष्टि ही प्रधान रही है और लोकवार्ता तत्वान्वेषण को साहित्य तत्व से भिन्न तथा कम महत्व का विषय समझकर उसे एक ओर छोड़ दिया जाता रहा है । इस ओर आलोचकों का ध्यान नहीं गया, फलत: कहानी में लोकतत्व के अनुसन्धान की यह दिशा उपेक्षित ही रही । प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में विवेच्ययुगीन हिन्दी कहानी के निर्माणमें योग प्रदान करने वाले तथा लोकवार्ता के विभिन्न तत्वों के अनुसन्धान को लक्ष्य मानकर,विवेच्य कहानी में उपलब्ध होने वाले लोकतत्वों का शोधपूर्ण अध्ययन प्रस्तुत किया गया है । इसमें सन्देह नहीं कि प्रस्तुत अध्ययन एवं अनुसंधान लोकपक्ष विषयक कार्य इस विशिष्ट दिशा में अपने ढंग का एक मौलिक प्रयास ही नहीं,अपितु लोकपक्ष विषयक एक बहुत बड़े अभाव की पूर्ति भी करता है ।

-0-

(द्वितीय खण्ड)

अध्याय दो

-0-

कथा पद्य में लोकतत्व

द्वितीय खण्ड

अध्याय दो

-०-

कथा पद्य में लोकतत्व

लोक कथा-कहानियों का विकास : साहित्यिक अभिव्यक्ति

लोकवार्ता का एक अंग लोक साहित्य है और लोक-साहित्य का एक विशाल भाग लोक कथा-कहानियों का है। विश्व के प्राय: सभी देशों के लोक जीवन में विभिन्न प्रकार की कथा-कहानियां प्रचलित रहती हैं। ये कहानियां न केवल अशिक्षित जनसमुदाय के गले का हार होती हैं, बल्कि शिक्षित एवं सुसंस्कृत कहे जाने वाले मानव समाज की भी मौलिक सम्पत्ति होती हैं। सच पूछा जाय तो लोकमानस व्यापी लोकप्रियता के मूल में लोक साहित्य का "कथा" अथवा "कहानी" रूप ही सर्वप्रमुख है। ये कहानियां मानव जाति की आदिम परम्पराओं, प्रथाओं, विश्वासों आदि का सही अर्थों में प्रतिनिधित्व करती हैं। इनका महत्व इस दृष्टि से भी है कि सम्पूर्ण विश्व में इनका रूप प्राय: एक जैसा ही पाया जाता है और विषयवस्तु, कथानक रूढ़ियों, कहावतों, मुहावरों तथा लोकोक्तियों का भी समानरूप से प्रयोग हुआ है। भारतवर्ष तो इन कथाओं का अनन्त सागर है और गर्व का विषय है कि सर्वप्रथम लोककथाओं को जन्म देने का श्रेय भी इसी पावन भूमि को है। 'भारतीय कथा साहित्य अत्यन्त प्राचीन है। भारतीय कथाओं की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इनका प्रभाव संसार के प्राय: सभी सभ्य देशों के कथा साहित्य पर प्रचुर रूपेण पड़ा है। इन कथाओं के यूरोपीय देशों में प्रचार की कहानी बड़ी लम्बी है। सर्वप्रथम इन कहानियों का अनुवाद अरबी और पहलवी भाषाओं में हुआ और उसके पश्चात् यूरोप की विभिन्न

भाषाओं में इनके अनुवाद प्रस्तुत किए गए । यूरोप में प्रचलित `ईसाप्स फेबुल्स` (ईसप की कहानियां) में भारतीय प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है ।[1] इन लोककथाओं का दो रूप प्राय: समस्त मनुष्य समाज में पाया जाता है । एक रूप तो वह है, जिसमें तत्कालीन घटनाओं तथा अनुभवों का वार्ता या कथोपकथन शैली में यथार्थ वर्णन होता है । इनमें स्थायित्व तथा साहित्यिक सौन्दर्य का अभाव तो होता ही है, इसके साथ-ही-साथ उनका क्षेत्र भी बहुत अधिक संकुचित होता है । ऐसी कहानियां कालान्तर में `मिथ` या पौराणिक कथाओं का रूप धारण कर लेती हैं । फिर भी कुछ कहानियों में लोक कथा के तत्व मिल जाने के कारण उनका स्थान मौखिक कथा साहित्य परम्परा में आ जाता है। कथाओं का दूसरा रूप वह है, जिसमें वे अपनी कथावस्तु तथा कलात्मक कथन-शैली के कारण साहित्यिक सौन्दर्य प्राप्त कर लेती हैं । इन कथाओं में जहां एक ओर लोक जीवन के विविध रूप प्रकट होते रहते हैं, वहीं दूसरी ओर ये लोककण्ठ में ही शोभा पाती हैं । डा० सत्येन्द्र के अनुसार `लोक में प्रचलित और परम्परा से चली आने वाली मुख्यत: मौखिक रूप में प्रचलित कहानियां लोक कहानियां कहलाती हैं ।`[2]

इसके विपरीत डा० सत्यागुप्ता ने लोककथाओं की परिभाषा न देकर उसके स्वरूप पर ही विचार करते हुए लिखा है --`लोककथाओं में लोक मानव की सब प्रकार की भावनाएं तथा जीवनदर्शन समाहित है । कुछ जानने की जिज्ञासा, घटनाओं का कुम, कोमल व परुष भावनाएं, सामाजिक-ऐतिहासिक परम्पराएं, जीवनदर्शन के सूत्र सभी कुछ लोककथा में मिल जाते हैं ।`[3] वस्तुत: लोक-कथा की शास्त्रीय परिभाषा देना अत्यधिक कठिन है, यही कारण है कि लोक-वार्ताविदों ने भी इसके पूर्व भी इसकी परिभाषा देने का प्रयत्न कभी नहीं किया गया , प्रत्युत `लोककथा` संज्ञा को एक साधारण अर्थवाचक शब्द के रूप में ही रखने

---

१ डा० कृष्णदेव उपाध्याय : `लोक साहित्य की भूमिका`,पृ० १२४ ।

२`हिन्दी साहित्य कोश `, भाग १, पृ० ७४८ ।

३ डा० सत्या गुप्त : `खड़ी बोली का लोक साहित्य`,पृ० १७७ ।

दिया गया है, जिसका प्रयोग, परम्परागत,मुखात्मक,विविध व्यंजना-रूपों के लिए किया जाता रहा है[1] ।"

अस्तु लोककथाओं की परिभाषा एवं उनकी शास्त्रीय विवेचना में न पड़कर, उनकी मूलभूत प्रवृत्तियों तथा प्रवृत्तियों की ओर ध्यान देना अधिक समीचीन होगा । इनकी मूलभूत प्रवृत्तियों एवं प्रवृत्तियों की व्याख्या करते हुए वात्स्यायन महोदय ने लिखा है --'लोककथा की विशेष पहचान यह है कि वह परम्परागत होती है । वह एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति को उत्तराधिकार रूप में प्राप्त होती है । इसीलिए उसमें मौलिकता नाम की कोई वस्तु की आशा करना व्यर्थ है, हो सकता है कि यह परम्परा विशुद्ध मौखिक ही रही हो । कहानी को सुना जाता है और जिस रूप में वह स्मरण रहती है, प्रायः उसी रूप में दुहराई भी जाया करती है । कहानी को सुनने वाला उसे दूसरी बार सुनाते समय चाहे तो ज्यों की त्यों सुना सकता है अथवा उसमें कुछ जोड़-गांठ भी कर सकता है[2] ।" इस प्रकार लोककथाओं की विशिष्ट पहचान उनके मौखिक एवं परम्परागत रूप में ही नहीं है,वरन् वह लिखित रूप में भी हो सकती है । आज भी ऐसे लोककथा-साहित्य की कमी नहीं है,जो लिपिबद्ध है या बहुत दिनों से लिखित रूप में ही चला आ रहा है । इन लोककथाओं की देशगत व्यापकता एवं विषय-वैविध्य को देखते हुए भी, उनकी समस्त विशेषताओं को पुंजीभूत कर,उनके पहचान की कोई एक मानक कसौटी निर्मित करना असम्भव प्रतीत होता है । फिर भी इतना तो कहा ही जा सकता है कि प्रत्येक कहानी में लोककथा की संज्ञा प्राप्त करने की क्षमता नहीं हुआ

---

१ "नो अटेम्प्ट हैज़ एवर बीन मेड टु डिफाइन इट (फोकटेल) सब्जेक्टली, इट हैज़ बीन ठेकुड हैज़ ए जनरल वर्ड यूज़्ड रेफरिंग टु आल काइन्ड्स आफ ट्रेडिशनल मैटीरियल ।"

—स्टिथ थाम्पसन : 'फोकटेल'

'स्टैण्डर्ड डिक्शनरी आफ फोकलोर माइथालाजी एण्ड लीजेण्ड',भाग१, पृ०४०८ ।

२ ,, ,, ,, ,, पृ०४०८-९ ।

करती । ये कहानियां केवल वे ही होती हैं,जिनमें निश्छल प्रेम, निर्भीक संघर्ष, अनुपम एवं निरीह आत्म बलिदान, मातृभूमि अथवा वंश परिवार की गौरव रक्षा हेतु आत्मोत्सर्ग, अनन्त शत्रुदल से घिर जाने पर भी अनुपम धैर्य एवं पराक्रम,प्रगाढ़ मैत्री, स्वामिभक्ति, वचनों का निर्वाह एवं टेक की रक्षा, शरणागत की रक्षा के लिए अनेकानेक संकटों का आह्वान इत्यादि केवल वही शाश्वत मन को अभिभूत करने वाले तत्वों को व्यक्त करने वाले प्रसंगों के कथासूत्रों एवं अन्तर्वेदनाओं को आधार बनाकर कही सुनी जाती हैं, जिनमें कि लोकमानस पर छा जाने वाली रसात्मकता तथा मर्मानुभूति स्पन्दित रहती है,किन्तु केवल उपर्युक्त शाश्वत कथा-सूत्र ही कहानी को लोककथा के रूप में लोककण्ठाभरण बनने में समर्थ नहीं हो पाते । इसके साथ-ही-साथ उनमें आकुल विस्मय-विमुग्धता,कल्पना के उन्मुक्त एवं अबाध विहार,तर्कातीत,साध्य-असाध्य, सम्भव-असम्भव आदि के बन्धनों को तोड़कर अलौकिक,चमत्कारिक अप्रत्याशित घटनाओं की भरमार तथा हर्ष-विषाद, विस्मय,भय इत्यादि विभिन्न रसों से युक्त मनोहारी भावना से सम्पन्न गुणों का भी समावेश रहता है । इस प्रकार विभिन्न गुणों से युक्त जिन कथाओं को एक बार लोकप्रियता का वरदान मिल जाता है, वे युगयुगान्त तक यत्किंचित् परिवर्तन एवं परिवर्धन के साथ भी लोकमानस में सदा सदा के लिए स्थान बना लेती हैं[1] ।

इस सम्बन्ध में एक बात यह भी विचारणीय है कि लोक-कथाओं के विषय में प्रायः यह विवाद उठाया जाता रहा है कि अमुक कथा लोकमानस से उद्भूत कोई परम्परागत लोककथा ही है,अथवा किसी साहित्यकार की कल्पना का परिणाम,जिसका कि समावेश विभिन्न साहित्यिक कृतियों में भी पाया जाता है । इस विषय में केवल इतना ही कहा जा सकता है कि कोई भी लोककथा,किसी भी कवि अथवा कथाकार के मन में रम सकती है और किसी भी

---

१ द्रष्टव्य— इन्दिरा जोशी :"उपन्यासों में लोकतत्व",पृ० १७-१८ ।

कवि अथवा साहित्यकार की कहानी लोकमानस द्वारा ग्रहण की जा सकती है। इस प्रकार यह कोई असम्भव घटना नहीं मानी जानी चाहिए कि कोई लोककथा विशेष, लोकवार्ता से साहित्य में और साहित्य से लोकवार्ता में परिभ्रमित तथा प्रत्यावर्तित होते हुए पाई जाय। इस प्रकार लोककथा की परिधि में समाविष्ट होने के लिए अनिवार्यतः सर्वप्रथम जनमानस के मध्य उसका व्यापक प्रचार है। दूसरा उसकी पुनः पुनः आवृत्ति अथवा बारम्बारता की अक्षुण्ण निधि है। तीसरे उसकी ऐसी व्यापकता जो जनसाधारण तथा निरक्षर वर्ग के मानस को भी स्वच्छ स्पर्श कर लेती है, उसका सर्वसाधारण सुलभ गुण है।

लोककथाओं का विकासक्रम एवं परम्परा

लोककथाओं की उत्पत्ति के सम्बन्ध में पर्याप्त मतभेद विद्वानों में पाया जाता है, किन्तु यहां विस्तार-भय की दृष्टि से उनका सविस्तार विवेचन अनावश्यक प्रतीत होता है। अतएव हिन्दी कथा-साहित्य की मौलिक प्रकृति एवं प्रवृत्ति लोकवार्तापरक है, उसके रूपविन्यास का मूलाधार लोककथा, कहानियां हैं, इस दृष्टि से लोककथाओं के विकासक्रम के साथ-ही-साथ लोककथाओं की परम्परा एवं उनकी साहित्यिक अभिव्यक्ति की ओर ध्यान देना आवश्यक है।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। आत्माभिव्यंजना उसकी प्रकृति है। इसीलिए वह अपनी कहना चाहता है और दूसरों की सुनना चाहता है। इस दृष्टि से आदिम मानव ने भी जब आखेट से लौटकर, अपने जनों के बीच, आखेटजन्य सुखात्मक एवं दुःखात्मक अनुभवों को हर्ष तथा विषाद के क्रुड में फूलते हुए बड़े ही गर्व के साथ सुनाया होगा और सुनने वालों ने भी बड़ी ही उत्सुकतापूर्वक ध्यान से सुना होगा, तभी आदिम मानव के कण्ठ से अनजाने में ही "कहानी" का उद्भव हुआ होगा, इसीलिए कहानी कहने और सुनने की वस्तु मानी

---

१ "स्टैण्डर्ड ड डिक्शनरी आफ फोकलोर माइथालोजी एण्ड लीजेण्ड", वाल्यूम १, पृ० ४०८।

जाती है । आज भी कहानी कहने और सुनने की लोक परम्परा न केवल ग्रामीण जीवन में,बल्कि शहरी जीवन में भी विद्यमान है । यह अलग बात है कि आज कहानी लिखी अधिक जाती है, फिर भी उसके मूल में कहने और सुनने की प्रवृत्ति ही निहित रहती है । लोकमानस की यही प्रवृत्ति यदिमानव में न होती, तो आज न केवल कहानी का ही,वरन् साहित्य का अस्तित्व ही न होता -- साहित्यकार क्या लिखता ? क्यों लिखता ? और किसके लिए लिखता ? यही वह मूलभूत प्रवृत्ति है,जो हमें अपना सुख-दु:ख,राग-द्वेष,मान-अपमान,लाभ-हानि आदि भावनाओं को दूसरों से कहने के लिए विवश करती है । हम दूसरों की सुनते भी इसीलिए हैं कि वे भावनाएं हमें "आत्मीय" ही लगती हैं । यदि उनका हमारे जीवन से किसी भी प्रकार का सम्बन्ध ही न होता, तो हम उन्हें कदापि न सुनते , और जब सुनने वाला ही न होता, तो कहने वाला क्या करेगा ? "कहानियों की उत्पत्ति के साथ-ही-साथ साहित्य का भी जन्म हुआ होगा,यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है अथवा आदि साहित्य कहानी ही रहा होगा-- यह कल्पना अधिक उपयुक्त" ही नहीं,वरन् वैज्ञानिक एवं तर्कसंगत भी होगा[1] ।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि कहानी हमारे निकटतम जीवन से सम्बद्ध है । विगत जीवन का इतिहास हम कथा-कहानी के रूप में ही स्मरण रखते आए हैं । वस्तुत: मानव जीवन,उसके कार्य-व्यापार कहानी ही तो हैं । जब कोई भी व्यक्ति आप बीती या जग बीती सुनाने अथवा वर्णन करने बैठता है, तब उस समय वह कहानी ही तो कहता है । वर्तमान गद्य साहित्य के विकास-युग में भले ही कहानी से एक विशेष प्रकार की रचना का परिचय मैं, परन्तु पद्य -युग में समस्त महाकाव्य,पुराण,वीरकाव्य आदि का आधार कथा या कहानियां ही तो थीं । इस दृष्टि से जिन रचनाओं में मानव व्यापारों का वर्णन किया जाता है, वह "कहानी" की आत्मा के अभाव में जीवित ही नहीं रह सकती।

---

१ सम्पा० प्रेमचन्द : "हिन्दी की आदर्श कहानियां" (भूमिका)

भारतवर्ष तो इन कथाओं का अनन्त सागर है और सर्वप्रथम लोककथाओं को जन्म देने का श्रेय भी इसी पावनभूमि को है । इस बात को न केवल भारतीय,वरन् थियोडोर बेन्फी, गैस्टनपरिस(फ्रांस)[1] तथा कासक्विन, अंग्रेजी के क्लौस्टन,जर्मन के लैनल्ड आदि अनेक पाश्चात्य विद्वानों ने भी इस बात को स्वीकार किया है । यद्यपि कालान्तर में इस बात को सभी विद्वानों ने सम्मत होकर स्वीकार नहीं किया, तथापि भारत का महत्व कम नहीं हुआ ।

भारत में लोक कहानियों की 'साहित्यिक' अभिव्यक्ति की एक दीर्घकालीन परम्परा विद्यमान है । संसार के समस्त साहित्यों में भारतीय साहित्य भी बड़े महत्व का है । हमारे सर्वाधिक प्राचीन ग्रन्थ वेद कहानी के रूप में है । डा० सत्येन्द्र के शब्दों में 'यहां कहानियां भी हैं और कहानी के बीज भी हैं ।[2] 'वेदों के न जाने कितने ही सूत्र कहानियों के रूप में हैं । श्री एच०एल०हरियाणा ने 'ऋग्वैदिक लीजेन्ड्स थ्रू द एजेज़' नामक पुस्तक में इनका विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया है । उन्होंने इस बात का स्पष्ट उल्लेख किया है, कि इन दिव्यात्माओं के अतिरिक्त ऋग्वेद में सामान्य प्रकार की कुछ ललित आख्यायिकाएं (लीजेन्ड्स) मिलती हैं ।[3] द्विवेदीयुगीन प्रमुख कहानीकार प्रेमचन्द का भी यही मत है कि 'हमारे सर्वप्राचीन ग्रन्थ वेदों में कहानियां मिलती हैं । एक नहीं अनेक कथाएं वेदों में भरी पड़ी हैं । एक ऋषि इन्द्र को मनाते हैं, यज्ञ में उनका आह्वान करते हैं । उन्हें हरे-हरे कोमल कुश पर बैठाते हैं । उन्हें सोमरस पिलाकर प्रसन्न करते हैं । वृत्रासुर को मारने के हेतु तैयार हैं-- आदि आदि । वेदों में संवाद हैं,चरित्र हैं... ये ही तो कहानी के तत्व हैं । मानो ये आधुनिक रूप में नहीं-- पर बिंदु रूप में तो

---

१ द्रष्टव्य -- डा० सत्येन्द्र : 'मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोकतात्विक अध्ययन' पृ०४७।

२ ,, ,, ,, पृ० १४० ।

३ ,, -- श्री एच०एल० हरियाणा : 'ऋग्वैदिक लीजेन्ड्स थ्रू द एजेज़',पृ०१३८-४०।

कहानी के सभी तत्व प्राचीन वेदों में विद्यमान हैं[१]।"

पुराणों को तो वेदों की व्याख्या माना गया है। विद्वानों का मत है कि बिना पुराणों के अध्ययन किए वेद को समझा ही नहीं जा सकता। यह सत्य है कि वैदिक वेदों की व्याख्या पुराणों में की गई है, इससे तो यही सिद्ध होता है कि वेदों की कहानियां पुराणों की कथाओं में आकर विकसित हुई हैं, किन्तु "यथार्थ यह है कि वेदों ने उन कथा-खण्डों या कथा बीजों को उन्हीं स्रोतों से लिया है, जहां से पुराणों ने लिया[२]।" यह अवश्य है कि ऐसा करने में जहां वेदों ने अपनी आवश्यकतानुसार उन कथाओं का मात्र संकेत किया है, वहीं पुराणों ने उन्हें लोकप्रचलित रूप में बृहद् रूप प्रदान किया है।

इसी प्रकार ब्राह्मण ग्रन्थों में भी अनेक कथाएं उपलब्ध हैं। "शतपथ ब्राह्मण" में उर्वशी और पुरूरवा की प्रसिद्ध कथा है। शुनः शेप की कथा "ऐतरेय ब्राह्मण" में उपलब्ध है। "शतपथ ब्राह्मण" में वर्णित दधीचि की कथा आज भी लोकप्रिय है और जलप्लावन की जिस घटना का उल्लेख "शतपथ ब्राह्मण" के प्रथम काण्ड के आठवें अध्याय में मिलता है, उसी का आधार लेकर हिन्दी के महा कवि जयशंकर "प्रसाद" ने "कामायनी" जैसे प्रसिद्ध काव्य की रचना की है। इस बात को स्वीकार करते हुए उन्होंने स्वयं लिखा है— "इन्हीं सब के आधार पर "कामायनी" की कथा-सृष्टि हुई है[३]।"

ब्राह्मण ग्रन्थों के पश्चात् लोक-कथा-कहानियों की यह परम्परा उपनिषदों में भी मिलती है। उपनिषदों में वर्णित अगस्त्य तथा लोपामुद्रा, गार्गी-याज्ञवल्क्य, सत्यकाम, अश्वपति आदि अनेक कहानियां उपर्युक्त कथन की पुष्टि करती हैं। "कठोपनिषद्" तो कहानियों का ही ग्रन्थ है। नचिकेता की विख्यात लोककथा इसी का वर्ण्य विषय है, जो हिन्दी में अपने दार्शनिक तत्व को गौण करके "नासिकेतोपाख्यान" के रूप में सदल मिश्र द्वारा संस्कृत से अनुवाद रूप में प्रस्तुत की गई है। अवधेय है कि उपनिषद् काल मुख्यरूप से चिन्तन

---

१ सम्पा० प्रेमचन्द : "हिन्दी की आदर्श कहानियां" (भूमिका), पृ०१३।
२ डा० सत्येन्द्र : "मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोकतात्विक अध्ययन", पृ०१५०।
३. जयशंकर "प्रसाद" : "कामायनी" (आमुख), पृ०८।

एवं मनन का युग था, फलस्वरूप 'कहानी' के उद्घाटन की प्रेरणा इस युग में क्षीण हो गई थी।

उपनिषद् युग के पश्चात् जिस युग का आगमन होता है, उसमें तो कहानी ही सभी प्रकार के भावों का माध्यम बन गई। सच पूछा जाय तो कहानी की वास्तविक प्राण प्रतिष्ठा इसी युग में हुई। डा० सत्येन्द्र ने इस युग को रामायण-महाभारत का युग मानते हुए रामायण और महाभारत[1] को पौराणिक युग के पूर्वगामी महाकाव्य के रूप में स्वीकार किया है। रामायण में मुख्यरूप से एक ही सुसम्बद्ध कथानक है, फिर भी "गंगावतरण" तथा "गौतम या अहिल्या" इत्यादि की प्रसिद्ध कहानियाँ विद्यमान हैं। "महाभारत" तो कहानियों का भाण्डार है। यद्यपि इन कहानियों का मूल कथावस्तु से घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं है तथापि इनमें से अनेक कहानियाँ ऐसी हैं, जो अनेकानेक उद्देश्य और अभिप्रायों से युक्त मुख्य कथावस्तु की प्रासंगिक वस्तु का काम देती हैं। इनका प्रयोग दृष्टान्त के रूप में तो हुआ ही है, उसके साथ-ही-साथ इनके द्वारा नीति और राजनीति, समाज और धर्म,प्रेम तथा मर्यादा के भी अनेक तत्त्व एवं सूत्र प्रस्तुत किए गए हैं। वस्तुतः महाभारत में इतिहास और लोकवार्ता के तत्त्व इस प्रकार घुल-मिल गये हैं कि इसके पात्रों के अस्तित्व में भी सन्देह होने लगता है। यही कारण है कि कुछ विद्वान् कृष्ण,युधिष्ठिर आदि को काल्पनिक और अनैतिहासिक व्यक्ति भी मानते हैं,और चाहे कुछ भी हो, किन्तु लोकवार्ता का रूप इसमें अवश्य प्रकट हुआ है। यह बात निर्विवाद रूप से कही जा सकती है। "महाभारत" मेंदृष्टान्तस्वरूप व्यवहृत अनेक आख्यान वास्तव में महाभारत से भी पूर्व काल की लोकप्रचलित कथाएं ही हैं। उदाहरण के लिए वनपर्व में "नल" की कथा ऐसी ही है,जिसका उपयोग दुःख से अभिभूत युधिष्ठिर को धैर्य तथा आशा बंधाने के लिए किया गया है। इन आख्यान-उपाख्यानों का "महाभारत" में क्या महत्त्व है; इसके लिए प्रमाण खोजने दूर नहीं जाना पड़ेगा। स्वयं महाभारत में ही इसका प्रमाण उपलब्ध है। --

[1] डा० सत्येन्द्र :"मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोकतात्विक अध्ययन",पृ०१५० ।

उपाख्यानैः सह ज्ञेयमाद्यं भारतमुत्तमम् ।

चतुर्विंशति साहस्रीं चक्रे भारत संहिताम् ।।

उपाख्यानैर्विना तावद्भारतं प्रोच्यते बुधैः ।[1]

ततोऽध्यर्धशतं भूयः संक्षेपं कृतवान् ऋषिः ।।

स्पष्ट है कि महाभारत के एक लाख श्लोकों में से चौबीस हजार श्लोकों में मूल कथा-वस्तु वर्णित है, शेष छिहत्तर हजार श्लोकों में उपाख्यान ही हैं । इस प्रकार कहा जा सकता है कि लगभग एक चौथाई मूल कथा को लेकर तीन चौथाई उपाख्यानों(जो वस्तुतः महाभारत से पूर्व प्रचलित लोककथाएं ही हैं) के सहारे महाकवि ने "महाभारत" की रचना की है । यही कारण है कि महाभारत में एक नहीं, बल्कि लोकवार्ता के अनेक रोचक तत्व उपलब्ध होते हैं । वस्तुतः इन्हीं तत्वों को देखकर ही सर जार्ज ग्रियर्सन ने भी कहा था कि, "महाभारत भी सर्वप्रथम लोकमहाकाव्य (फ़ोक इपिक) के रूप में एक प्राचीन प्राकृत भाषा में अवतीर्ण हुआ और बाद में यह संस्कृत में अनूदित हुआ, जिस भाषा में इसमें[2] काफी संशोधन-परिवर्तन किया गया, तब कहीं इसे अन्तिम रूप प्राप्त हुआ ।" इस प्रकार कहा जा सकता है कि महाभारत के रचयिता ने विभिन्न लोकतत्वों के कुशल गुम्फन द्वारा अपने प्रस्तुत कथानक को अद्भुत तथा रोचक बनाया है । ये लोकतत्व विविध रूपों में अनेक लोककथाओं में मिल जाते हैं । उदाहरणार्थ --"कर्ण" का नदी में बहाया जाना और उसका सूत द्वारा पालन-पोषण वह सूत्र है, जो अनेक रूप की लोक कहानियों में आज भी उपलब्ध होता है । इस सूत्र में तीन तत्व हैं--(१) पिटारे में बन्द करके नदी में बहाना, (२) नवजात शिशु का बहाना, इसी का परिवर्तित रूप है नवजात शिशु को किसी कारणवश माँ से अलग कर अन्यत्र फेंकवा देना,(३) किसी अन्य द्वारा उसका पालन-पोषण, किसी देवी-देवता द्वारा उसकी रक्षा किया जाना । इन तीनों तत्वों के मूल तथा परिवर्तित रूप भारत की नहीं, वरन् विश्व की अनेक

---

१ महाभारत,आदिपर्व १।१०२-१०३ ।।

२ इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका,वाल्यूम२२,पृ०२५३ ।

लोकवार्ताओं तथा लोककथाओं में भी उपलब्ध होते हैं । पिटारे में बन्द कर नदी में बहाने का अभिप्राय तो 'मूसा' से भी अधिक सम्बन्धित है । इसी प्रकार, ईस्वी दो-तीन हजार वर्ष पूर्व मिस्र में ओसीरिस को जीवित ही पिटारे में बन्द करके नदी में बहा देने का वर्णन मिलता है । इसी प्रकार लौकिक कथाओं से संयुक्त तुलसीदास द्वारा रचित 'रामचरितमानस' के लंकाकाण्ड में नारान्तक की कथा मिलती है, जिसमें राक्षसपति रावण का सिन्धुरनाद नामधारी एक अत्यन्त बलवान वृद्ध ज्ञानी और चतुर मन्त्री धैर्य बंधाते हुए रावण से कहता है --

अपने मन महं करहु बिचारा । है नारान्तक तनय तुम्हारा ॥
मूल नछत्र माँहि सो जोई । दियो बहाइ मरा नहिं सोई ॥
शम्भुप्रसाद ताहि कछु भयऊ । सुर मिहलावक नृपती भयऊ ॥
कोटि बसतर एक प्रमाऊ । राजा प्रजा भेद नहिं काऊ ॥
दूत पठाइ बुलावहु ताहीं । जीतिहि सो रिपु रण के माहीं ॥[1]
सुनहु अधीस चतुर वर करनी । धरहु धीर चित चिन्ता हरनी ॥

उपर्युक्त पंक्तियों से स्पष्ट विदित होता है कि यह कथातत्व कितना अधिक लोकप्रिय रहा है । इन प्रसिद्ध सूत्रों के अतिरिक्त भी बहुत-सी लोक-कहानियों में भी यही कथातत्व कथानक रूढ़ि के रूप में प्रयुक्त हुआ है । 'हिरणावती' की कहानी में ही नहीं, एक लोकगीत-कहानी में भी एक राजा की रानी के पुत्र को उसकी सपत्नियाँ घूरे पर फिंकवा देती हैं, जिसे कुम्हार पालता है । वीर विक्रमादित्य की एक कहानी में भी इसी प्रकार उस लड़की को सपत्नियां घूरे पर फिंकवा देती हैं, जिसने यह भविष्यवाणी की थी कि उसको जो लड़का होगा, वह लाल उगलेगा ।[2] विवेच्ययुगीन प्रसिद्ध कहानीकार ठाकुर श्रीनाथ सिंह द्वारा लिखित 'लोकलाज' शीर्षक कहानी की नायिका फेंकी का भी जन्म होने के पश्चात ही[3] परित्याग कर दिया जाता है । इसे फेंकने के कारण ही उसका नाम 'फेंकी' पड़ा ।

---

१ द्रष्टव्य--टीका० पण्डित सीताराम मिश्र : रामायण (आठों कांड सटीक), पृ०२२७
२ ,, --डा० सत्येन्द्र : 'मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोकतात्त्विक अध्ययन', पृ०१९२
३ डा० श्रीनाथ सिंह : 'लोकलाज' (भूमिका), पृ०६७-६८ ।

संस्कृत भाषा-काल में कथा साहित्य का और भी अधिक प्रचार और प्रसार हुआ । इस दृष्टि से भारतीय कथा साहित्य का सर्वश्रेष्ठ `पंचतंत्र` है। पंचतंत्र में वर्णित कहानियों के भ्रमण की कहानी तो और भी रोचक है । आज लगभग पचास भाषाओं में इसके दो सौ रूप देखे जा सकते हैं[१] । संस्कृत में लोक-कहानियों का अत्यन्त प्राचीन एवं बृहद् संग्रह गुणाढ्य द्वारा पैशाची भाषा में रचित `बड्डकहा` है । इसका मूल रूप आज उपलब्ध नहीं है, फिर भी इसके तीन संस्कृत अनुवाद आज भी मिलते हैं -- (१) नेपाल निवासी बुध स्वामी का `बृहत्कथा-श्लोक संग्रह`, (२) काश्मीर नरेश अनन्त के राजाश्रित कवि क्षेमेन्द्र कृत `बृहत्कथा-मंजरी` और (३) काश्मीर के राजा अनन्त के राजाश्रित एवं क्षेमेन्द्र के सम-सामयिक सोमदेव का `कथासरित्सागर`। `कथासरित्सागर` बृहत्कथा का सर्वाधिक प्रसिद्ध अनुवाद ग्रन्थ है । इसी का अंग्रेजी भाषा में अनुवाद `ओशन आफ स्टोरी` नाम से पेंजर महोदय ने किया है । वास्तव में `यथानाम तथा गुण:` के समान यह ग्रन्थ कथाओं का सागर ही है, जिसमें अत्यधिक प्राचीन तथा प्रचलित कहानियों का संग्रह किया गया है । गुणाढ्य द्वारा संकलित पैशाची भाषा की लोक कथाओं का उक्त संकलन ग्रन्थ तथा संकलनकर्ता द्वारा लोकभाषा में होने के कारण किस प्रकार राजदरबार में उपहास का विषय बनता है और प्रतिक्रियास्वरूप संकलनकर्ता किस प्रकार अपने ग्रन्थ के पृष्ठों को अग्नि में जला डाला, इसका रोचक वर्णन कथासरित्सागर के प्रथम अध्याय `पूर्वपीठिका` में मिलता है । यों इस बात का प्रमाण है कि लोककथाओं पर साहित्यिक संस्कारों को थोपने के प्रयत्न और उनकी सुरक्षा के लिए कटिबद्ध लोकसाहित्य-प्रेमियों द्वारा प्रयत्न भी समय-समय पर पूर्वकाल में भी होते रहे हैं । स्मरणीय है कि इसकी सुरक्षा का ही परिणाम है कि उनके द्वारा प्रेरणा ग्रहण कर अभिजात्य साहित्यकार भी अपनी प्रसिद्ध कृतियां प्रस्तुत करने में समर्थ हो सके हैं ।

---

१ पंचतंत्र के विभिन्न भाषा में अनुवादों और प्रभाव के विस्तृत विवेचन के लिए देखिए--डा० कीथ : `हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर`, तथा--
डा० बलदेवप्रसाद उपाध्याय : `संस्कृत साहित्य का इतिहास`

संस्कृत साहित्य के प्रसिद्ध नाटककार शूद्रक, भास, हर्ष इत्यादि इस बात के प्रमाण हैं । हिन्दी कहानीकारों ने भी इस ग्रन्थ से प्रेरणा ग्रहण कर कहानियों की रचना की है, जिसकी चर्चा आगे यथास्थान किया जायगा ।

इस शृंखला में जातकों को भी छोड़ा नहीं जा सकता । बौद्ध साहित्य में 'जातक' ग्रन्थों का विशेष महत्व है । ये जातक ग्रन्थ वस्तुतः उन कहानियों के संग्रह हैं, जिनमें भगवान बुद्ध के पूर्व जन्म की कथाएं वर्णित हैं । पालि भाषा में लिखित इनकी कुल संख्या पांच सौ पचास है । अनेक बौद्ध पण्डितों ने जातक कहानियों को संस्कृत भाषा में ही लिखा है, जिनमें से 'दिव्यावदान' तथा 'अवदानशतक' महत्वपूर्ण हैं । उल्लेख्य है कि इन सभी कहानियों का प्रधान वर्ण्य विषय नीति-उपदेश है । इनके अध्ययन से ही विदित होता है कि अधिकांश कहानियां ऐसी हैं, जो भगवान बुद्ध के समय में सर्वसाधारण में प्रचलित थीं । इस सम्बन्ध में विचारणीय है कि बौद्धों ने "कभी कभी तो कुछ अवदान बनाए भी हैं, किन्तु बहुधा कोई लम्बाख्यान, परियों की कहानियां अथवा रोचक चुटकुले ही लिए हैं, उन्होंने इन्हें धार्मिक प्रचार की दृष्टि से संशोधन करके अपने अनुकूल बना लिया है । पुनर्जन्म और कर्म के सम्बन्ध में बोधिसत्व का सिद्धान्त एक उत्तम साधन के रूप में उनके हाथ में था, जिससे वह किसी भी लोक कहानी अथवा साहित्यिक कहानी को बौद्ध अवदान में रूपान्तरित कर सकते थे ।"[१] स्मरणीय है कि ये कहानियां यथाशक्य सुबोध, सरल और सरस किन्तु प्रभावकारी ढंग से कह दी गई हैं, जिनका श्रोता पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है ।

जातकों के अतिरिक्त बौद्ध साहित्य के अन्तर्गत त्रिपिटकों का भी महत्वपूर्ण स्थान है । 'विनयपिटक' में सारिपुत्र, महाप्रजापति, जीवक आदि की कहानियां विद्यमान हैं । 'सुत्तपिटक' के दीघनिकाय और मज्झिमनिकाय में बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित कितनी ही स्फुट कहानियां मिलती हैं । इसके अतिरिक्त भी इसमें अनेक गाथाएं तथा अवदान हैं, जो किसी-न-किसी धार्मिक सिद्धान्त अथवा नीति को अभिव्यक्त करते हैं ।

१ "इनसाइक्लोपीडिया आफ रिलीजन एण्ड एथिक्स", भाग ७, पृष्ठ ४९१ ।

इस दृष्टि से जैन साहित्य तो और भी धनी है । डा० सत्येन्द्र के मतानुसार --'जैन साहित्य में तो बौद्ध धर्म से भी अधिक कहानियों का भाण्डार मिलता है.... इन प्राचीन साहित्य से बीज लेकर बाद में जिनसेन, गुणभद्र, हेमचन्द्र आदि ने संस्कृत में, शीलाचार्य, महेश्वर इत्यादि ने प्राकृत में, पुष्पदन्त[1] ने अपभ्रंश में, चामुण्डाराय ने कन्नड़ में बड़ी-बड़ी कहानियां खड़ी कर दी हैं ।'

हिन्दी साहित्य में लोक कथानकों का समावेश

हिन्दी में भी लोककथाओं का साहित्य अत्यन्त उच्च कोटि का है । लोकसाहित्य के अध्ययन में डा० सत्येन्द्र द्वारा संगृहीत तथा सम्पादित 'ब्रज की लोक कहानियां' नामक संग्रह का वैज्ञानिक महत्व है । इस क्षेत्र में कार्य करते हुए उन्हें हस्तलिखित ग्रन्थों का भाण्डार मिला है, जिसमें लोकवार्ता की परम्परा विद्यमान है । उन्होंने लिखा है--' और जब हम हस्तलिखित ग्रन्थों के खोज के पन्ने पलटते हैं, तो हमें आश्चर्य[2] में पड़ जाना पड़ता है । अनेकों पुस्तकें हैं, जो इस लोकवार्ता को प्रकट करती हैं ।' उन्होंने विषय प्रतिपादन की दृष्टि से इन पुस्तकों को सात विभागों में विभक्त किया है-- प्रथम वर्ग लोक-कहानी का है । इस वर्ग में उन पुस्तकों को स्थान दिया गया है, जिनमें लोकप्रचलित कहानियों को कहानियों के लिए ही ग्रहण किया है । कहानियों में 'सिंहासन बत्तीसी', 'बैताल पचीसी', 'माधवानलकामकन्दला', 'कथा चार दरवेश', 'माधवविनोद', 'शुकबहत्तरी' इत्यादि प्रसिद्ध कहानियों से सम्बन्ध रखने वाली कृतियां ही हैं[3] । इस सम्बन्ध में डा० उदयनारायण तिवारी विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं, जिन्होंने अपना शोधकार्य करते हुए कुछ भोजपुरी लोककथाओं का संग्रह किया था, जिनमें से कुछ रोमन लिपि में बिहार रिसर्च सोसायटी के जर्नल में प्रकाशित हुई हैं ।

---

१ द्रष्टव्य --'मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोकतात्विक अध्ययन', पृ०१६३-६५।

२ ,, --'ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन', पृ०४२३ ।

३ ,, -- ,, ,, ,,

इसी प्रकार बुन्देली भाषा में श्री शिवसहाय चतुर्वेदी की पुस्तक `पाषाण नगरी` `बुन्देलखण्ड की ग्राम कहानियां` में लोककथाओं का संग्रह किया गया है। डा० बाबूराम सक्सेना के शोध-प्रबन्ध `इवोल्यूशन आफ अवधी` (अवधी का विकास) में भी अवधी की कुछ लोककहानियां देखने को मिलती हैं।

लोकतत्व समन्वित कुछ ग्रन्थों का उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं। शेष ग्रन्थों में `कनक मंजरी`, `राजा चित्रमुकुट की कथा`, `उसमानकृत `चित्रावली`, मृगेन्द्र की `प्रेमपयोनिधि` में वर्णित कथा भी अत्यधिक लोकप्रिय कथा ही है। इसके अतिरिक्त `मृगावती` का उल्लेख जायसी, उसमान आदि ने प्रसिद्ध कथा-ग्रन्थ के रूप में किया है, जो सूफी ढंग की प्रेमकहानी ही है। इतना ही नहीं, बल्कि कुछ ऐतिहासिक दृष्टि वाले काव्य-ग्रन्थ भी लोकतत्व और लोककथा-तत्वों से अभिव्यंजित हो गये हैं। जोधराज का हमीररासो इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है। उदाहरण के लिए इस ग्रन्थ में हम्मीर और अलाउद्दीन देवताओं और पीरों का स्मरण करते हैं तथा वे सभी आकर इनकी सहायता भी करते हैं। इसी प्रकार `गोराबादल` की कथा में ऐसे लोककथा के अंश भी घुल-मिल गये हैं, उदाहरणार्थ जटमल कृत `गोराबादल की कथा` में योगी की कृपा से मृग चर्म पर बैठकर सिंहल द्वीप पहुंचने का वर्णन सुरक्षित है। वस्तुत: इन सब का मूल स्रोत लोकवार्ता ही है। इतिहास से इनका कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। इस रूप में जब किसी ऐतिहासिक वीर पुरुष के वीर चरित का लोकतत्व समन्वित वर्णन किया जाता है, तो उन्हें `अवदान` की संज्ञा प्रदान की जाती है। बिहारीलाल कृत `हरदौल चरित्र`, तथा `पन्ना वीरमदे की बात` इसी प्रकार की कथाएं हैं। बिवेच्ययुगीन कहानीकार प्रेमचन्द ने भी `राजा हरदौल` जैसी कहानी का सूत्र भी उन्हीं लोककथाओं से ग्रहण किया है, जहां से इन कृतियों में किया गया है, जिसका उल्लेख प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में यथावसर किया गया है।

वस्तुत: इस काल में अलौकिक तत्वों से कथानकों को जोड़ने की प्रवृत्ति इतनी प्रबल थी कि बड़े-से-बड़े महात्माओं के चरित्रों में भी इनका समावेश किया गया है। कबीर, नामदेव, मीरा आदि की कथाओं में जो चमत्कारपूर्ण वर्णन मिलते हैं, वे इस बात के साक्षी हैं। डा० सत्येन्द्र ने

इस प्रकार के अनेक भक्तों के जीवन से सम्बद्ध चमत्कारों का उल्लेख किया है[1]।

कहना न होगा कि हिन्दी भाषा के उदयकाल में साहित्यिक रूप काव्य का ही प्राधान्य रहा, फिर भी कथा साहित्य की धारा लुप्त नहीं हुई। हिन्दी के अनेक कवियों ने लोककथानकों का आधार लेकर आख्यानक काव्य रचे, परिणामत: 'सम्पूर्ण भारतीय समाज नीचे से ऊपर तक एक नवीन ढंग के रागात्मक सम्बन्ध और सहभाव का अनुभव करने लगा। सन्त और भक्त कवि इस सौमनस्य के अमर गायक थे। जातिभेद और वर्णभेद की खाइयों को मानवता की सरस धारा से आप्लावित करते हुए इन लोकदर्शी कवियों ने साहित्य का वह आदर्श उपस्थित किया है, जिसमें जनसामान्य का हृदय अपनी पूरी सजीवना के साथ शताब्दियों बाद पहली बार उजागर हुआ[2]। 'हिन्दी साहित्य के इतिहास क्रम में इस काल को 'भक्तिकाल' के नाम से अभिहित किया जाता है। इस काल के लोकदर्शी सन्त एवं भक्त कवियों द्वारा रचित साहित्य का जब डा० सत्येन्द्र ने लोकतात्विक अध्ययन प्रस्तुत किया, तब हिन्दी संसार भी चमत्कृत हो उठा। फलस्वरूप डा० विजयेन्द्र स्नातक की एक भ्रान्त धारणा-'लोकसाहित्य और उससे सम्बद्ध विषयों की उपादेयता केवल अनुसन्धान तक ही मानता था। मुझे लगता था कि जो सांस्कृतिक धरातल उदात्त साहित्य का होता है और जैसी-जैसी भाव-विचार की गरिमा तथा अभिव्यंजना की प्रौढ़ता उसमें होती है, वैसी लोकसाहित्य में हो ही नहीं सकती, अत: असंस्कृत मनोदशाओं के अवशेषों में प्रवहमान लोकवार्ता, लोकसाहित्य, लोककथा आदि का अध्ययन साहित्य निर्माण में विशेष उपकारक नहीं हो सकता। फलत: इस प्रकार के अध्ययन अनुसन्धान के लिए भले ही ग्राह्य समझे जायं, किन्तु वे साहित्य के उच्च आसन पर आसीन करने योग्य नहीं होते' का निराकरण हुआ और उन्हें भी मानना पड़ा, 'केवल कल्पना, अनुभूति और पुस्तक-ज्ञान के आश्रय से साहित्य तरु विकसित नहीं होता। साहित्य तरु की जड़ लोक-परम्परा और लोकजीवन के अतल में छिपी रहती है और वहीं से अपने पोषण की

१ द्रष्टव्य--'मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोकतात्विक अध्ययन', पृ०१२६-१३२।
२ नामवर सिंह : 'इतिहास और आलोचना', पृ०१६८।

विपुल सामग्री पाकर साहित्य-तरु को जीवित रखती है । कला,धर्म,दर्शन आध्यात्म, संस्कृति आदि विविध शाखा-प्रशाखाओं में फैलने-फूटने वाला साहित्य लोकतत्व से जीवनी-शक्ति संचय कर अपने वृक्ष पर काव्य और कला के, ज्ञान और विज्ञान के प्रसून खिलाता है । इन सुरभित सुमनों की पंखुड़ियों में सहस्त्राब्दियों से अविच्छिन्न चली आती हुई लोक-रुचि और लोक-परम्परा का आमोद विद्यमान है, जो आज हमें वर्तमान युग के अभिजात्य संस्कार एवं पाण्डित्य-चेतना के कारण ज्ञात नहीं होता । यदि साहित्य-तरु की समस्त शिरा- प्रशिराओं का विश्लेषण किया जाय, तो निश्चय ही उसमें लोकतत्वों की मात्रा प्रचुर परिमाण में उपलब्ध होगी । लोकवार्ता, लोककथा,लोकगीत, लोकनृत्य,लोकजीवन,लोकमानस आदि से समन्वित 'लोक-तत्व' प्रत्येक सुसंस्कृत एवं सुशिक्षित जाति के साहित्य के मूल में सन्निविष्ट रहता है, उसका अध्ययन केवल नृतत्वशास्त्र की कसौटी पर मानव जाति के विकास की क्रमिक दशाओं का ही परिचायक नहीं होता, वरन् साहित्य,धर्म,दर्शन,कला और संस्कृति को अनुप्राणित करने वाली आधारभूत मान्यताओं का बोध कराने वाला भी होता है । वस्तुत: साहित्य और लोकतत्व एक ही जीवन-रथ के दो क्रियाशील चक्र हैं, इन्हीं के द्वारा समाज का जीवन-रथ के संक्रमण करता है......१..संसार के समस्त सत् साहित्यों की आधार-शिला इन लोकतत्वों पर आधृत है ।" इस प्रकार कहा जा सकता है कि लोकतत्वों द्वारा भक्तियुगीन साहित्य को वह शक्ति मिली, जो युग-युग तक मानव-हृदय को रससिक्त कर सके । यही वह मुख्य कारण है,जिससे उस पराधीन और ह्रास युग में भी उच्चकोटि की रचना सम्भव हो सकी ।

सोलहवीं शताब्दी के पश्चात् जब महाकाव्यों का प्रचार और प्रसार कम हुआ, तब मुक्तक काव्य-रचना -धारा प्रबल हो उठी । यद्यपि कथात्मक साहित्य की धारा नष्ट नहीं हुई, तथापि लोकतत्वों से युक्त लोक-धारा से विच्छिन्न होकर हिन्दी साहित्य ऊपरी धरातल के पंक में फंसा रहा ।

---

१. द्रष्टव्य-- 'हिन्दी वार्षिकी', भारतीय साहित्य मंदिर, दिल्ली, सन् १९६०, पृ० १८६

परिणामस्वरूप रीतिकालीन कवि प्राचीन रूढ़ियों के आधार पर ही रचनाएं करते हुए, भाषागत चमत्कार एवं काट-छांट के लोभ में पड़कर बोलचाल की भाषा से भी दूर जा पहुंचे । अस्तु केशवदास को `कठिन काव्य का प्रेत` जैसी उपाधि से विभूषित होना पड़ा । इतना ही नहीं, बल्कि भाषा में रचना करने के कारण ही उनके मन में जो दु:ख उत्पन्न हुआ, वह --

भाषा बोलि न जानहीं, जिनके कुल के दास ।
भाषा-कवि भो मन्द मति, तेहि कुल केशवदास।।

के रूप में व्यक्त हुआ । वस्तुत: उस युग की रचनाएं शिष्ट एवं सुसंस्कृत कहे जाने वाले लोगों के मनोरंजन की वस्तु रह गई थी । यही कारण है कि रीतिकाल के महाकवि बिहारीलाल जी ने --

कर लै सूंघि सराहि कै, सबै रहे गहि मौन ।
गंधी गंध गुलाब को, गंवई गाहक कौन ।।

तथा--

सबै हंसत करतारि दै, नागरता के नाउं ।
गयो गरब गुन को सबै, बसे गंवैले गांउ ।।

आदि द्वारा `गंवारों` की खिल्ली भी उड़ाई । किन्तु .... `जब-जब शिष्टों का काव्य पण्डितों द्वारा बंधकर निश्चेष्ट और संकुचित होगा, तब उसे सजीव और चेतन प्रसार देश की सामान्य जनता के बीच स्वच्छन्द बहती हुई प्राकृतिक भाव-धारा से जीवनतत्व ग्रहण करने से ही प्राप्त होगा ।`[१]

भक्तिकाल के पश्चात् उन्नीसवीं शताब्दी के पुनर्जागरण के परिणामस्वरूप भारतीय जन-जीवन में एक बार पुन: लोकचेतना जाग्रत हुई । इसी समय जीवन के सभी पक्षों में नवीन वातावरण के साथ मध्यम वर्ग भी सामने आया, जिसका एक पांव तो ग्रामीण संस्कारों में बंधा था और दूसरा अपने ऊंचे

---

१ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : `हिन्दी साहित्य का इतिहास`, पृ०७२५ ।

लोगों में स्थान पाने के लिए निर्बन्ध । ऐसे ही सान्ध्यवेला में भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का उदय साहित्याकाश में एक नक्षत्र के समान हुआ । उनके द्वारा प्रेरित तत्कालीन साहित्य एक बार पुन: सामान्य जनमानस से तादात्म्य स्थापित करने में समर्थ हुआ, फलत: सच्चे अर्थों में फिर से एक बार लोकतत्वों से युक्त जनभाषा में जनसाहित्य का सृजन हुआ । किन्तु आश्चर्य का विषय है कि इस युग में विविध विधाओं का तो विकास हुआ, लेकिन 'छोटे मुंह बड़ी बात' कहने वाली लोकप्रिय एवं साहित्य की आदि विधा कहानी की धारा प्रवाहित न हो सकी । यह क्षीण धारा जो अबतक किसी-न-किसी प्रकार परम्परागत चली आ रही थी, गद्य के विकास के साथ-साथ पुन: प्रकट होने लगी और प्रेमचन्द-युग में जनमानस की भावनाओं को भली भाँति प्रकट करती हुई वेगवती नदी की अबाध धारा के रूप में प्रवाहित हुई । ज्ञातव्य है कि प्राय: उत्थान-युग का साहित्य लोकसाहित्य के अधिक निकट पड़ता है । आधुनिक हिन्दी कहानी का आरम्भिक युग भी इस बात का अपवाद नहीं है । सन् १८००ई० के आस-पास, हिन्दी की पहली कहानी उर्दू के प्रसिद्ध साहित्यकार इंशाअल्ला खाँ द्वारा लिखित 'राजा उदयभानचरित' या 'रानी केतकी की कहानी' एक लोककथा ही है, जिसमें प्रेमी तथा प्रेमिका के मिलन में बाधक होने वाली सांसारिक बाधाओं का वर्णन किया गया है । अपने एकनिष्ठ प्रेम के आधार पर किस प्रकार वे बाधाएं एवं बन्धनों पर विजय प्राप्त करते हैं, यही वर्णन प्रस्तुत कहानी में उपलब्ध है । इसकी शैली भी परम्परा द्वारा प्राप्त लोकप्रचलित गद्य-पद्य मिश्रित चम्पू शैली ही है ।

इसी प्रकार 'सरस्वती' सन १९०३ई० के अप्रैल अंक में प्रकाशित महावीरप्रसाद द्विवेदी की 'तीन देवता' शीर्षक कहानी वस्तुत: लोककहानी ही है । प्रस्तुत कहानी का सारांश इस प्रकार है— किसी धनाढ्य सौदागर की मृत्यु के पश्चात् उसकी विधवा पत्नी एवं एकमात्र पुत्र सुखमय जीवन-यापन करते हैं । पुत्र बड़ा होने पर भ्रमण हेतु निकल पड़ता है और किसी सेठ की कन्या पर मुग्ध होकर उससे विवाह कर लेता है । इस प्रकार वह सुखमय दाम्पत्य जीवन व्यतीत कर ही रहा था कि उसकी माता का देहावसान हो जाता है । एक मित्र सौदागर के यहाँ अपना धन रखकर वह व्यापार हेतु चला गया ।

उसकी पतिव्रता स्त्री जब गंगा स्नान करके लौट रही थी, तब शहर कोतवाल की दृष्टि उस पर पड़ी और उसने कामतुष्टि की याचना की। चतुर स्त्री ने रात्रि के प्रथम प्रहर में उससे अपने घर आने के लिए कहा। इसी प्रकार मार्ग में राजपुरोहित तथा प्रधानमंत्री की याचना को भी स्वीकार कर क्रमशः द्वितीय तथा तृतीय प्रहर अपने घर उन्हें बुलाती है। जिस सौदागर मित्र के यहाँ धन रखा गया था, उससे धन प्राप्त करने के लिए जब उसने अपनी सखी को भेजा, तब वह स्वयं चला आया और कामवासना के वशीभूत होकर न केवल धरोहर बल्कि अपना भी समस्त धन देने को कहा। उसने उसे रात्रि के चौथे प्रहर में बुलाया। अब उसने आगन्तुकों को दण्ड देने की योजना बनाई। अपनी ही सखियों के सहयोग से एक बड़े कुण्ड में काजल तथा कड़ुवा तेल घोल दिया। रात्रि के प्रथम प्रहर अपने निश्चित समय पर कोतवाल साहब आए। स्नान कराने के बहाने उन्हें एक कौपीन पहना कर उसी कुण्ड में स्नान कराया। उसी समय राजपुरोहित आ धमके। भेद न खुले इसलिए कोतवाल को एक सन्दूक में बन्द कर दिया। इसी प्रकार राजपुरोहित तथा प्रधानमंत्री के साथ भी किया गया। तत्पश्चात् रात्रि के चौथे प्रहर उसके पति का मित्र उपर्युक्त सौदागर भी आया। वह उसे सन्दूक वाले कमरे में ले आई और धन वापस करने के लिए कहा। उसने उत्तर देते हुए कहा—'मैं वादा कर चुका हूँ, तुम्हारा ही नहीं, अपना निज का भी धन तुम्हें दे दूँगा'। इस पर उसने कहा —'हे सन्दूक के देवता! सुना तुमने! मेरे स्वामी का यह मित्र क्या कह रहा है? इसकी बातों को याद रखना।' इतना कह, दीपक बुझा वह बाहर भाग गई। सखियों ने इसे भी उपर्युक्त ढंग से स्नान कराया। तब तक सवेरा हो गया और उसे घर से बाहर निकाल दिया।

दूसरे दिन वह राजदरबार में पहुँचकर अपने पति द्वारा मित्र के यहाँ रखे गये धन को दिलाने की याचना की। जब उसके मित्र ने इस बात से इनकार किया तब उसने सन्दूक के देवता की गवाही देने की बात कही। कि उसने देवताओं को सम्बोधित करते हुए कहा कि हे सन्दूक के देवता! स्पष्ट कहो, नहीं तो मैं तुम्हें खोल दूँगी। तीनों ही देवताओं ने कहा—'यह ठीक कह रही है। इसकी इस स्त्री के स्वामी की धरोहर रखी है और हमारे सामने लौटाने का वायदा किया है।' इस प्रकार स्त्री को अपना धन भी मिला ही, साथ ही साथ

उस सौदागर के धन का कुछ अंश उसे दण्डस्वरूप मिला । जब सन्दूक के देवता खोले गये और काजल से लिपटे हुए शहर कोतवाल, राजपुरोहित और प्रधानमंत्री नग्नावस्था में उपस्थित हुए । स्त्री ने राजदरबार में पूर्वोल्लिखित सारी कथा कह सुनाई । उसी अवस्था में तीनों ही महानुभावों को देश-निष्कासन का दण्ड दिया गया और स्त्री को पुरस्कार । स्त्री का पति जब व्यापार से लौटकर घर आता है तो दोनों सुखमय जीवन व्यतीत करने लगे ।

वस्तुत: यह कहानी सौदागर के पुत्र तथा उसकी स्त्री की कथा न होकर व्याकरणाचार्य सोमदत्त वररुचि की पत्नी उपकोशा की कथा है, जिसका वर्णन कथासरित्सागर के प्रथम अध्याय पूर्वपीठिका में सुरक्षित है । कथासरित्सागर में वर्णित प्रस्तुत कहानी अत्यधिक लोकप्रिय हुई है । यूरोप में यही कहानी 'लैडी आफ मैरी स्वड हर फोर गैलेन्ट्स' शीर्षक से मिलती है । ब्रज में यह कहानी रूपान्तरित होकर ग्रामीण वातावरण के अनुकूल बन गई है । यहां इसका नाम 'ठाकुर रामप्रसाद' हो गया है[1] । इसी कहानी की एक झलक प्रेमचन्द द्वारा लिखित 'दारोगा जी' शीर्षक कहानी में भी मिलती है[2] ।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि आरम्भिक काल की हिन्दी-कहानियों के विकास में लोककथा-कहानियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है और साहित्यिक कहानी के अंचल में कितनी ही लोककथाओं का परिष्कार कर साहित्यिक रूप दे दिया गया है ।

द्विवेदीयुगीन कहानी में लोककहानियों के गृहीत रूप

द्विवेदीयुगीन हिन्दी कहानी का मूल प्रेरणा स्रोत ही लोककहानी रहा है, अत: कितनी ही लोक कहानियां यत्किंचित् परिष्कार एवं संस्कार द्वारा परिमार्जित रूप में ज्यों-की-त्यों आधुनिक कहानी के रूप में प्रकट हुई हैं । इस बात को न केवल प्रेमचन्द वरन् सुदर्शन, जैनेन्द्र, चतुरसेन शास्त्री,

---

१ सं०डा० सत्येन्द्र : "ब्रज की लोक कहानियां", पृ०४६-५३ ।

२ प्रेमचन्द : "दारोगा जी" (मानसरोवर, भाग४), पृ०८२,६० ।

तथा वृन्दावनलाल वर्मा आदि प्रमुख कहानीकारों ने स्वीकार किया है । इस दृष्टि से विवेच्ययुगीन सुप्रसिद्ध कहानीकार श्री सुदर्शन द्वारा उल्लिखित "पनघट" संग्रह के विषय में निम्नलिखित पंक्तियां महत्वपूर्ण हैं --- "नया लेखक कहानी लिखने बैठा, तो कलम ने कहा--- बोल, क्या लिखूं ? लेखक सोच में पड़ गया कि क्या कोई ऐसा बाग नहीं है, जहां कहानियां फूलों की तरह उगती हों ? आदमी जाए, दो-चार मन-माफिक कहानियां तोड़ लाए और उन्हें बनाकर, सजाकर, शीशे की तरह चमकाकर किताबों के पन्नों पर रख दे ।

+ + +

पास से एक बूढ़ा गुजर रहा था । उसने नये लेखक की (परेशानी) हैरानी को देखा और कहा--- मैं एक ऐसी जगह जानता हूं, जहां कहानियां फूलों की तरह उगती हैं, बड़ी होती हैं, फलती हैं और फूलती हैं । और वहां इतनी कहानियां हैं कि अगर तू हर रोज एक कहानी तोड़े और सारी उम्र तोड़ता रहे, तब भी उनमें कमी न आए और वह सदा बहार बाग उसी तरह लहलहाता रहे ।

नया लेखक बूढ़े के साथ-साथ चलने लगा । बूढ़ा साथ ले शहर की तंग गलियों, खुले बाजारों, हवेलियों और कोठियों को पार करता खेतों की दुनिया में पहुंचकर पनघट की ओर इशारा किया और कहा, ---" यही वह जगह है, जहां कहानियां उगती हैं, बड़ी होती हैं, फलती-फूलती हैं । यहीं से कहानियां गलियों में जाती हैं, यहीं से बाजारों में जाती हैं, यहीं से कोठियों में जाती हैं, यहीं से खेतों में जाती हैं ।

यही कहानियों का बाग है, और यहां इतनी कहानियां उगती हैं कि अगर तू हर रोज एक कहानी तोड़े और सारी उम्र तोड़ता रहे, तब भी उनमें कमी नहीं आयेगी और कहानियों का यह सदा-बहार बाग इसी तरह लहलहाता रहेगा ।"[1]

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि बूढ़े का इशारा ग्रामीण जीवन और ग्रामीण कथाओं की ओर है । इसी आधार पर कहानीकार ने

१ द्रष्टव्य--- श्री सुदर्शन : 'पनघट संग्रह' (भूमिका)

कहानियों की रचना की है ।

इसी प्रकार द्विवेदीयुगीन प्रमुख कहानीकार प्रेमचन्द ने विशुद्धरूप से साहित्यिक जगत में हिन्दी क्षेत्र में आने के पूर्व अंग्रेजी राज्यान्तर्गत शिक्षा विभाग में भी कुछ समय तक कार्य किया था । उसी समय उन्होंने बुन्देलखंड के महोबा में भी कुछ दिन व्यतीत किए । वहां सन्ध्या समय वायु सेवन करते हुए उन्होंने, वहां की अनेक जनकथाओं को सुना था और उनसे सम्बद्ध स्थानों को भी देखा था । उन्हीं से प्रेरणा ग्रहण कर, उन्हीं के आधार पर 'राजा हरदौल'[1] तथा 'रानी सारन्धा'[2] आदि कहानियों की रचना की है । बुन्देलखण्ड में आज भी प्रसिद्ध यशस्वी महापुरुष हरदौल की घर घर पूजा होती है और ऐसे चरित्र जब लोक पद्धति में विशेष लोक-श्रद्धायुक्त लिये जाते हैं, तो अवदान या लीजेण्ड की संज्ञा प्राप्त करते हैं, जिसमें ऐतिहासिकता कम तथा लोकतात्त्विकता अधिक रहती है । 'हरदौल चरित्र' तथा 'हरदौल जी का ख्याल' शीर्षक ग्रन्थ इस बात के प्रमाण हैं । इनमें हरदौल जैसे वीरपुरुष के वीर चरित्र का ही वर्णन किया गया है । कहानीकार शिवपूजनसहाय ने तो इस बात को स्वीकार किया है कि 'विभूति' नामक कहानी संग्रह की आरम्भिक दस कहानियों में से तीन की रचना का आधार 'टाड साहब के राजस्थान का इतिहास' है, शेष सात की रचना जनश्रुत घटनाओं पर की गई है[3] । पण्डित विश्वनाथ मिश्र ने 'चिल्ड्रेन्स एनसाइक्लोपीडिया' के प्रत्येक जिल्द के तीसरे खण्ड में 'दि ग्रेट स्टोरीज आफ दि वर्ल्ड दैट चिल्ड वी टोल्ड फार एवर' शीर्षक भाग में एक कहानी पढ़ी थी, जो 'प्रसाद' के 'आकाशदीप' शीर्षक कहानी का मूलरूप सा प्रतीत होती थी[4] ।

इस प्रकार हिन्दी कहानी के विकास में लोककथा-कहानियों के योगदान से इन्कार नहीं किया जा सकता । यही नहीं मुख्यतः

---

१ प्रेमचन्द : 'मानसरोवर', भाग६, पृ०१२ तथा ४५ ।
२ 'रानी सारन्धा, हरदौल- जैसी राजपूती वीरता की कहानियां, मुंशी जी को स्थानीय लोककथाओं से मिलीं' -अमृतराय : 'कलम का सिपाही', पृ० १२१ ।
३ शिवपूजन-- 'विभूति' (भूमिका) पृ०१५ ।
४ ,, -- 'हिन्दी-अनुशीलन'- 'हिन्दी कहानी के विकास में जनकथाओं का योग' पृ०७७ ।

कारण है कि विवेच्य युग में न जाने कितनी लोककहानियां साहित्यिक रूप ग्रहण कर बैठी हैं और न जाने कितनी लोककहानियां यत्किंचित् परिष्कार एवं संस्कार द्वारा परिमार्जित रूप में साहित्यिक कोटि में लाई गई हैं । इसी प्रकार विवेच्य-युग में प्रचलित लोकगीतों, विश्वासों तथा लोकोक्तियों एवं प्रसिद्ध उक्तियों के आधार पर भी कहानियों का ताना-बाना बुना गया है । इनमें से कुछ कहानियों का पूर्वोल्लेख यथाप्रसंग किया जा चुका है । यहां पर मात्र उन्हीं कहानियों की चर्चा की जा रही है, जिनका उल्लेख प्रस्तुत प्रसंग में आवश्यक प्रतीत होता है ।
लोककथा-कहानियों के मूल रूप में साहित्यिक अभिव्यक्ति की दृष्टि से श्री कृष्णानंद गुप्त द्वारा लिखित "राजा के सींग" शीर्षक कहानी विशेषरूप से उल्लेखनीय है, जिसका संक्षिप्त रूप देने के पूर्व एक बात विशेष रूप से उल्लेखनीय यह भी है कि कहानीकार ने कहानी के आरम्भ में ही इसे लोककहानी स्वीकार करते हुए कहा है कि "मेरी दादी एक कहानी कहा करती थीं और अब वे नहीं हैं तो वह कहानी मुझे अक्सर याद आ जाती है ।" और तत्पश्चात् कहानी इस प्रकार है --

"एक था राजा । उसके सिर पर थे दैव योग से दो सींग, परन्तु रानी के सिवा उन्हें आज तक किसी और ने नहीं देखा था । राजा सदैव उन्हें एक मोटी पगड़ी से ढंके रखता था । जब जरूरत होती तो पगड़ी अकेले में उतारता, अकेले में ही नहाता और अकेले में ही कपड़ा बदलता । इस तरह और सब तो ठीक था परन्तु बाल कटवाये बिना तो काम नहीं चलता था । इसलिए एक तो राजा बाल बहुत कम कटवाता था और फिर जो नाई उसके बाल काटने आता, वह फिर महल से बाहर नहीं जा पाता था । इस बात को शहर के प्रायः सभी नाई जानते थे । एक बार दूसरे शहर से आया हुआ नाई बाल काटने के लिए पकड़ा गया । बाल काटने के पश्चात् जब उसे मृत्यु-दण्ड की आज्ञा प्रदान की गई, तब उसने अनेक बहाने बनाये और अन्त में अपने पुत्र की सौगन्ध खाने पर कि वह किसी से सींग की चर्चा नहीं करेगा, उसे प्राणदान राजा ने दे दिया । राजमहल से बाहर निकल कर वह सोचने लगा कि अपने बेटे की कसम खाकर आया हूं । काम चलाने के लिए ही सही, मगर कसम तो आई कसम ही है, इसलिए

वह राजा के सींग की चर्चा किसी से नहीं करना चाहता, किन्तु उसके सम्बन्धी उससे आग्रह पूछने लगे कि भाई किस्सा क्या है, बताओ तो सही ? नाई ने कहा, भाई क्या बताऊं, लड़के की कसम खाकर आया हूं और बिना बताये हुए वह सहर्ष चल पड़ा , पर उसके पेट में बात पचे कैसे ? वह बताने के लिए व्यग्र हो उठा । अन्ततोगत्वा नदी के समीप पहुंचकर पानी पीते हुए नाई ने बहुत धीरे से 'राजा के दो सींग' कह ही डाला और उसका पेट हल्का हो चला । इस बात को हवा ने सुना और सुना किनारे के पीपल के विशाल वृक्ष तथा पक्षियों ने । धीरे-धीरे यह बात फैलने लगी । यहां तक कि ढोल से भी आवाज आने लगी 'राजा के दो सींग' । मजीरा ने पूछा, तुमसे किसने कहा ? ढोल ने उत्तर दिया --'राजा के नाई ने ।' इस बात को सुनकर राजा के सींग को देखने के लिए राजमहल के सामने विशाल जनसमूह एकत्रित हो गया और राजा के सींग देखने का आग्रह करने लगा । रानी के बहुत कहने-सुनने पर राजा ने पगड़ी हटाई, किन्तु आश्चर्य की बात यह हुई कि अब उसके सिर पर सींग नहीं थी । राजा ने स्वयं अपने सिर पर हाथ रखा, परन्तु यह रहस्य उसकी समझ में नहीं आया । प्रजा भी कुछ हैरान और कुछ शर्मिन्दा होकर वापस लौट पड़ी ।'[१]

इस दृष्टि से विवेच्ययुगीन कहानी लेखिकाओं की कहानियां भी द्रष्टव्य हैं । तत्कालीन 'स्त्री धर्म शिक्षक', 'महिला दर्पण', 'मर्यादा' तथा 'कन्या सर्वस्व' आदि पत्र-पत्रिकाओं में इस प्रकार की अनेक लोककथाएं कुछ रूप में प्रकाशित होती रही हैं । श्रीमती कृष्णकला ने 'कथा कहानी' शीर्षक एक उपदेशात्मक लघु कथा के माध्यम से बहुओं को इस बात की शिक्षा दी है कि वे सास-ससुर का आदर करें । अपने हृदय की व्यथाओं को ईश्वर के समक्ष प्रस्तुत करें और बच्चों के समक्ष सदैव सदाचरण करें , अन्यथा भविष्य में हानि की संभावना है । कथा का सारांश इस प्रकार है--' माधो अपनी पत्नी के प्रभाव से

---

१ कृष्णानन्द गुप्त : 'राजा के सींग', पुरस्कार संग्रह, पृ०२५३-२७२ ।

माता-पिता का अनादर करता है, किन्तु जब उसके सात वर्ष के बालक ने यह कहा कि मैं भी कालान्तर में माता-पिता के साथ ऐसा ही व्यवहार करूँगा, जैसा मेरे दादा-दादी के साथ हो रहा है,[1] तब उनके नेत्र खुले और माथों ने बड़ों के प्रति सद्व्यवहार करना प्रारम्भ किया।" मापा भी लोकगाथा की ही इस कहानी में व्यक्त की गई है।

लोकजीवन में भारतीय नारी अपने सास, ससुर, जेठ तथा पति आदि का नाम नहीं लेती। इस सम्बन्ध में अनेक लोककथाएं जनजीवन में प्रचलित हैं, जिनमें सास या ननद आदि बहू को बनिया की दुकान पर वही सामान खरीदने के लिए भेजती हैं, जो किसी बड़े का नाम होता है। वस्तुत: इस दृष्टि से उसकी परीक्षा ली जाती है कि वास्तव में वह नाम लेती है, अथवा नहीं। द्विवेदी-युगीन कहानी-लेखिका श्रीमती रामप्यारी देवी ने ऐसी ही एक लोककहानी को 'चतुर बहू' शीर्षक देकर एक पारिवारिक कहानी के रूप में साहित्यिक अभिव्यक्ति दी है। "सुशीला के पति का नाम कपूर था, अत: सास ने उसकी परीक्षा लेने के हेतु बनिये की दुकान से कपूर लाने के लिए भेजा। उधर मार्ग में उसके जेठ केसरी को खड़ा कर दिया कि देखो वह किस प्रकार वार्तालाप करती है और कैसे उपर्युक्त वस्तु को लेकर आती है। चतुर बहू शीघ्रतापूर्वक बनिये के यहां पहुंचकर, बिना 'कपूर' शब्द का उच्चारण किए, अपने मन्तव्य को इस प्रकार प्रकट किया,--"

हंस से उज्ज्वल शशिवरण, आवे बास सुवास।
सो बनिये मोहि तोल दे, लेन पठायो सास।।

जब वह घर लौटने लगी, तब मार्ग में अपने जेठ को खड़ा देखकर वहीं रुक गई और जेठ के जाने पर ही घर लौटी। सास द्वारा विलम्ब से लौटने का कारण पूछने पर उसने 'जेठ' शब्द का उच्चारण न करके[2] संकेत द्वारा बताया कि वे जेठ की मार्ग में खड़े थे, इसीलिए शीघ्र नहीं आ पाई। वस्तुत: पति का नाम न लेना लोकप्रथा का रूप धारण कर चुकी है और इससे सम्बन्धित अनेकानेक लोककथाएं आज भी

---

१ द्रष्टव्य--'स्त्री धर्म शिक्षक', ज्येष्ठ, सं०१६७१, पृ०७८-८० ।
२ ,, -- ,, वैशाख, सं०१६६६, पृ०१८-१६ ।

लोकजीवन में प्रचलित हैं[1]। इसी प्रकार श्रीमती सुशीला देवी द्वारा लिखित `गुण` की कथा` लोककथा ही है, जिसे सामान्य लोककथन की संवाद शैली में साहित्यिक रूप दिया गया है[2]।

लोककथा-कहानियों के मूलरूप के साथ-ही-साथ कितनी ही कहानियां यत्किंचित् परिवर्तन के साथ विवेच्ययुगीन कहानीकारों द्वारा साहित्यिक कोटि की कहानियों में प्रस्तुत की गई हैं। श्री मोहनलाल महतो `वियोगी` द्वारा लिखित `सत्यासत्य` शीर्षक कहानी इस सम्बन्ध में विशेष उल्लेखनीय है। प्रस्तुत कहानी स्पष्टरूप से दो खण्डों में विभक्त है-- प्रथम खण्ड में लोककहानी का अंश, [लेकर] सौत का सौतेले पुत्र के प्रति विद्वेषभाव का वर्णन किया गया है और दूसरे खण्ड में कहानीकार ने कल्पना तथा दैवी संयोग के आधार पर कहानी को साहित्यिक रूप प्रदान किया है[3]। इसी प्रकार श्रीमती शारदा कुमारी द्वारा लिखित `बिहुला` शीर्षक कहानी की रचना तो एक प्रचलित धार्मिक लोकगाथा के आधार पर ही की [गई] है। इस बात की पुष्टि डा० सत्यव्रत सिन्हा की रचना `भोजपुरी लोकगाथा` की निम्नलिखित पंक्तियों से होती है--`बिहुला की लोकगाथा समस्त भोजपुरी प्रदेश में प्रचलित है। विशेषरूप से उत्तरप्रदेश के पूर्वी जिलों एवं समस्त बिहार में तो अत्यन्त व्यापक है। वस्तुत: यह लोकगाथा केवल भोजपुरी प्रदेश में ही नहीं गाई जाती है अपितु इसका विस्तार बंगाल तक है। बस्ती, गोण्डा एवं गोरखपुर जिलों में यह लोकगाथा `बाला लखन्दर` अथवा `बारह लखन्दर` के नाम से अभिहित की जाती है। शेष भाग में इसे `बिहुला` कहते हैं[4]। उल्लेख्य है कि शारदा कुमारी ने इस लोकगाथा के प्रचलित रूप में शिष्ट साहित्यिक प्रवृत्ति के अनुकूल ही यत्किंचित् परिवर्तन भी किया है। संक्षेप में इसका कथानक इस प्रकार है--`बाल्यकाल में सीता, सावित्री, दमयंती आदि नारी-रत्नों की कथाएं सुनकर बिहुला ने अपने व्यक्तित्व को इन्हीं के अनुरूप

---

१ विस्तार के लिए देखिए, प्रस्तुत प्रबन्ध का चतुर्थ खण्ड, लोककथाएं।

२ द्रष्टव्य--`कन्या सर्वस्व`, आश्विन, सं०१९७१, पृ०८--११।

३ द्रष्टव्य--`रेखा` (संग्रह), `सत्यासत्य`, पृ०४८--५५।

४ द्रष्टव्य -- डा० सत्यव्रत सिन्हा : `भोजपुरी लोकगाथा`, प्रथम सं०, १९५७ई०।

बनाने का संकल्प किया था । फलत: विवाहोपरान्त सर्प-दंश से मृत पति को पुनर्जीवित करने के लिए उसने अनेक कष्ट सहे और अन्त में उसे अपने अभीष्ट की सिद्धि में सफलता मिली । इस अवधि में उसके प्रति जिन व्यक्तियों (कहार, मल्लाह,वैद्य आदि) ने कामुकतापूर्ण व्यवहार किया था,उन्हें ईश्वरीय दण्ड मिला ।[1] स्मरणीय है कि प्रस्तुत कहानी में जिन असम्भाव्य घटनाओं का सफल आयोजन कहानी-लेखिका ने किया है, उसके द्वारा कहानी में लोककहानियों की स्वाभाविकता भी अक्षुण्ण बनी रही है ।

प्रेमचन्दयुगीन सुप्रसिद्ध कहानीकार आचार्य चतुरसेन शास्त्री द्वारा रचित 'सोने की पत्नी' शीर्षक कहानी का आधार लोककहानी ही है । लेखकर्ता ने अपनी अपढ़ स्वर्गीया दादी से इसी प्रकार की एक कहानी अनेक बार ऊँघ-ऊँघ कर सुनी थी, जिसमें एक ब्राह्मण तपस्या द्वारा भगवान शंकर से यह वरदान प्राप्त करता है कि वह जिस वस्तु को छू ले, वह वस्तु सोने की हो जाय । फलत: जब वह भोज्य पदार्थों को छू लेता है तो वह भी सोने का बन जाता है, इतना ही नहीं,वरन् उसके छूने से उसकी धर्मपत्नी भी सोने की मूर्ति बन जाती है । तब वह भक्त व्याकुल होकर पुन: तपस्या करके भगवान शंकर से वरदान लौटा लेने का आग्रह करता है और उनकी कृपा से इस संकट से उसका छुटकारा हो जाता है । आचार्य जी ने उपर्युक्त कहानी की कल्पना के आधार पर परिवर्तित रूप में लेकर अन्त में स्वप्न के माध्यम से कहानी को काल्पनिक रूप प्रदान किया है और इस प्रकार लोककहानी का ही परिष्कार एवं संस्कार द्वारा साहित्यिक अभिव्यक्ति की है ।[2] द्विवेदीयुगीन कहानीकारों की यह विशेष प्रवृत्ति रही है कि लोककहानियों की तरह अलौकिक आश्चर्यजनक एवं असम्भावित घटनाओं का वर्णन करते हुए कहानी का निर्माण करते हैं और अन्त में स्वप्न का आश्रय लेकर उसे काल्पनिक सिद्ध करते हैं । स्वयं प्रेमचन्द भी इस प्रवृत्ति से अछूते नहीं रहे, 'ज्वालामुखी'[3] कहानी में इसी तथ्य की पुष्टि होती है ।

१ द्रष्टव्य-- 'कन्या सर्वस्व', भाद्रपद, सं० १९७१, पृ० २६०-७१ ।
२ द्रष्टव्य-- 'सुखदा में काँटे कहूँ (संग्रह)', 'सोने की पत्नी', पृ० १६५-८५ ।
३ प्रेमचन्द : 'मानसरोवर', भाग ८, : 'ज्वालामुखी', पृ० ८८-१०१ ।

प्रेमचन्दयुगीन कहानीकारों ने कुछ कहानियों की रचना लोकगीतों की पंक्तिविशेष को आधार मानकर की है। यद्यपि ऐसी कहानियों की संख्या कम है, तथापि हिन्दी कहानी-साहित्य में ये अपना विशिष्ट स्थान[१] रखती हैं। इस दृष्टि से भगवतीप्रसाद बाजपेयी द्वारा लिखित 'निंदिया लागी',[२] विश्वम्भरनाथ जिज्जा की 'परदेशी'[३] तथा आचार्य चतुरसेन शास्त्री द्वारा रचित 'दुखवा मैं कासे कहूं मोरी सजनी' शीर्षक कहानियां विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं। आचार्य चतुरसेन शास्त्री की कहानी का मूलभूत आधार एवं स्रोत लोककथक्कड़ ही हैं। प्रमाणस्वरूप ये पंक्तियां द्रष्टव्य हैं--'परन्तु कथा का मूलाधार एक मशहूर किस्सागो के एक किस्से पर आधारित था। उन दिनों दिल्ली में शाही जमाने के कुछ किस्सागो जिन्दा थे, जो शाही परम्परा से रईसों को किस्से सुनाने का खानदानी पेशा करते आये थे। एक किस्सा सुनाने की उनकी फीस दो रुपये से लेकर पचास रुपये तक होती थी। आचार्य को इन किस्सों से बहुत लगाव था। और कहना चाहिए, उनकी कहानी लिखने की ओर प्रवृत्ति किसी साहित्यिक प्रेरणा से नहीं हुई, इन किस्सागो लोगों की ही वाणी से हुई। इस प्रकार यह कहानी यदि चोरी का ही माल है तो किसी साहित्य की चोरी का नहीं, एक किस्सागो के मुंह से चुराया हुआ है। इस कहानी के इतिहास में एक और बात रह जाती है कि किस्सागो को इसकी फीस दो रुपये उन्हें देनी पड़ी थी। और जब यह कहानी प्रथम बार 'सुधा' में छपी तो उन्हें मुआवजा पांच रुपये पुरस्कार मिले थे।'[४]

पं० ईश्वरीप्रसाद शर्मा ने तो लोकजीवन में प्रचलित प्रसिद्ध उक्ति 'राजदुलारा लाख्यां मार न सकिहैं कोय' के आधार पर अनेकानेक आश्चर्यजनक घटनाओं का गुम्फन करते हुए 'राजदुलारा लाख्यां मार न सकिहैं कोय' शीर्षक कहानी ही लिख डाली है।[५] आचार्य शास्त्री की 'सिंहगढ़ विजय' शीर्षक कहानी

---

१ द्रष्टव्य--पं०भगवतीप्रसाद बाजपेयी : 'हिन्दी कहानी संग्रह', पृ०५०-६३ ।
२ द्रष्टव्य --'इन्दु', कला ६, खण्ड २, किरण ४,५, अक्टूबर, नवम्बर, १९१५ई०।
३ द्रष्टव्य --'दुखवा मैं कासे कहूं' (संग्रह), पृ०८-१५।
४ ,, -- ,, (कहानी परिचय), पृ०७-८।
५ द्रष्टव्य--'गल्पमाला' (संग्रह), पृ०१०४-१०५ ।

भी ऐसी ही कहानी है[१]। कहानीकार पं० युगलकिशोर त्रिपाठी द्वारा लिखित 'तीन भिखारी' शीर्षक कहानी की रचना लोकविश्वास के आधार पर ही हुई है। लोकजीवन में यह विश्वास प्रचलित है कि सर्प की मणि जिस व्यक्ति को प्राप्त हो जाती है, वह धनधान्य से परिपूर्ण हो जाता है, किन्तु मणि ग्रहण करते ही सर्प व्याकुल होकर मणि की खोज में दौड़ता है। मणि ग्रहण करने वाला व्यक्ति यदि शीघ्रतापूर्वक किसी सुरक्षित स्थान में शरण नहीं लेता, तो उसे प्राणों से हाथ धोना पड़ता है और यदि मणि ग्रहण करता सुरक्षापूर्वक बच निकलता है तो स्वयं सर्प की मृत्यु हो जाती है। प्रस्तुत कहानी में भी इसी प्रकार तीन भिखारी, जो वस्तुतः पिता और पुत्र ही हैं, भिक्षा मांगते हुए एक अंधकार से पूर्ण पर्वत-कन्दरा में पहुंचकर विश्राम करते हैं, जहां एक अमिट प्रकाश-पिण्ड दिखायी देता है। भिखारी बालक ने कौतुक से दौड़कर उसे उठा लेता है और उंगलियों पर उछालने लगता है, जिसे देखकर बुड्ढा बोला, 'यह तो सांप का मन है, भैया! अरे अब तो हम राजा हो गये। अरे कलिया, रमुआ ने सांप का मन पा लिया। अरे, राजा हो गये अब हम। चलो यहां से।' सबके जी खिल गयी। चलते समय बुड्ढे को एक बात याद आयी -- 'अरे, सांप तो नहीं देखा, रमुआ? चलो तुम दोनों, जल्दी से निकल चलें यहां से। मणि के लिए आपस में खींच-तान होने लगी। इस बात पर कि मणि को कौन अपने पास रखेगा, वाद-विवाद उत्पन्न हो गया, लेकिन तीनों शीघ्रतापूर्वक चलते रहे। इसी समय एकाएक अंधा भिखारी चीख कर गिर पड़ा। बुड्ढे ने उसके गिरते ही उसकी कछौटे में हाथ डाला और वह मणि निकाल ली। क्षण भर पीछे बुड्ढा भी उसी प्रकार चीख मार कर गिर पड़ा। मणि का स्वामी आ गया था, यह सब उसी की लीला थी, किन्तु तीसरा मोह-माया के विकारों से परे, जिस मार्ग से सर्प लौटा था, उसे पुण्य प्रकाशित पथ समझकर उसी ओर गुरु की खोज में चल पड़ा।'[२]

---

१ द्रष्टव्य -- 'कहानी खत्म हो गई' (संग्रह), पृ०१९८-२११ ।

२ द्रष्टव्य -- 'गल्पमाला' (संग्रह), पृ०१०४,१०५ ।

इस प्रकार हिन्दी कहानी के विकास में लोककथा-कहानियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है । इसके साथ-ही-साथ लोककहानियों की अनेक विशेषताएं अभिजात्य रूपावरण में छिपकर इस प्रकार घुल-मिल गई हैं, कि आज का शास्त्रीय परिपाटी का आलोचक न तो इस ~~प्रकार~~ प्रभाव को स्वीकार कर पाता है और न देख ही पाता है, बल्कि यह कहना कि देख-सुनकर भी उसके महत्व को स्वीकार करने में आना-कानी करता है, अधिक उचित होगा । आरंभिक काल की कहानियों का तो प्रेरणा-स्रोत ही लोककहानियां एवं लोककथवकड़ रहे हैं, इस बात को स्वयं प्रेमचन्द, श्री सुदर्शन तथा आचार्य चतुरसेन शास्त्री जैसे सुप्रसिद्ध कहानीकारों ने स्वीकार किया है । इतना ही नहीं, बल्कि लोककथा-कहानियों में बारम्बार प्रयुक्त होने वाली समानधर्मा घटनाएं, जातीय विचार एवं विश्वास अभिजात्य कोटि के कथा-साहित्य तक यात्रा करते हुए कथानक रूढ़ि (फिक्शन मोटिफ) बन गये हैं, जिनका विवेचन अगले अध्याय में किया जायगा ।

-०-

अध्याय तीन

--0--

कथानक रूढ़ियाँ

अध्याय तीन

-0-

कथानक रूढ़ियां

(सामान्य विवेचन)

(क) 'रूढ़ि' शब्द का अर्थ एवं परिभाषा

विभिन्न कथा-कहानियों में बारम्बार व्यवहृत होने वाली एक जैसी घटनाओं, विचारों अथवा विश्वासों को 'कथानक रूढ़ि' कहा जा सकता है । ये घटनाएं विचार अथवा विश्वास सम्बद्ध कथानक के निर्माण में महत्व-पूर्ण योग देते रहे हैं और कथा-कहानियों में उनके उपयोग की एक दीर्घकालीन परम्परा भी निहित रहती है । हिन्दी में 'कथानक रूढ़ि' शब्द अंग्रेजी के 'फिक्शन मोटिफ' के पर्याय रूप में स्वीकार किया गया है । हिन्दी साहित्य में सर्वप्रथम आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अपने 'हिन्दी साहित्य का आदिकाल' नामक ग्रन्थ में भारतीय साहित्य के कथानकों में प्रयुक्त ऐतिहासिक घटनाओं के सम्भावना पक्ष पर विचार करते हुए, इस शब्द पर भी अपने विचार प्रकट करते हुए कहा है-- 'हमारे देश के साहित्य में कथानक को गति और घुमाव देने के लिए कुछ ऐसे अभिप्राय बहुत दीर्घकाल से व्यवहृत होते आए हैं,जो बहुत थोड़ी दूर तक यथार्थ होते हैं और जो आगे चलकर कथानक रूढ़ि में बदल गये हैं ।'[१] ज्ञातव्य है कि इसी प्रसंग में आचार्य द्विवेदी ने सर्वप्रथम शोध-प्रेमियों का ध्यान भारतीय कथानकों की कतिपय अत्यधिक प्रचलित रूढ़ियों की ओर आकर्षित किया और कुछ रूढ़ियों पर अपना विचार भी अभिव्यक्त किया है ।

---

१ आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी : 'हिन्दी साहित्य का आदिकाल',पृ०७४ ।

प्रस्तुत प्रसंग में मात्र 'रूढ़ि' शब्द पर भी विचार कर लेना आवश्यक[1] प्रतीत होता है, क्योंकि[2] 'रूढ़ि' शब्द के स्थान[3] पर विभिन्न विद्वानों ने प्ररूढ़ि, अभिप्राय, कथातन्तु, मानक प्रणाली, कथासूत्र, कथातन्तु इत्यादि शब्दों का प्रयोग किया है । वस्तुतः यदि गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाय तो स्पष्टरूप से कहा जा सकता है कि 'रूढ़ि' शब्द अन्य पर्यायवाची शब्दों की अपेक्षा अधिक व्यापक तथा 'मौटिफ' के मूलभूत भाव को स्पष्ट करने में अधिक सार्थक एवं समर्थ है । इसी व्यापकता एवं भाव स्पष्टता को ध्यान में रखते हुए सम्भवतः आचार्य हजारीप्रसाद[4] द्विवेदी ने 'अभिप्राय' को आगे चलकर 'रूढ़ि' में परिणित मानकर, पुनः 'रूढ़ि' शब्द के प्रयोग पर ही अपना मत अभिव्यक्त किया है । न केवल साहित्य के क्षेत्र में वरन् कला के विविध रूपों में भी विविध प्रकार की रूढ़ियों का प्रयोग होता रहा है । हिन्दी साहित्य कोश के अनुसार भी "सामान्यतया रूढ़ि और अभिप्राय का प्रयोग एक-दूसरे के पर्याय के रूप में किया जाता है । अभिप्राय-- जिसे अंग्रेजी में "मौटिफ" कहते हैं, उस शब्द अथवा एक सांचे में ढले हुए उस विचार को कहते हैं, जो समान परिस्थितियों में अथवा समान मनःस्थिति और प्रभाव उत्पन्न करने के लिए किसी एक कृति अथवा एक ही जाति की विभिन्न कृतियों में बार-बार आता है । विभिन्न कालरूपों के अपने अलग-अलग अभिप्राय होते हैं । चित्रकला क्षेत्र में अभिप्राय का अर्थ होता है, 'कोई पशु या अपद, सजीव या निर्जीव, प्राकृतिक अथवा काल्पनिक वस्तु जिसकी अलंकृत एवं अतिरंजित आकृति मुख्यतः सजावट के लिए किसी कलाकृति में बनाई जाय ।' प्रत्येक देश के साहित्य में अनुकरण तथा अत्यधिक प्रयोग के कारण कुछ साहित्य सम्बन्धी रूढ़ियां बन जाती हैं और यांत्रिक ढंग से उनका प्रयोग साहित्य में होने लगता है, इन सभी रूढ़ियों को साहित्यिक

---

१ डा० कन्हैयालाल सहल : 'लोककथाओं की कुछ प्ररूढ़ियां' (उपक्रम), पृ०६-१०
२ डा० सत्येन्द्र : 'लोक साहित्य विज्ञान', पृ०२७१
३ डा० इन्दिरा जोशी : 'हिन्दी उपन्यास में लोकतत्व', पृ० ७१२
४ आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी : 'हिन्दी साहित्य का आदिकाल', पृ०७४

मौटिफ के लिए किसी अन्य उपयुक्त शब्द के अभाव में हम यहीं शब्द 'कथानक रूढ़ि' का प्रयोग करेंगे ।

अभिप्राय कहते हैं[१]।" इस प्रकार मूर्तिकला, चित्रकला और संगीत कलाओं की भी अपनी विभिन्न रूढ़ियां होती हैं, जिनका उपयोग सदैव इन कलाओं में होता रहता है। लोक कथा-कहानियों में भी रेखांकन और रूप चित्रण की अनेक प्रचलित पद्धतियां होती हैं, जिनकी पुनरावृत्ति द्वारा इन कथाओं में नवीन शैलियों का प्रादुर्भाव एवं विकास होता रहता है। इन पद्धतियों को 'कथा रूढ़ि' की संज्ञा दी जाती है। इस प्रकार लोकसंगीत और लोकगीतों की भी अपनी स्वतन्त्र रूढ़ियां अथवा परम्परागत प्राप्त प्रणाली विशेष होती है। रूढ़ियों का सर्वाधिक प्रचलन कथा कहानियों के क्षेत्र में हुआ है और इस रूप में इन्होंने विद्वान् मनीषियों का ध्यान भी अत्यधिक रूप में आकर्षित किया है[२]। इस सम्बन्ध में पाश्चात्य जगत् के आधुनिक समीक्षक टी० शिप्ले की परिभाषा भी बड़े महत्व की है। उन्होंने 'अभिप्राय' का अर्थ 'किसी कृति की कोई रूपगत विशेषता' के रूप में स्वीकार करते हुए 'रूढ़ि' अथवा 'अभिप्राय' का तात्पर्य 'उस शब्द अथवा उस विचार से है, जो एक ही सांचे में ढले जान पड़ते हैं और किसी एक कृति अथवा एक ही कवि की भिन्न कृतियों में एक जैसी परिस्थितियां अथवा एक जैसी मनःस्थिति और प्रभाव उत्पन्न करने के लिए एक से अधिक बार प्रयुक्त होते हैं[३]।" निश्चय ही शिप्ले की परिभाषा व्यापक है और कहानी अथवा साहित्य की विविध विधाओं में विभिन्न रूढ़िगत विशेषताओं की ओर इंगित करने में सहायक सिद्ध हो सकती है। इस परिभाषा में कही गई एक बात-- एक ही सांचे में ढले हुए किसी ऐसे विचार, शब्द अथवा घटना की पुनरावृत्ति जो विभिन्न रचनाओं को एकरूपता प्रदान करती है-- सभी क्षेत्रों में समानरूप से लागू होती है।

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर, मोटे तौर पर विभिन्न प्रकार की रूढ़ियों को दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है-- कलात्मक एवं कवि कल्पित या साहित्यिक। मूर्ति, चित्र एवं संगीत कलाओं इत्यादि से

---

१ सम्पा० धीरेन्द्र वर्मा । 'हिन्दी साहित्य कोश', भाग १, पृ०२०५

२ 'स्टैण्डर्ड डिक्शनरी आफ फोकलोर माइथोलोजी एण्ड लीजेण्ड', भाग२, पृ०७५२ ।

३ टी० शिप्ले । 'डिक्शनरी आफ वर्ल्ड लिटरेरी टर्म्स', पृ० २७४ ।

कलाओं से सम्बद्ध रुढ़ियां कलात्मक होंगी और साहित्यिक रुढ़ियां कवि कल्पित अथवा काव्य से सम्बद्ध होंगी । इस दृष्टि से देववाणी संस्कृत के कवियों द्वारा गृहीत, जिन रुढ़ियों को "कवि-समय" अथवा "कवि प्रसिद्धियां" कहा गया है, वे वास्तव में भारतीय साहित्य की काव्यगत रुढ़ियां ही हैं । "कवि-समय" का शाब्दिक अर्थ कवियों का आचार या सिद्धान्त है । काव्यशास्त्रीय परिभाषा के अन्तर्गत "कवि-समय" का तात्पर्य काव्य में प्रचलित उन विषयों से है, जो अशास्त्रीय एवं अलौकिक होते हैं और जिनका वर्णन कविगण परम्परा के आधार पर ही करते हैं[1] । ये विषय जहां एक और देशकाल आदि के विरुद्ध होते हैं, वहां दूसरी और कवियों की परम्परा में ही प्रसिद्धि प्राप्त करते हैं । उदाहरण के लिए — चक्रवाक और चक्रवाकी दिन में नदी या जलाशय के ठीक किनारे रहते हैं, परन्तु रात्रि में जलाशय का अन्तर देकर एक इस और रहता है, तो दूसरा उस और । सारी रात्रि वियोग में कटती है । इसी प्रकार चकोर चन्द्र किरण के आधार पर ही जीवित रहता है, चातक केवल बादलों का जल ग्रहण करता है, हंस नीर-क्षीर विवेकी होता है, अशोक वृक्ष सुन्दरियों के पदाघात से पुष्पित हो जाता है[2] । आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इस प्रकार की प्रमुख काव्यरुढ़ियों पर विस्तारपूर्वक विचार किया है[3] ।

वस्तुतः जिन रुढ़ियों को साहित्यिक अथवा कविकल्पित समझा जाता है वे भी किसी-न-किसी प्रकार परम्परागत लोककथा-कहानियों से सम्बद्ध होती हैं । भारतीय कथाकारों ने नायक के मन में नायिका के प्रति अथवा नायिका के मन में नायक के प्रति प्रेमोत्पत्ति कराने के लिए प्रायः तीन उपायों का आश्रय ग्रहण किया है— रुप-गुण-श्रवण, स्वप्नदर्शन या चित्रदर्शन । इसी प्रकार "प्रथम मिलन में ही प्रेमोत्पत्ति (लव ऐट फर्स्ट साइट).... भाग्य में होने वाली उलट-फेर, समुद्र यात्रा और नौका दुर्घटना, नायक-नायिकाओं का

---

1 "अशास्त्रीयमलौकिकं च परम्परायातं यमर्थमुपनिबध्नन्ति कवयः स कविसमयः ।"
राजशेखर : "काव्यमीमांसा", अध्याय १४, पृ०१६० ।
2 ए०बी० कीथ : "ए हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर", पृ०३४३ ।
3 द्रष्टव्य— आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी : "हिन्दी साहित्य की भूमिका" - कवि प्रसिद्धियां", पृ०२०१-२८ ।

आश्चर्यजनक सौन्दर्य एवं प्रेम तथा प्रकृति के विस्तृत वर्णन[1] अन्य ऐसी कथानक रूढ़ियाँ हैं, जिन्हें कविकल्पित समझा जाता है, किन्तु लोककथाओं की तुलनात्मक पृष्ठभूमि में इन सब का अध्ययन करते हुए ऐसा ज्ञात होता है कि इनकी निर्मिति में लोक-प्रचलित कथा-कहानियों का आश्रय ग्रहण किया गया होगा । यह हो सकता है कि इनके निर्माण में कवि कल्पना का ही अधिक योग रहा हो, किन्तु इनकी अन्तरात्मा का मूल स्पन्दन लोककथा-साहित्य से अलग नहीं कहा जा सकता । मारिस ब्लूम फील्ड ने भारतीय आख्यानकों में प्रयोग की जाने वाली कवि कल्पित कथानक-रूढ़ियों को भी निश्चितरूप से आदिम लोकवार्तात्मक विचारों, भावनाओं (प्रिमिटिव फोकलोर आइडियाज) से सम्बद्ध माना है[2] । जो भी हो, किन्तु इतना तो कहा ही जा सकता है कि जब एक जैसी घटनाएं विचार-विश्वास कहानियों में बारम्बार प्रयुक्त होती हैं, तब वे कथानक रूढ़ि का रूप ग्रहण कर लेती हैं । इतना ही नहीं, बल्कि कभी-कभी तो स्वतः एक छोटी कहानी भी जो महत्वपूर्ण अथवा मनोरंजक हो तथा श्रोताओं के लिए जिसमें प्रचुर आकर्षण विद्यमान हो, मूल अभिप्राय का काम दे सकती है[3] ।"

<u>रूढ़ि के उपकरण : परम्परा एवं असाधारणत्व</u>

यह सत्य है कि कोई छोटी-सी कहानी घटना अथवा विचार-विश्वास आदि अपनी लोकप्रियता के कारण अनेक बार कथाओं में व्यवहृत होकर "रूढ़ि" बन जाती है, परन्तु इस बात का भी स्मरण रखना चाहिए कि परम्परा का वास्तविक अंग बनने के लिए यह तत्व ऐसा प्रसिद्ध होना चाहिए कि उसे सर्वसाधारण जनता स्मरण रख सके । अतएव यह तत्व साधारण न होकर

---

१ ए०बी० कीथ : " ए हिस्ट्री आफ संस्कृत लिट्रेचर", पृ० ३५५ ।

२ मारिस ब्लूम फील्ड : "द औशन आफ स्टोरी", वाल्यूम ७ फोरवर्ड, पृ० २२, २३।

३ डा० कन्हैयालाल सहल : "लोककथाओं की कुछ प्रवृत्तियाँ", पृ० १८ ।

असाधारण होना चाहिए । एस० थामसन के मतानुसार एक साधारण माता अपने सहज रूप में किसी कथा-कहानी में प्रयुक्त होकर अभिप्राय नहीं बन सकती, परन्तु माँ होते हुए भी यदि वह निर्दयी है, क्रूर है, विमाता है, और पुत्र के साथ कोई ऐसा आचरण करती है, जो साधारण माता के लिए वांछनीय नहीं है, तो मात्र हृदय का अपवाद होने के कारण, उसके चरित्र एवं कार्य व्यापारों को कथानक रूढ़ि की मान्यता प्राप्त होजायगी । इसी प्रकार यह कहना कि राम टोपी लगाकर बाजार चला गया, एक साधारण घटना है । अनेक कहानियों में बार-बार व्यवहृत होने पर भी यह घटना किसी रूढ़ि की संज्ञा नहीं प्राप्त कर सकती, इसके विपरीत यदि एक से अधिक कहानियों में इस प्रकार के उल्लेख उपलब्ध हों कि किसी व्यक्ति ने अदृश्य बना देने वाली जादू की टोपी लगायी, फिर वह किसी उड़ने वाली कालीन पर बैठकर, सूर्य के पूर्व और चन्द्रमा के पश्चिम में स्थित किसी आश्चर्य लोक को चला गया, तो इस प्रकार के उल्लेखों को कथानक रूढ़ि कहा जायगा । अदृश्य बनाने वाली टोपी, उड़ने वाली कालीन, सूर्य और चन्द्र के मध्य स्थित आश्चर्य लोक 'साधारण' की अपेक्षा असाधारण और अलौकिक हैं तथा विश्व भर की लोक कहानियों में इनका अत्यधिक प्रयोग किया गया है[1] । यद्यपि इन वस्तुओं पर विश्वास नहीं किया जा सकता, तथापि यह लोकमानस की कल्पना से प्रसूत लोककथा-कहानियों की निधी वस्तुएं हैं । लोक-प्रचलित कथा-कहानियों में इस प्रकार की अनेक आश्चर्योत्पादक अविश्वसनीय वस्तुओं का प्रयोग प्राय: होता रहा है । भूत-प्रेत, देवी-देवता, राक्षस-मनुष्य की भांति बात करने वाले पशु-पक्षी जैसे अनेक विषय और जादू-टोना, टोटका, तंत्र-मंत्र, गण्डा-तावीज आदि विषयों से सम्बद्ध विभिन्न विश्वास लोककहानी के निर्माण में बहुमूल्य योग देते रहे हैं । यही कारण है कि इन समस्त विश्वासों से सम्बद्ध विविध घटनाएं कथानक रूढ़ियाँ भी बनती रही हैं ।

---

१ सं० मेरिया लीच : 'स्टैण्डर्ड डिक्शनरी आफ फोकलोर माइथालाजी एण्ड लीजेण्ड', भाग २, पृ०७७५ ।

अध्ययन का आधार : कथानक रूढ़ियां

ध्यातव्य है कि कथानक रूढ़ियों के मूल में लोकमानस की प्रधान भूमिका निहित रहती है, इसलिए विश्व की लोककथा-कहानियों में इनका समानरूप से उपयोग होता रहा है और विश्व की लोक-कहानियों का रूप बहुत कुछ एक समान ही रहा है । यही वह साम्य तत्व है,जिसको देखकर पाश्चात्य लोकवार्ताविदों का ध्यान तुलनात्मक अध्ययन की ओर आकर्षित हुआ और कथा-मानक-रूप(टैल-टाइप) के निर्माण के कार्य का श्रीगणेश हुआ । यही नहीं,बल्कि लोक-कहानियों का अध्ययन भी इसी आधार पर किया जाने लगा । जैसा कि `हिन्दी साहित्य कोश` में अभिप्रायों की चर्चा करते हुए कहा गया है --`वस्तुत: जब तक कहानियों के अध्ययन का आधार कहानी रूप टैल टाइप रहा,यह विवाद चलता रहा । अब लोक कहानियों का आधार रूढ़ तंतु अथवा अभिप्राय (मोटिफ) हो गया है । विश्व की अधिकांश कहानियों में एक-से रूढ़ तन्तु मिलते हैं । इन तन्तुओं का अध्ययन करने से विदित होता है कि वे सभी क्षेत्रों में स्वतन्त्र रूपसे निर्मित हो सकते हैं ।`[१] उपर्युक्त विवेचन से इतना तो स्पष्ट ही हो जाता है कि जहां पहले कहानियों के अध्ययन का आधार कथा रूप (टैल टाइप) रहा था, वहां अब लोक कहानियों के अध्ययन का आधार कथानक रूढ़ि हो गया है । अस्तु प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी कहानी में लोकतत्व का अन्वेषण करते समय इस दृष्टि से भी अध्ययन आवश्यक ही नहीं, महत्वपूर्ण भी है ।

इस प्रसंग में कथा मानक रूप और कथानक रूढ़ियों का अन्तर भी समझ लेना समीचीन होगा । वास्तव में मौखिक परम्परा में अपनी स्वतन्त्र सत्ता बनाये रखने में समर्थ कोई कहानी, जो स्वतन्त्र कहानी के रूप में कही जाती है, टाइप समझी जा सकती है । दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि अपनी कुछ विशिष्टताओं के कारण कोई कहानी का बनी दूसरी कहानियों

१ डॉ० धीरेन्द्र वर्मा : `हिन्दी साहित्य कोश`,भाग१,पृ०२०५ ।

से पृथक होता है, तो उस वर्ग को 'टाइप' कहते हैं । इस प्रकार हम कह सकते हैं कि सामान्य-गुण-समन्वित मौखिक परम्परा में अपनी स्वतन्त्र सत्ता बनाए रखने में स्वतन्त्र कोई कथा-कहानी जो स्वतन्त्र रूप से कही जाती है और दूसरी कथा-कहानियों से पृथक होती है, तो उन सभी कहानियों को एक वर्ग-विशेष में एकत्रित किया जाता है । उस वर्ग-विशेष को 'टेल टाइप' कहा जा सकता है ।[१] डा० सत्येन्द्र ने टेल टाइप के लिए कथामानक रूप या अकार कथा कहा है । कभी-कभी कथामानक रूप और कथानक रूढ़ि को भ्रमवश एक ही मान लिया जाता है । वस्तुत: इन दोनों में कुछ अन्तर भी है । कथानक रूढ़ि का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है, क्योंकि अनेक देशों की लोक कहानियों में एक ही प्रकार की रूढ़ियाँ प्राप्त हो सकती हैं, परन्तु कथा मानक का क्षेत्र सीमित होने के कारण वह किसी देश-विशेष की भौगोलिक सीमा तक ही सीमित है । वास्तव में किसी लोक कथा को जानने, उसका नामकरण करने, उसे संकेत में सूचित करने तथा योगायोग को ठीक-ठीक समीकृत करने के लिए ही कथामानक रूप निर्धारित कई किए जाते हैं ।

कथानक रूढ़ि : अध्ययन का इतिहास

लोकतात्त्विक अध्ययन तथा अनुसन्धान के इस क्षेत्र में भी सर्वप्रथम पाश्चात्य विद्वानों का ध्यान आकर्षित हुआ और अनेक लोकवार्ताविद् इस कार्य में प्रवृत्त हुए । इनमें से स्टिथ थाम्पसन महोदय का कार्य विशेष-रूप से सराहनीय है । उन्होंने सम्पूर्ण लोककथात्मक साहित्य सामग्री के आधार पर कथानक रूढ़ियों की एक महानिर्देशिका (मोटिफ इण्डेक्स आफ फोक लिटरेचर) पांच विशालकाय ग्रन्थों के रूप में प्रकाशित किया है, जिसका विवरण अति संक्षिप्त रूप इसी अध्याय में आगे दिया जा रहा है । थाम्पसन

---

१ डा० सत्येन्द्र : 'लोकसाहित्य विज्ञान', पृ० २१२ ।

का वर्गीकरण यद्यपि अत्यधिक उदार मानकों पर आधृत है, जैसा कि उन्होंने स्वयं स्वीकार करते हुए लिखा है--`कोई तत्व विशेष `मोटिफ` है अथवा नहीं, इसके निर्धारण में तथा किसे ग्रहण किया जाय अथवा किसे छोड़ा जाय--इस विषय में मैंने किन्हीं कठोर एवं अपरिवर्तनीय सिद्धान्तों का अनुकरण नहीं किया है । ऐसा कोई भी तत्व जिससे कि लोकवार्ता तत्व को किसी भी परम्परागत प्राप्त वर्णनात्मक विधा के स्थापित होने में सहायता मिलती हो, मैंने अपनी सूची में समन्वित कर लिया है । जब कभी मैंने `मोटिफ`का व्यवहार किया है, तब सदैव ही मैंने उसे बहुत उदार रूप में लिया है । तदनुसार मैंने मोटिफ में उस प्रत्येक तत्व को समन्वित माना है, जिसमें वर्णनात्मक लोकवार्ता का कोई भी अंश विद्यमान रहता हो[१] ।`अतएव भारतीय कहानियों में परिव्याप्त कथानक रूढ़ियों का साम्य भी सहज एवं स्वाभाविक है । यह होते हुए भी भारतीय कथात्मक साहित्य में अत्यधिक प्रचलित कथानक रूढ़ियों पर भी स्वतन्त्र रूप से विचार कर लेना आवश्यक प्रतीत होता है,क्योंकि कथानक रूढ़ियों द्वारा संस्कृति का परम्परागत स्वरूप सुरक्षित मिलता है । प्रादेशिक कथाओं की ही भाँति देश-विदेश की जन्मगत एकता इन्हीं में परिलक्षित होती है । एक से कथानक रूढ़ि रहने पर भी लोककथाओं में विभिन्नता क्यों दिखलाई देती है ? इस प्रश्न के उत्तर में यही कहा जा सकता है कि इस रूप तत्व के मूल में दो प्रधान कारण निहित जान पड़ते हैं — एक तो परिवर्तनशील शैली और दूसरी सांस्कृतिक विभिन्नता । यही कारण है कि भारतीय कथानक रूढ़ियों की अपनी निजी विशेषताएं भी हैं । अतः थाम्पसन जैसे पाश्चात्य विद्वानों द्वारा वर्गीकृत कथानक रूढ़ियों के वर्गीकृत आधार पर ही सम्यक् अध्ययन उचित नहीं कहा जा सकता, क्योंकि किसी भी देश की राष्ट्रीय, समाजगत, सांस्कृतिक चेतना, भौगोलिक इकाई तथा कालानुक्रम में उसके विकास की सरणियां अन्य देशों से भिन्न हुआ करती हैं ।

---

१ द्रष्टव्य--`मोटिफ इण्डेक्स आफ फोक लिटरेचर`, इण्ट्रोडक्टरी स्कोप आफ क्लैसिफिकेशन. ।

यह तथ्य भारतवर्ष के संस्कारों तथा जन प्रचलित लोकतत्वों के प्रति अधिक उद्घाटित हुआ है, क्योंकि यह देश चीन तथा मिस्र की भांति अपने अन्तराल में प्राचीन सभ्यताओं के इतिहास को समेटे हुए है और इसीलिए लोकतत्व का इतिहास भी इसकी संस्कृति का एक महत्वपूर्ण एवं निजी इतिहास है, जिसके मर्म को इसी देश के जन जीवन की विविध आवृत्तियों से सुपरिचित ही हृदयंगम कर सकता है, अर्थात् यहां के लोकतत्व के मर्म को समझने के लिए इसी देश की पृष्ठभूमि का अध्ययन इसका एक अनिवार्य अंग है । इसीलिए इस दृष्टि से थाम्पसन महोदय का कार्य पाश्चात्य पृष्ठभूमि पर आधारित अपनी विस्तार-योजना में अवश्य ही अपना निजी महत्व रखता है, किन्तु जैसा कि ऊपर स्पष्ट किया गया, थाम्पसन महोदय के इस महत्वपूर्ण विस्तृत एवं पाश्चात्य लोकतत्वों से आधृत कार्य तथा उसके वर्गीकरण में फिर भी बहुत कुछ ऐसा छूट जाता है, जो भारतीय कथाओं की लोकतत्व की अपनी निजी सम्पत्ति है और जिसके गुण, स्वरूप, मर्यादा तथा मर्म की अनेक रहस्यपूर्ण बातें थाम्पसन महोदय के इस कार्य में समाहित नहीं हो सकी और न कदाचित् हो सकती थीं । अतएव भारतीय कथाओं के लोकतत्व का सांगोपांग अध्ययन एक स्वतन्त्र अपेक्षा रखता है । इस आधार पर ध्यान देने की बात यह है कि निजी भारतीय विशिष्ट गुणों से लोकतत्व के अध्ययन के विविध पक्ष इस दिशा में कार्य करने वाले अनुसंधानकर्ताओं के लिए अपने अनन्त विस्तार से उन्मुक्त ही रहेंगे । यहां का जीवन, खानपान, पारस्परिक व्यवहार विनिमय, जीवन का असम्पृक्त भाव, भोग और वैराग्य के विविध जीवन पक्ष, जीवन की सरलता में भी मानवतावादी तथा सत्यपरक गम्भीर दृष्टि-- ये सब बातें भारतीय लोकतत्व की पृष्ठभूमि में गम्भीर अध्ययन का विषय हैं । जो कालान्तर में अनुसन्धान की गम्भीर अपेक्षा रखती हैं ।

भारतीय कथानक रूढ़ियों की निजी विशेषताओं की महत्ता को स्वीकार करते हुए आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी जैसे गम्भीर

चिन्तकों ने भी शोधकर्त्ताओं का ध्यान आकृष्ट किया है और कहा है --
'कथानक रूढ़ियों का अध्ययन केवल साहित्यिक मनोविनोद नहीं है । अब यह मानव जाति को सहज रूप में समझने के उपकरणों में गिना जाने लगा है । यद्यपि मानव जीवन अपनी आदिम अवस्था को पार कर आया है, तथापि उसके वर्तमान रूप में भी, आदिम अवस्था के पूर्व का महत्वपूर्ण योग है ।
.... आज के साहित्यालोचन-शास्त्र को भी आदिम मनुष्य के सौन्दर्य-बोध एवं अभिव्यक्तियों के माध्यम द्वारा समझने का प्रयत्न होने लगा है । हमारी कथाओं का बीज भी आदिम जातियों में प्रचलित कथानक रूढ़ियों में खोजा जा सकता है ।'[2] आचार्य द्विवेदी द्वारा इंगित विषय की ओर शोधकर्त्ताओं एवं आलोचकों का ध्यान अभी तक क्यों नहीं गया ? यह एक विचारणीय प्रश्न है । इस प्रश्न के उत्तर में यही कहा जा सकता है कि आधुनिक हिन्दी साहित्य की अन्य गद्यात्मक विधाओं-निबन्ध, उपन्यास, एकांकी इत्यादि-- की भांति कहानी को भी साहित्यिक गरिमा से मण्डित करने के लोभ को संवरण न कर सकने तथा पाश्चात्य जगत के प्रभाव से अत्यधिक प्रभावित, पाश्चात्य चश्मे से देखने की प्रवृत्ति ही मूलभूत कारण जान पड़ती है । जब कहानी को साहित्यिक विधा ही मान लिया गया, तब लोकवार्तात्मक दृष्टि से कथा मानक रूप और कथानक रूढ़ियों के विश्लेषण हेतु आलोचकों के ध्यान जाने का प्रश्न ही नहीं उठता, किन्तु जैसा कि पूर्व अध्याय में कहा जा चुका है कि यद्यपि आधुनिक हिन्दी कहानी पाश्चात्य कहानी के अधिक निकट है, फिर भी उसका मूल लोककथाओं में निहित है, लोककहानियों से ही वह प्रेरणा ग्रहण करती रही है । सच तो यह है कि आधुनिक हिन्दी कहानी की आत्मा तो प्राचीन है, किन्तु उसने अपने प्राचीन स्वरूप में परिष्कार और संस्कार रूपी सौन्दर्य-प्रसाधनों द्वारा

---

१ डा० ब्रजविलास श्रीवास्तव : 'पृथ्वीराजरासो में कथानक रूढ़ियां' (भूमिका)
२ डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी : (भूमिका भाग) से उद्धृत ।

नवीन आकर्षण पैदा कर लिया है । यही कारण है कि आरम्भिक काल की कितनी ही कहानियां मूलत: लोककहानियों की साहित्यिक अभिव्यक्ति मात्र हैं । यह सब होते हुए भी तथाकथित 'साहित्यिक कहानी' के लोक-वार्तात्मक वंशानुक्रम को स्वीकार करने में विद्वज्जन एक प्रकार के हिचकिचाहट का अनुभव करते हैं और इस बात को भी भूल जाते हैं कि 'लोककथाएं कहानियों के जनक हैं और लोकगीत समस्त कविताओं की जननी है ।'[1] यही कारण है कि आधुनिक कहानी में वंशानुक्रम सिद्धान्त के आधार पर लोककथाओं के गुण आए हैं और आएंगे, इन्हें आने से रोका नहीं जा सकता तथा कथानक रूढ़ियों के विषय में तो डा० रवीन्द्र भ्रमर का स्पष्ट कथन है -- 'शिष्ट या अभिजात कोटि के साहित्य में मिलने वाली कथानक रूढ़ियां मूलत: लोकसाहित्य और मुख्यत: लोककथाओं की देन हैं । ऐसी रूढ़ियां कम ही मिलेंगी जिनका परम्परा पृथक लोककथाओं से कोई सम्बन्ध न हो ।'[2]

भारतीय लोककथाओं की कथानक रूढ़ियों पर सर्वप्रथम शोधकार्यकर्ता मारिस ब्लूम फील्ड तथा एन०एम० पैंजर का नाम उल्लेखनीय है । पाश्चात्य विद्वान् मारिस ब्लूम फील्ड महोदय ने भारतीय कथानक रूढ़ियों के विश्वकोश (एनसाइक्लोपीडिया आफ हिन्दू फिक्शन मोटिफ्स) प्रस्तुत करने की वृहद् कल्पना की थी । अपनी इस महान कल्पना को साकार रूप देने के लिए भारतीय कथानक रूढ़ियों पर, समय-समय पर उन्होंने कुछ महत्वपूर्ण लेख लिखकर प्रकाशित भी कराये थे । जो 'जर्नल आफ अमेरिकन ओरियण्टल सोसायटी' की छत्तीसवीं, चालीसवीं और इकतालीसवीं जिल्दों में सुरक्षित हैं । इसी प्रकार प्रसिद्ध भारतीय लोककथाओं के महासागर 'कथासरित्सागर' के अंग्रेजी अनुवाद

---

1 'द फोक टेल इज द फादर आफ आल फिक्शन एण्ड द फोकसांग इज द मदर आफ आल पोएट्री'
-- लौकिन मार्टिनेगो : 'द स्टडी आफ फोकसांग्स', पृ० २।

2 डा० रवीन्द्र भ्रमर : 'हिन्दी भक्ति साहित्य में लोकतत्व', पृ० ७८ ।

--' द ओशन आफ द स्टोरी'[1] के नवें भाग के अन्त में भारतीय कथानक रूढ़ियों की एक विस्तृत तालिका प्रस्तुत की गई है, जो भारतीय कथा-साहित्य विश्लेषण एवं विवेचन में अत्यधिक उपयोगी सिद्ध हो सकती है। जिनमें से कुछ रूढ़ियां इस प्रकार हैं --

(१) हिन्दू कथा साहित्य के चोर विद्या सम्बन्धी कथानक रूढ़ि ।

(२) प्रिया की 'दोहद कामना' सम्बन्धी कथानक रूढ़ि ।

(३) हिन्दू कथा साहित्य में 'जोसेफ और पोटिफर' समान कथानक रूढ़ि । कुणाल तथा पूरन भगत जैसी लोककथाओं के मुख्य रूढ़ियां ।

भारतीय लोककथा साहित्य में यह कथानक रूढ़ि प्राय: तीन रूपों में प्रयुक्त हुई है--

क- किसी रानी द्वारा किसी दास से प्रेम-निवेदन में निराशाजन्य क्रोध एवं दण्ड ।

ख- सौतेली मां द्वारा पुत्र से प्रणय-निवेदन और असफल होने पर प्रतिकार की भावना से बलात्कार का दोषारोपण ।

ग- गुरु-पत्नी द्वारा शिष्य से प्रेम-निवेदन और निराशाजन्य क्रोधादि ।

(४) भविष्यसूचक स्वप्न अर्थात् स्वप्न के माध्यम से आने वाली घटनाओं एवं शुभाशुभ परिस्थितियों का ज्ञान ।

(५) यात्रा या किसी अन्य कार्य को आरम्भ करने से पूर्व शुभाशुभ शकुन और उनका विचार ।

(६) प्रेम व्यापार में अथवा किसी अन्य अवसर पर कथापात्र द्वारा चिता में भस्म होकर या किसी अन्य प्रकार से प्राण त्याग की धमकी ।

(७) अभिज्ञान या सहिदानी ।

(८) पुरुष का स्त्री रूप में और स्त्री का पुरुष रूप में बदल जाना--लिंग परिवर्तन ।

---

१ टानी एण्ड पेंजर : 'द ओशन आफ दि स्टोरी', वाल्यूम ९, लन्दन ।

(९) सत्यक्रिया अर्थात् किसी निश्चित प्रयोजन की सिद्धि के लिए किसी व्यक्ति द्वारा सत्य वचन की सादगी ।

(१०) रूपगुण-श्रवण अथवा स्वप्नदर्शन या चित्रदर्शन द्वारा प्रेमोत्पत्ति ।

(११) अभिशाप-वरदान,जादू-टोना, जन्त्र-मन्त्र आदि के विविध प्रयोग ।

(१२) हिन्दू कथा साहित्य में प्रचलित छद्मवेशी सन्यासियों,योगियों आदि से सम्बन्धित कथानक रूढ़ियां ।

(१३) हिन्दू कथा साहित्य में प्रयुक्त छिपकर सुनने सम्बन्धी रूढ़ियां ।

(१४) प्रस्तर मूर्तियों का सजीव हो उठना ।

(१५) यज्ञ,तपस्या,व्रत,मनौती अथवा देवी-देवता के प्रसाद से पुत्रोत्पत्ति ।

(१६) समुद्र में जहाज का डूबना तथा नायक-नायिका का बच जाना ।

(१७) भावी भाग्य से बचने सम्बन्धी कथानक रूढ़ियां ।

उपर्युक्त संक्षिप्त तालिका अत्यन्त प्रमुख और प्रचलित कथानक रूढ़ियों की है ,जिनका प्रयोग आज भी भारतीय कथा-साहित्य में यत्किंचित् परिवर्तन के साथ अथवा मूल रूप में भी किया जाता है । इसी प्रकार लोककथाओं के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर ऐसी कितनी ही कथानक रूढ़ियां खोजी जा सकती हैं । हिन्दी में इस दिशा में सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी एवं डा० सत्येन्द्र का है । आचार्य जी ने अपने `हिन्दी साहित्य का आदिकाल` शीर्षक ग्रन्थ में कुछ भारतीय कथानक रूढ़ियों पर प्रकाश डाला है । डा० सत्येन्द्र ने ब्रज में प्रचलित लोककथाओं के अध्ययन द्वारा स्थानीय प्रधान कथानक रूढ़ियों पर विचार किया है[१] । इस दृष्टि से डा० कन्हैयालाल सहल का कार्य भी उल्लेखनीय है । उन्होंने `लोककथाओं की कुछ प्ररूढ़ियां` शीर्षक पुस्तक में कथानक रूढ़ियों पर गम्भीरतापूर्वक अपने विचार अभिव्यक्त किये हैं ।

---

१ डा० सत्येन्द्र : `ब्रज लोकसाहित्य का अध्ययन`,पृ०५०० क- ५०० ख ।

थाम्पसन का वर्गीकरण : संक्षिप्त सारिणी

इस क्षेत्र में स्टिथ थाम्पसन महोदय का कार्य भी बड़े महत्व का है । उन्होंने इस क्षेत्र में कार्य करने की आवश्यकता एवं महत्ता का प्रतिपादन करते हुए,आर्ने द्वारा वर्गीकृत कथा-मानक रूपों की अल्पताओं की ओर इंगित करते हुए लिखा है कि --"निश्चय ही जहां तक लोककथाओं के वर्गीकरण का प्रश्न है, एण्टी आर्ने महान की सूचि 'टाइप आफ द फोक टेल' विशेष उपादेय सिद्ध हुई है । ... ...यौरोपीय क्षेत्र के लिए, कथा-रूपों की इस तरह की व्यवस्था, पर्याप्त सन्तोषजनक रही है और उक्त समग्र महाद्वीप में प्राय: उसी भांति की वर्णनात्मक प्रवृत्तियां उपलब्ध होती हैं । ... ... किन्तु यौरोपीय क्षेत्र से बाहर, फिर भी, आर्ने की सूची उपयोगी नहीं ठहरती ।[1]" इस क्रम में उन्होंने अनुभव किया कि कथारूपों के आधार पर सम्पूर्ण विश्व की लोककथाओं को वर्गीकृत नहीं किया जा सकता और न तो इस आधार पर उनमें व्याप्त समान तत्वों का आकलन ही किया जा सकता है । अतएव उन्होंने सम्पूर्ण विश्व की लोककथाओं में निहित आश्चर्यजनक समान सूत्रों का अन्वेषण प्रारम्भ किया, जिसका परिणाम है--"मोटिफ इण्डेक्स आफ फोक लिटरेचर" । ज्ञातव्य है कि ये समानतायें,पूरी कथाओं में नहीं,वरन् कथानक रूढ़ियों की विविध इकाइयों में प्राप्त होती हैं, जिसके आधार पर समग्र कथा-कहानियों का ढांचा खड़ा किया जाता है । अपने इस विशाल वर्गीकरण के अंतर्गत लोकवार्तापरक प्रत्येक विधाओं में पायी जाने वाली कथानक रूढ़ियों को रोमन वर्णमाला के छब्बीस वर्णों के नामांकन द्वारा छब्बीस प्रमुख वर्गों में विभक्त किया है । थाम्पसन महोदय द्वारा रोमन वर्णों के आधार पर वर्गीकरण करना स्वाभाविक ही नहीं,उचित भी था, किन्तु हिन्दी कथात्मक साहित्य का इस दृष्टि से विश्लेषण करते समय उपर्युक्त वर्गीकरण की संख्याओं का उल्लेख करते हुए, रोमन वर्णों का प्रयोग करना कहां तक उचित है ? सम्भवत: इसी प्रश्न को ध्यान में रखकर इसीलिए सर्वप्रथम डा० सावित्री सरीन ने "रोमन वर्णों" के स्थान पर नागरी

---

१ "स्टिथ थाम्पसन:मोटिफ इण्डेक्स आफ फोक लिटरेचर" (प्रीफेस)

अक्षरों के सांकेतिक प्रयोग द्वारा भी थाम्पसन के वर्गीकरण का उल्लेख करने की पद्धति को अपनाना चाहा,[1] जिसका आधार उन्होंने "मोटिफ इण्डेक्स" के प्रथम संस्करण को बनाया,[2] जिसमें "आई", "ओ", तथा "वाई" अक्षरों को भविष्य में प्राप्त होने वाली सामग्री के लिए सुविधानुसार प्रयोग करने की दृष्टि से रख छोड़ा गया था। इस दृष्टि से सन् १९५५ई० के नवीन संस्करण में "आई" अक्षर को तो जोड़ दिया गया, किन्तु "ओ" और "वाई" फिर भी बच रहे। अतएव डा० इन्दु जोशी ने उच्चारण साम्य के आधार पर "आई" के लिए "इ" का प्रयोग करते हुए, "ओ" और "वाई" के लिए भी क्रमश: "ड" तथा "क्ष" के प्रयोग की कल्पना इस आधार पर कर लेना उचित समझा है कि सम्भवत: थाम्पसन महोदय अपनी आवश्यकतानुसार जब कभी "ओ" तथा "वाई" का प्रयोग करें, तो उसके लिए हमें अभी से नवीन सांकेतिक अक्षर चुनकर रख छोड़ना चाहिए।[3] इस प्रकार डा० वरीन द्वारा प्रस्तुत सांकेतिक तालिका में, डा० इन्दु जोशी ने तीन नागरी अक्षरों को और जोड़ दिया है, जो निम्न तालिका में (०) चिन्ह से अंकित हैं --

क: ए	ख: बी	ग : सी	घ : डी
च: ई	छ: एफ	ज : जी	झ: एच
०इ: आइ	ट: जे	ठ : के	ड : एल
ढ: एम	त: एन	०ड : ओ	थ : पी
द: क्यू	ध: आर	न : एस	प : टी
फ: यू	ब: वी	भ : डब्ल्यू	म : एक्स
०क्ष : वाइ	य : जैड		

यहां पर दोनों ही मतों के आधार पर द्रष्टव्य यह है कि थाम्पसन ने अपना वर्गीकरण रोमन लिपि के आधार पर किया है और

---

१ डा० सावित्री वरीन : "ब्रज की लोककथाओं के अभिप्रायों का अध्ययन", कलकत्ता विश्वविद्यालय द्वारा स्वीकृत शोधप्रबन्ध, अध्याय- "अभिप्रायों का वर्गीकरण", पृ०[illegible]-२[illegible]।

२ स्टिथ थाम्पसन : "मोटिफ इण्डेक्स आफ फोक लिटरेचर", जनरल [illegible]

३ [illegible] जोशी : [illegible] १९६०

उसी के आधार पर उपर्युक्त दोनों भारतीय आलोचकों ने अपना वर्गीकरण हिन्दी अक्षरों के आधार पर किया है । यह हिन्दी के लिए एक महत्वपूर्ण बात अवश्य है, किन्तु थाम्पसन का कार्य इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण होने के कारण तथा ठोस एवं वैज्ञानिक पद्धति पर होने के कारण सर्वदा ही अग्रगण्य रहेगा, क्योंकि मोटिफ का विश्लेषण वर्गीकरण एवं उनका आन्तरिक सम्बन्ध सर्व प्रथम बार उसी ने किया । अतएव परवर्ती कालों में व्याख्या देते समय यथास्थान उसी के वर्गीकरण को ज्यों-का-त्यों स्वीकार करना उपयोगी ही नहीं, युक्ति-संगत भी है । इतना ही नहीं, शोधप्रणाली की दृष्टि से भी किसी लेखक की मूल रचना का ढंग अपनाये बिना उसके मर्म को नहीं समझा जा सकता । दूसरी मुख्य बात यह भी है कि थाम्पसन का विश्वकोशीय कार्य अपने गुण, प्रणाली, महत्व तथा प्रकार में अत्यन्त महत्व निर्विवादरूप से बनाये हुए है । इसलिए जब तक कोई अन्य शोधपरक कार्य थाम्पसन के कार्य से आगे न बढ़ जाए, उसी कार्य को मानक मानकर तथा उसी की रोमन लिपि को महत्व देना समीचीन होगा । यहाँ पर देवनागरी लिपि के वर्गीकरण का विरोध नहीं किया जा रहा है । किन्तु यहाँ समस्या यह है कि यदि यही कार्य अनेक भाषाओं में किया गया, तो कोई मानक वर्गीकरण स्थिर न किया जा सकेगा । प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में हिन्दी की वर्गीकरण के प्रयास को शामिल करना आवश्यक था । इसीलिए इसे ऊपर बताये गये क्रम में रख दिया गया है ।

वर्तमान समय में, व समग्र लोकवार्ताविदों द्वारा मान्यता प्राप्त यही वर्गीकरण है, जिसकी संख्याओं का उल्लेख कथानक रूढ़ियों का उल्लेख करते समय किया जाता है । अन्य किसी दूसरे वैज्ञानिक वर्गीकरण के अभाव में प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी कहानी में लोकतत्वों का अनुसंधान करते समय कथानक रूढ़ियों के विश्लेषण में भी इसी वर्गीकरण का आधार ग्रहण किया गया है, और उन्हीं संख्याओं को अंकित किया गया है । इसलिए विवेच्ययुगीन कहानियों में प्रयुक्त कथानक रूढ़ियों को ध्यान में रखते हुए उपर्युक्त वर्गीकरण से कुछ विशिष्ट वर्ग एवं विशिष्ट संख्याओं वाले कथानक रूढ़ियों की एक संक्षिप्त सूची अनिवार्य

मानकर प्रस्तुत की जा रही है, जिसमें थाम्पसन द्वारा प्रयुक्त रोमन अक्षरों को ही निम्न तालिका में अंकित किया जा रहा है --

स्टिथ थाम्पसन के वर्गीकरण की संक्षिप्त सारणी

वर्ग	कथानक रूढ़ि संख्याक्रम	संक्षिप्त विवरण
ए	ए० से ए २१९९ तक	कथानक रूढ़ियों का यह वर्ग बहुत विशाल है, जिसमें सृष्टि के उदय, प्रलय-प्रसंग, स्वर्ग, धरती एवं पाताल के देवी- देवता एवं दैवी शक्तियों से संबंधित कथानक रूढ़ियां, मानव के जन्म, पशु-पक्षी, वनस्पति के जन्म उनकी विशेषताएं समाहित हैं। इनकी संख्या लगभग तीन हजार है।
	ए०-ए ४९९	विधाता, देवी-देवताओं, स्वर्ग लोक, मृत्यु लोक तथा पाताल के अधिष्ठाता एवं नियामक दिव्य शक्तियां आदि।
	ए०५००- ए ५९९	दैवी विभूतियों से युक्त महापुरुष, राष्ट्रवीर एवं अवतार।
	ए ६००- ए ८९९	विश्व सम्बन्धी लोक-धारणाएं-विश्व, आकाश, धरती, पाताल लोक, विश्व की बनावट आदि।
	ए ९००- ए ९९९	धरती के भौगोलिक तत्व, नदी, वन, पर्वत, ताल, ज्वालामुखी, द्वीप आदि।
	ए१०००- ए१०९९	विश्वविपत्तियां, महामारी, बाढ़, भूकम्प, प्रलय।
	ए११००- ए११९९	प्राकृतिक व्यवस्था की स्थापना सम्बन्धी रूढ़ियां।
	ए१२००- ए१६९९	मानव के जन्म एवं मानव जीवन से सम्बन्धित संस्कारों रीति-रिवाजों के उद्भव, विभिन्न जातियों तथा कबीलों के उद्गम सम्बन्धी।

वर्ग	कथानक रूढ़ि संख्याक्रम	संक्षिप्त विवरण
	ए२१७००-ए२१९९	पशु-पक्षी जगत के अन्य सम्बन्धी ।
	ए२२००-ए२२५९९	प्रति जाति की निजी विशेषताएं,स्वभाव आदि सम्बन्धी रूढ़ियां ।
	ए२२५००-ए२२५९९	विभिन्न पशुओं से सम्बन्धित विशिष्टताएं आदि ।
	ए२२६००-ए २२६९९	वृक्षों एवं पौधों की उत्पत्ति सम्बन्धी रूढ़ियां।
	ए२२८००-ए २२८९९	विभिन्न
बी	बी ० - बी ८९९	इस वर्ग में पशु-पक्षी तथा अन्य जीवधारियों से सम्बन्धित कथानक रूढ़ियां हैं ।
	बी ० - बी ९९	पौराणिक पशु-पक्षियों एवं जीवधारियों से सम्बन्धित कथानक रूढ़ियां ।
	बी१००- बी १९९	चमत्कारी अथवा शकुन पशुपक्षी आदि ।
	बी२००- बी २९९	मानव स्वभाव एवं प्रवृत्ति वाले जीवधारी ।
	बी३००- बी ८९९	जीवधारियों सम्बन्धी अन्य कथानक रूढ़ियां ।
सी	सी ० - सी ९९९	वर्जनाओं,अशुभ एवं अनिष्ट शंकाओं से संबंधित कथानक रूढ़ियां,दैवी या अतिमानवीय व्यक्तियों सम्बन्धी।
	सी ० - सी ९९	वर्जनाओं,अशुभ एवं अनिष्ट शंकाओं से संबंधित कथानक रूढ़ियां ।
	सी१००- सी ४९९	मानव जीवन के नित्यप्रति के व्यवहारों से संबंधित कथानक रूढ़ियां ।
	सी५००- सी ८९९	जातिगत भेदभाव-छुआछूत तथा अन्य वर्जनाएं ।
	सी९००- सी ९९९	वर्जनाओं की अवहेलना से अनिष्ट संबंधी कथानक रूढ़ियां ।

वर्ग	कथानक रूढ़ि संख्याक्रम	संक्षिप्त विवरण
डी	डी ० - डी२१९९	जादू-टोने सम्बन्धी एवं शरीर तथा रूप-परिवर्तन आदि से सम्बन्धित कथानक रूढ़ियां ।
	डी ० - डी ९९	मानव शरीर में ही कायाकल्प से संबंधित कथानक रूढ़ियां ।
	डी१०० - डी १९९	मानव से पशु-पक्षी आदि में परिवर्तन ।
	डी२०० - डी २९९	मानव का जड़ पदार्थों में परिवर्तन ।
	डी३०० - डी ३९९	पशु-पक्षी से मानव रूप में परिवर्तन ।
	डी४०० - डी ६९९	विभिन्न काया-परिवर्तन सम्बन्धी कथानक रूढ़ियां
	डी१७०० - डी २१९९	जादुई या चमत्कारिक शक्तियां एवं उनकी अभिव्यंजनाएं-सिद्धियां आदि से सम्बन्धित कथानक रूढ़ियां ।
ई	ई ० - ई ७९९	मृतआत्माओं से सम्बन्धित कथानक रूढ़ियां ।
	ई ० - ई १९९	पुनजीवित हो उठने से सम्बन्धित रूढ़ियां ।
	ई२०० - ई ५९९	भूत-प्रेतों आदि से सम्बन्धित कथानक रूढ़ियां ।
	ई६०० - ई ६९९	अवतार एवं पुनर्जन्म से सम्बन्धित कथानक रूढ़ियां ।
	ई७०० - ई ७९९	आत्मा सम्बन्धी प्रसंग आदि ।
एफ	एफ ० - एफ१०९९	आश्चर्यजनक घटनाएं--विस्मयकारी दृश्य ।
	एफ ० - एफ १९९	अन्य लोकों की यात्रा सम्बन्धी कथानक रूढ़ियां ।
	एफ२०० - एफ ६९९	परियों, भूत-प्रेतों, अतिमानवीय सिद्धियों अथवा सामर्थ्यधारी व्यक्तियों से सम्बन्धित कथानक रूढ़ियां ।
	एफ९०० - एफ१०९९	असाधारण घटनाएं आदि ।

वर्ण	कथानक रूढ़ि संख्याक्रम	संक्षिप्त विवरण
जी	जी ० – जी ६९९	दैत्यों, दानवों चुड़ैलों एवं डायनों आदि से सम्बन्धित कथानक रूढ़ियां ।
	जी ० – जी ३९९	दैत्य दानवों की विभिन्न जातियों संबंधी रूढ़ियां ।
एच	एच ० – एच १५९९	विभिन्न परीक्षणों से सम्बन्धित कथानक रूढ़ियां ।
	एच ० – एच १९९	व्यक्ति की पहचान सम्बन्धी कथानक रूढ़ियां ।
	एच २००– एच २९९	सत्य परीक्षा संबंधी रूढ़ियां ।
	एच ५००– एच ८९९	बुद्धि परीक्षण संबंधी रूढ़ियां ।
	एच१४००– एच १५९९	अन्य भांति के बल, बुद्धि परीक्षणों से संबंधित कथानक रूढ़ियां ।
आई	आई ०–आई १०९९	बुद्धिमानों सम्बन्धी प्रसंग से सम्बद्ध कथानक रूढ़ियां ।
	आई२००–आई ५९९	उचित चुनाव एवं विवेक-बुद्धि का परिचय देना ।
	आई६००– आई ७९९	दूरदर्शिता सम्बन्धी कथानक रूढ़ियां ।
	आई८००– आई ८९९	बदली हुई परिस्थितियों में निर्वाह एवं संकटकाल में सान्त्वना की अनुभूति ।
	आई९००– आई ९९९	"विद्या ददाति विनयं"
जे	जे ० – जे २७९९	बुद्धि एवं चातुर्य तथा नीति से संबंधित कथानक रूढ़ियां ।
	जे११३०– जे ११९९	न्यायालय में बुद्धिमानी का परिचय ।
	जे१२५०– जे १४९९	वाग्विदग्धता से सम्बद्ध कथानक रूढ़ियां ।
	जे१७००– जे २७४९	मूर्खों एवं शेखचिल्लियों के प्रसंग से संबंधित कथानक रूढ़ियां ।

वर्ग	कथानक रूढ़ि संख्याक्रम	संक्षिप्त विवरण
के	के ० – के २३९९	इस वर्ग के अन्तर्गत सभी प्रकार के छल, छद्म, कपट, व्यवहार से सम्बन्धित कथानक रूढ़ियों को समाविष्ट किया गया है ।
	के ० – के ९९	प्रतियोगिता में बेईमानी से जीत जाना संबंधी कथानक रूढ़ियाँ ।
	के१००– के २९९	सौदे या व्यापार में झूठा वादा संबंधी कथानक रूढ़ियाँ ।
	के५००– के ६९९	शत्रु को धोखा देकर बच निकलने से संबंधित कथानक रूढ़ियाँ ।
	के१८००– के१८९९	छद्म वेश अथवा माया स्वप्नों द्वारा धोखा देने से सम्बद्ध कथानक रूढ़ियाँ ।
एल	एल ० –एल ३९९	भाग्य के उलट-फेर से संबंधित कथानक रूढ़ियाँ ।
	एल४००–एल ४९९	घमण्ड का सिर नीचा संबंधी कथानक रूढ़ियाँ ।
एम	एम१००–एम १९९	व्रत, संकल्प, सौगंध आदि संबंधी कथानक रूढ़ियाँ ।
	एम३००–एम ३९९	भविष्यवाणियों से संबंधित कथानक रूढ़ियाँ ।
	एम४००–एम ४९९	शाप संबंधी कथानक रूढ़ियाँ ।
एन	एन ०– एन ९९	भाग्य एवं अवसर संबंधी कथानक रूढ़ियाँ ।
	एन१००–एन २९९	भाग्य एवं नियति संबंधी कथानक रूढ़ियाँ ।
	एन४४०–एन ४९९	बहुमूल्य रहस्य का परिज्ञान ।
	एन५००–एन ५९९	गड़ा हुआ धन मिलने संबंधी कथानक रूढ़ियाँ ।
पी	पी ०– पी ९९	समाज एवं राज्यव्यवस्था संबंधी कथानक रूढ़ियाँ ।
	पी२००–पी २९९	परिवार संबंधी कथानक रूढ़ियाँ ।
	पी६००–पी ६९९	रीति-रिवाज, संस्कार संबंधी कथानक रूढ़ियाँ ।

वर्ग	कथानक रूढ़ि संख्याक्रम	संक्षिप्त विवरण
क्यू	क्यू ० - क्यू ५९९	पुरस्कार एवं दण्ड से संबंधित कथानक रूढ़ियाँ ।
	क्यू० - क्यू ९९	उत्तम कार्यों का पुरस्कार संबंधी कथानक रूढ़ियाँ ।
	क्यू २००- क्यू @ ३९९	दुष्ट कार्यों का दण्ड पाने: संबंधी कथानक रूढ़ियाँ ।
आर	आर ० -आर ३९९	इस वर्ग में बन्धन तथा बन्धनमुक्ति से संबंधित कथानक रूढ़ियाँ समाविष्ट हैं ।
	आर ० - आर ९९	बन्धन या कैद का समय बिताने: संबंधी रूढ़ियाँ ।
	आर१००- आर १९९	उद्धार संबंधी कथानक रूढ़ियाँ ।
एस	एस ० - एस ४९९	अमानुषिक एवं क्रूरता से संबंधित कथानक रूढ़ियाँ ।
टी	टी ० - टी ६९९	प्रेम संबंधी समस्त कथानक रूढ़ियाँ । नर-नारी-प्रसंग ।
	टी ० - टी ९९	प्रेम संबंधी कथानक रूढ़ियाँ ।
	टी१००- टी १९९	विवाह संबंधी कथानक रूढ़ियाँ ।
	टी२००- टी २९९	विवाहित या पारिवारिक जीवन से संबंधित कथानक रूढ़ियाँ ।
	टी ४०० - टी ४९९	वैश्याओं के जीवन से सम्बद्ध कथानक रूढ़ियाँ ।
यू	यू ० - यू २९९	जीवन के उतार-चढ़ाव सूचक कथानक रूढ़ियाँ ।
वी	वी.० - वी ५९९	धार्मिक कथानकों से संबंधित कथानक रूढ़ियाँ ।
	वी१००- वी २९९	साधु,संत,महात्मा आदि से संबंधित कथानक रूढ़ियाँ ।
	वी३०० - वी ३९९	धार्मिक आस्थाएं एवं लोकविश्वास संबंधी कथानक रूढ़ियाँ ।

वर्ग	कथानक रूढ़ि संख्याक्रम	संक्षिप्त विवरण
डब्ल्यू	डब्ल्यू ० - डब्ल्यू २९९	चरित्र सम्बन्धी विशिष्टताओं से सम्बद्ध कथानक रूढ़ियाँ ।
एक्स	एक्स६०० - एक्स ६९९	जातियों अथवा बिरादरियों संबंधी कथानक रूढ़ियाँ ।
ज़ेड	ज़ेड १०० - ज़ेड १९९	प्रतीकवादी कथानक रूढ़ियाँ ।

यहाँ पर अत्यन्त प्रमुख और प्रचलित कथानक रूढ़ियों के वर्गों का ही उल्लेख किया गया है । इन वर्गों में से कितने ही वर्गों की कथानक रूढ़ियों का प्रयोग विवेच्ययुगीन कहानीकारों ने अपनी कहानियों में किया है और इन्हीं के माध्यम से कहानियों को चिरपरिचित साँचे में ढाला भी है, इसके साथ-ही-साथ इनमें नवीनता, आकर्षकता और मनोरंजकता का गुण भी भर दिया है । अतएव प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी कहानी में प्रयुक्त कथानक रूढ़ियों पर आगामी पृष्ठों में विचार किया जायगा ।

(ख) प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी कहानी में व्यवहृत प्रमुख कथानक रूढ़ियां

प्राचीनकाल से ही कहानी का मूल स्वर प्रेम रहा है, जिसकी रक्षा लोग प्राण देकर भी करते हैं । विश्व के कहानी-साहित्य से यदि प्रेम-कहानियां पृथक कर दी जायं, तो जो कुछ बच रहेगा, वह स निर्जीव होगा । इसीलिए आज भी विश्व की सभी उन्नत भाषाओं में प्रेम कहानियों की भरमार है । इन कहानियों की कथावस्तु 'प्रेम' होती है, जिसमें रूप-गुण-श्रवण, स्वप्नदर्शन अथवा चित्र दर्शन, प्रत्यक्ष दर्शन, पुरुष सौन्दर्य आदि द्वारा नायक के मन में नायिका के प्रति अथवा नायिका के मन में नायक के प्रति प्रेमोत्पत्ति कराई जाती है । कभी-कभी दोनों एक-दूसरे पर मुग्ध हो जाते हैं । परिणामत: नायक, नायिका को प्राप्त करने का प्रयत्न करता है, जिसमें विभिन्न बाधाएं आती हैं । बाधाओं को पार करता हुआ, नायक या तो सफल होता है अथवा असफल । सफल होने पर दोनों का मिलन होता है और विवाह-बन्धन में बंधकर सुखमय जीवन व्यतीत कर सकते हैं । किन्तु किन्हीं कारणों से असफल होने पर दोनों का विछोह हो जाता है, फलस्वरूप एक या दोनों संसार से विरक्त हो जाते हैं, अथवा मृत्यु होती है । प्रेमचन्दयुगीन कहानीकारों ने भी प्रेमोत्पत्ति कराने के लिए उपर्युक्त कथानक रूढ़ियों का प्रायः उपयोग किया है ।

रूप-गुण-श्रवण द्वारा प्रेमोत्पत्ति

राय कृष्णदास ने 'रमणी का रहस्य'[1] शीर्षक कहानी में, रूप-गुण-श्रवण द्वारा प्रेमोत्पत्ति कराने की रूढ़ि का प्रयोग किया है । वणिक-पुत्र ने बाल्यावस्था में ही सुन रखा था कि सात समुद्र, नवद्वीप के पार एक स्फटिकमय भूमि पर प्राचीन तपस्वी की कमनीय तथा स्वाती-बूंद की तरह निर्मल, शीतल और दुर्लभ, इकलौती कन्या है । बचपन में उसके साथ खेलने की इच्छा, [illegible] में उसे अपनी जीवन सहचरी बनाने की उद्दाम लालसा में परिणत

---

१ रायकृष्णदास : 'सुधांशु' (संग्रह) : 'रमणी रहस्य', पृ०७७-८१ ।

हो गई । एक दिन पिता से आज्ञा लेकर, सात जहाजों के बेड़े के साथ वह चल पड़ा । अपनी कल्पना की प्रेयसी से मिलने की प्रत्याशा से उसका हृदय आनन्द से फड़क रहा था । द्वीप पर द्वीप पार करता हुआ, जब वह रम्यनाम देश पहुंचा, जहां के लोग भालू और सामुद्रिक सिंह की खाल पहनते हैं, तब उसके आनन्द की सीमा न रही, क्योंकि यहां से वह स्फटिक द्वीप केवल एक मास की दूरी पर था । अपने छः जलयानों और समस्त साथियों को वहीं छोड़कर वह अकेले एक पोत पर अपने अभीष्ट स्थान की ओर चल पड़ा । दो दिन पश्चात् उसका जलपोत उस समुद्र में पहुंच गया, जो ठीक शरद के आकाश की भांति था, जिसमें बड़े-बड़े बर्फ के पहाड़ तैर रहे थे, उसे देखते ही माझियों के छक्के छूट गये, किन्तु उसमें अपूर्व दृढ़ता और साहस का संचार हुआ । माझियों को धैर्य बंधाता हुआ, वह स्वयं जलयान का मार्ग निर्देश करने लगा । सचमुच ही उसके निश्चय को उन विशाल हिम पर्वतों ने मार्ग देना आरम्भ कर दिया और अन्त में एक दिन उसका जलपोत स्फटिक द्वीप के किनारे जा लगा ।

माझियों से पीछा छुड़ा, उस द्वीप पर एक ओर वह अकेला चल पड़ा । वस्तुतः वह द्वीप भी बर्फ का ही था । अतः कुछ ही दूर चलने के पश्चात् उसके पांव निष्प्राण से हो उठे, किन्तु उसका साहस उन्हें घसीट रहा था । ऐसे ही संकट के समय में, रोएंदार पर से ढके हुए बादमकुल शरीर वाले विचित्र पक्षियों का झुण्ड आता हुआ दिखाई पड़ा । उन पक्षियों ने आते ही उसे चारों ओर से इस तरह से घेर लिया कि उनकी गर्मी से वह शीघ्र ही स्वस्थ हो गया । वही पक्षियों का झुण्ड बड़े सुख से मार्ग दिखाता हुआ, उस तापस के आश्रम की ओर उसे ले चला । वे उसे गर्मी पहुंचाते और जब बर्फ पड़ने लगती तब उसे डैनों की आड़ में ले लेते । रात्रि में अपने डैनों का ओढ़ना बिछौना बिछाकर उसे सुख की नींद सुलाते और हर सातवें दिन उनमें से एक अपना प्राण दे देता । इस प्रकार उसकी एक सप्ताह तक शुश्रूषायें होती रहीं ।

इक्कीसवें दिन उसे तापस का आश्रम दिखायी पड़ा । आश्रम में पहुंचकर ज्यों ही उसकी दृष्टि मुनि-कन्या पर पड़ी कि वह पत्थर हो

गया और मुनि-कन्या-- जो उठकर उसके स्वागतार्थ आगे बढ़ी थी-- यह दशा देख चीख मार कर मूर्छित हो गई । उसकी चीख सुनकर तपस्वी अपने एकान्त से उठकर आया और अपने तपोबल से वणिक-पुत्र को पुनरुज्जीवित किया।तत्पश्चात् परिचर्या द्वारा अपनी कन्या की मूर्छा भी दूर की। कुछ ही क्षणों में तपस्वी पुन: एकान्त में चला गया और वे दोनों ऐसे घुल-मिल गये मानों जन्म-जन्म के संगी हों । तीसरे प्रहर तपस्वी पुन: आया और बोला--"वत्स ! मैंने जान लिया कि इस कुमारी का जन्म तुम्हारे लिए ही हुआ है, सो इसे ग्रहण करो, मैं इसे तुमको दूंगा । यद्यपि देवता तक इसकी आकांक्षा करते हैं,किन्तु मैंने उन्हें स्पष्ट कह दिया कि यह मर्त्य बाला है और मर्त्य से ही इसका सम्बन्ध-शोभन होगा । परन्तु मेरी प्रतिज्ञा थी कि जो मर्त्य यहां तक पहुंच सकेगा,वही इसका अधिकारी होगा । सो आज तुम यहां आ गये । अब शुभ लग्न में मैं इसे तुमको दूंगा, चौबीस प्रहर तुम हमारा आतिथ्य स्वीकार करो,उसके बाद वह मुहूर्त आयेगा ।" इतना कहकर तपस्वी तो चला गया,किन्तु मुनि-कन्या जो अब तक नतमस्तक खड़ी थी,बोली--"मेरी यह प्रतिज्ञा है कि जो यहां बसने की प्रतिज्ञा करेगा, वही मुझे पा सकेगा,अन्यथा मैं विवाह न करूंगी ।" वणिक-पुत्र तो कुमारी मय हो ही रहा था,चटपट स्वीकार कर लिया । शुभ मुहूर्त में विवाह-कृत्य भी पूर्ण हुआ ।

एक दिन तपस्वी ने स्वयं वणिक-पुत्र को अपने देश जाने की आज्ञा प्रदान की । शुभ मुहूर्त में दोनों की पीठ में हाथ रखकर तपस्वी ने कहा,--"जाओ तुम्हारा संसार सुखी और भरा-पूरा हो ।"इस प्रकार आशीर्वाद के साथ दोनों विदा हुए और देखते-देखते आंख से ओझल हो गये । उसी क्षण निर्मम की आंखों से ममता की दो बूंद टपक पड़ी ।

प्रस्तुत कहानी में न केवल रूप-गुण-श्रवण द्वारा प्रीतोत्पादित कथानक रूढ़ि का प्रयोग किया गया है,बल्कि इस दृष्टि से सम्पूर्ण कहानी ही महत्वपूर्ण है । इस कहानी की प्रत्येक घटना अपने में स्वयं कोई न कोई लोककहानियों में प्रचलित कथानक रूढ़ि है । इसकी अन्य कथानक रूढ़ियां

निम्नलिखित हैं --

(१) सात समुद्र, नव द्वीप के पार स्फटिकमय विचित्र भूमि।

(२) वहां कमनीय तथा स्वाती की बूंद की तरह निर्मल, शीतल और दुर्लभ तपस्वी की इकलौती कन्या का होना ।

(३) युवावस्था में उसे प्राप्त करने के लिए व्यापार का बहाना कर वणिक-पुत्र का निकल पड़ना ।

(४) भालू और सामुद्रिक सिंह की खाल पहनने वाले लोगों के विचित्र स्कन्धनाभ द्वीप में छः जहाजों और साथियों को छोड़कर अकेले आगे बढ़ना ।

(५) विचित्र समुद्र में पहुंचना, जिसमें बड़े-बड़े बर्फ के पहाड़ तैर रहे थे, उसे देख मल्लाहों का धैर्य छूटना ।

(६) वणिक-पुत्र में दृढ़ता एवं साहस का संचार तथा मल्लाहों को धैर्य बंधाते हुए जहाज का मार्ग निर्देशन करना ।

(७) विशालकाय हिम पर्वतों का मार्ग देना ।

(८) स्फटिक द्वीप बर्फ का होना ।

(९) भीषण शीत से पांवों का ठिठुरना और आदम कद रोएंदार विचित्र पक्षी-समूह का आगमन और शीत से छुड़ाना ।

(१०) पक्षी-समूह द्वारा मार्ग निर्देशन और तपस्वी के आश्रम की ओर ले जाना ।

(११) प्रति सातवें दिन, उसके उदर-पोषण के लिए एक पक्षी का प्राण त्याग ।

(१२) रात्रि में अपने डैनों के ओढ़ना बिछौना पर सुख की नींद सुलाना ।

(१३) इक्कीसवें दिन आश्रम में पहुंचना ।

(१४) तपस्वी-कन्या को देखते ही वणिक-पुत्र का पत्थर हो जाना ।

(१५) चीख कर कन्या का मूर्छित होना ।

(१६) कन्या की चीख सुनकर तपस्वी का आना और अपने तपोबल से वणिक-पुत्र को पुनरुज्जीवित करना ।

(१७) तपस्वी द्वारा अपनी प्रतिज्ञा—जो इस मर्त्य यहां तक पहुंच सकेगा, वही इसका अधिकारी होगा — का अनुपालन ।

(१८) कन्या द्वारा अपनी प्रतिज्ञा— जो यहाँ बसने की प्रतिज्ञा करेगा, वही मुझे पा सकेगा—सुनाना ।

(१९) वणिक-पुत्र द्वारा प्रतिज्ञा करना ।

(२०) शुभ मुहूर्त में विवाह ।

(२१) तपस्वी की आज्ञा से पत्नी सहित स्वदेश लौटना ।

उपर्युक्त कथानक रूढ़ियों की तालिका को देखते हुए निःसंकोच कहा जा सकता है कि कहानीकार ने लोक-कहानियों के व्यापक क्षेत्र में व्यवहृत होने वाली कथानक रूढ़ियों का ही उपयोग अपनी कहानी के निर्माण में किया है । इस दृष्टि से स्पष्ट होता है कि केवल कथानक रूढ़ियों का उपयोग ही कहानीकार की कलागत कुशलता नहीं है, वरन् अन्य लोकधर्मी कथानक रूढ़ियों का क्रमिक गुम्फन भी आवश्यक है, क्योंकि इसी क्रमबद्धता के उचित निर्वाह द्वारा कहानी में प्रभाव उत्पन्न करने की क्षमता आ जाती है । इस प्रकार कुशल कहानीकार स्टिथ थाम्पसन के वर्गीकरण का अध्ययन किए बिना ही यह भली भाँति समझता है कि इन समानधर्मी कथानक रूढ़ियों का निर्वाह आवश्यक है । ध्यातव्य है कि इसी प्रकार अन्य कहानियों में भी मैत्रीपरक कथानक रूढ़ियों का क्रमागत समायोजन पाया जाता है ।

प्रथम दर्शन में प्रेमोत्पत्ति

विवेच्ययुगीन कहानीकारों ने प्रेमोत्पत्ति कराने के लिए प्रत्यक्षदर्शन की रूढ़ि का भी उपयोग बहुतायत से किया है । स्टिथ थाम्पसन के अनुसार यह कथानक रूढ़ि संख्या टी०९१.७.४ है । इस रूढ़ि की तीन स्थितियों का प्रयोग हुआ है—(एक) पहले नायक में प्रेम का उदय, (दो) पहले नायिका में प्रेम का उदय (तीन) नायक-नायिका दोनों में समभाव प्रेम का उदय ।

प्रथम दर्शन में पहले नायक में प्रेमोदय की रूढ़ि का प्रयोग विवेच्ययुगीन अनेक कहानियों में हुआ है । "वैरागी" के वणिक, "बोला"

१ श्री पुरुषोत्तमदत्त दीक्षित : "मुक्त" : "उन्माद" (संग्रह), "वैरागी", पृ०७५-८२ ।

`मोला` के राजा हरिश्चन्द्र[1], `फुनकला सांप` के रामू[2], `नूरी` के शाहजादा याकूब खां[3], `भांकी` के प्रेमांकुर[4], `अपमान का भाग्य` के नरेन्द्र[5], `मर्यादा की वेदी` के चित्तौड़ के राजा भोजराज[6], `गैंदा` के वीनू[7], `दुती मैना` के शशिशेखर कुमार[8], `जेठा जुआ` के हरीश[9] आदि तथा `सिद्धान्त`[10] और `प्रणय परिपाटी`[11] के नायकों में प्रथम दर्शन में ही प्रेम का उदय होता है ।

इसी प्रकार प्रथम दर्शन में पहले नायिका में प्रेम का उदय अनेक कहानियों में हुआ है,यथा--`कामना तरु` की नायिका चन्दा[12] ने अपने पति का जो चित्र मन में खींच रखा था, वही मानो कुँवर राजनाथ के रूप में सम्मुख आ गया,जिसे देखते ही चन्दा में प्रेम का उदय हुआ । `विश्वास` की नायिका मिस जोशी[13] आप्टे को देखकर, `मैं तुम्हारी आंखों को नहीं, तुम्हें चाहता हूं` की नायिका रम्भा[14] गुरुद्वारे के स्वामी को देखकर प्रभावित ही नहीं, मौन हो जाती है । उसमें प्रेम का उदय हुआ, परिणामतः अपनेचिरपरिचित शैलप शहवर तथा प्रेमी बंसी की ओर से आंखें फेर कर मोटर पर बैठ चला हो जाती है ।

उपर्युक्त दोनों स्थितियों से भिन्न कहानीकारों ने,प्रथम दर्शन में एकसाथ नायक और नायिका दोनों में प्रेम का उदय कराया है ।`अपराधी`

---

१ प्रेमचन्द :`मानसरोवर`भाग ६,`धोखा`,पृ०१९३-२०१ ।
२`प्रसाद` :`आकाशदीप`,`फुनकला सांप`,पृ०५६ ।
३ ,, : `इन्द्रजाल`, `नूरी`, पृ०३१-४१ ।
४ भगवतीप्रसाद बाजपेयी : `किशोर`,सं०श्री दुलारेलाल भार्गव,`भांकी`,पृ०४६-५३ ।
५ ,, ,, ,, `अपमान का भाग्य`,पृ०९९ ।
६ प्रेमचन्द : `मानसरोवर`भाग ६,`मर्यादा की वेदी`,पृ०८६-११४ ।
७ श्री पहाड़ी :`मधुकरी`भाग २, सं०विनोदशंकर व्यास ,`गैंदा`,पृ०२५९-२६७ ।
८ शिवपूजनसहाय :`विभूति`,`दुती मैना`,पृ०५२ ।
९ डा० धनीराम `प्रेम`:`पल्लरी`,`जेठा जुआ`,पृ०२४९-२२४ ।
१० ,, : `सिद्धान्त`,संकलन-`हिन्दी की गल्प मंजरी`,पृ०२०८-२१०।
११ चण्डीप्रसाद हृदयेश : `नन्दननिकुंज`,`प्रणयपरिपाटी`,पृ०५३-८० ।
१२ प्रेमचन्द : `मानसरोवर`भाग ५,`कामना तरु`,पृ०६१ ।
१३ ,, : ,, भाग ३,`विश्वास`,पृ०२१-२१ ।
१४ आचार्य चतुरसेन शास्त्री :`दोखा हुआ शहर`,`मैं तुम्हारी आंखों को नहीं,तुम्हें चाहता हूं`, पृ०२५३ ।

शीर्षक कहानी में राजकुमार ने कामिनी को देखा ही था कि उसने राजकुमार के गले में माला डाल दी और राजकुमार ने अपना कौशेय उष्णीष खोलकर मालिन के ऊपर फेंक दिया । इस तरह दोनों में एक साथ प्रेम का उदय हुआ ।[1] `स्वार्थ-त्यागी मित्र` में भी ब्रजमोहन सिंह तथा सरोजिनी में एक साथ प्रेम का उदय होता है ।[2] इसी प्रकार सुमित्रानन्दन पन्त की `बन्नू` शीर्षक कहानी में भी विनोदानन्द उर्फ `बन्नू` तथा कला में[3] और श्रीमती शिवरानी देवी द्वारा लिखित `सच्चा ब्याह` कहानी के रजनी तथा रविनाथ में उभयपक्षीय प्रेमोदय की कथानक रूढ़ि का आश्रय लिया गया है ।[4]

इन कहानियों में असामान्य कुल, असामान्य स्थिति, भिन्न सिद्धांतों तथा मानव द्वारा निर्मित विभिन्न कारणों से प्रेम में बाधाएं उत्पन्न होती हैं । परिणामत: प्रेमी-प्रेमिका का मिलन नहीं हो पाता और वे या तो संसार से विरक्त हो जाते हैं अथवा मृत्यु का संवरण करते हैं । थाम्पसन के अनुसार इस कथानक रूढ़ि की संख्या टी० ९१.७ है । पूर्वोल्लिखित `वैरागी` कहानी की नायिका किशोरी विधवा और सती जाति की होने के कारण, अपने प्रेमी अनिल से नहीं मिल पाती । फलस्वरूप अनिल वैरागी हो जाता है । प्रेमांकुर और उर्मिला के मध्य सम्बन्ध इसलिए नहीं हो सका कि प्रेमांकुर के पिता जनार्दन और उर्मिला के पिता में वंशानुगत विरोध था ।[6] इसी प्रकार `दुर्घटना` में रम्भा के नेत्रों की ज्योति नष्ट होते ही, प्रेमी के हृदय में प्रथम प्रेम का अनुराग नष्ट हो जाता है[7] और नन्दा का प्रेमी कुंवर राजनाथ विवाह के पूर्व ही शत्रुओं द्वारा नजरबन्द कर लिया जाता है । नन्दा किसी अन्य से विवाह नहीं करती । उसकी मृत्यु हो जाती है । राजकुमार भी बन्दीगृह से भागने में सफल होता है, किन्तु नन्दा को न पाकर दु:ख से अभिभूत उसी रात शरीर त्याग देता है ।[8] इसी

---

१ जयशंकर`प्रसाद` :`आकाश दीप`,`अपराधी`,पृ० १२६-२७ ।

२ श्री प्रभाकर : `हन्नु`, कला ४,खण्ड १,किरण ४, अप्रैल१९१३ई०,`स्वार्थ त्यागी मित्र`, पृ०३३०-३३७ ।

३ द्रष्टव्य--`मधुकरी` भाग२,पृ०२२६-२४१ ।

४ ,, ,, ,, पृ०१६७-१८८ ।

(शेष टिप्पणियाँ अगले पृष्ठ पर देखें)

प्रकार रजनी का प्रेमी रविनाथ शासन द्वारा बन्दी बना लिया गया और मृत्यु-दण्ड का भागी बना । यह सुनकर रजनी प्राण त्याग देती है, किन्तु भाग्यवश रविनाथ मुक्त कर दिया गया है, परन्तु प्रेमिका का हाल सुनकर वह भी उसी रात असार संसार से प्रयाण कर जाता है[१]।

प्रेम- त्रिकोण

प्रेमपरक कहानियों में, नायक-नायिका के मध्य, किसी अन्य नायक अथवा नायिका के आ जाने से प्रेम में त्रिकोण संघर्ष उत्पन्न होता है। थाम्पसन के अनुसार इस रूढ़ि की संज्ञा टी० ९२.९ है। द्विवेदीयुगीन कहानी में प्रेम त्रिकोण कथानक रूढ़ि का भी प्रयोग किया गया है। सतीश और रजनी प्रथम मिलन में ही एक-दूसरे के प्रति आकर्षित होते हैं। यह आकर्षण दिनोंदिन बढ़ता गया और सतीश ने रजनी को, डाक्टर होते ही प्रणय बन्धन में बंधने का वचन भी दे दिया। उस शुभ अवसर के आने में कुछ ही महीने रह गये थे कि रजनी की छोटी बहन लता को देखते ही सतीश का मन चंचल हो उठा। दोनों का प्रेम सम्बन्ध चरम सीमा पर पहुंच गया। रजनी से यह बात छिपी न रह सकी और वह अपनी छोटी बहन से ईर्ष्या करने लगी। एक दिन अचानक सतीश और लता के मध्य होने वाली बातचीत को सुनकर जब लता की विवाह भावना का पता चला कि, तब वह छटपटा उठी। परिणामतः वह स्वयं आत्महत्या कर लेती है, जिसकी सूचना समुद्र-तट पर प्राप्त उसके पत्र एवं वस्त्रों द्वारा मिलती है। शक्तिशाली समय ने यह घटना भुला दी और सतीश तथा लता का विवाह हो गया[२]।

(विगत पृष्ठ की अवशिष्ट टिप्पणी)
५- प्रफुल्लचन्द्र ओझा : 'देवयज्ञ', 'बैरागी', पृ०७५-८२।
६ भगवतीप्रसाद वाजपेयी : 'हिलोर', 'झांकी', पृ०४६-५१।
७ आचार्य चतुरसेन शास्त्री : 'सोया हुआ शहर', 'मैं तुम्हारी आंखों को नहीं तुम्हें चाहता हूं', पृ०२५१।
८ प्रेमचन्द : 'मानसरोवर', भाग५, पृ०६१-८२

१ शिवरानी देवी : 'मधुकरी', भाग२, 'बच्चा व्याह', पृ०१६७-८६।
२ डा० धनीराम प्रेम : ,, ,, 'बहन', पृ०१३३-५०।

इसी प्रकार प्रेमी-प्रेमिका के मध्य किसी अन्य नायक का आगमन भी होता है। उदाहरणार्थ रणछोर जी के मन्दिर में मन्दार के राजकुमार और झालावाड़ की राजकुमारी प्रभा की आँखें चार हुईं। दोनों व्याकुल होकर संध्या समय मंदिर आते और वहाँ चन्द्र को देख कुमुदिनी खिल जाती। प्रेम प्रवीण मीरा ने उनके मन के भावों को समझ कर एक दिन राव साहब के समक्ष राजकुमार की करते हुए, प्रभा के विवाह की चर्चा की। राव साहब जो पहले ही से उसके रूप-गुण पर मोहित थे, प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। उसी समय चित्तौड़ के राणा भोजराज भी मन्दिर में आए। प्रभा के रूप-सौन्दर्य को देखते ही वे मोहित हो गये। उस अवसर पर तो कुछ न बोले, किन्तु जिस दिन राजकुमारी प्रभा की बारात जाने वाली थी, उस दिन अपने सैनिकों सहित पहुंचकर राजकुमारी का अपहरण कर लिया। मन्दार वाले यह शोक समाचार पाते ही लौट गये। मन्दार कुमार निराशा से व्यथित हो गया, किन्तु प्रभा को भूल न सका। फलस्वरूप साधु का वेश धारण कर राजमहल में पहुंच गया। उस समय प्रभा आत्महत्या के लिए तत्पर थी। मन्दार कुमार को देखते ही भयभीत रमणी ने आग्रहपूर्वक चले जाने के लिए कहा। राजकुमार भला क्यों जाने लगा? एक ओर साथ चलने का आग्रह, दूसरी ओर न जाने की हठ। राजकुमार उद्वेलित हो तलवार खींच प्रभा की ओर बढ़े ही थे कि अकस्मात् राणा तलवार लिए-- 'दूर हट' की सिंहगर्जना करते हुए कमरे में आ पहुंचे। राजकुमार ने ऐंठ कर राणा पर तलवार चलाई। राणा ने वार खाली देकर राजकुमार पर घातक प्रहार किया। प्रीत की रीत निभाने के लिए प्रभा अपने प्रेमी के सामने खड़ी हो गई। तलवार का वार उसके कंधे पर पड़ा। रक्त की धार बह चली। उसका मुखमण्डल वर्णहीन हो गया। वह चल बसी। हतप्रभ प्रेमी अश्रुपूरित आंखों से प्रेमिका को देखता रहा, और अचानक अपनी छाती में तलवार चुभा ली, फिर रक्त की धार निकली। दोनों धाराएं मिलकर एक हो गईं। दोनों संसार से एकसाथ विदा हो गए।[१]

---

१ प्रेमचन्द : 'मानसरोवर' भाग ६, 'मर्यादा की वेदी', पृ०१६-१२४।

इसके विपरीत कुछ प्रेम-परक कहानियों के त्रिकोणात्मक संघर्ष में सच्चा प्रेमी अपनी प्रेमिका के विछोह में जीवनपर्यन्त अविवाहित जीवन व्यतीत करते हुए, अपनी प्रेमिका उसके पति तथा पुत्र के सुख एवं सुरक्षा की व्यवस्था में, समस्त ईर्ष्या एवं द्वेष को भुलाकर, अपने प्राणों की आहुति देने में भी पीछे नहीं हटता। इस दृष्टि से बाबू जयशंकर 'प्रसाद' की 'गुण्डा'[1], चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' की कहानी 'उसने कहा था'[2] तथा ईश्वरी प्रसाद शर्मा की 'स्वर्गीय प्रेम'[3] शीर्षक कहानी विशेष उल्लेखनीय हैं। 'स्वर्गीय प्रेम' में चन्दनकुमारी के साथ बचपन अजितसिंह ब्याह रचाने के लिए व्याकुल हैं तथा अरुण सिंह उसे प्राण समान चाहते हैं। चन्दन किसे चाहती है, कौन जाने? चन्दन की माँ ने दोनों को किले में बुलाया। साथ रहते हुए दोनों में मित्रता हो गई। एक रात चन्दनकुमारी रक्तरंजित छुरा लेकर अरुण के द्वार पर पहुँची और कहा कि मैंने अजितसिंह का खून किया है। अपनी प्रेमिका को बचाने के लिए वह भाग निकला। एक माह अस्वस्थ रहने के पश्चात् जब अरुण सिंह अपनी माँ से मिला, तब उसे ज्ञात हुआ कि अजितसिंह मरा नहीं। अरुण सिंह ने लौटकर चन्दन से विवाह का प्रस्ताव किया, लेकिन चन्दन के अजित के लिए "वे मेरे देवता, मेरे स्वामी, मेरे परमेश्वर हैं"--सम्बोधन सुन अवाक् रह गया और अजित के नौकरों ने उसे धक्के देकर बाहर निकाल दिया। भाग्य ने पलटा खाया। अजित सिंह को महाराज के विरुद्ध षड्यन्त्र करने के अपराध में आजीवन कारावास का दण्ड मिला। चन्दन खाने-पाने को मुहताज हो गई और अपनी पुत्री लाली के द्वारा अपने प्रेमी अरुण के पास पत्र भेजा, क्योंकि जयपुर के महाराज उसे बहुत मानते थे। पत्र पाकर अरुण से न रहा गया। वह अजित सिंह के अपमानजनक शब्द तथा दुर्व्यवहार को भुलाकर महाराज के पास पहुँचा और कह-सुनकर अजितसिंह के अपराध को क्षमा करवा दिया। ग्लानि, लज्जा और क्षोभ से परिपूर्ण दम्पति जब उससे क्षमा माँगने के लिए आए, तब

---

१ द्रष्टव्य--'इन्द्रजाल', पृ०९२-१०५।

२ ,, --सम्पा० प्रेमचन्द : 'हिन्दी की आदर्श कहानियाँ', पृ०२५-३८।

३ ,, --'गल्पमाला', पृ०५-१२।

कारण उससे नहीं मिला । वह सच्चा प्रेमी था, इसीलिए प्रेयसी के दु:ख को न देख सका और न जीवनपर्यन्त विवाह ही किया ।

इसी प्रकार 'गुण्डा' के नन्हकू सिंह पन्ना को प्यार करता था, किन्तु काशिराज बलवन्त सिंह बलात् पन्ना को अपनी रानी बना लेते हैं, फलस्वरूप निराश और हताश, अपनी प्रेमिका को पाने में असमर्थ बाबू नन्हकू सिंह जीवनपर्यन्त विवाह नहीं करते । उन्हें इस बात का क्षोभ भी है कि वे काशिराज के हृदय में बिछुआ न उतार सके, लेकिन दुलारी वेश्या से यह सुनकर कि राजमाता पन्ना तथा राजा चेत सिंह, शिवालय घाट पर सिखों के पहरे में हैं, जो उन्हें कलकत्ता भेजने वाले हैं, नन्हकू सिंह उन्हें मुक्त करने के लिए अधीर हो उठे । फिर क्या था ? पहरेदारों को ललकारता हुआ वह पन्ना के निकट पहुंचा, उन्हें मुक्त कर उसने उन्हें डोंगी पर बिठाकर, रामनगर के लिए विदा कर दिया । तत्पश्चात् राजा चेतसिंह को भी मुक्त करने की दृष्टि से स्टाकर को साथियों सहित धराशायी कर देता है । कुबरा मौलवी भी उसके हाथ से न बचा । सिपाहियों की गोली से विद्ध शरीर होने पर भी उसने चेतसिंह से डोंगी पर सवार हो बच निकलने का आग्रह किया । उन्हें खिड़की से उतरते हुए उसने देखा । बीसों संगीनों के समक्ष उसकी तलवार चल रही थी । उसे अपने प्राणों की चिन्ता न थी जिसको उसने हृदय से प्रेम किया था, उसी की रक्षा में तो उसके शरीर का एक-एक अंग कट-कट कर गिर रहा था ।

'उसने कहा था' का लहनासिंह भी इसी कोटि का प्रेमी है, जिस लड़की के प्रति उसके हृदय में प्रेम का भाव जागृत हुआ था, उसका विवाह दूसरे व्यक्ति से हो गया । परिणामत: उसका प्रेम वासनाहीन और निस्वार्थ रूप में हमारे समक्ष आता है । उसे सूबेदारनी का यह वचन सदैव स्मरण रहता है—'तुम्हें याद है, एक दिन तांगे वाले का घोड़ा दही वाले की दुकान के पास बिगड़ गया था, तुमने उस दिन मेरे प्राण बचाये थे । आप घोड़े की लातों में चले गये थे और मुझे उठाकर दुकान के तख्ते पर खड़ा कर दिया था, ऐसे ही इन दोनों को बचाना, यह मेरी भिक्षा है । तुम्हारे आगे मैं आंचल पसारती हूँ ।'

जिसका पालन करने में वह बाबू नन्हकू सिंह की तरह अपने प्राणों की बाजी लगा देता है।

कभी-कभी प्रेमी-प्रेमिका के मध्य अन्य प्रेमी आता तो है, किन्तु किसी कारणवश वह स्वयं प्रेमिका को छोड़कर चला भी जाता है। परिणामत: पूर्व परिचित नायक और नायिका का मिलन होता है। आचार्य चतुरसेन शास्त्री द्वारा लिखित 'मैं तुम्हारी आंखों को नहीं, तुम्हें चाहता हूं।'[१] शीर्षक कहानी का प्रेमी ऐसा ही है। बचपन में रम्भा और बंशी की अचानक फुलवारी की छोटी-सी भेंट, एक-दूसरे को निकट लाने में सहायक सिद्ध हुई। दोनों का मिलन होता रहा। रम्भा नाटक मण्डली में भरती हो गई और देखते-देखते रम्भा तो रम्भा हो गई। वास्तविक रम्भा बनकर वह कुछ-कुछ बंशी को भूल सी गई, परन्तु बंशी उसे न भूला। वह उदास रहता। एक दिन बंशी व्याकुल होकर रम्भा से मिलने के लिए अर्ध रात्रि में मां की चोरी से चल पड़ा। रम्भा ने निर्धन, गंवार तथा अपढ़ बंशी से मिलना अपमानजनक समझा, इसीलिए बंशी को बाहर खड़ा देखकर भी उसने आंखें फेर लीं। निराश बंशी अपने गांव वापस चला आया। रम्भा को उसकी क्या चिन्ता ? उसके प्रेम के भिखारी कितने ही थे। परन्तु उड़ने वाले गुब्बारे के स्वामी को देखते ही रम्भा फिसल पड़ी, क्योंकि वह सुन्दर था, जवान था, मिष्ठभाषी था और धनाढ्य भी। फिर क्या था? एक दिन दोनों बैलून में बैठ आकाश में उड़ चले। दोनों प्रेमी बीच आकाश में भी खोकर हृदय से हृदयतंत्री बजा रहे थे कि बादल गरजने लगे, बिजली चमकने लगी, बर्षा का आसार देख दोनों प्रेमी कांप उठे। बिजली की तड़प से गुब्बारा नष्ट हो गया, उसमें आग लग गई। दोनों झुलस कर मूर्छित हो गए। फलत: रम्भा अन्धी हो गई। उसका प्रेमी बिलकुल अच्छा था, उसने रोती हुई रम्भा को ढाढ़स बंधाया, परन्तु उस विलासी के हृदय में पूर्ववत् प्रेम का अनुराग न रहा। दो चार बार आने बाद अस्पताल में रम्भा को अकेली छोड़ वह गया तो लौटा ही नहीं। रम्भा संसार में अकेली रह गई। असहायावस्था में उसे बंशी की सुध आई पत्र पाते ही बंशी की मां उसे अपने घर ले गई। रम्भा की व्यथा-कथा सुनकर बंशी

---

१ कुलदस्ता-'सोया हुआ शहर', पृ०२४६-२५६।

की आँखें भर आईं । अन्त में दोनों का विवाह हो गया[1] । इसी प्रकार श्री प्रभाकर की 'स्वार्थत्यागी मित्र' शीर्षक कहानी में ब्रजमोहन सिंह और सरोजनी के मध्य प्रथम दर्शन में प्रेम तो उत्पन्न हुआ, किन्तु इससे अनभिज्ञ पिता सरोजनी का विवाह ब्रजमोहन के सहपाठी गोविन्द सिंह से पक्का कर देते हैं । देश-प्रथा के अनुसार किसी को बोलने का अधिकार न था । परन्तु ब्रजमोहन अपनी बाल संगिनी किशोरी से हृदय की वेदना न छिपा सका । एक दिन उसने सब कह दिया । धीरे-धीरे बात गोविन्द तक पहुंची । गोविन्दसिंह ने बलभद्र सिंह से निवेदन किया, परिणामतः ब्रजमोहन तथा सरोजनी का विवाह हो गया और गोविन्दसिंह ब्रह्मचारी हो गया[2] ।

सुषुप्त सौन्दर्य(स्लीपिंग ब्यूटी)

लोककहानियों में सुषुप्त सौन्दर्य रूढ़ि का बहुत अधिक प्रयोग हुआ है । विद्वानों के मतानुसार तो इस रूढ़ि से सम्बन्धित कहानियों की गणना ही कठिन है[3] । द्विवेदीयुगीन हिन्दी कहानी में भी यत्र-तत्र इस रूढ़ि का प्रयोग हुआ है । उदाहरणार्थ, प्रथमदर्शन में ही आकर्षित होकर राजकुमार अरुण एक दिन घूमता-घामता जब मधूक वृक्ष के नीचे पहुंचता है, तब मधूलिका अपने हाथ पर सिर धरे हुए स्निग्ध निद्रा का सुख ले रही थी । अरुण उसके अनुपम नैसर्गिक सौन्दर्य का पान कर अनुरक्त हो रहा था कि कोयल बोल उठी, जैसे उसने अरुण से प्रश्न किया, छिः, कुमारी के सुप्त सौन्दर्य पर दृष्टिपात करने वाले धृष्ट तुम कौन ? और मधूलिका की आँखें खुल गईं[4] । इसी प्रकार 'दासी' शीर्षक कहानी में जब बलराज सीढ़ियों से चढ़कर दालान के समीप पहुंचता है, तब वह देखता है--'एक वेदनामण्डित पुण्य सौन्दर्य ।' वह और समीप आया । गुम्बद के जाल से चन्द्रमा की किरणें ठीक ईरावती के मुख पर पड़ रही थीं । बलराज ने करुणा विलसित नेत्रों से देखा, उस रूप माधुरी में कितनी स्वाभाविकता थी, बनावट नहीं । एक बार सशंक दृष्टि से उसने चारों ओर देखा, फिर इरावती

---

1 द्रष्टव्य--'सोया हुआ शहर', पृ०४९-५६ ।
2 ,, --'इन्दु', कला ५, खण्ड१, किरण ५, मई १९१४, पृ०४४०-४४७ ।
3 ,, --'स्टैण्डर्ड डिक्शनरी आफ फोकलोर माइथोलोजी एण्ड लीजेण्ड'--निबंध, 'लिटिल ब्रायर रोज', पृ०४३३ ।
4 जयशंकर 'प्रसाद' : 'आंधी', 'पुरस्कार', पृ०११५ ।

का हाथ पकड़ कर हिलाया । उसने चौंककर देखा, सामने अहमद खड़ा है । वह उठकर अपने वस्त्र सम्हालने लगी[1] ।

बलात् कन्याहरण

किसी राजकुमार या राजा द्वारा मनोवांछित कन्या का हरण किया जाना एक अत्यधिक प्रचलित कथानक रूढ़ि है, जिसका प्रयोग प्राचीनकाल से ही भारतीय आख्यानकों में किया जाता रहा है । "महाभारत" में अर्जुन द्वारा सुभद्रा का हरण, कृष्ण द्वारा रुक्मिणी का हरण इस बात के प्रमाण हैं । हिन्दी साहित्य में भी इस रूढ़ि का प्रयोग किया गया है । "पृथ्वीराज रासो" में पद्मावती, शशिव्रता और संयोगिता नामधारी तीन कुमारी कन्याओं का हरण पृथ्वीराज चौहान द्वारा किया जाता है । द्विवेदीयुगीन प्रमुख कहानीकार मुंशी प्रेमचन्द ने "मर्यादा की वेदी" शीर्षक कहानी में इसी रूढ़ि का प्रयोग किया है । झालावाड़ की राजकुमारी प्रभा की जिस दिन बारात आने वाली थी, उसी दिन चित्तौड़ के राणा भोजराज के सैनिकों ने राजभवन घेर लिया और राणा अपने कई वीरों के साथ महल में पहुंच गया । वृद्ध राव साहब राणा पर तलवार खींचकर झपटे । उन्होंने वार बचाते हुए प्रभा से कहा । राजकुमारी हमारे साथ चलोगी ? प्रभा ने सिर झुकाकर स्वीकार कर लिया । पिता के नेत्रों से ज्वाला निकलने लगी । पिता द्वारा "निर्लज्जा" शब्द सुनते ही राजकुमारी की आंखें लाल हो गईं, चेहरा तमतमा उठा । उसने कहा-- "राजकुल कन्या अपने सतीत्व की रक्षा स्वयं कर सकती है । उसके लिए रुधिर बहाने की आवश्यकता नहीं । बस, क्षणमात्र में राणा ने प्रभा को गोद में उठा लिया और बिजली की भांति झपट कर बाहर निकल गये । राजकुमारी प्रभा सजित घोड़े पर सवार हो अपने वीरों के साथ चित्तौड़ की राह पकड़ी[2] ।

---

१ जयशंकर "प्रसाद" : "आंधी", "चाची", पृ०६१ ।

२ प्रेमचन्द --"मानसरोवर" भाग६, पृ०९८-१०१ ।

प्रेयसी को प्राप्त करने के लिए नायक कासाधु-योगी वेश धारण करना

लोक-प्रचलित प्रेमपरक कहानियों में प्रिया को ढूढ़ने तथा उसे प्राप्त करने के लिए नायक द्वारा साधु अथवा योगी का वेश धारण करना एक चिरपरिचित कथानक रूढ़ि है । थाम्पसन के अनुसार वेश-परिवर्तन कथानक रूढ़ि की संख्या के०२३५७ है । प्राप्त होने वाला प्रिय साधारण मानव भी हो सकता है और ईश्वर भी । यह न केवल कथानक रूढ़िमात्र है, बल्कि सामान्य जन-जीवन में भी प्रेमाश्रयी शाखा के अनेक भक्तों ने योगियों का बाना धारण किया है । परब्रह्म परमेश्वर रूपी प्रिय को पाने के लिए, गृहस्थाश्रम का परित्याग कर योगी होने वाले बाबा गोरखनाथ, मत्स्येन्द्रनाथ तथा राजा भरथरी प्रसिद्ध हैं । इसी प्रकार सामान्य लोक-जीवन के प्रेम-व्यापार में भी प्रिय तथा प्रिया को प्राप्त करने के लिए योगी होने का उल्लेख लोकगीतों में मिलता है । गोपीचन्द और मैनावती से सम्बन्धित एक लोकगीत की निम्नलिखित पंक्तियों से इस कथन की पुष्टि होती है--

" तु हु तो जाहु मैना अपना ससुरवा
हमरा के का कहि जाहु रे की ।
साथे के लिहे गोपी लौटिया कान्हे के झोरिया[१]
जोगिया के भेष धरिके आइल रे की ।"

तथा भोजपुरी "बिदेशिया" की निम्नलिखित पंक्ति भी द्रष्टव्य है--

"लोहरे करम सैंया धुनिया रमैबे--
धरबे जोगिनिया का भेसरे बिदेशिया ।।"

सूफियों के प्रेमाख्यानकों में भी यह कथानक रूढ़ि बहुतायत से उपलब्ध होती है । डा० सत्येन्द्र ने, सूफियों की प्रेम गाथाओं पर विचार करते हुए स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि इन प्रेम गाथाओं की कहानियों

---

१ पं० रामनरेश त्रिपाठी :"कविता कौमुदी", भाग३, पृ० ३७५ ।

में किसी न किसी रूप में जोगी या योगी अवश्य आता है। नायक[२] ने बहुधा जोगी बनकर ही अपनी प्रियतमा को प्राप्त करने की चेष्टा की है। पंजाब की प्रसिद्ध प्रेमपरक हीर रांझा की कथा का नायक रांझा अपनी प्रेयसी से मिलने के लिए योगी का वेश धारण करता है और 'सारंगा-सदा वृज' की कहानी में सदा वृज भिखारी -योगी का वेश धारण कर सारंगा से मिलने आता है।

निर्वैच्यसुगीन हिन्दी की प्रेमपरक कहानियों में भी इस रूढ़ि का प्रयोग किया गया है। श्री नाथूराम प्रेमी की 'विचित्र स्वयम्बर' शीर्षक कहानी में अंग देश के राजा सत्यसेन की कन्या मन्दरा के रूप-गुण-श्रवणजन्य आकर्षण से आकृष्ट मिथिलाधिपति शरण सिंह भिक्षुवेश धारण कर राजसभा में पहुंचते हैं। कालीपूजन के अवसर पर बलि प्रथा को रोकने की बात कहने के परिणामस्वरूप राजा सत्यसेन ने और कहा और मन्दरा ने स्वांगधारी डाकू की उपाधि से विभूषित करते हुए ब्राह्मण वेदद्त के यहां बन्दी बना दिया, जहां दस्यु द्वारा अपहृत बहन से उसकी भेंट होती है। राज्य के कोषाध्यक्ष लाला किशनप्रसाद से उसके सतीत्व की रक्षा हेतु रात्रि के गहन अन्धकार में भिक्षु सत्यवती के साथ निकल भागा। मन्दरा ने भी उसको पकड़ने के लिए पहले से ही प्रबन्ध कर रखा था, परिणामत: संघर्ष हुआ। राजकुमारी के बाण से घायल भिक्षु जब अपनी कुटी में पहुंचा तो पीछे-पीछे मार्ग पूछती हुई राजकुमारी भी पहुंची। कुटी में पहुंच कर उपचार द्वारा अपने मन में संकल्पित स्वामी के चरणों का चुम्बन करती है कि भिक्षु ने चौंक कर पूछा—"कौन ? राजकुमारी" चरणों की दासी, जीवनसाथी इत्यादि सम्बोधनों से सम्बोधित करती हुई, आत्मसमर्पण करती है और भिक्षु वेशधारी प्रेमीशरण सिंह यह कहता हुआ कि "प्रिये, तुम्हारे पाणिग्रहण की अभिलाषा से मैंने लगभग एक वर्ष से मिथिला का सिंहासन छोड़ रखा है। भिक्षु वेश में अपने को छिपाये हुए यह

[illegible] — [illegible] : "[illegible]" पृ० [illegible]।

१ द्रष्टव्य—"मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोकतात्त्विक अध्ययन", पृ०६७

शरण सिंह जंगल और पहाड़ों में रहकर तथा नगरों में घूम-घूमकर जिस रत्न को ढूंढ़ रहा था, वह आज उसे मिल गया" रहस्योद्घाटन करता है[1]।

इसी प्रकार नवगढ़ के राजा हरिश्चन्द्र योगी का वेश धारण कर "कर गये थोड़े दिन की प्रीति" गाते हुए,कब राजकुमारी प्रभा को देखने जाते हैं । प्रथम दर्शन में ही मुग्ध होकर मन हारने वाले राजा हरिश्चन्द्र को सफलता मिलती है, परिणामत: विवाह-बन्धन में बंधकर सुखमय जीवनयापन करते हैं[2]। प्रेमचन्द द्वारा लिखित "मर्यादा की वेदी" शीर्षक कहानी में भी मन्दार के राजकुमार और झालावाड़ की राजकुमारी प्रभा के विवाह से पूर्व ही चित्तौड़ के राणा भोजराज द्वारा जब बलात् प्रभा का अपहरण कर लिया जाता है,तब मन्दार का राजकुमार साधु वेश में ही अपनी प्रेमिका तथा वाग्दत्ता प्रभा से मिलने चित्तौड़ के राजभवन में जाता है[3]।जयशंकर "प्रसाद" की प्रसिद्ध कहानी "वैराग्य" में भी आर्यमित्र अपनी वाग्दत्ता भावी पत्नी सुजाता का पता लगाकर प्राप्त करने के लिए ही भिक्षु बनता है । वह स्वयं इस बात को स्वीकार करता है,--" .... मैं केवल सुजाता के लिए ही भिक्षु बना था । उसी का पता लगाने के लिए मैं इस नील विहार में आया था । वह मेरी वाग्दत्ता भावी पत्नी है[4]।"

<u>समुद्र यात्रा : जहाज का टूटना तथा नायक-नायिका का बचना</u>

भारतीय लोककथा-कहानियों में , नायक-नायिका का समुद्र यात्रा करना, यात्रा के बीच तूफान का आना और जहाज का टूटना तथा नायक-नायिका का बच जाना,विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति हेतु अनेक बार प्रयुक्त होकर लोकप्रिय कथानक रूढ़ि बन गई है । "कथासरित्सागर" में "सुन्दर सेन और मन्दारवती" की कहानी में हंसद्वीप का राजा मन्दारदेव अपनी पुत्री मन्दारवती और उसके होने वाले पति सुन्दरसेन के जहाज के टूट जाने की दुर्घटना का समाचार पाता है[5]। बीच महोदय ने संस्कृत कथा-काव्यों की कुछ

1 द्रष्टव्य-- संग्रह एवं सम्पादनकर्ता सूर्यकान्त : "गल्पपारिजात", पृ०१३३-४३ ।
2 प्रेमचन्द : "मानसरोवर" भाग ६, "धोखा", पृ०१९३-२०१ ।
3 द्रष्टव्य-- ,, ,, "मर्यादा की वेदी", पृ०९८-११४ ।
4 ,, -- "इन्द्रजाल", पृ०११३
5 ,, -- "पेंजर -"द ओशन आफ द स्टोरी", वाल्यूम ७, पृ०१४६ ।

रूढ़ियों पर विचार करते हुए इस रूढ़ि का भी उल्लेख किया है[1]। विवेच्ययुगीन कहानीकारों ने इस रूढ़ि का भी उपयोग किया है। डा०धनीराम 'प्रेम' द्वारा लिखित 'प्रेम' शीर्षक कहानी में मंजरी अपने पति मिस्टर देसाई के साथ समुद्र यात्रा पर निकली। उसका प्रेमी माधव जहाज का कर्मचारी है। संयोग से वह भी जहाज पर ही उपस्थित है। यात्रा के तीसरे दिन जब केवल २० मील की यात्रा शेष रह गई, तभी भारी तूफान आने लगा। चारों ओर अन्धकार हो गया। वायु वेग से बहने लगी। भीषण लहरों के मध्य जहाज डगमगाने लगा। यात्रियों में हाहाकार मच गई। सभी को अपने-अपने प्राणों को बचाने की लगी थी। भयभीत मंजरी भी एक ओर खड़ी थी कि माधव ने उसे अपने साथ चलने के लिए कहा। मंजरी के इनकार करने पर भी वह "मैं तुम्हें छोड़ नहीं सकता" कहता हुआ, उसे गोद में उठाकर समुद्र में कूद पड़ा और नाव के सहारे आगे बढ़ा किन्तु नाव भी तूफान में पड़कर टुकड़े-टुकड़े हो गई। माधव तैरता हुआ अन्ततोगत्वा एक छोटे से द्वीप में अपनी प्रेमिका सहित सुरक्षित पहुंच जाता है[2]।

सौतिया डाह तथा विमाता द्वारा सौत की सन्तान के प्रति विद्वेष

लोककहानियों में किसी एक व्यक्ति की दो पत्नियों के मध्य द्वेष-भाव और उनके द्वारा उत्पन्न गृह-कलह की घटनाओं का भी उल्लेख मिलता है। लोकजीवन में भी ऐसे उदाहरण देखने को मिल ही जाते हैं। विवेच्ययुगीन हिन्दी कहानी में भी इस कथानक रूढ़ि का प्रयोग यत्र-तत्र हुआ है। सन्तानहीन पं० देवदत्त का दूसरा विवाह उनकी प्रथम पत्नी गोदावरी के प्रयत्न का ही फल था। उसने अपने गांव में जाकर इस कार्य को निर्विघ्नपूर्ण कराया था। किन्तु नई बहू गोमती घर आ गई तो वह गाती-बजाती प्रसन्न रहने लगी, किन्तु उसे क्या पता था कि शीघ्र ही ~~इस गाने-बजाने~~ तथा इस गाने बजाने और प्रसन्नता के बदले रोना पड़ेगा। कुछ दिन तक तो वह सौत

१ ए०बी० कीथ : "ए हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर", पृ०३४५।

२ द्रष्टव्य--"वल्लरी", पृ०११७-१२५।

पर शासन करती रही, किन्तु यह शासन गोमती को खलता था, फलत: ज़रा-ज़रा सी बात पर तकरार होने लगा और कोई छोटी-सी बात वृहद् रूप धारण करने लगी । घर की शान्ति भंग हो गई और पारिवारिक सुख भी नष्ट हो गया । इन सब का परिणाम यह हुआ कि अपने ही घर में गोदावरी अब पदच्युता रानी की भाँति रहने लगी, फिर भी गोदावरी की ईर्ष्याग्नि प्रबल होती गई और एक दिन ईर्ष्या, निष्ठुरता तथा नैराश्य की सतायी हुई अबला गोमती गंगा की गोद में शरण लेने के लिए कूद पड़ी, लहरें झपटीं और उसे निगल गयीं[1] । इसप्रकार सौतिया डाह की ईर्ष्याग्नि शान्त हुई ।

विमाता द्वारा सौत के सन्तान के प्रति विद्वेष तथा उसके प्रति नाना प्रकार के कुचक्रों का आयोजन भी लोककहानियों की एक अत्यधिक प्रचलित कथानक रूढ़ि है । इस रूढ़ि का भी प्रयोग प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी कहानी में यत्किंचित् परिवर्तन एवं परिवर्धन के साथ किया गया है । इस सम्बन्ध में स्वयं प्रेमचन्द का कथन है,--`सौत का पुत्र विमाता की आँखों में क्यों इतना खटकता है? इसका निर्णय आज तक किसी मनोभाव के पण्डित ने नहीं किया । हम किस गिनती में हैं[2] ।' लाला देवप्रकाश की द्वितीय पत्नी देवप्रिया, अपने सौत के पुत्र सत्यप्रकाश को घृणा की दृष्टि से देखती है । अबोध शिशु ने नई माँ का आँचल पकड़, अम्माँ ! कहा कि वह रुष्ट होकर बोली, मुझे अम्माँ मत कहो । नाना प्रकार के कष्टों को सहता हुआ जब सत्यप्रकाश नौकरी करने लगता है तो माता-पिता की सहायता की दृष्टि से रुपया भेजता है । सौतेली माँ की दृष्टि में यह भी कोई चाल है, वह अपने सौतेले भाई को भी बहुत चाहता है, लेकिन माता इसे ढोंग ही समझती है । इन सब का परिणाम यह होता है कि वह संसार से उदासीन हो जाता है[3] । सौत के पुत्र सत्यप्रकाश से जलती हुई विमाता एक दिन संसार से चल बसती है । `सत्यासत्य' शीर्षक कहानी में, छोटी रानी के कलेजे में जब अचानक पीड़ा उठी, तो वह लोटन कबूतर की तरह लोटने लगी । राजा के पूछने पर कि क्या इस प्रकार की पीड़ा पीहर में भी कभी

---

१ प्रेमचन्द : `मानसरोवर' भाग ८, `सौत', पृ०२५७-२५८ ।
२. ,, : ,, ,, ६, `सुहाग', पृ०१७५ ।
३ ,, : ,, ,, ,, पृ०१७३-१८२ ।

हुई थी ? रानी ने बड़े कष्ट से कराहते हुए उत्तर दिया --'नहीं ।' एक ज्योतिषी ने मेरा हाथ देखकर कहा था कि पैंतीस वर्ष की आयु में तेरे हृदय में पीड़ा उठेगी और अपनी सौत के एक लौते पुत्र के कलेजे पर खड़ी होकर स्नान करने से पीड़ा शान्त होगी, अन्यथा तेरी मृत्यु हो जायगी । राजा--'हाय, राजकुमार को ले जाओ' के अतिरिक्त कुछ कह न सके, किन्तु पास ही में खड़े राजकुमार ने अपनी तोतली बोली में कहा--' मैं कलेजा दूंगा । छोटी मइया को जल्दी आराम करवा दो ।' मन्त्री ने नन्हें राजकुमार को उठा लिया और वधिक को सौंप दिया, किन्तु वधिक ने राजकुमार को छिपाकर, किसी अन्य जीवधारी का सोने के कटोरे में, खून में डूबा हुआ नन्हा-सा कलेजा प्रस्तुत कर दिया । छोटी रानी हंसती हुई उठी और[1] उसे पैरों से रौंदती हुई स्नान करने लगी । इस प्रकार उसकी पीड़ा शान्त हो गई ।

इतना ही नहीं, बल्कि ईर्ष्याग्नि में जलती हुई विमाता सौतेले पुत्र को घर से निकालने के लिए, उसे लांछित करने में भी संकोच का अनुभव नहीं करती । ईश्वरी प्रसाद शर्मा द्वारा लिखित "यतो धर्मस्ततो जय:" शीर्षक कहानी में विमाता यदुनन्दन के ऊपर अपने साथ अनुचित व्यवहार करने की चेष्टा का लांछन लगाती है, परिणामत: मुंशी रघुनन्दन ने बिना कुछ कहे-सुने यदुनन्दन की गर्दन में हाथ डालकर उसे बरामदे से नीचे ढकेलते हुए कहा, --' चला जा ! चाण्डाल कहीं का , अपना काला मुंह हमारे सामने से दूर कर । तुझे देखने से भी पाप लगता है'। यह हाल सुनकर सभी लोग दंग रह गये । उसपर छि:-छि:, थू-थू की बौछार होने लगी। बेचारा नवयुवक[2] ऐसी लज्जाजनक एवं कलंक की बात सुनकर व्याकुल हो उठा । परन्तु कुछ कर न सका ।

यही नहीं, बल्कि पं० इलाचन्द्र जोशी की 'अपत्नीक' शीर्षक कहानी का पात्र चन्द्रशेखर तिवारी विमाता के रूखे व्यवहार के कारण ही भारी आलि से दूर भागने लगता है और दृढ़ निश्चय कर लेता है कि विवाह ही न करेगा । बार-बार विवाह करने से इनकार करने पर भी जब पिता जी ने

---

१ मोहनलाल महतो 'वियोगी' : 'पंजूह रैखा' -- 'सत्यासत्य', पृ०४८-५०५५ ।

२ पुष्पदन्त -- 'गल्पमाला', पृ०६८-७७ ।

उसका विवाह तय कर दिया तो तिवारी जी घर छोड़कर भाग निकले और अन्त में शर्मा जी की पत्नी के स्नेहसिक्त व्यवहार ने उन्हें पुन: रसिक बनाया ।[1]

विमाता द्वारा प्रणय-निवेदन

सौतेली माँ द्वारा पुत्र से प्रणय-निवेदन और असफल होने पर प्रतिकार की भावना से उसपर बलात्कार का दोषारोपण, नाना प्रकार के कष्टों से पीड़ित करने की कथानक रूढ़ि लोककथा-कहानियों की ही है । थाम्पसन के वर्गीकरण में यह रूढ़ि टी०४८१.४ पर अंकित है । महाराजा अशोक की दूसरी पत्नी तिष्यरक्षा वसन्तोत्सव में अपने सौतेले पुत्र को देखते ही मुग्ध हो जाती है । राजकुमार जब लौटने लगा तो विमाता मार्ग रोककर खड़ी हो जाती है, किन्तु पुत्र बिना कुछ कहे-सुने सिर झुका लेता है । क्षुब्ध हृदया रानी महल में तो चली गई, किन्तु प्रतिहिंसा की भावना उसके हृदय में जागृत हो गई । संयोग से महाराजा बीमार पड़े तथा रानी के उपचार से स्वस्थ भी हो गये । एक दिन स्वामी को प्रसन्न जान उसने सात दिन के लिए शासन की बागडोर अपने हाथ में ले ली और फिर राजाज्ञा द्वारा अपनी सौतेली सन्तान को दण्ड देने के लिए आदेश प्रसारित कर दिया कि उसे तत्काल नेत्रहीन करके देश से निष्कासित कर दिया जाय । राजाज्ञा का पालन किया गया । नेत्र हीन सौत-पुत्र अपनी अर्धांगिनी के साथ दर-दर भटकने लगा ।[2]

दाहनिया सास

हिन्दी लोकगीतों में 'दाहनिया सास' कथानक रूढ़ि का एक अच्छा उदाहरण है, जिसका प्रयोग द्विवेदीयुगीन हिन्दी कहानी में भी किया गया है । यद्यपि धर्मशास्त्रों तथा काव्यग्रन्थों में पुत्रवधू को सास की आज्ञाकारिणी होना और उसकी सेवा में तत्पर होना लिखा है तथापि लोकगीतों और लोक-कहानियों में इसके ठीक विपरीत स्थिति पाई जाती है । माता अपने पुत्र को प्राणों से अधिक स्नेह करती है । उसके जन्म में असह्य प्रसव-पीड़ा को सहती

१ द्रष्टव्य— सम्पा० विनोदशंकर व्यास : 'मधुकरी', भाग१, पृ०२७-४३ ।
२ श्री नाथूराम 'प्रेमी' : 'गल्प मारियाल', संपा- सूर्यकान्त — 'कुणाल', पृ०१६६ ।

है । भूखी-प्यासी रहते हुए, नाना प्रकार के कष्टों को सहकर, उसका पालन-पोषण कर बड़ा करती है, फिर भी उसकी ममता कम नहीं होती । इस प्रकार कष्ट सहते हुए उसकी भी आकांक्षा होती ही है कि पुत्र भी उससे इसी प्रकार प्रेम करेगा, परन्तु पुत्रवधू के आते ही स्थिति बदल जाती है । पुत्र का प्रेम जो अब तक मात्र माता के प्रति ही था वो असंतुलित भागों में विभक्त हो जाता है । कभी-कभी तो स्त्री के आते ही पुत्र माता का अनादर और तिरस्कार भी करने लगता है । उसकी पत्नी अर्थात् पुत्रवधू सास के विरुद्ध पति का कान भी भरती रहती है, जिससे वह माता के प्रति उदासीन हो जाता है । सास भी अपने प्रति पुत्र की उदासीनता और निरादर का मुख्य कारण पुत्रवधू को ही समझने लगती है । यही कारण है कि दोनों के मध्य आये दिन झगड़ा हुआ करता है और सास पुत्रवधू को नाना प्रकार का कष्ट देने लगती है । प्रेमचन्द के शब्दों में --`कितनी ही दयालु, सहनशील, सतोगुणी स्त्री हो, सास बनते ही मानो ब्यायी हुई गाय हो जाती है, जिसे पुत्र[1] से जितना ही ज्यादा प्रेम है, वह बहू पर उतनी ही निर्दयता से शासन करती है ।`

ठाकुर श्रीनाथ सिंह की `रात की बात` शीर्षक कहानी में माधोसिंह की पत्नी सुमना की सास बहू पर बड़ा अत्याचार करती है, किन्तु पुत्र नारायण चूं तक नहीं करता । रात के ग्यारह बजे जब घर के सभी लोग खा-पी चुके तब पुत्रवधू खाने बैठी । उसने मुंह में कौर डाला ही था कि सास रसोईघर के सामने आ डटी और बोली--`खाने लगी । पेट न ठहरा भाड़ हो गया जरा देर और ठहर जाती तो क्या होता ? मदनपुर के ठाकुर साहब आये हैं, अब आखिर फिर चूल्हा जोतना पड़ेगा ।` बेचारी बहू क्या करती, थाली लेकर बाहर निकल आई, किन्तु सास चुप न हुई और जो-जी मुंह में आया बकती गई । कभी-कभी जब वह व्यंग्य वचन एवं अपशब्दों से ही सन्तुष्ट नहीं होती तब दो-चार चांटे भी जड़ देती है । नित्यप्रति की किचकिच को दूर करने की दृष्टि से[2], अन्ततोगत्वा एक दिन नारायण ने [illegible] को पत्र लिख भेजा कि उसे मायके भेज दे ।

---

१ प्रेमचन्द : `मानसरोवर` भाग२, पृ०२८६ ।

२ उपन्यास --`[illegible]`, पृ०[illegible] ।

प्रेमचन्द की 'शान्ति' शीर्षक कहानी में जब बहू के प्रत्येक कार्य में सास नुक्स निकालने लगती है, तब बहू भी कमर कसकर तैयार हो जाती है । यद्यपि वह अपने सास-ससुर का आदर करती है,लेकिन जब वह सोचती है कि मेरा पति सैकड़ों रुपये महीने कमाता है, तो घर में चेरी बनकर क्यों रहूं? अपनी इच्छा चाहे जितना काम करूं पर ये लोग मुझे आज्ञा देने वाले कौन होते हैं ? ऐसी स्थिति में आत्माभिमान की मात्रा बढ़ने लगती है और फिर बहू भी सास की बात अनसुनी करने लगती है । फलस्वरूप सास बोलना ही बन्द कर देती है और महरियों,पड़ोसिनों तथा ननदों के आगे बहू का उपहास करने लगती है[1]। इसके विपरीत यदि अधिक कष्ट सहिष्णु बहू होती है,तो उसकी मृत्यु भी हो जाती है । श्रीमती सुशीला देवी द्वारा लिखित 'सास बहू की कहानी' शीर्षक कहानी में सास द्वारा पुत्रवधू पर भयंकर अत्याचार किया जाता है,कष्ट सहिष्णु बहू सास का आदर करती है,इसीलिए कुछ कहती नहीं और एक दिन कष्ट सहते-सहते इस संसार से भी चल बसती है[2]।

अभिज्ञान या सहिदानी की परम्परा

अभिज्ञान का अर्थ पहचान या शिनाख्त होता है और सहिदानी का निशानी । किसी पूर्वपूर्व घटना का स्मरण कराने अथवा परस्पर बिछुड़े हुए दो प्राणियों के बीच मिलन कराने के लिए, लोककथा-कहानियों में इस कथानक रूढ़ि का उपयोग बहुतायत से किया गया है । इस रूढ़ि के अन्तर्गत पहचान के लिए पात्रविशेष के किसी अंग पर अंकित किसी चिन्ह विशेष अथवा निशानी के रूप में किसी उपहार वस्तु का अवलम्ब ग्रहण किया जाता है । भारतीय साहित्यकारों ने भी इस कथानक रूढ़ि का उपयोग यथावसर किया है । उदाहरणार्थ महाकवि कालिदास कृत "अभिज्ञान शाकुन्तल" में धीवर द्वारा प्राप्त राजकीय अंगूठी को देखकर ही महाराजा दुष्यन्त को शकुन्तला का स्मरण हो जाता है ।प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी कहानी में भी इस कथानक रूढ़ि का विविध रूपों में यथास्थान प्रयोग किया गया है । सुभद्राकुमारी चौहान की 'अभियुक्ता' शीर्षक कहानी में चोरी के अभियोग

---

१ प्रेमचन्द--'मानसरोवर' भाग ७,पृ०८५

में चान्दनी मुन्नी ने जंजीर में लगे हुए लाकेट का ढक्कन खोलकर यह सिद्ध कर दिया कि जंजीर उसी की है और लाकेट के अन्दर छिपी हुई फोटो उसके पिता की है । मजिस्ट्रेट मिश्रा को इस जंजीर के लाकेट में छिपी हुई अपनी ही फोटो को देखकर[1] ही अपने विद्यार्थी जीवन की प्रेमिका का स्मरण होता है, जिसे वह भूल गए थे । आचार्य चतुरसेन शास्त्री की कहानी 'बहिन ! तुम कहाँ ?' में भी टामस अपनी बहन को उसके वक्षस्थल में छिपी हुई फोटो से ही पहचानता है । वैसी ही फोटो टामस के पास भी थी जिसे सैनिक स्कूल में[2] भर्ती होने के समय जाते हुए उसकी माँ ने दोनों को उपहारस्वरूप प्रदान किया था । इसी प्रकार 'पतितपावन' शीर्षक कहानी में अपने परित्यक्त अबोध पुत्र को उसकी भुजा पर बंधी हुई सोने[3] की तावीज को देखकर उसकी माँ पहचानती है और मूर्छित होकर गिर पड़ती है ।

विवेच्ययुगीन कहानीकारों ने दो बिछुड़े हुए व्यक्तियों का मिलन कराने के लिए अंगविशेष पर अंकित चिन्हविशेष का भी प्रयोग किया है । डाकू सरदार नाहर सिंह को प्राणदण्ड देने के पश्चात् जब उसकी अन्तिम अभिलाषा के विषय में पूछा जाता है, तब वह अपने सरदार द्वारा मृत्यु के समय दी गई एक डायरी अपने जेब से निकाल कर प्रस्तुत करता है, जिसे अपनी मृत्यु के पूर्व महाराज को देने के लिए कहता है । डायरी के पृष्ठों पर लिखे हुए विवरण के द्वारा महाराज को वास्तविकता का ज्ञान होता है कि यह तो बचपन में डाकुओं द्वारा अपहृत मेरा पुत्र प्रताप है । राजकुमारी रेखा के शरीर पर अंकित राज-चिन्ह से नाहर के कंधे पर अंकित राज-चिन्ह से मिलाया जाता है । दोनों का चिन्ह मिल जाता है, जिससे महाराज के मन में विश्वास[4] उत्पन्न होता है और वे उसे राज-मुकुट पहनाते हैं और प्रजा हर्ष-ध्वनि करती है । प्रेमचन्द की कहानी 'कातिला' में भी जब हुरया अपने

---

१ द्रष्टव्य--'उन्मादिनी', पृ०४१-५१ ।

२ द्रष्टव्य--'खोया हुआ शहर', पृ०२३६-२४८ ।

३ विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' : 'चित्रशाला'-'पावनपतित', पृ०२३५-५८ ।

४ माधवी शर्मा : 'मालतीमाला'-'राखी', पृ०१७४-७६ ।

पिता के हत्यारे की हत्या करने के लिए उसकी छाती पर सवार होकर अपना छुरा ऊपर उठाती है, तब हत्यारे के हाथ पर अंकित खानदानी निशान सर्प को देखकर ही पहचानती है कि वह उसका बिछुड़ा हुआ भाई नाज़िर है। फलस्वरूप वह 'तू मेरा खोया हुआ बड़ा भाई नाज़िर है' कहती हुई उसकी छाती से उतर जाती है[1]। इसी प्रकार 'प्रसाद' की 'छाया' शीर्षक कहानी में भी छाया अपने परित्यक्त पुत्र को उसकी दक्षिण भुजा के अंकित चिन्ह से ही पहचानती है, जिसे चतुर वैद्य ने अंकित किया था और जिसकी जानकारी उसे अन्य द्वारा कहे गए शब्दों से मिलती है[2]। थामसन के वर्गीकरण के अनुसार इस कथानक रूढ़ि की संख्या एच०५० और एच०५१ भी है। इसी रूढ़ि के उचित प्रयोग द्वारा उपर्युक्त कहानियों में परिवर्तन होता है।

सत्यक्रिया

सत्यक्रिया अथवा सतकिरिया का अर्थ होता है--
किसी निश्चित प्रयोजन की सिद्धि के लिए किसी व्यक्ति द्वारा सत्यवचन की घोषणा। उदाहरण के लिए कोई पात्र यह कहे कि यदि मैंने जीवन में किसी का अपकार न किया हो, तो मेरा पुत्र जीवित हो जाय। इस कथानक रूढ़ि का लोककथाओं में यथावसर अत्यधिक प्रयोग किया जाता रहा है, जो वस्तुत: अलौकिक तत्व से सम्बद्ध है। थामसन के वर्गीकरण में इस कथानक रूढ़ि की संख्या टी०/एच०१.४ दी गई है। द्विवेदीयुगीन कहानी में भी इसका प्रयोग यथास्थान कहानीकारों ने किया है। श्री नाथूराम 'प्रेमी' द्वारा लिखित 'कुणाल' शीर्षक कहानी में युवराज कुणाल की नेत्रहीन देखकर महाराज अशोक कुणालदेव से जब यह कहते हैं कि ऐसे सुन्दर नेत्र जिसके नष्ट किए हैं, क्या वह अपने नेत्र अपास रखकर जीवित रह सकता है? तब आंसू देता हुआ युवराज कुणाल मधुर ध्वनि में कहता है--'मेरे नेत्रों को निकलवाकर यदि माता को संतोष हुआ है तो उनके इस संतोष से ही मैं फिर से नेत्र पा लूंगा और उसी समय उसे

---

१ द्रष्टव्य--'मानसरोवर' भाग ७,पृ०१९८-२०३ ।

२ द्रष्टव्य --'इन्द्रजाल',पृ०११०-११९ ।

भेंट प्राप्त हो जाती है[1]। इसी प्रकार श्री चित्रकूट की बुढ़िया कुसुम नाम से लिखने वाली किसी लेखिका की 'सुभद्रा कुमारी' शीर्षक कहानी में पतिपरायणा कुमारी कड़ाहे के पास जाकर शपथपूर्वक कहती है कि यदि इस पागल को छोड़कर और किसी पुरुष से मेरा संसर्ग न हुआ हो, तो तप्त तेल मेरे लिए शीतल सलिल के समान हो जाय। यह कहते ही तप्त तेल शीतल जल के समान हो जाता है[2]।

<u>विश्वविपत्तियों से सम्बद्ध कथानक रूढ़ियाँ</u>

विश्व विपत्तियाँ-- महामारी, भूकम्प, बाढ़ और अकाल इत्यादि से सम्बन्धित कथानक रूढ़ियों को थाम्पसन महोदय ने सी० १००० से सी० १०९९ संख्या के अन्तर्गत वर्गीकृत किया है। द्विवेदीयुगीन कहानीकारों ने उपर्युक्त कथानक रूढ़ियों का आश्रय ग्रहण कर कहानियों की रचनाएं की हैं और इन्हीं के आधार पर घटनाक्रम को आगे भी बढ़ाया है।

<u>भूकम्प</u>-- श्रीमती शिवरानी देवी द्वारा लिखित 'विध्वंस की होली' शीर्षक कहानी का ताना-बाना भूकम्प के आधार पर ही बुना गया है। निर्मलचन्द्र और उमा होलिकोत्सव मनाने के सम्बन्ध में चर्चा कर ही रहे थे कि एकाएक धरती पत्ते के समान हिलने लगी। बड़े जोरों का भूकम्प आ गया। कहाँ दम्पति में विनोद हो रहा था और कहाँ त्राहि-त्राहि मच गई। निर्मलचन्द्र तीनों बच्चों को लेकर बढ़े ही थे कि आँगन की धरती फट गयी और चारों उसी में समा गये। उमा कमरे से हाय मार कर दौड़ी थी कि उसके ऊपर दीवाल गिर पड़ी। बालचन्द्र बाहर खेल रहा था। लगभग आधे घण्टे तक ऐसा अन्धकार छाया हुआ था कि आदमियों के हाय-हाय के सिवाय और कुछ न सुनाई देता था। जब गर्द शान्त हुई तब लोग दौड़े और मलबे के नीचे से मूर्छित अवस्था में उमा को निकाला। उसका पुत्र निर्मल बच रहा, जिसको हृदय से लगाती है और घूम-घूम कर लोगों को उत्साहित करती हुई होली का उत्सव मनाती है[3]। इसी प्रकार 'भूकम्प आया' शीर्षक

---

१ द्रष्टव्य-- पं० [illegible] 'पारिजात', पृ०२७३।
२ ,, --'[illegible]', संवत् १९७२, पृ०७२।
३ ,, --'चाँद', वर्ष ४, अंक ५, [illegible] १९२६, पृ०२६-२८ और 'कौमुदी', पृ०१८-२५।

कहानी में भी इसी रूढ़ि का आश्रय लेकर कथानक का विकास किया गया है । मरणासन्न ठकुराइन के समक्ष ठाकुर दूसरा विवाह न करने की प्रतिज्ञा करते हैं और एकमात्र पुत्री रनिया के साथ जीवन व्यतीत करने लगते हैं । भाग्य से ठाकुर साहब भूकम्प में स्वर्गवासी होते हैं और संसार में रनिया अकेली रह जाती है । गांव के पुरोहित के पुत्र मुरारी से उसकी घनिष्ठता बढ़ती है, किन्तु एक दिन जब रनिया अपनी खोई हुई गाय ढूढ़ रही थी, कि सामने से मुरारी आता हुआ दिखाई पड़ा । अचानक बड़े जोर का शब्द हुआ और सारी पृथ्वी कांपने लगी और कुछ क्षण में मुरारी ने देखा कि "एक गड़गड़ाहट के साथ उसका सारा गांव पृथ्वी से लग गया" । रनिया बदहवास चिल्लाती हुई- धूप-धूप रोकर भागने लगी । मुरारी हाय राम कहकर आगे बढ़ा परन्तु पहुंचने पर जो दृश्य उसने देखा उसी हृदय फटा जाता था । वह अनाथ हो गई और मुरारी की भी छोटी-छोटी बहनें बच गयीं । इन लोगों ने पुन: अपना जीवन प्रारम्भ किया।[1] इसी कथानक रूढ़ि के प्रयोग द्वारा कथा-लेखिका ने कहानी को आगे बढ़ाने का माध्यम बनाया । श्री प्रभाकर दीक्षित ने "प्राणों का प्रलय" शीर्षक कहानी का[2] ताना-बाना इसी कथानक रूढ़ि के आधार पर बुना है ।

बाढ़ तथा प्रलय

बाढ़ और प्रलय जैसी विश्व-विपत्तियों के आधार पर भी कहानियों का निर्माण विवेच्यकालीन कहानीकारों ने किया है । बाढ़ किसी एक नदी-विशेष में आता है और उससे क्षेत्र विशेष प्रभावित होता है, किन्तु प्रलय में सम्पूर्ण विश्व निमज्जित हो जाता है । प्रकृति द्वारा प्रदत्त इन विपत्तियों से कहानीकार कहानियों में अभिलषित मोड़ उत्पन्न करता है । पण्डित ज्वालादत्त शर्मा द्वारा लिखित "मथीराम की मां" शीर्षक कहानी में इस रूढ़ि का प्रयोग करके कहानी को आगे बढ़ाया है । विधवा मथीराम की मां अपने पुत्र के साथ सो रही थी कि दामोदर नदी में अचानक बाढ़ आ गई । माता अपने पुत्र मथीराम

---

१ कुमारी सुशीला आगा :("संपा)"अतीत के चित्र":"प्रारम्भ वाचा",पृ०५३-६० ।
२ सम्पादक--डॉ० रायकृष्णदास --"नई कहानियां",पृ०३३ ।

आम्र वृक्ष[1] की डाली पकड़ा कर रक्षा करती है, किन्तु स्वयं लोल लहरियों में बह जाती है । इसी प्रकार रात्रि में सभी सो रहे थे कि गौरी ने महेशचन्द्र को जगाते हुए कहा--'उठो तो, यह काहे का भयंकर शब्द सुनाई दे रहा है । घर में भी कटि भर फुट भर पानी भर गया है । कल बाढ़ के बारे में जो डौंडी हुई थी, वह सच निकली क्या नदिया की मेंड़ टूट गई, आंख मींचते खाट के नीचे उतरे । कमरे में सचमुच फुटभर पानी भरा हुआ था और भरता ही आ रहा था, घर के भीतर लगभग आधा बांस पानी भर गया । गौरी उसमें डूबने[2] लगी । उसका शरीर अवसन्न हो गया । पति-पत्नी और पुत्र सभी बिछुड़ गये ।' कथाकार ने इस रूढ़ि के माध्यम से कथानक को आगे बढ़ाया है और अन्ततोगत्वा भाग्य से सभी को मिलाया है, किन्तु महेश की माँ का पता नहीं चलता ।

बाढ़ का ही दूसरा रूप प्रलय का होता है । प्रलयकाल में सबकुछ जलमय हो जाता है । बाबू जयशंकर प्रसाद की 'प्रलय' शीर्षक कहानी में इसी रूढ़ि का प्रयोग किया गया है, जिसका आश्रय लेकर सम्पूर्ण कहानी का ताना-बाना बुना गया है । हिमावृत चोटियों की श्रेणी, अनन्त आकाश के नीचे क्षुब्ध समुद्र । उपत्यका की कन्दरा में, प्राकृतिक उद्यान में खड़े हुए युवक-युवती प्रलय पर विचार-विमर्श कर रहे थे । युवक ने कठोरतापूर्वक कहा, 'अब यहीं से यह लीला देखेंगे ।' सामने की जलराशि आलोड़ित होने लगी । असंख्य जलस्तम्भशून्य नापने को ऊंचे चढ़ने लगे । कण-जाल से कुहासा फैला भयानक ताप पर शीतलता हाथ फेरने लगी और अन्ततोगत्वा पृथ्वी जलमय हो गई ।' ..... भयानक-शीघ्र दूसरे क्षण असह्य ताप, वायु के प्रचण्ड झोंकों में एक-के-बाद-दूसरे की अद्भुत परम्परा, घोर गर्जन, ऊपर कुहासा और वृष्टि, नीचे महार्णव के रूप में अनन्त द्रवराशि, पवन उन्मादी गतियों से समस्त पंचमहाभूतों को आलोड़ित कर उन्हें तरल परमाणुओं के रूप में परिवर्तित करने के लिए तुला हुआ है । अनन्त परमाणुमय शून्य में एक

---

१ पण्डित ज्वालादत्त शर्मा : 'मधुमंजरी' --'अनीराम की माँ', पृ०३०-३५ ।

२ बाबू प्यारेलाल गुप्त : 'जलप्लावन' --'इन्दु', कला ५, खण्ड १, किरण १, जनवरी १९१४, पृ०८-१६ ।

वटवृक्ष केवल एक कुंठित शृंग के सहारे स्थित है । प्रभंजन के प्रचण्ड आघातों से सब अदृश्य है । एक डाल पर वही युवक और युवती बैठे हुए प्रलय-दृश्य[1] देख रहे हैं । युवक के मुखमण्डल के प्रकाश से ही आलोक है, युवती मूर्छितप्राय है ।

महामारी

विवेच्ययुगीन कहानी में महामारी विषयक कथानक रूढ़ि का भी प्रयोग हुआ है । कहानीकार इसी आधार पर कहानी का निर्माण करता है और विविध प्रकार की घटनाओं का संयोजन । पिता की बीमारी का समाचार पाकर कामता तुरन्त घर आया, परन्तु वह उनका मुख न देख सका । संस्कार करने के लिए जब वह नदी के किनारे पहुंचा, तो लोगों ने देखा कि यत्र-तत्र दुर्गन्धपूर्ण शव पड़े हुए हैं । गिद्ध, कुत्तों और कौवों में द्वन्द्व-युद्ध हो रहा है । मानव शरीर की यह दुर्दशा देखकर सभी सिहर उठे । किसी प्रकार पिता की अन्त्येष्टि क्रिया करके कामता घर लौटा, तो अपनी अबला भार्या को भी अस्वस्थ पाया । दूसरे दिन प्रातःकाल उसका भी स्वर्गवास हो गया । कामता के हृदय में न जाने कैसा विचार उत्पन्न हुआ कि वह सब कुछ छोड़कर न जाने[2] कहाँ चला गया । दिन व्यतीत होते गये, किन्तु उसका कहीं कुछ पता नहीं चल सका । इसी प्रकार प्रेमचन्द की 'उपदेश' शीर्षक कहानी में भी इस रूढ़ि का प्रयोग हुआ है । एक बार प्रयाग में प्लेग का प्रकोप हुआ । शहर के रईस लोग निकल भागे, किन्तु बेचारे गरीब कुत्तों की भांति छटपटाकर मरने लगे । 'सोशल सर्विस लीग' वाले भी गायब हो गये । गरीबों के घरों में मुर्दे पड़े हुए हैं, बाजार बन्द हैं, परिणामतः भोजन के लिए अनाज भी नहीं मिल पाता । सेवाकार्य के लिए जाते हुए युवकों के साथ शर्मा जी ने भी चलने की हामी भरी और सेवाकार्य रत शर्मा जी के स्वभाव में कहानीकार ने परिवर्तन दिखाया[3] । 'मंत्र'[4] शीर्षक कहानी में इस रूढ़ि का उल्लेख है तथा सुभद्राकुमारी चौहान

---

1 जयशंकर 'प्रसाद' : 'प्रतिध्वनि'--'प्रलय', पृ०६५-७१ ।

2 भगवतीप्रसाद वाजपेयी : 'हिलोर'--'आत्मघात', पृ०१७४-१७७ ।

3 प्रेमचन्द : 'मानसरोवर' भाग ८--'उपदेश', पृ०२८०-२८५ ।

4 ,, : ,, भाग ५--'मंत्र', पृ०५२ ।

की 'नारी-हृदय'[1] तथा हरदयाल मोंगी की 'कल्लू[2] भगत' कहानी में भी इस रूढ़ि का प्रयोग हुआ ही है, इसके साथ-ही-साथ पण्डित मनोहरदास चतुर्वेदी द्वारा लिखित 'मिस्टर अपूर्व सिंह' शीर्षक कहानी का प्रारम्भ भी इसी प्रकार के वातावरण में होता है । 'पाठक मैं आपको उन दिनों का ध्यान दिलाना चाहता हूं, जिन दिनों भारतवर्ष में प्लेगरूपी महामारी से सबसे प्रथम ही प्रथम कम्पायमान हुआ था । लाखों मनुष्य प्रतिदिन काल के गाढ़े मुख में घुसे चले जा रहे थे । सारे भारत में हाहाकार मच रहा[3] था, लोग अकालमृत्यु से मरते चले जाते थे एक और नगर-के-नगर उजड़ गये थे ।' और इसी रूढ़ि का प्रयोग करके डा० धनीराम 'प्रेम' ने अपनी 'प्रेम' शीर्षक कहानी में नायक माधव को सेवाव्रती बनाया है । उसके इसी सेवाव्रत को देखकर धन के लोभ में भटकती हुई उसकी प्रेमिका मंजरी अपना प्रेम उसके चरणों में अर्पित करती है[4] ।

अकाल

विविध प्रकार की लोककथाओं एवं पुराण कथाओं में अकाल का वर्णन भी पाया जाता है, जिसके आधार पर घटनाओं का विकास होता है । अनेक बार अनेक कहानियों में अकाल का वर्णन होने से यह लोकप्रचलित कथानक रूढ़ि[6] का[7] रूप ग्रहण कर बैठा[8] है । विशेषकर प्रसाद की[5] 'पाप की पराजय', 'अभिष्ट लोक', 'शेख बाबा' और 'पेट की ज्वाला' शीर्षक कहानियों में इसी रूढ़ि का प्रयोग हुआ है ।

---

१ द्रष्टव्य— 'उन्मादिनी', पृ० ६१ ।

२ ,, — 'हंस', वर्ष ८, अंक १२, सितम्बर, १९३८ई०, पृ० ११२० ।

३ ,, — 'इन्दु', कला ५, खण्ड२, किरण ३, सितम्बर१९१४ई०, पृ०२३२-२३७ ।

४ ,, — 'वल्लरी', पृ०२२१-२२४ ।

५ ,, — 'प्रसाद' : 'प्रतिध्वनि', 'पाप की पराजय', पृ०२३-२८ ।

६ ,, — 'प्रेमचन्द : 'मानसरोवर भाग८', पृ०२५१ ।

७ ,, — राहुल सांकृत्यायन : 'सतमी के बच्चे', पृ०७७-९८ ।

८ ,, — [illegible] 'दिव्य' : 'हंस', वर्ष१, अंक २, नवम्बर१९३०ई०, पृ०२२ ।

मृतात्मा का दिखाई पड़ना : बुलाना तथा बातचीत करना

लोककथा-कहानियों में मृतात्मा का दिखायी पड़ना प्रायः एक साधारण घटना है । प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी कहानी में इस कथानक रूढ़ि का विविध रूपों में अत्यधिक प्रयोग हुआ है । श्री प्रतापनारायण श्रीवास्तव द्वारा लिखित `प्रेम-संकट` कहानी में मरणासन्न चन्द्रमाप्रसाद अपनी सुन्दरी का भार अपने मित्र रामशंकर को सौंपकर चल बसे । रामशंकर अपने मित्र की पत्नी को माता के रूप में देखता है, किन्तु सुन्दरी के मन में वासना का उदय होता है । वासना से अभिभूत वह एक दिन लोक-लाज का परित्याग कर उन्मादिनी की भांति रामशंकर को अपने बाहुपाश में आबद्ध करने का प्रयास करती है, किन्तु रामशंकर ने उसे बलपूर्वक दूर छिटकते हुए कहा,--`भाभी ! बस, तुम्हारा यहां तक अधःपतन हो चुका है । छिः, मेरी प्रतिज्ञा झूठी न करवाओ । ओह ! देखो,....आंखें खोलकर देखो, वह कौन है ? सुन्दरी ने देखा कि खिड़की से चन्द्रमाप्रसाद झांक रहे हैं । उसने अपनी आंखों का भ्रम समझा । आंखें मलकर उसने फिर से देखा, वही मूर्ति अब भी वहां वर्तमान थी, उसकी दोनों आंखें अंगारों की तरह जल रही थीं, मुखपर पैशाचिक हंसी थी । सुन्दरी उसे देखकर चिल्लायी और मूर्छित होकर गिर पड़ी । रामशंकर ने फिर से सिर उठाकर देखा,[1] इस बार वह संतोष की हंसी हंस रहे थे और इसके बाद वह मूर्ति गायब हो गई । इसी प्रकार पंडित जी, स्वर्गवासिनी सती साध्वी पत्नी मंगला को दिए गए वचन के विपरीत, जब अपनी साली बिन्नी से दूसरा विवाह करते हैं, तब मंगला की मृतात्मा खिड़की से झांकती दिखाई पड़ती है । इसे देखते ही नवविवाहिता पत्नी को छोड़कर पंडित जी दो कदम पीछे हट जाते हैं और इसे अपना भ्रम समझ कर जब पुनः उससे मिलते हैं, तब फिर वही दिखाई पड़ती है । परिणामतः[2] चौबे जी मर्दाने कमरे में मूर्छित होकर गिर पड़ते हैं और बिन्नी चौखट के बाहर । इसी प्रकार सत्येन्द्रप्रसाद की स्त्री रमा की

---

१ [illegible]--`आशीर्वाद`, पृ० [illegible] ।
२ प्रेमचन्द : `मानसरोवर` भाग ४,--`भूत`, पृ० [illegible] ।

छज्जे पर गिरने से मृत्यु हो जाती है । कालान्तर में लोगों को अक्सर चांदनी रात में एक युवती और एक युवक "रमा-धाम" की अट्टालिका पर घूमते नज़र आते हैं । एक दिन देवबाबू अपनी पुत्री कौमुदी के पास बरामदे में सो रहे थे कि कौमुदी चीख सुनकर जाग उठी, परन्तु उठ न सकी । उसने पड़े-पड़े छज्जे पर शुभ्रवसना किसी स्त्री की छाया देखी । दूसरे दिन भी ऐसा ही होता है । स्त्री और पुरुष दोनों प्रेमालाप कर रहे थे कि इतने में देवप्रसाद की आवाज सुनायी दी--"पापिनी ! मेरे स्नेह का यह बदला ? मेरी आंखों के सामने यह व्यभिचार !! रमणी ने भी हंसकर उत्तर दिया और युवक का चुम्बन लिया । चुम्बन की प्रतिध्वनि सर्वत्र फैल गई । पर देवप्रसाद अपने को रोक न सके और दोनों का गला इतने जोर से दबाया कि मालूम हुआ मर गये । उन्होंने जोर से धक्का दिया । एक भयंकर चीख के साथ वे दोनों छत पर से अदृश्य हो गये । "धब" शब्द हुआ और जब देवप्रसाद ने नीचे देखा तो कौमुदी अचेत दिखलाई पड़ी । प्रातःकाल रमाधाम में सर्वत्र व्याकुलता छाई थी। पलंग पर बेहोश कौमुदी पड़ी थी और छज्जे पर मूर्छित देवप्रसाद । डाक्टर भी न समझ सके कि यह सब कैसे हुआ ? अन्त में एक दिन पिता-पुत्री रमाधाम छोड़कर चले गये और रमाधाम[1] की विचित्र बातों को सुनाता हुआ बुड्ढा सईस वहां फिर अकेले रहने लगा । विश्वम्भरनाथ शर्मा "कौशिक" द्वारा लिखित "मालती का प्रेम" शीर्षक कहानी में भी मालती की मृत्यु के चार मास बाद, मृत्यु के पूर्व जैसे वह कराहती थी, वैसा ही कराहने का शब्द सुनायी पड़ता है, तत्पश्चात् मालती की मूर्ति कमरे में प्रवेश करती है । वैसे ही बिखरे बाल, वैसा ही छटपटा वेश, मुख संगमरमर की तरह सफेद, आंखें बन्द । मिस्टर खन्ना के माथे पसीना आ गया । वे कांपने लगे, न उठ सके, न कुछ बोल सके । कुछ रुककर वह मूर्ति लौट पड़ी । कुछ देर तक कराहने का शब्द सुनायी पड़ता रहा फिर क्रमशः क्षीण होते-होते रात के सन्नाटे में विलीन हो गया । दूसरे दिन राधाकान्त का पता न था, वह सन्यासी[2] हो गया । इसी कथानक रूढ़ि का प्रयोग कुमारी सुशीला आगा ने द्वारा

1 श्यामलाल वैश्यलाल वैद्य : "रमाधाम" --"चाँद", वर्ष २, संख्या ६, मार्च, १९२३ ई०
2 कुसुमगुच्छ--"मालती का प्रेम", पृ० २१-२६ ।

लिखित 'भूकम्प आया' शीर्षक कहानी में भी किया गया है । कहानी की नायिका रमिया मुरारी द्वारा चिर गए होठों को पकड़कर हंसी, 'फिर रोई और 'आया , आया' चिल्लाती हुई, उस हल्की चांदनी में न जाने किस ओर चली गयी । फिर उसका पता न लगा, किन्तु गांव में कभी-कभी एक पगली चिल्लाती हुई आती है --'भूकम्प आया, भूकम्प आया ।' वह एक लहर की तरह आती है और निकल जाती है । लोग उसके पीछे दौड़ते हैं, उसे पकड़ने का प्रयत्न करते हैं, किन्तु व्यर्थ । हां, यदि मुरारी होता तो उसके हाथ में चमकते हुए होठ़ को देखकर समझ जाता कि वह रमिया का भूत है ।'[1]

आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने 'प्लैंचिट' शीर्षक कहानी में सत्य घटना का उल्लेख किया है, जिससे इस लोकविश्वास से सम्बन्धित कथानक रूढ़ि की सत्यता सिद्ध होती है । आचार्य जी को स्वयं विश्वास नहीं था, कि मृतात्माओं का कोई अस्तित्व है या नहीं । इसके सम्बन्ध में जितनी ही मैं सोच करता, उतना ही उलझन में पड़ता । 'किन्तु मेरे मित्र कांकरोलीनरेश श्री बृजभूषणलाल जी महाराज ने कहा कि आज रात मेरे साथ प्लैंचिट पर बैठिए और देखिए किस प्रकार परलोकगत आत्मा हमसे उसी प्रकार बातचीत करती है, जिस प्रकार हम स्वयं परस्पर बातचीत करते हैं । रात्रि में बैठक हुई, जिसमें महाराज, महारानी, बाबा साहब विट्ठलनाथजी महाराज, श्री कण्ठमणि शास्त्री और स्वयं आचार्य जी बैठे । परलोकगत आत्माओं का आवाहन प्रारम्भ हुआ । मेज को स्पर्श कर शास्त्री जी बैठे तो, लेकिन उनमें गम्भीरता न थी । किसी भी अनुष्ठान पर, जो वहां पर हो रहे थे, विश्वास न था । वे प्रत्येक कार्य को विनोद की दृष्टि से देख रहे थे । टेबुल में हरकत प्रारम्भ हुई और अकस्मात् परलोकगत आत्मा आ विराजी । आगत मृतात्मा के सम्बन्ध में बताया गया कि महाराजा के स्वर्गस्थ पिता--श्री की आत्मा उपस्थित है, आप जो कुछ पूछना चाहें, पूछ सकते हैं । शास्त्री जी ने स्वलिखित एवं लाहौर से प्रकाशित 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', जिसे प्रभाकर के पाठ्यक्रम में स्वीकृत होने के लिए भेजा था, के विषय में पूछा --

---

१ द्रष्टव्य--'अतीत के चित्र', पृ०५५-६० ।

क्या मेरा इतिहास स्वीकृत हो गया ?

उत्तर मिला -- हो गया ।

`परन्तु मुझे सूचना नहीं मिली ?`

`आ रही है ।`

`क्या तार है ?`

`नहीं, पत्र है ।`

`कब मिलेगा ?`

`कल सुबह ।`

कुछ देर शास्त्री जी चुप रहे और फिर रहस्यपूर्ण ढंग से गायब होने वाले अपने श्वसुर के विषय में पूछा --`मेरे श्वसुर बाबू रामकिशोर सिंह जीवित हैं या मृत ?` `मृत` और दूसरे दिन आचार्य जी ने अपने मृत श्वसुर जी की आत्मा से भी बातचीत की । बातचीत के मध्य मृतात्मा द्वारा बतलाये गये भागने की तिथि `अनन्त चौदस` और चौबीस घंटा `कहाँ पुल में छिपना` । इन दो बातों ने आचार्य जी के अविश्वास को हिला दिया । फिर तो स्वयं आचार्य जी ने अभ्यास किया और इस अभ्यास के दौरान दुष्ट आत्माओं ने आकर बड़े-बड़े उपद्रव भी किए । बहुत विघ्न उपस्थित किए । यह सब होते हुए भी आचार्य जी ने अपने काम-काज की बातों में प्लैंचेट की सहायता लेते रहे । इस सहायता-कार्य में अनेक घटनाओं में से दो का उल्लेख भी उन्होंने अपनी कहानी में किया है[1] ।

<u>मृतक का जीवित हो उठना</u>

भारतीय लोककथा-कहानियों में मृत बालक का जीवित हो उठना साधारण बात है, जिसका कथानक रूढ़ि के रूप में प्रायः प्रयोग किया जाता रहा है । महाराज मोरध्वज की कथा प्रसिद्ध ही है । प्रेमचन्दयुगीन कहानी में इस रूढ़ि का भी प्रयोग किया गया है । शंकरराय द्वारा लिखित `मवतरणा` शीर्षक कहानी में इसी रूढ़ि का प्रयोग कर कहानीकार ने कहानी में मोड़ उत्पन्न करते हुए

---

१ आचार्य चतुरसेन शास्त्री : `सोया हुआ शहर`--`प्लैंचेट`,पृ०१९७-२०४ ।

लोकविश्वास के अनुकूल ही ईश्वर के प्रति अगाध विश्वास की परिपुष्टि की है ।
सेठ दामोदरदास भगवान के अनन्य भक्त दानी, धनी तथा अभिमानहीन थे । वे
नित्य गरीबों को भोजन कराते थे । एक बार श्रीमद्भागवत का सप्ताह सुनकर बड़े
धूम-धाम के साथ ब्राह्मण-भोजन की व्यवस्था की । उनका एकमात्र पुत्र राजकुमार
छत पर सो रहा था । लोभ के वशीभूत कुलपुरोहित पण्डित काशीराम ने ही उसका
गला घोंट दिया । सेठ जी को यह बात ज्ञात हो गई, किन्तु वे चुप रहे, क्योंकि
इस काण्ड को सुनकर कोई भोजन न करेगा, इस बात की उन्हें आशंका थी ।
ब्राह्मण -भोजन के पश्चात् सभी को दक्षिणा देकर उन्होंने विदा कर दिया ।
और वे आशीर्वाद देते हुए अपने-अपने घर चले गए ,किन्तु दोनों प्राणियों ने पानी
तक न पिया और बालक भी उसी भाँति पड़ा रहा । संयोग से श्याम और गौर
वर्ण वाले दो सन्यासी द्वार पर आए । सेठ ने उन्हें आदरपूर्वक बिठाया और भोजन
का आग्रह किया । दोनों सन्यासी बैठ तो गए, किन्तु शर्त यह रख दी कि जब
माता स्वयं परोसेगी तभी भोग लगेगा । माता ने भोजन परोसा । सन्यासियों ने
उन दोनों को भी भोजन पर बिठा बालक को भी बुलाने के लिए कहा । सेठ ने
दुखित हृदय से उत्तर देते हुए कहा --' वह अनन्त निद्रा में सो रहा है ।' सन्यासी के
आग्रह पर मृत बालक के शव को सेठ जी ले आए । श्याम वर्ण सन्यासी ने उठाकर
गोद में लेकर दो बार प्यार किया और कान में जाने क्या कहा,[1] बच्चे ने तुरन्त
आँखें खोल दीं । सन्यासी ने अपने हाथ से उसे भोजन कराया । इसी प्रकार मायादेवी
भी आराधना में रात-दिन लीन रहती है और उसकी आकांक्षा है कि देवी जी
उसे वह शक्ति प्रदान करें कि वह जो चाहे कर सके । उसके हाथ चित्रलिखित पट पर
माँ दुर्गा की छवि दिखायी देती है । एक दिन माया के पति अविनाश बाबू के
पेट में अचानक पीड़ा होने लगी । डाक्टर ने कालरा घोषित कर दिया, किन्तु
ज्यों-ज्यों दवा की गई उनकी दशा गम्भीर होती गई । अन्ततोगत्वा वैद्य जी
आए और उन्होंने नाड़ी देखकर मृत घोषित कर दिया । सास व्याकुल हो विलाप
करने लगी । लेकिन माया-देवी की प्रतिमा के पास ध्यानमग्न बैठी रही । सास ने

---

१ द्रष्टव्य-- 'आदर्श कथा मंजरी', पृ०३७-४१ ।

न रहा गया । वह पूजा-गृह में पहुंचकर, बुदबुदाते हुए, माया की पीठ पर एक लात जमाती है । माया की समाधि टूट गई । उसने सास के पैरों को सहलाते हुए कहा--"मां, देवी जी ने अभी-अभी मुझसे कहा है कि तेरा पति अच्छा हो गया । सास को विश्वास न आया । सास ने और भी उत्तेजित होते हुए क्रोध में आकर कहा --"अगर तेरी देवी ने यह कहा, तो झूठ कहा है । माया अपने अडिग विश्वास के साथ उठकर अपने स्वामी के पास आयी[1] । उसे देखते ही अविनाश बाबू बोले--" कहां थी माया, ज़रा मुझे पानी पिला दे ।"

पुनर्जन्म से सम्बन्धित कथानक रूढ़ियां

अवतार तथा पुनर्जन्म से सम्बन्धित कथानक रूढ़ियों को थाम्पसन महोदय ने ई० ६००-ई०६९९ संख्या के अन्तर्गत वर्गीकृत किया है । भारतीय कथा-साहित्य में पुनर्जन्म से सम्बन्धित व कथानक रूढ़ि का अत्यधिक मात्रा में प्रयोग किया गया है । लोक-मानस का अटूट विश्वास है कि मानव-मृत्यु के पश्चात् इसी संसार में पुन: जन्म लेता है । वह अपने कर्म के अनुसार चौरासी लाख योनियों का भोग करता है ।डा० सत्येन्द्र ने भी इस विषय पर विचार करते हुए निष्कर्ष रूप में कहा है कि "आदिम विश्वासों के बीज से विकसित होकर आत्मा ,परमात्मा, जीव और पुनर्जन्म का दार्शनिक स्वरूप प्रस्तुत हुआ है[2] ।प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी कहानी में प्रस्तुत रूढ़ि का भी प्रयोग अत्यधिक मात्रा में किया गया है । श्री सुदर्शन द्वारा लिखित "पुनर्जन्म" शीर्षक कहानी में अयोध्यानाथ के द्वार पर एक साधु रात बसने के लिए रुकता है,जो तीर्थयात्रा हेतु हरद्वार जा रहा था । अपने खर्च के लिए उसने एक लोटे के तले में मोहरें रख छोड़ी थीं । अयोध्यानाथ को जब इस रहस्य का पता चला तो उनके मन में लोभ आ गया और उन्होंने मोहरें निकाल कर उसमें पैसा भर दिया । प्रात:काल साधु उन्हें -- भगवान तुम्हें सन्तान दे--आशीर्वाद देकर चला गया । वह हरद्वार पहुंचकर,महात्मा एवं अन्य साधुओं को भोजन कराया ,किन्तु सायंकाल सफाई इत्यादि का हिसाब करने के लिए जब लोटे की कमानी दबाई,

---

१ शिवरानी देवी :"कौमुदी"--"विश्वास",पृ०१३७-४१ ।

२ द्रष्टव्य --"मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोकतात्विक अध्ययन",पृ०५०२ ।

तो पैसे देखकर उसका हृदय बैठ गया । अपमान के भय से उसने आत्महत्या कर ली । किन्तु उसका आशीर्वाद जीवित रहा और अयोध्यानाथ के घर साल के भीतर ही पुत्र का जन्म हुआ ,जिसका नाम द्वारिका रखा गया । जब द्वारिका अठारह वर्ष का हुआ तो अपने माता-पिता के साथ हरिद्वार गया । उसकी प्रकृति साधुओं जैसी थी वह दिन-रात साधुओं के डेरे में घूमता रहता । एक दिन सायंकाल जब वह अपने घर लौट रहा था, उस समय मार्ग में एक हलवाई मिला,जो रो रहा था । रोने का कारण पूछने पर उसने बतलाया कि व्यापार में घाटा लग गया है । चौक में जो हलवाई की बड़ी दुकान है , वह मेरी ही है । यह सब जानकर द्वारका घर गया । किवाड़ तोड़कर रूमाल निकाला ,जिसमें वही मोहरें सुरक्षित रखी थीं । उसने गिनीं तो पूरी सौ थीं । उसे ले जाकर वह हलवाई को सौंप देता है और उसी रात उसके पेट में पीड़ा उत्पन्न हुई । इधर पिता डाक्टर बुलाने दौड़े उधर द्वारका ने प्राण त्याग दिए । एक दिन अयोध्यानाथ ने सन्दूक में हाथ डाला तो मोहरों सहित रूमाल गायब थी । बरसों पुरानी घटना उन्हें स्मरण हुई, किन्तु उन मोहरों का आना और द्वारकानाथ का अचानक मरना , इन दोनों घटनाओं का क्या संबंध है,इसे वह कभी न समझ सके[1] ।

लोकमानस का यह भी विश्वास है कि कुछ मनुष्य प्रतिशोध के लिए ही जन्म ग्रहण करते हैं और उन्हें अपने पूर्वजन्म का इतिहास भी स्मरण रहता है । द्विवेदीयुगीन कहानीकार दुर्गाप्रसाद झुंझनूं वाला द्वारा लिखित 'प्रतिशोध' शीर्षक कहानी इसी कथानक रूढ़ि के आधार पर लिखी गई है । प्रस्तुत कहानी में रमेश जागीरदार,चित्रकार सुरेश, मनोविज्ञानवेत्ता डा० वर्मा और कुमारी कुमुद बाला उपनाम राजकुमारी -- सभी आबू पर्वत के राजवंशी होटल में ठहरे हैं । रमेश और सुरेश दोनों राजकुमारी से प्रेम करते हैं और विवाह की अभिलाषा रखते हैं । सुरेश राजकुमारी का चित्र बनाता है,किन्तु हू-ब-हू वैसा नहीं बना पाता ।जिसका कारण डाक्टर यह बतलाता है कि ऐसी आंख वाली किसी स्त्री से तुम्हारी घनिष्ठता रही होगी । तुम उससे विरक्त हो गये होगे,परन्तु वह बहुत क्रोधित और निराश

---

१ द्रष्टव्य--'कुलीन - सुधा' ,पृ०११९-१२१ ।

हुई होगी । उसके साथ अन्तिम भेंट की जो छाप तुम्हारे मन पर पड़ी है, जिसे अभी तक तुम भूले नहीं हो । अस्तु, वैसी ही आँखें तुम बना सकते हो । यदि ऐसी स्त्री के साथ तुम्हारा सम्बन्ध नहीं रहा है, तो फिर उसके साथ तुम्हारा गत जन्म का परिचय रहा होगा । आत्मा अमर है और बारम्बार जन्म लेकर अलग-अलग शरीरों में प्रवेश करती है । सुरेश को डाक्टर के इस कथन का विश्वास नहीं होता, किन्तु एक दिन सभी गुफा देखने जाते हैं, जिसमें एक राज्य का समग्र इतिहास छिपा पड़ा है । राजकुमारी उससे पूर्ण परिचित है । गुफा में किसी स्त्री-पुरुष का चित्र बना । स्त्री का चित्र ठीक राजकुमारी का है, अन्तर है तो मात्र आँखों का । पुरुष का चित्र ठीक सुरेश का ही है । चित्र के दोनों ओर कुछ लिखा है, जिसका सार राजकुमारी बतलाती है कि चार हजार [illegible] वर्ष पूर्व किशोर सिंह नामक राजा राज्य करता था । उसकी वासना की तुष्टि के लिए नित्य रूपवती स्त्रियाँ लाई जाती थीं । इनमें से मेनका के हृदय में राजा के प्रति प्रेम उत्पन्न हो गया । वह तो स्व हृदय से प्रेम करने लगी, किन्तु राजा का मन भर गया । वह उससे पीछा छुड़ाने लगा । मेनका इस आघात को सहने के लिए तैयार न थी । परिणामतः एक दिन राजा ने मेनका के हृदय में खंजर भोंक दिया, वह चल बसी । यह सुनकर सभी आश्चर्यचकित थे ।

दूसरे दिन राजकुमारी सुरेश को लेकर अकेली गुफा में गई । सुरेश ने आत्मसमर्पण की बात कही । राजकुमारी ने कहा-- तुमने गत जन्म में मुझे धोखा दिया । अब फिर तुम्हारे हाथों में आत्मसमर्पण करूं ? यह सुनकर सुरेश चकरा गया । राजकुमारी ने बतलाया कि गत जन्म में मैं ही मेनका थी और तुम राजा थे । कुमारी ने याद दिलाते हुए कहा--' मैं अपने खूनी की तलाश में थी । आज उसका पता चला है और उसने बगल की दीवार में छिपी कील को दबा दिया, फलस्वरूप दोनों तहखाने में गिर पड़े । यहाँ राजा का सारा वैभव पड़ा था । मेनका का खून भी यहीं हुआ था । राजकुमारी अर्थात् मेनका के आग्रह पर सुरेश ने मुकुट धारण किया और उसके समीप आया कि उसने 'ओ, मेरे प्रियतम' कहते-कहते खंजर सुरेश की छाती में भोंक दिया । सुरेश चीख कर गिर पड़ा और क्षमा मांगने लगा । राजकुमारी ने कहा --'प्रियतम ! किशोर, मेरे

और साधना की विधि पूरी हो गई । बाकी रहा प्रेम । मैं भी तुमसे मिलने के लिए आती हूं, मेरे स्वामी ।' कहती हुई वही रक्तरंजित खंजर उसी स्थान पर भुक चुभा लिया ,जहां जन्मजन्मान्तर का दाग आज भी विद्यमान था । इस प्रकार राजकुमारी अर्थात् मेनका को,सुरेश अथवा किशोर सिंह से अपने खून का प्रतिशोध लेना था,इसीलिए उसका जन्म हुआ था । वह अपना काम पूर्ण करके संसार से चली गई[1] ।

सुदर्शन की कहानी 'पाप परिणाम' में साधु अपनी कथा सुनाता हुआ स्पष्टरूप से कहता है कि मैं और किसनराय मिलकर मार्कण्डलाल लाला प्रभुदास की विष द्वारा हत्या इसलिए कर दी कि उसे उसके हिस्से का अस्सी हजार न देना पड़े । प्रभुदास मर कर मेरे पुत्र के रूप में जन्म लेता है और जब पढ़-लिख कर जवान होता है,तब उसका विवाह भी कर दिया गया । कुछ काल बाद मेरी स्त्री का स्वर्गवास हो गया और सारा कारोबार चौपट हो गया । एकमात्र पुत्र बंसी की भी हालत गिरती जा रही थी । देश-विदेश सभी जगह इलाज कराया ,किंतु वह अच्छा न हो सका । एक दिन जब कि मेरे जेब में मात्र डेढ़ सौ रुपये बच रहे थे, मैं देखकर चौंक पड़ा । भूली हुई घटनाएं आंखों के सामने घूम गई । इतने ही रुपयों से मैंने व्यापार आरम्भ किया था । मैं यही सब सोच रहा था कि अकस्मात पुत्र बंसीलाल ने जोर से अंगड़ाई ली और तड़पने लगा । उसे मरणासन्न देख मैंने भर्राई हुई आवाज में कहा--'बंसी । उसने बेहोशी में उत्तर दिया-- हां । होश करो, हां होश में हूं, उसने मेरी ओर देखकर कहा --'मेरा भाई लाल ।' यह सुन मेरे हृदय पर और आतंक छा गया । मुझे विश्वास न हुआ,इसलिए फिर से पूछा-- 'बंसी.. ... यह कौन है? इशारा उसकी स्त्री की ओर था । बंसी ने अपनी घबराई हुई आंखें अपनी स्त्री की ओर घुमाई और कहा--'डाक्टर । तुम कौन हो ? 'प्रभुदास'। यह सब सुन मेरा सन्देह निश्चय बन गया । पाप का परिणाम ऐसा दुःखदायक होगा, यह आशा न थी । मैंने पुनर्जन्म की कथाएं सुनी थीं,परन्तु उनपर विश्वास न आता था । इस समय प्रत्यक्ष प्रमाण मिल गया[2] ।

---

१ द्रष्टव्य--'मानव प्रतिमा',पृ०२०४-२२० ।

२ ,, --'तीर्थयात्रा',पृ०१५८-७२ ।

विवेच्ययुगीन प्रमुख कहानीकार मुंशी प्रेमचन्द ने भी इसी कथानक रूढ़ि का प्रयोग "पूर्व संस्कार" शीर्षक कहानी में किया है । प्रस्तुत कहानी में शिवटहल साधु-भक्त, धर्मपरायण और परोपकारी जीव हैं । इन्हीं कार्यों में जब उनकी समस्त सम्पत्ति नष्ट हो गई तब दुर्व्यसनी, चरित्रहीन अपने भाई रामटहल की शरण ग्रहण कर उनकी खेती-बारी देखते हुए अथक परिश्रम करते हैं । संयोगवश तीसरे वर्ष उनका निधन हो जाता है । कार्य में लीन होने के पूर्व ही भाई ने यह कह दिया था कि साधु-संतों का सत्कार करने को एक पैसा भी न दूंगा । किन्तु स्वभाव के अनुसार शिवटहल ऐसा न कर सके और धार्मिक कार्यों के लिए अपने भाई से छिपाकर अनाज, भूसा, लकड़ी आदि बेच देते थे । फलस्वरूप अपने भाई के साथ विश्वासघात करके उनका जितना धन हरण किया था, उसकी पूर्ति के लिए अपने भाई के यहाँ छ: वर्षों के लिए पशु रूप में जन्म लेना पड़ता है[1] ।

भविष्यसूचक स्वप्न संबंधी कथानक रूढ़ियाँ

कथा-नायक, नायिका अथवा अन्य किसी पात्र द्वारा देखे गये स्वप्नों के अनुसार उनकी भावी घटनाओं का संयोजन भारतीय कथाओं की अत्यधिक प्रचलित रूढ़ि है, जिसका प्रयोग प्रेमचन्दयुगीन कहानीकारों ने अपनी कहानी के कथानकों की गति, विस्तार अथवा मोड़ देने के लिए विभिन्न प्रकार से किया है । विवेच्ययुगीन अगुवा कहानीकार मुंशी प्रेमचन्द द्वारा लिखित "मर्यादा की वेदी" शीर्षक कहानी की नायिका रूपवती राजकुमारी प्रभा रात में भयानक स्वप्न देखती है, जिससे उसके मन में शंका उत्पन्न होती है कि आज विवाह के शुभ अवसर पर अवश्य कोई-न-कोई विघ्न पड़ने वाला है और सायंकाल चित्तौड़ के राजा भोजराज द्वारा उसका बलात् अपहरण किया जाता है[2] । इसी प्रकार कुंवर स्वप्नावस्था में पदमा से बातचीत करता है । वह पदमा और कोई नहीं, उसकी प्रेयसी चन्दा थी, जो मर चुकी है । उसी से स्वप्न में कुंवर की मुलाकात और

---

१ द्रष्टव्य--"मानसरोवर" भाग ८, पृ०१९६-९७ ।

२ ,, -- ,, भाग ६, पृ०१००-१०१ ।

भविष्य की सूचना मिलती है और कुंवर भी उसी रात नहीं रह जाता । दोनों पक्षी रूप में अपने ही द्वारा लगाये हुए[1] वृक्ष पर निवास करते हैं, इस बात की पुष्टि यात्रियों द्वारा भी होती है । `अनिष्ट शंका` शीर्षक कहानी की नायिका मनोरमा अपने पति अमरनाथ के विषय में स्वप्न में देखती है कि अमरनाथ द्वार पर नंगे सिर, नंगे पैर खड़े रो रहे हैं । ज्योतिषी भी स्वप्न को अमंगलसूचक बतलाता है । कालान्तर में मनोरमा की गाड़ी से गिरकर मृत्यु हो जाती है, जिसके तीसरे दिन अमरनाथ नंगे सिर, नंगे पैर, भग्नहृदय[2] घर पर पहुँचते हैं । इस रूप में मनोरमाद्वारा देखा गया स्वप्न सच होता है । गायत्री ने उस क्षणिक निद्रा में भयानक स्वप्न देखा । स्वप्न न था, दु:खमय भविष्य की सूचना मात्र थी । उसने देखा, वह अपनी कुटीर के सामने म्लान मुख से बैठी हुई है । एक भीषणकाय सन्यासी ने आकर उसके सम्मुख अपना भिक्षा-पात्र करते हुए कहा-- `मां भीख दो`। गायत्री ने कोई उत्तर न दिया । उसने फिर कहा --`मां भीख दो ।``क्या दूं` जाह्नवी, अपनी कन्या ।` गायत्री अवाक् रह गई । सन्यासी घर में घुसा और सोयी हुई जाह्नवी को उठाने लगा । गायत्री ने चिल्लाकर कहा-- `इसे मत छुना, कहां लिए जाते हो, कौन हो ?` ....

अपने शब्द वह आप जाग पड़ी, और पागल की भांति चारों ओर देखने लगी ।... गायत्री फिर न सो सकी ।... आज तीज का मेला है । जाह्नवी ज्वर में बकती गई--` मैं जाऊंगी, बाबू जी से मिलूंगी, बाबू जी, बाबू जी, कालापानी, कालापानी । शिवनाथ ने पूछा --`क्या बकती हो जाह्नवी ? उसने देखकर कहा --`तुम कौन हो ?` क्या यह कालापानी है ? मेरे बाबू जी को क्या तुमने देखा है । बोलो । तुम बोलते क्यों नहीं ? क्या यही, मेरे बाबू जी हैं?`। इसी तरह लगभग एक घण्टे पड़ी रही । वह चुप हो गई और हो गई सदा के लिए । गायत्री[3] खड़ी और वे रो पड़ी ।`हाय मेरी बेटी` कहकर वह अचेत हो गिर पड़ी`।

---

१ प्रेमचन्द :`मानसरोवर`भाग५,`कामना तरु`,पृ०६८-७० ।

२ ,, ,, भाग८ `अनिष्ट शंका`,पृ०२४१-२४६ ।

३ प्रतापनारायण श्रीवास्तव : `आशीर्वाद`,`तीज की साड़ी`,पृ०४४-५३ ।

गुरुराम विश्वकर्मा द्वारा लिखित 'संजोगीलाल' शीर्षक कहानी में भी इसी रूढ़ि का प्रयोग किया गया है । जलवासी अपने रुग्ण पति को दातुन करा रही थी । बहोरी ने दातुन करते हुए कहा--'किशोरी की माँ, आज रात मैंने सपना देखा कि जैसे: किशोरी आ गया है । उसके साथ सोमरी भी है और उसकी गोद में छः महीने का बच्चा भी है । ज्यों ही किशोरी ने बच्चे को मेरी गोद में देना चाहा, कि मेरी नींद खुल गई ।

'किस समय देखा ।'

'सवेरा होते होते ।'

पुराने[1] लोग कहते हैं--'सवेरे के सपने झूठे नहीं होते ।' वस्तुतः स्वप्न सत्य होता है ।

'लाल्या' शीर्षक कहानी में भी पार्वती स्वप्न देखती है कि बांडुरी वाला लखनऊ का बाबू रामसेवक की पुलिस से मुठभेड़ होती है, जिसमें कई घायल होते हैं और पुलिस वाले उसे पकड़ कर ले जाते हैं । एक दिन यह स्वप्न सत्य भी होता है[2] । इसी प्रकार सरदार बसन्त सिंह ठीकेदार की स्त्री फूल, क्वेटा के भूकम्प में सर्वस्व गंवाकर निराश्रिता एकाकी बच रहती है । यदि उसका अपना कोई बचा भी है तो वह है गोद का बच्चा निहाल । सोमासिंह ने उसके प्राण बचाये थे, अतः उसके प्रति वह कृतज्ञ है । किन्तु कालान्तर में फूल सोमा सिंह के प्रति आत्मसमर्पण कर सुखमय जीवनयापन करने लगती है । उसका शरीर यद्यपि सोमासिंह का हो गया था तथापि उसका हृदय अब भी बसन्त सिंह का था । उसके प्राण अपने खोए हुए प्राणधन को खोजने के लिए विकल थे । एक रात उसने स्वप्न में देखा कि भूकम्प के प्रकोप से क्वेटा श्मशान के समान वीरान था । एक टूटे हुए मकान के खण्डहर से मर्मभेदी गान का स्वर उठा --'रात अंधेरी कुम्भकर्ण फेरी हरिया लाला कारे ।

'अरे बतावा लाल को पाके .....' स्वर बसन्त सिंह का था ।

---

१ दृष्टव्य--'हंस' वर्ष १, अंक ३, मई, १९३०ई०, पृ०२१ ।

२ राधिकारमणप्रसाद सिंह : 'लाल्या', 'हंस', वर्ष २, अंक ११, मई १९३२ई० पृ० ११-१२।

जिसमें वही मस्ती, वही माधुर्य, वही उछाल भरी थी । फूल विह्वल हो गई । उसी समय बिजली की कड़कड़ाहट से उसकी आंख खुल गई । स्वप्न भंग हो गया । कुछ दिनों के बाद निहालसिंह को कार की चपेट से बचाते हुए, अपनी टांग गंवाने वाला व्यक्ति बसन्तसिंह ही निकलता है[१]। इस प्रकार फूल का स्वप्न सत्य होता है, किन्तु दुर्भाग्य से मिलन नहीं हो पाता ।

"कथासरित्सागर" में स्वप्नों के तीन प्रकार बतलाये गये हैं-- (१) अन्यार्थ, (२) यथार्थ और (३) अपार्थ। कथाकार के शब्दों में जिस स्वप्न का फल तत्काल जाना जा सके, वह "अन्यार्थ," जिसमें देवता द्वारा आदेश हो, वह "यथार्थ", और जो स्वप्न किसी गाढ़ चिन्ता अथवा अनुभव के कारण देखा जाय, वह "अपार्थ" है । इसके साथ-ही-साथ कथाकार ने इस बात का भी निर्देश किया है कि रात्रि के चतुर्थ प्रहर में जो स्वप्न देखा जाता है, वह स्वप्न शीघ्र फलदायी होता है[२]। भविष्य की सूचना देने वाली कथानकरूढ़ि के रूप में अन्यार्थ का विवेचन ऊपर किया जा चुका है । विवेच्ययुगीन कहानीकार आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने अपनी "सिंहगढ़ विजय" शीर्षक कहानी में यथार्थ प्रकार के स्वप्न का ही प्रयोग किया है । छत्रपति महाराज शिवा जी बैठे-बैठे ऊंघ रहे थे । पीछे दो शरीररक्षक चुपचाप खड़े थे । तानाजी ने सम्मुख आकर कहा--" महाराज की जय हो, कूच का समय हो गया है, सेना तैयार है । महाराज चौंक कर उठ बैठे । वे व्याकुल थे । उन्होंने कहा --

"तुके भवानी ने स्वप्न में आदेश किया है ।"

"वह कैसा आदेश है महाराज ?"

"यह सम्मुख मंदिर की पीठ दिखायी पड़ती है न ?"

"हां, महाराज ।"

"अभी मैं बैठे-बैठे सो गया, इसमें वह जो मोखा है, उसमें से एक रत्नजटित कलाई ने हाथ निकालकर उसी स्थान की ओर संकेत करने लगा । मैंने स्पष्ट

---

१ सुधाकर दीक्षित :"प्राणों का प्रश्न"-"नई कहानियां", डं०रामकृष्ण दास, पृ०४२-४६।
२ द्रष्टव्य-- "कथासरित्सागर", ३६।१५७, १५८, १५९ ।

सुना, किसी ने कहा --"यहीं खोदो ।"महाराज की आज्ञा पाकर निर्दिष्ट स्थान पर खुदाई की गई, जहां से चालीस देगें मुहरों से भरी हुई मिलीं । चांदी के सिक्के भी इतने ही थे और एक चांदी की सन्दूकची में बहुत-से रत्न भी उपलब्ध हुए[1] ।

भविष्यवाणी

भविष्यवाणियों से सम्बद्ध कथानक रूढ़ियों को याम्पसन महोदय ने एम०३००-एम०३६६ संख्याओं के अन्तर्गत पंजीकृत किया है । प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी कहानी में यत्र-तत्र इस रूढ़ि का भी प्रयोग किया गया है । स्वयं प्रेमचन्द की 'पूर्व संस्कार' शीर्षक कहानी में एक ज्योतिषी--बछड़ा 'कादिर' के लिए भविष्यवाणी करता है कि छठें वर्ष उसपर एक संकट आयेगा और ठीक छठें वर्ष उसकी मृत्यु अचानक हो भी जाती है[2] ।इसी प्रकार भविष्यवक्ता बुढ़िया रम्पाता मेहरन्निसा के विषय में यह भविष्यवाणी करती है कि --"रे मेहरुन्न, तू रेगिस्तान में पैदा हुई,लेकिन तेरी मौत तख्त पर होगी । इस अटपटी भविष्यवाणी को सुनकर वह विश्वास नहीं करती,किन्तु बुढ़िया की भविष्यवाणी एक दिन सत्य होती है[3] ।

शुभ शकुनों द्वारा भावी संकेत

भारतीय कथाकारों द्वारा शकुन या अपशकुन का वर्णन अत्यधिक प्रिय रहा है । इस रूढ़ि का प्रयोग विविध रूपों में विविध स्थलों पर किया गया है । जब कोई नायक किसी कार्य-विशेष के लिए निकलता है,तब प्राय: कथाकार शुभ या अशुभ शकुन का वर्णन करता है । शकुन-विचार की यह परम्परा वस्तुत: लोकजीवन की अपनी विशेषता है,जो विभिन्न प्रकार के लोकप्रचलित विश्वासों पर आधारित हैं । 'शकुन' शब्द का वास्तविक अर्थ'पक्षी'होता है ।

---

१ द्रष्टव्य--'कहानी सत्य हो गई',पृ०२०१-२०२ ।

२ ,, --'मानसरोवर'भाग ८,पृ०१६५-१६६ ।

३ आचार्य चतुरसेन शास्त्री : 'कहानी सत्य हो गई'-'प्यार',पृ०१८३-१८८ ।

प्राचीनकाल में इन्हीं पक्षियों की गतिविधि द्वारा ही शुभाशुभ का ज्ञान प्राप्त किया जाता था। वाराहमिहिर ने इन शकुन सूचक पक्षियों की तालिका इस प्रकार दी है -- श्यामा, श्येन, शशघ्न, वंजुल, मयूर, श्रीकर्ण, चक्रवाक, चाष, भाण्डरीक, खंजन, शुक, काक, कबूतर (तीन भेद), कुलाल, कुक्कुट, भारद्वाज, हारीत, खर, गृद्ध, पूर्णकूट और चातक।[1] शकुन-अपशकुन सूचक, इन पक्षियों के सम्बन्ध में कई प्रकार की उक्तियां भी लोक-जीवन में प्रचलित हैं। उदाहरणार्थ--

"बाम भाग चारा चखु(नीलकंठ) जाय।
काग दाहिने लेत सुनाय।
सफल मनोरथ समुझहु भाय।।"[2]

पक्षियों के अतिरिक्त भी लोक-मानस ने शकुन सम्बन्धी अन्य प्रकार की मान्यताएं भी स्थापित कर ली है, जिसका एक उदाहरण नीचे दिया जा रहा है--

"नारि सुहागिन जल घट लावे।
दधि मछली जो सनमुख आवे।
सनमुख धेनु पियावे बाछा।
मंगलकरन सगुन है आछा।।"[3]

विवेच्ययुगीन कहानीकारों ने भी विभिन्न प्रकार के शकुन सूचक रूढ़ियों का वर्णन किया है। शिवपूजनसहाय द्वारा लिखित "मुली-मैना" शीर्षक कहानी में कहानी का नायक मनान्त-प्रदेश-वासी राजा राजीव रंजनप्रसाद सिंह के प्रिय दत्तक पुत्र शशिशेखर कुमार, मृगया हेतु, घोड़े पर सवार होकर, उसी वन में आए, जहां महात्मा जी के साथ मुली निवास कर रही थी। उन्होंने मुली को गंगा की बाढ़ में बहती हुई देखकर पकड़ा था और चार वर्ष की अवस्था से ही आज सोलह वर्ष की अवस्था तक बड़े लाड़-प्यार से पाला था। उसे देखकर

---

1 "बृहत्संहिता" -- ८८।१,
2 डॉ० रामनरेश त्रिपाठी : "ग्रामसाहित्य", भाग३, पृ०१८१।
3 ,, : ,, ,, ,, ।

सिर पर ले लूं । तुम्हारे दर्शन का यदि यह अभीष्ट फल हो, तो मैं नित्यप्रति अपने हाथ से फलफूल लाकर तुम्हें खिलाऊं । पक्षिवर उड़ गया । उसने सोचा `संभवत: सुरेन्द्र को बुलाने के लिए उड़ गया है ।` और उसी समय सघन वन के अभ्यन्तर से एक युवक सन्यासी, देवकिशोर की भांति गाता हुआ चला आ रहा था । जब सन्यासी केवल २० हाथकी दूरी पर रह गया, शैवालिनी के वाम नेत्र पुन: फड़क उठे । सन्यासी को देखकर अचेत होती हुई हर्षातिरेक से गद्गद् कण्ठ[१] शैवालिनी ने कहा --`सुरेन्द्र` और प्राण प्यारे सुरेन्द्र के वक्षस्थल में समा गई ।

अपशकुन से सम्बद्ध रूढ़ियां

भारतीय कथा-कहानियों में जिस प्रकार भावी घटनाओं के मांगलिक रूप को मूर्त रूप देने के लिए शुभ शकुन की रूढ़ि का व्यवहार किया गया है, उसी प्रकार अमंगल सूचक अपशकुनों का भी वर्णन बहुतायत से किया गया है । इनसे सम्बन्धित विभिन्न प्रकार के लोकविश्वास लोकमानस की निजी विशेषताएं हैं, जिन्हें साधारण, अल्पसभ्य अथवा ग्रामीणों द्वारा आज भी मान्यता प्राप्त है । इतना ही नहीं, वरन् अपशकुनों से सम्बद्ध अनेक लोकोक्तियां भी लोकजीवन में प्रसिद्ध हैं । उदाहरण के लिए --

`एक शूद्र दो वैश्य असार ।
तीन विप्र औ छत्री चार ।
सन्मुख जो आवे नव नार ।
कहे भड्डरी अशुभ विचार ।।`[२]

इसी प्रकार यात्रा सम्बन्धी एक लोकोक्ति भी द्रष्टव्य है---

सोम शनीचर पुरब न चाला ।
मंगल बुध उत्तर दिसि काला ।।
रवि शुक्र जो पच्छिम जाय ।
हानि होय पथ सुख नहिं पाय ।।
बीफे दक्खिन करै पयाना ।
फन्द होय लौटि नहिं आना ।।

१ द्रष्टव्य---`नन्दननिकुंज`, पृ०१०६-१११ ।

२ रामनरेश त्रिपाठी : `ग्रामसाहित्य`, भाग३, पृ०१६९ ।

'बाणभट्ट ने 'हर्षचरित' में सोलह प्रकार के अशुभ निमित्त या महोत्पात बतलाये हैं--'भूकम्प, समुद्र की लहरों का मर्यादा तोड़कर बढ़ना, धूमकेतुओं का आकाश में ऊंचे पर दिखायी देना, उन्हीं के पीछे दिगन्त के पास दिखायी पड़ना, चन्द्रमा का जलते हुए कुण्डल के भीतर बैठना, लाली से दिशाओं का लहुलुहान हो जाना, पृथ्वी पर रक्त की वर्षा होना, दिशाओं का काले-काले मेघों से ओझल हो जाना, घोर वज्रपात होना, धूल गुबार का सूर्य के ऊपर छा जाना, शृगालों का मुंह उठाकर रोना, प्रतिमाओं के केशों का झुलसाना, सिंहासन के समीप भौंरों का उड़ना, कौवों का अन्तःपुर के ऊपर उड़ते हुए कांव-कांव करना, बूढ़े गृद्ध का सिंहासन में जड़े माणिक्य पर मांस खण्ड की तरह झपटना।'[1] विवेच्ययुगीन हिन्दी कहानी में इन परम्परागत रूढ़ियों का बहुतायत से प्रयोग किया गया है। इनमें से कुछ का वर्णन आगे किया जा चुका है, जो वस्तुतः विश्व-विपत्तियों से सम्बन्धित हैं, जैसे--भूकम्प, प्रलय, महामारी इत्यादि। यहां पर उन्हीं रूढ़ियों का वर्णन किया जा रहा है, जो वास्तव में लोकविश्वास से सम्बन्धित हैं।

इस दृष्टि से सर्वप्रथम रायकृष्णदास द्वारा लिखित 'शान्ति का केतु' शीर्षक कहानी ली जा सकती है। आकाश में धूमकेतु का निकलना अपशकुन माना जाता है। धूमकेतु को लोक में पुच्छल तारा के नाम से अभिहित किया जाता है। यह निशीथ काल में जब आकाश नीलतम हो उठता है और तारों का मन्द प्रकाश उसमें अन्तर्लीन-सा होने लगता है, तभी ठीक झाड़ू के आकार का एक प्रकाश-पुंज दिखलाई देता है, जिसके प्रकाश से पृथ्वी आलोकित हो उठती है। उपर्युक्त कहानी में इसी प्रकार एक धूमकेतु के निकलने का वर्णन है और राष्ट्र का दृढ़ विश्वास है कि यह, धूमकेतु का उदय अमंगल की सूचना है। यह बात सारे साम्राज्य में फैल गयी कि अमंगल होना अनिवार्य है। राष्ट्र के इस अंधविश्वास को दूर करने के लिए, सम्राट बारम्बार आज्ञा प्रचारित करता है, किन्तु जनता उसे स्वीकार नहीं करती, फलस्वरूप सम्राट निरीह प्राणियों की हत्या करवाने से भी बाज नहीं आता। फिर भी लोकमानस अपने विश्वास से नहीं हटता, क्योंकि यह उसका

---

१ डा० वासुदेवशरण अग्रवाल : 'हर्षचरित' (एक सांस्कृतिक अध्ययन), पृ०२६ ।

विश्वास था । अतएव उसके लिए सत्य था । संसार सत्य का ही उपासक है और
वह मिथ्या को तभी मानता है, जब उसे सत्य समझता है । अन्ततोगत्वा लोक का
विश्वास सत्य होता है और सम्राट के संकेतमात्र पर अपने प्राणों की बाजी लगाने
वाले सैनिकों के द्वारा ही छत्रभंग होता है । सम्राट भागना चाहता है, परन्तु भाग
न सका । सैनिकों का दल समक्ष आते ही सम्राट धड़ाम से औंधा गिर पड़ा- उसकी
जीभ बाहर निकल आयी । उसका मुकुट छटक कर अग्रणी के चरणों में जा गिरा ।
वह प्राणों की भिक्षा मांगने लगा किन्तु नायक के आदेशानुसार उसके भी टुकड़े कर
दिए गए । तब उनकी आँखें खुलीं, क्योंकि उस अत्याचारी के अन्त के साथ-ही-साथ
उस दुष्ट प्रभाव का भी अन्त हो गया, जिससे वे अभिभूत हो रहे थे[1] ।

"सायकिल की सवारी" शीर्षक कहानी में तिवारी
लक्ष्मीनारायण सायकिल चलाना सीखने के लिए निकले ही थे कि बिल्ली रास्ता
काट गई और एक लड़के ने छींक भी दिया । परिणामत: वे घर लौट आये । कुछ
समय पश्चात् पुन: घर से निकले ही थे कि पड़ोसी लाला ने टोक दिया -- कहिए
कहाँ जा रहे हैं ? इस प्रकार तीन अपशकुन होते हैं । लोकविश्वास के आधार पर
फल भी मिलता है । उनकी सायकिल गिर पड़ती है और चोट लगती है और
चाहे जो कुछ हो, किन्तु तिवारी जी इसका कारण यात्रा के समय होने वाले
अपशकुन और पड़ोसी लाला के मुंही `कहाँ` की तासीर मानते हैं[2] । इसीप्रकार
आंख फड़कना, बिल्ली का रास्ता काटना, खाली घड़ा दिखाई पड़ना, पूजा के थाल
का गिरना, शुभ कार्यों में विधवा का सामने पड़ना इत्यादि अमंगलसूचक माने गये हैं ।
जिनका प्रयोग द्विवेदीयुगीन हिन्दी कहानी में प्राय: किया गया है ।

"प्रणय परिपाटी" शीर्षक कहानी में नायिका मालती
अपने अस्वस्थ प्रेमी को समाचार देने के लिए अपने नौकर शिवसिंह को कथानायक के
पास भेजती है । शिवसिंह बहुत उदास था । उसने एक ठंडी सांस ली, उसी समय
नायक के बाम नेत्र फड़क उठे, जिसे लोक में अमंगलसूचक माना जाता है । अस्तु,
नायक भी मन-ही-मन कहता है -- विश्वेश्वर ! कुशल करना । उन्होंने शिवसिंह से

१ दुर्गादत्त-- `दुर्गाई`, पृ०५०-५१ ।
२ पूर्वोक्त : "सायकिल की सवारी" ([illegible]), पृ०१३१-१३२ ।

कहा --`शिवसिंह,क्यों दुखी होते हो, कारण बताओ । उसने धीरे से नायक को नायिका के विषय में बतलाया कि श्रीमती वासन्ती और श्रीमती मालती कल रात में ग्यारह बजे की गाड़ी से प्रस्थान करेंगी । इसे सुनते ही नायक को ज्ञात हुआ कि मानो हृदय के ऊपर वज्र गिर पड़ा । वह प्रलय का अन्धकार देखने लगा और संज्ञाशून्य हो गया[1] ।

इसी प्रकार विनोदशंकर व्यास द्वारा लिखित `विधाता' शीर्षक कहानी का नायक जैसे ही दफ्तर जाने के लिए घर से निकला था कि बिल्ली रास्ता काट गई और आगे चलकर खाली घड़ा भी दिखायी पड़ा । इन्हीं सब अपशकुनों ने मिलकर तो उसके भाग्य का फैसला कर दिया । जब वह लौटकर घर आया तब उसकी स्त्री ने अपने पति को उदास देखकर पूछा--`क्या हुआ ?' `नौकरी छूट गई' । साहब ने जवाब दे दिया' । यह कहते-कहते उसकी आँखें भर आयीं[2] ।

प्रेमचन्द द्वारा लिखित `धाम का अग्निकुंड' शीर्षक कहानी में भी अपशकुन का वर्णन किया गया है । धर्मसिंह युद्ध से लौटे थे और महल के भीतर पाँव भी न रखने पाए थे कि छींक हुई और बायीं आँख फड़कने लगी । राजनन्दिनी आरती का थाल लेकर खड़ी थी कि उसका पैर फिसल गया, थाल हाथ से छूटकर गिर पड़ा । धर्मसिंह का माथा ठनका और राजनन्दिनी का चेहरा पीला पड़ गया । यह अशुभ क्यों ? लोकविश्वास के अनुसार ही दूसरे ही दिन राजनन्दिनी का पति धर्मसिंह इस संसार से चल बसता है[3] ।

पं०बालकृष्ण शर्मा `नवीन' की `गोई बीबी' शीर्षक कहानी में भी अपशकुन का वर्णन लोकविश्वासानुकूल ही किया गया है[4] । लोकविश्वास के अनुसार सूखा कण्डा लेकर ,जब कोई पड़ोसी किसी के यहाँ गाँव में आग लेने जाता है,तो इसे अपशकुन माना जाता है ।लोक का विश्वास है कि सूखा उपला

१- द्रष्टव्य--चण्डीप्रसाद `हृदयेश' :`नन्दननिकुंज',पृ०७७-८० ।
२ ,, --सम्पा० सूर्यकान्त :`गल्पपारिजात',पृ०१६४ ।
३ ,, --`मानसरोवर' भाग६,पृ०१३५ ।
४ ,, --`मधुकरी' भाग १,सम्पा०विनोदशंकर व्यास ,पृ०२६६-७४ ।

केवल `मसान` का ही होता है और अर्थी के साथ मसान पर ही ले जाया जाता है । उमाशंकर जोशी द्वारा[1] लिखित `अन्तिम कंडा` शीर्षक कहानी में इसी रूढ़ि का प्रयोग किया गया है ।

अभिशाप और वरदान से सम्बद्ध कथानक रूढ़ियां

लोकमानस की अभिशाप और वरदान के प्रति सदैव से आस्था रही है । वर्तमान वैज्ञानिक युग में भी मानव समाज के उन समुदायों में, जिनमें आधुनिकता का प्रचार नहीं हो सका है, आज भी इनके प्रति वह आस्था ज्यों-की-त्यों विद्यमान है । इतना ही नहीं, बल्कि पढ़े-लिखे और आधुनिकता के रंग में रंगे हुए कितने ही व्यक्तियों के हृदय में इनके प्रति पूर्ण विश्वास आज भी देखा जाता है । भारतवर्ष में ऋषि, मुनि, योगी, सन्यासी, ब्राह्मण और देवता इत्यादि सदैव से पूजित रहे हैं । ये तपस्या योगाभ्यास तथा ईश्वर की आराधना के कारण अलौकिक शक्ति से सम्पन्न समझे जाते हैं । अत: साधारण प्राणी इनके प्रति आस्थावान् तथा श्रद्धानत होता है । इन असाधारण व्यक्तियों से साधारण मनुष्य इसलिए भी डरता रहता है कि कहीं किसी कारण से रुष्ट कर अभिशाप न दे बैठें, जिससे सर्वनाश हो जाय । इसके विपरीत इन अलौकिक तत्वों से युक्त व्यक्तियों की सेवा करके उन्हें प्रसन्न कर आशीर्वाद अथवा वरदान प्राप्त करने की परम्परा भी अत्यधिक प्रचलित और प्राचीन है । लोकमानस का विश्वास है कि ब्राह्मण को भोजन अथवा साधु-महात्माओं की सेवा द्वारा पुण्य का उदय होता है और वे प्रसन्न होकर मनोवांछित वरदान दे देते हैं । लोकव्यापी ये विश्वास लोक-साहित्य में भी ग्रहण किए गए हैं । लोककहानियों में किसी असाधारण व्यक्ति के शाप द्वारा किसी व्यक्ति का पत्थर हो जाना या पशु हो जाना अथवा आशीर्वाद या वरदान द्वारा पुत्र-धन इत्यादि के प्राप्त होने की बात प्राय: आती है ।

---

१ द्रष्टव्य --`हंस`, वर्ष ८, अंक ७, अप्रैल १६३८, पृ०६००-६०६ ।

प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी कहानीकारों ने भी अभिशाप और वरदान से सम्बन्धित कथानक रूढ़ियों का प्रयोग कर कथा में प्रभाव और गति प्रदान की है । इनके प्रयोग द्वारा विवेच्ययुगीन हिन्दी कहानी लोककहानी के अत्यधिक निकट आ गई है ।

अभिशाप

प्रेमचन्द द्वारा लिखित `शाप` शीर्षक कहानी में शाप द्वारा पशु हो जाने की रूढ़ि का प्रयोग हुआ है । एक मन्दिर के पुजारी पण्डित श्रीधर की धर्मपत्नी विद्याधरी कई बार प्रयत्न करने पर भी कुंडे के घटरे पर न पहुंच सकी । उचित अवसर जान नृसिंहदेव ने सहारा देने के लिए उसकी बांह पकड़ ली । उस समय उनके नेत्रों में एक विचित्र प्रकार की तृष्णा और मुख पर एक विचित्र आतुरता दिखलाई दे रही थी । विद्याधरी का मुख डूबते हुए सूर्य की भांति लाल हो रहा था । उसने नृसिंहदेव की ओर क्रोधोन्मत्त होकर कहा --`तूने काम के वश होकर मेरे शरीर में हाथ लगाया है । मैं अपने पातिव्रत के बल से तुझे शाप देती हूं कि तू अभी पशु हो जा।` यह कहते ही विद्याधरी ने अपने गले से रुद्राक्ष की माला निकाल कर नृसिंहदेव के ऊपर फेंक दिया[1] । फलस्वरूप नृसिंहदेव उसी क्षण एक विशाल सिंह के रूप में परिवर्तित हो गया । प्रेमचन्द की ही `पाप का अग्निकुण्ड` शीर्षक कहानी की नायिका राजनन्दिनी जब चिता पर बैठ जाती है, तब उसके पति की हत्या करने वाला कुंवर पृथ्वी सिंह आकर रोकर क्षमा-याचना करता है, किन्तु सती ने शाप देते हुए कहा--`क्षमा नहीं हो सकता । तूने एक नौजवान राजपूत की जान ली है, तू भी जवानी में मारे जाओगे ।`यह कहकर वह सती हो गई । साल ही अन्दर के भीतर[2] पृथ्वी सिंह दिल्ली में कत्ल किए गए । इस प्रकार सती का शाप सत्य होता है । इसी प्रकार रायकृष्णदास की `रमणी का रहस्य`[3] शीर्षक कहानी में वणिक-पुत्र तापस कन्या को देखते ही पत्थर का हो जाता है ।

---

१ द्रष्टव्य-- मानसरोवर भाग४,पृ०६८-६९ ।

२ ,, -- ,, भाग३, पृ०१३७-३८ ।

३ ,, --`सुधांशु`,पृ०७२-७३ ।

वरदान

अभिशाप के समान ही विवेच्ययुगीन हिन्दी कहानी में वरदान से सम्बन्धित विविध रूढ़ियों का प्रयोग भी किया गया है । पूर्व विवेचित 'रमणी का रहस्य' शीर्षक कहानी में जब वणिक-पुत्र पत्थर का हो[1] जाता है, तब तपस्वी ने ही अपने तपोबल से वैश्य कुमार को पुनरुज्जीवित किया और प्रेमचन्द की 'शाप' शीर्षक कहानी में शृंगारसिंह विद्याधरी के आशीर्वाद से ही पुनः सिंह योनि से मानव योनि प्राप्त करते हैं[2] ।

कुंवर विशाल सिंह निःसन्तान थे, उन्हें अहर्निश इसी बात की चिन्ता थी, कि इतनी बड़ी सम्पत्ति और ऐश्वर्य का भोगने वाला उत्पन्न न हुआ । फलस्वरूप वे सांसारिक झगड़ों से विरत होते गये । उनके जीवन में परिवर्तन आया और उनके द्वार पर कभी-कभी साधु-सन्त धुनी रमाये दिखलाई पड़ने लगे । परमात्मा की कृपा और साधु-सन्तों के आशीर्वाद से बुढ़ापे में उनको पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई[3] । इसी प्रकार सुदर्शन द्वारा लिखित 'पुनर्जन्म' शीर्षक कहानी में अयोध्यानाथ का आतिथ्य स्वीकार कर जब साधु हरिद्वार जाने के लिए उद्यत हुआ, तब अयोध्यानाथ ने कहा --'महाराज ! मेरे यहाँ सन्तान नहीं है । आप ईश्वर से प्रार्थना करें, हम पापी लोग हैं, हमारी प्रार्थना में असर नहीं । आप महात्मा हैं, परमात्मा आपकी सुनेगा ।' साधु ने उत्तर देते हुए कहा--'सुनेगा या नहीं, यह तो वही जाने, परन्तु मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूं कि भगवान तुम्हें सन्तान दे ।' यह कह कर साधु चला गया । साल के भीतर ही अयोध्यानाथ के यहाँ पुत्र उत्पन्न हुआ । साधु[4] का आशीर्वाद सत्य हुआ और उनका घर पुत्ररत्न के प्रकाश से प्रकाशित हो गया । जैनेन्द्र की 'साधु की हठ' शीर्षक कहानी में भी इसी रूढ़ि का प्रयोग किया गया है । साधु के आशीर्वाद से ही दुखी दम्पति को डेढ़ साल के भीतर पुत्ररत्न की प्राप्ति होती है । दोनों ही प्राणी साधु के प्रति बड़े कृतज्ञ हैं । पुत्र को उन्हीं

---

१ रायकृष्णदास : 'सुधांशु', पृ० ७२ ।

२ प्रेमचन्द : 'मानसरोवर' भाग ६, 'शाप', पृ०७२-८७ ।

३ ,, : ,, ,, 'पछतावा', पृ०२३८-४६ ।

४ द्रष्टव्य -- 'सुदर्शन-सुधा', पृ०११३-११७ ।

का प्रसाद मानते हैं[१] ।

शुभ कार्यों के साथ-ही-साथ जुआ आदि कुव्यसन में भी जीत के लिए आशीर्वाद की आवश्यकता पड़ती है । बाबू जयशंकर 'प्रसाद' द्वारा लिखित 'गुण्डा' शीर्षक कहानी के नायक बाबू नन्हकू सिंह को भी जुआ खेलने का शौक है । उन्हें बाबा कीनाराम का वरदान है कि जुए की पहली बाजी में उनकी जीत होगी, जो सत्य भी होता है[२] ।

<u>देवी देवताओं से सम्बद्ध कथानक रूढ़ियां</u>

देवी-देवताओं आदि अलौकिक शक्तियों के प्रति लोक-मानस का अटूट विश्वास होता है । लोकजीवन में इनके विषय में जितने भी पौराणिक आख्यान प्रचलित रहते हैं, वे सभी सत्य समझे जाते हैं । प्राचीनकाल से ही इनकी पूजा और उपासना लोकजीवन में की जाती रही है । आज भी लोक-समाज में नाना प्रकार के देवी तथा देवताओं की पूजा विविध कामनापूर्ति के लिए की जाती है । प्रेमचन्दयुगीन कहानी में देवी-देवताओं से सम्बद्ध कथानक रूढ़ि का भी यत्र-तत्र प्रयोग किया गया है ।

<u>देवता का प्रकट होना</u>

उपासक देवता की प्रसन्नता के लिए अपना जीवन अर्पित कर देता है । सोलह वर्ष पश्चात् सहसा उसे देवता का दर्शन प्राप्त होता है । वह तृषित बालक की भांति उनकी ओर देखने लगा। देवता ने कहा—' मैं तुम्हारी तपस्या से प्रसन्न हुआ हूं, बोलो क्या चाहते हो ?' उपासक ने देवता के चरणों की अटल भक्ति मांगी । देवता ने भक्त की परीक्षा लेते हुए उसे अतुल सम्पत्ति तथा अनन्त सुख प्रदान कर सांसारिक जीवन व्यतीत करने का प्रलोभन दिया । उपासक व्याकुल हो उठा, क्योंकि उसे तो एकमात्र भक्ति की आकांक्षा थी । भक्त की भक्ति-भावना तथा अटल विश्वास देखकर देवता प्रसन्न हो गए और उसके सिर पर हाथ फेरते हुए बोले कि ' तू तपस्या कर, सफलता मिलेगी' और यह कहकर

---

१ जैनेन्द्र : 'वातायन'—'साधु की हठ', पृ०१२० ।

२ द्रष्टव्य --'इन्द्रजाल', पृ०९३-९४ ।

अन्तर्धान हो गए।[1]

देवी का प्रकट होना

देवता के समान देवियाँ भी उपासना से प्रसन्न होकर भक्त को दर्शन देती हैं और अभिलषित वरदान देकर अन्तर्धान हो जाती हैं। लोकजीवन में आज भी "नव दुर्गा" का विशेष महत्व है। द्विवेदीयुगीन कहानीकार पण्डित ईश्वरीप्रसाद शर्मा द्वारा लिखित "यतो धर्मस्ततो जयः" शीर्षक कहानी में लोकविश्वास समन्वित इसी रूढ़ि का प्रयोग किया गया है। प्रस्तुत कहानी में रामचरण को गये अभी देर नहीं हुआ था कि यदुनन्दन के नेत्रों के समक्ष देवी की दिव्य प्रतिमा प्रकट हुई। देवी ने कहा --"वत्स! धर्म और देवी-देवताओं में तेरी अचल भक्ति देखकर मैं बहुत प्रसन्न हूँ। मुझमें विश्वास रखकर जो वर चाहे मांग और यदि तू कोई वर नहीं मांगना चाहता तो ले, मैं अपनी ओर से तुझे वरदान देती हूँ -- जाओ, घर जाकर देखोगे कि पाप का भण्डा फूट गया है और तुम्हारी जयजयकार हो रही है। तुम्हारे पवित्र संकल्प से अगले जन्म में रामचरण ब्राह्मण होगा और जब कभी तू मुझे स्मरण करेगा, तब मैं तुझे तेरी अपनी माँ के रूप में दर्शन दूंगी तथा जब तू यह संसार छोड़ देगा, तब मेरे दूत आकर तुझे परम धाम कैलाश को ले जायेंगे।" यह कहकर वह स्वर्गीय शोभा पलमात्र में नेत्रों से अन्तर्हित हो गई।[2] घर जाकर यदुनन्दन ने देवी का वरदान अक्षरशः सत्य पाया।

पत्थर की मूर्ति का सजीव होना

लोककथा-कहानियों में पत्थर की मूर्ति का सजीव होने की रूढ़ि का भी बहुधा प्रयोग हुआ है। द्विवेदीयुगीन कहानीकार श्री सुदर्शन ने भी अपनी "संसार का सत्यार्थी" शीर्षक कहानी में इस कथानक रूढ़ि का प्रयोग किया है। देव कुटीर मग्न सत्य देखने की इच्छा से, विद्यालय के प्रांगण में स्थित ज्ञान और विवेक की देवी के समक्ष आत्महत्या करना चाहता है कि अचानक सफेद पत्थर की मूर्ति सजीव हो उठती है और उसके हाथ से कटार छीनकर, आंगन के एक ओर कोने

1 प्रफुल्लचन्द्र ओझा 'मुक्त' : 'वैभव' -- 'चरण-चिन्ह', पृ० २-६।

2 द्रष्टव्य -- 'पत्रमाला', पृ० ७३-७७।

में फेंक देती है और देवकुलीश से वार्तालाप करने लगी । अन्त में देवी उसकी इच्छापूर्ति के लिए उसे गोद में उठाकर, अपने पंख पसार हवा में उड़ती हुई, बादलों के पहाड़ पर ले जाती है, जहां वह सत्य का पर्दा एक-एक करके फाड़ता है और अन्तिम पर्दा फाड़ते ही अन्धा होकर गिर पड़ता है तथा फूट-फूटकर रोने लगता है ।[1]

आश्चर्यजनक घटना : विस्मयकारी दृश्य

आश्चर्यजनक घटना विस्मयकारी दृश्य कथानक रूढ़ि को आम्पसन महोदय ने एफ०-एफ० १०९९ के अन्तर्गत पंजीकृत किया है । द्विवेदीयुगीन हिन्दी कहानी में इस रूढ़ि का उपयोग 'राम भर का सुख'[2], 'इन्द्रजाल'[3], 'बाहुबली'[4] तथा 'नागपूजा'[5] आदि शीर्षक कहानियों में किया गया है । 'नागपूजा' शीर्षक कहानी की नायिका तिलोत्तमा का जिस व्यक्ति से भी विवाह पक्का होता है, उसे कनवास में अथवा पालकी पर बैठते ही नाग डस लेता है और उसकी मृत्यु हो जाती है । अन्त में ढाका विश्वविद्यालय के अध्यापक पशुशास्त्र के ज्ञाता एवं सर्प के आचार-व्यवहार के मर्मज्ञ की प्रेरणा तथा आश्वासन पर कालीप्रसन्न ने ढाका में ही प्रोफेसर दयाराम से तिलोत्तमा का विवाह कर दिया, किन्तु प्रोफेसर साहब के शयनागार में जाते ही उनका मुख विकृत हो जाता, नसें तन जातीं, शरीर अग्नि की तरह जलने लगता और कालीप्रसन्न को भ्रम होने लगता कि यह कोई नागिन है । एक दिन अर्द्धरात्रि में जैसे ही वे तिलोत्तमा के शयनागार में पहुंचे कि उनके सिरहाने की ओर उन्हें एक अति भीमकाय काला सांप बैठा हुआ दिखायी दिया । वे चुपचाप

1 द्रष्टव्य-- 'मधुकरी', भाग१, सम्पा० विनोदशंकर व्यास, पृ०२८७-९५ ।
2 [illegible] भगवतीप्रसाद वाजपेयी : 'किशोर', पृ०१५८ ।
3 जयशंकर 'प्रसाद' : 'इन्द्रजाल', पृ०१०-११ ।
4 जैनेन्द्र : 'बाहुबली' (मधुकरी), भाग २, सम्पा० विनोदशंकर व्यास, पृ०१८८-९० ।
5 प्रेमचन्द : 'मानसरोवर' भाग ७, पृ०२९६-९९ ।

वापस लौटकर औषधि की एक खुराक पी और पिस्तौल तथा सांगा लेकर उसके कमरे में पहुंचे,परन्तु सांप का पता न था । हां, धर्मपत्नी के सिर पर भूत सवार था । वह बैठी हुई आग्नेय नेत्र से द्वार की ओर ताक रही थी । उसके नेत्रों से ज्वाला निकल रही थी । वह दयाराम को देखते ही उनपर टूट पड़ी और दांत से काटने का प्रयत्न करने लगी।उसने अपना दोनों हाथ उनकी गर्दन में डाल दिया । दयाराम ने बहुतेरा छुड़ाना चाहा,परन्तु उसका बाहुपाश प्रतिक्षण सांप की केंचुली केंचुली की भांति कठोर एवं संकुचित होता गया और वह बारम्बार फुंकार मारकर जीभ निकाले उनकी ओर झपटती थी । एकाएक वह कर्कश स्वर में बोली,--`मुझे तेरा इतना साहस कि तू उस सुन्दरी से प्रेमालिंगन करे ।` यह कह बड़े वेग से काटने दौड़ी । असहाय दयाराम ने उसकी छाती पर गोली दाग दी,परन्तु कोई असर न हुआ । उसकी बाहें और भी कड़ी हो गईं, आंखों से चिनगारियां निकलने लगीं । उन्होंने दूसरी गोली दाग दी । यह चोट पूरी पड़ी और तिलोत्तमा भूमि पर गिर पड़ी । तब वह दृश्य देखने में आया,जिसका उदाहरण `अलिफ लैला` और `चन्द्रकान्ता` में भी न मिले । वहीं पलंग के पास जमीन पर एक काला भुजंग दीर्घकाय सर्प पड़ा तड़प रहा था, जिसकी छाती और मुंह से खून की धार बह रही थी । कुछ देर पश्चात् जब प्रोफेसर साहब पुन: कमरे में गये तो तिलोत्तमा खड़ी अपने केश संवार रही थी । उन्हें देखते ही बोली --`आप इतनी रात तक कहां रहे ?` दयाराम बोले--`एक जलसे में चला गया था । तुम्हारी तबियत कैसी है ? कहीं दर्द नहीं है ?` उसने आश्चर्य से देखते हुए पूछा --` तुम्हें कैसे मालूम हुआ ? मेरी छाती में ऐसा दर्द हो रहा है,जैसे छिलक पड़ गयी हो । प्रेमचन्द ने `ज्वालामुखी`[1] और `[illegible]`[2] शीर्षक कहानियों में भी इसी रूढ़ि का प्रयोग किया गया है ।

श्री सुदर्शन द्वारा लिखित `दो परमेश्वर` शीर्षक कहानी में इसी रूढ़ि के आधार पर घटनाक्रम को आगे बढ़ाया गया है । प्रस्तुत कहानी में नामी वेश्या एक योगी के ऊपर थूक देती है और उसकी आशा से उसका प्रेमी योगी को पीटता भी है,किन्तु योगी कुछ कहता नहीं । रात को प्रकृति का

---

१ प्रेमचन्द--`मानसरोवर` भाग ८,पृ०९१-१०० ।

२ ,, -- ,, ,, पृ०१७८ ।

न मिलाई पैने बाला हाथ दिला और दूसरे दिन सौन्दर्य का अन्धभक्त अपने बिस्तरे पर मरा पड़ा था[1]।

भारतीय कथाओं में सतीत्व का विशेष महत्व निरूपित किया गया है तथा सती नारी सब कुछ करने में समर्थ होती है। द्विवेदीयुगीन कहानी में सतीत्व के प्रभाव से चिता का अनायास प्रज्ज्वलित होना आदि घटनाओं में अलौकिक तत्वों के द्वारा कथानक को विस्मयजनक रूप प्रदान करने के लिए परंपरा द्वारा प्राप्त इस कथानक रूढ़ि का भी प्रयोग किया गया है। प्रेमचन्द की 'पाप का अग्निकुण्ड' शीर्षक कहानी की नायिका राजनन्दिनी चिता पर बैठ चुकी थी। उसके मन में शक था, अस्तु एकाएक चिता में आग लग गई। जयजयकार[2] के शब्द गूंजने लगे और थोड़ी ही देर में वहां राख के ढेर के सिवा और कुछ न था। इसीप्रकार श्रीमती धर्मपत्नी पण्डित रामगोपाल की "कांता" शीर्षक कहानी में कल्याणी नगर के राजकुमार कर्ण ने जब पतिपरायणा कांता को कारावद्ध करके उसका सतीत्व नष्ट करना चाहा, किन्तु कान्ता के दृढ़ व्यक्तित्व के समक्ष सफल न हो सका, तब कर्ण के आदेशानुसार उसकी दूती सरला ने कांता को उसके पति की मृत्यु का मिथ्या समाचार दिया। फलस्वरूप उसने अपने सतीत्व के प्रभाव से बिना अग्नि के ही चिता प्रज्ज्वलित कर हत्या[3] हो गई।

<u>अमानुषिक नृशंसता</u>

द्विवेदीयुगीन कहानियों में अमानुषिक नृशंसता संबंधी कार्यों से सम्बद्ध कथानक रूढ़ियों का उल्लेख भी यत्र-तत्र किया गया है। कृष्णानन्द गुप्त द्वारा लिखित 'करीम मर गया' शीर्षक कहानी में राव साहब के अधीन लाला हरसुखलाल के नौकरों तथा करीम खां कोचवान को पेड़ में उलटा टांग, नीचे सूखी घास

---

१ द्रष्टव्य--'फसाद', पृ०१४३-१४५।

२ ,, --'मानसरोवर' भाग६, पृ०१३८।

३ ,, --'नवजीवन', अप्रैल-मई, सन्१६२४, पृ०४२-४७।

में आग लगा देते हैं । फलस्वरूप जैसे-जैसे रस्सी जलकर टूटती जाती है, वे आग के ढेर में गिर कर भस्म होते जाते हैं[1] । इसी प्रकार 'खेल'[2] तथा 'मक्खन कुल कहा'[3] शीर्षक कहानियों में भी इस रूढ़ि का प्रयोग हुआ है । सुदर्शन द्वारा लिखित 'धर्म की वेदी' शीर्षक कहानी में गवर्नर कैंट्यानस की आज्ञा से निरपराधिनी अगाथा को शिकंजे में कसा गया । उसके अगणित कील अगाथा के कोमल शरीर में घुस गये । हड्डियां टूट रही थीं, रुधिर बह रहा था, लोग रो रहे थे, परन्तु उसकी आंखों में पानी न था । दूसरी आज्ञा हुई-- शिकंजा खोल दो और इसे जिन्दा जला दो । तत्काल आग प्रचण्ड हुई और उसका हाथ-पांव लोहे की जंजीरों से जकड़, जल्लादों ने आग के ऊपर घसीटना शुरू किया[4] । उसके कपड़े जल गये, वह नंगी हो गई और तड़प-तड़प कर प्राण त्याग दिए ।

<u>छद्मवेशी साधु</u>

भारतवर्ष की पावनभूमि में जहां ऋषि, मुनि, योगी, सन्यासी और ब्राह्मण आदि की सदैव से पूजा होती रही है, वहां उनकी आड़ में छद्मवेशी साधु-सन्यासियों की भी कमी नहीं रही है । इनसे सम्बद्ध कथानक रूढ़ियां लोकमानस और लोकसाहित्य की देन है । शिष्ट साहित्य में भी जहां कहीं इनका परम्परागत उपयोग हुआ है, इन्हें लोक उपादान के रूप में ही ग्रहण किया जाना चाहिए । वर्तमान समय में भी इनका अभाव नहीं है । इस कथानक रूढ़ि का उल्लेख ब्लूम फील्ड ने किया है । द्विवेदीयुगीन कहानी में इस रूढ़ि का प्रयोग राय कृष्णदास द्वारा लिखित 'माहात्म्य' शीर्षक कहानी में हुआ है । ईश्वरीप्रसाद, गोमती और उनकी इकलौती पुत्री के सुखी परिवार में एक छद्मवेशी साधु आने लगा, जो कुछ रुपया देकर और बदले में कुछ वस्तुएं लेकर चला जाता ।

---

१ द्रष्टव्य--'पुरस्कार', पृ०१०२-१०४ ।

२ प्रेमचन्द : 'मानसरोवर' भाग ७, पृ०१०-११ ।

३ आचार्य चतुरसेन शास्त्री : 'सोया हुआ शहर', पृ०२४१-४८ ।

४ द्रष्टव्य--'पनघट', पृ०१२१-१२४ ।

उससे गोमती घृणा करती थी,किन्तु पति के सामने उसकी एक भी न चलती ।
साधु कहता भी है कि मैं लूटने आया हूं, खूब मेवा-मिष्ठान्न भी उड़ाता है और
ईश्वरी प्रसाद को गालियां भी देता है,परन्तु सोने के लोभ में वे पागल हो रहे हैं।
एक दिन सोने की मात्रा बढ़ी चमकती हुई, माँ कामिनियां,रुपयों के बीच छिपाकर
घर का आभूषण इत्यादि सब कुछ लेकर वह चला गया । ईश्वरी प्रसाद उसे
देखने गये और दारोगा ने उन्हें दूसरे दिन बुलाया । दूसरे दिन पुलिस ने उन्हें
हथकड़ी पहनाकर बन्दी बना लिया[1] । ज्ञातव्य है कि प्रस्तुत कथानक रूढ़ि के आधार
पर ही कहानीकार ने कहानी के घटना-क्रम को विकसित रूप दिया है । इसी
प्रकार प्रेमचन्द द्वारा लिखित 'मैकू' शीर्षक कहानी में मैकू साधु वेश में लोगों को
ठगता फिरता है । जो भी व्यक्ति उसके समीप श्रद्धा से युक्त होकर आता है,
उसे अशर्फियों का लोभ देकर जितनी चांदी मिल सके, लाने के लिए कहता है । इसके
साथ-ही-साथ सचेत भी करता रहता है कि इतना याद रखना कि अशर्फियों को
दुर्व्यसन में खर्च करोगा, तो कोढ़ी हो जायगा[2] । एक दिन अवसर पाकर वह सब कुछ
ले-देकर गायब हो जाता है ।

<u>छिपकर बात सुनना</u>

ब्लूम फील्ड ने हिन्दू कथा साहित्य में प्रयुक्त छिपकर
सुनने सम्बन्धी कथानक रूढ़ि का उल्लेख जर्नल आफ अमेरिकन ओरियन्टल सोसायटी
के जिल्द ४० के पृष्ठ एक सौ छप्पन पर किया है । द्विवेदीयुगीन हिन्दी कहानी
में इस रूढ़ि का अत्यधिक प्रयोग हुआ है । द्विवेदीयुगीन कहानीकार श्री गोपाल
नेवटिया द्वारा लिखित 'आत्महत्या' शीर्षक कहानी में प्रस्तुत कथानक रूढ़ि का
प्रयोग किया है । उपर्युक्त कहानी में देवी ने आगे बढ़कर दरवाजे की कुंडी खटखटाने
वाला ही था कि उसका हाथ रुक गया । वह दरवाजे के सहारे कान लगाकर सुनने

---

१ द्रष्टव्य--'अमावस्या',पृ०४५-५३ ।

२ ,, --'मानसरोवर' भाग २,पृ०२७७-२८१ ।

लगा । संकेत द्वारा उसने अपने मित्र को भी अपने पास बुला लिया । दोनों ही मित्र दरवाजे से कान लगाकर सुनने लगे और जैसे ही भीतर से सांकल खुलने की आवाज आई, दोनों उल्टे पांव लौटकर सड़क पर खड़ी मोटर पर आ बैठे । अपने घर के समीप मोटर से उतरते समय देवी ने सिर्फ इतना कहा --`कैसी अहमक की कुर्बानी !` और `करीमा की`-- मैंने कहा[1] । ज्ञातव्य है कि इसी रूढ़ि के माध्यम से कहानीकार ने कहानी में वर्णित रहस्य का उद्घाटन भी किया है ।

डाक्टर वर्मा राम `प्रेम` की `बलि` शीर्षक कहानी में रजनी घर पहुंचकर देखती है कि कमरे का द्वार बन्द है और भीतर प्रकाश फैल रहा है । उसने छेद में से देखा, लता मेज पर बैठी थी और सतीश मेज का सहारा लिए उसके पास खड़ा था । दोनों में बातें हो रही थीं । रजनी चुपचाप सुनने लगी । दोनों के मध्य होने वाली बातचीत को सुनकर वह अपने हृदयस्थ प्रेम का बलिदान कर देती है[2] । प्रेमचन्द ने इस रूढ़ि का अत्यधिक प्रयोग करते हुए इसी के माध्यम से अपनी कहानियों में मोड़[3] उत्पन्न कर कथानक को विस्तार एवं गति प्रदान की है । इन्होंने `दुर्गा का मन्दिर` और `अलग्योझा`[4] इत्यादि अनेक कहानियों में छिपकर बात सुनने की चिरपरिचित कथानक रूढ़ि का प्रयोग किया है ।

इसी प्रकार[5] ईश्वरीप्रसाद शर्मा की `स्वर्गीय प्रेम`[6], पारसनाथ त्रिपाठी की `सुख की मौत` शीर्षक कहानियों में भी इस रूढ़ि का उपयोग किया गया है । चण्डिकाप्रसाद मिश्र द्वारा लिखित `भ्रम` शीर्षक कहानी

---

१ द्रष्टव्य-- `वीथिका`,पृ०७६,७७ ।

२ ,, --`मधुकरी`,भाग२,सम्पा० विनोदशंकर व्यास,पृ०१३६-४० ।

३ ,, --`मानसरोवर भाग ७` ,पृ०१३६ ।

४ ,, -- ,, भाग १`,पृ०१० ।

५ ,, -- `गल्पमाला`,पृ०८८ ।

६ ,, --`इन्दु`,कला ४,खण्ड १,किरण ४,अप्रैल १९१३ई०,पृ०३५२ ।

की भोली-भाली नायिका किशोरी ठाकुर द्वारा साफ करते समय दस हजार रुपए पाती है और नोट के बण्डल को आंचल में बांधकर प्रसन्नता से उछलती-कूदती ईश्वरप्रदत्त यह शुभ समाचार सुनाने के लिए राधे की खोज में उसके कमरे की ओर गई । राधे बाबू मां के साथ एकान्त कमरे में बैठकर कुछ सलाह कर रहे थे । अपने सम्बन्ध में वार्तालाप सुनकर वह कमरे के बाहर ठिठकी । राधे बाबू मां से कह रहे थे--'मां ! इतने दिनों की सारी मेहनत बेकार गई । मैं सोचता था कि बुढ़िया के पास दस-बीस हजार तो होंगे । बड़ा धोखा हुआ । मां को उसके कथन पर विश्वास न हुआ और पुत्र को आशा देते हुए कहा --' कि यह बात साबित न हो कि हम लोग उसे नहीं चाहते । रुपया हाथ में आने पर फिर देखा जायगा ।' किशोरी मां-बेटे की बात सुनकर स्तम्भित रह गई और मन-ही-मन कहा -- यह लोग मेरा रुपया छीनना चाहते हैं । मां ने ठीक ही कहा था कि राधे रुपयों से प्रेम करता है, तुमसे नहीं । उनकी बात सच निकली । ईश्वर ने खूब बचाया, कहती हुई वह अपने कमरे में वापस चली आई ।

वेश्याओं से सम्बद्ध कथानक रूढ़ियां

विवेच्ययुगीन हिन्दी कहानी-साहित्य में वेश्याओं से सम्बन्धित कहानियां भी अत्यधिक मात्रा में लिखी गईं । थाम्पसन महोदय ने इस कथानक रूढ़ि को टी०४००-टी०४९९ संख्या के अन्तर्गत वर्गीकृत किया है । विश्वम्भरनाथ शर्मा द्वारा लिखित 'पावन पतित' शीर्षक कहानी में चित्रित वेश्या सम्पन्न घर की बहू थी । उसे किसी बात की कमी न थी, परन्तु उसे कुछ और चाहिए था । अतः अपने एक प्रेमी के साथ वह भाग निकलती है, किन्तु पैर भारी है कि बात सुनकर वह व्यक्ति सारे आभूषण इत्यादि लेकर उसे असहायावस्था में छोड़ भाग जाता है । ऐसी अवस्था में एक बुढ़िया ने उसे आश्रय तो प्रदान किया, और वहां पुत्र का जन्म हुआ , परन्तु बुढ़िया ने उसे पास न रहने दिया । स्वस्थ होने पर बुढ़िया ने वेश्यावृत्ति के लिए विवश किया । परिणामतः वह कुलवधू

---

१ द्रष्टव्य --'चाँद', वर्ष ४, संख्या ११, अक्तूबर १९२६ई०, पृ०२७-२९ ।

बिगड़ कर वेश्यावृत्ति करने लगती है।[1] पण्डित ज्वालादत्त शर्मा की 'भाग्य का फेर' शीर्षक कहानी में भी इसी रूढ़ि का उपयोग किया गया है। कहानी की नायिका सुशील सभ्य घर की थी, किन्तु प्रेमी के साथ भाग आई। प्रेमी उसे स्वर्ग से निकाल कर नरक में तो डाल देता है, लेकिन फिर खबर तक नहीं लेता। परिणामत: वह बिगड़ कर वेश्यावृत्ति करने लगती है।[2] थाम्पसन महोदय ने चरित्र भ्रष्ट होकर वेश्यावृत्ति से सम्बद्ध कथानक रूढ़ि को टी०४५० के अन्तर्गत पंजीकृत किया है।

इसके विपरीत जब कोई स्त्री गरीबी के कारण मजबूर होकर वेश्यावृत्ति करती है तो इसे टी०४५०.३ के अन्तर्गत स्थान दिया है। विवेच्ययुगीन प्रसिद्ध कहानीकार यशपाल द्वारा लिखित 'दुखी-सुखी' शीर्षक कहानी में ऐसी ही एक वेश्या का वर्णन किया गया है। जब उसका मालिक दूसरी स्त्री के साथ उसे छोड़कर चला जाता है, तब वह निर्धनता के कारण अपना भरण-पोषण नहीं कर पाती। अन्त में क्षुधा से व्याकुल स्त्री मजबूर होकर, किसी स्त्री के कहने पर कोठे पर बैठ जाती है और पैसा आने पर आधा-आधा बांट लेने की बात पक्की हो जाती है। यह उसका दुर्भाग्य है कि कोई ग्राहक उसके समीप नहीं आता, किन्तु कोठे पर बिठाने वाली स्त्री उसे बारम्बार ढाढ़स बंधाती रहती है।[3]

निष्ठावान् वेश्या

प्राय: वेश्याओं को स्वार्थान्धता की दुष्ट प्रवृत्ति से परिपूर्ण माना जाता है, परन्तु वे भी सच्चे हृदय से प्रेम कर सकती हैं, इसी बात को ध्यान में रखकर प्रेमचन्द-युग में अनेक कहानियां लिखी गई हैं। थाम्पसन महोदय ने इस कथानक रूढ़ि को टी०४५०.४ के अन्तर्गत पंजीकृत किया। जयशंकर 'प्रसाद' द्वारा लिखित 'चूड़ी वाली' शीर्षक प्रसिद्ध कहानी में नर्तकी पुत्री विलासिनी की आंखें विजय कृष्ण पर गड़ जाती हैं। प्रेमाभिभूत वह अपना

---

१ द्रष्टव्य--'चित्रशाला', पृ०३५७-५८।

२ ,, --'हिन्दी गल्प मंजरी', सम्पा० चतुरसेन शास्त्री, पृ०११[illegible]२४।

३ ,, --'पिंजरे की उड़ान', पृ०८३।

चिरसंचित मनोरथ पूर्ण करने के लिए, बूढ़ी बाली का वेश धारण कर, उनके घर पहुंच जाती है । धीरे-धीरे उनका सारा धन उसके पास आ जाता है । किन्तु वेश्या होकर भी वह मात्र उन्हीं से प्रेम करती है । अपने सरकार से प्राप्त धन को वह लोकसेवा में लगाती है और एक दिन सरकार अर्थात् विजयकृष्ण उसके सेवा श्रम में पहुंचते हैं । वह 'मेरी सफलता आपकी कृपा पर है । विश्वास है कि आप अब इतने निर्दय न होंगे ।' कहती-कहती सरकार के पैर पकड़ लेती है और सरकार उसका हाथ थाम लेते हैं[1] । आचार्य चतुरसेन शास्त्री की 'पुरुषत्व'[2], डा० धनीराम 'प्रेम' की 'वेश्या का हृदय'[3] तथा सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' द्वारा लिखित 'क्या देखा ?' शीर्षक कहानियों में भी इसी प्रकार निष्ठावान वेश्या से सम्बद्ध कथानक रूढ़ि का प्रयोग किया गया है ।

शरणागत की रक्षा

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अपने 'हिन्दी साहित्य का आदिकाल' नामक ग्रन्थ में शत्रु संतापित सरदार को उसकी प्रिया के साथ शरण देना और फलतः युद्ध आदि -- को भारतीय कथानक रूढ़ि की सूची में स्थान दिया है । विवेच्ययुगीन हिन्दी कहानी में इस रूढ़ि का प्रयोग अनेक कहानियों में किया गया है । वृन्दावनलाल वर्मा की प्रसिद्ध कहानी 'शरणागत'[4] कहानी में इसी रूढ़ि का प्रयोग किया गया है, जिसमें रज्जब कसाई और उसकी स्त्री की रक्षा एक ठाकुर द्वारा की गई है । कृष्णानन्द गुप्त की 'करीम मर गया' कहानी में भी बागियों के कोप से अहीर दम्पति और उनके परिवार वालों को बचाता हुआ कोचवान करीम घोड़ा गाड़ी में छिपाकर ले जाता है । लाला हरजूमल

---

१ द्रष्टव्य--'आकाशदीप', पृ०११६-२३ ।

२ ,, --'बाहर भीतर', पृ०१६५-२०७ ।

३ ,, --'बल्लरी', पृ०६७-१३२ ।

४ ,, --'मधुकरी' भाग २, सम्पा० विनोदशंकर व्यास, पृ०१९-२४ ।

अपनी हवेली में उन्हें स्थान देते हैं तथा अपने विश्वासपात्र नौकरों को यह समझा देते हैं कि इस विषय में वे बिल्कुल खामोश रहें। किसी से इन गोरों के विषय में जिक्र न करें, क्योंकि ये अपनी शरण आये हैं और शरणागत की रक्षा करना प्राणिमात्र का परम कर्तव्य है। लाला हनुमन्त राय साहब के क्रोध की तनिक भी चिन्ता न कर अन्ततोगत्वा शरण में आये अंग्रेजों की रक्षा करते हैं।[1] इसी कथानक रूढ़ि का प्रयोग जयशंकर 'प्रसाद'[2] ने 'सलीम' और प्रेमचन्द ने '[illegible] की चमक'[3] तथा शिवपूजनसहाय ने 'शरणागत रक्षा'[4] तथा 'प्रसाद' द्वारा लिखित 'ममता' शीर्षक कहानियों में किया गया है। 'ममता' शीर्षक कहानी में धार्मिक अनुष्ठान कर रही थी कि एक भीषण और क्लान्त आकृति दीपक के मन्द प्रकाश के सामने आकर खड़ी हो गई। पाठ रुक गया। स्त्री ने उठकर कपाट बन्द करना चाहा, परन्तु उस व्यक्ति ने कहा --' माता! मुझे आश्रय चाहिए। स्त्री ने कोई जवाब न दिया। स्वस्थ होकर आगत मुगल ने फिर से कहा --' माता! तो फिर मैं चला जाऊँ?' स्त्री विचार कर रही थी, मैं ब्राह्मणी हूँ मुझे तो अपने धर्म - अतिथि देव की उपासना-- का पालन करना चाहिए, परन्तु यहाँ... ... नहीं, नहीं ये सब विधर्मी दया के पात्र नहीं, परन्तु यह दया तो नहीं...... कर्तव्य करना है। तब? .. ... मुगल से बोली --' जाओ, भीतर, थके हुए भयभीत पथिक तुम चाहे कोई हो, मैं तुम्हें आश्रय देती हूँ। मैं ब्राह्मण कुमारी हूँ, सब अपना धर्म छोड़ दें तो मैं भी क्यों छोड़ दूँ?[5] 'इस प्रकार उपर्युक्त कहानियों में प्रस्तुत कथानक रूढ़ि के आधार पर घटनाओं का संयोजन तो किया ही गया है, इसके साथ-ही-साथ कथानक में गति एवं मोड़ भी उत्पन्न किया गया है।

---

१ द्रष्टव्य--`पुरस्कार`,पृ०६४-१०४ ।

२ ,, --`इन्द्रजाल`,पृ०२३-२४ ।

३ ,, --`मानसरोवर` भाग ६,पृ०१६०-१७२ ।

४ ,, --`विभूति`,पृ०२२७-३८ ।

५ ,, --`आकाशदीप`,पृ०२०-२१ ।

स्वामिभक्त सेवक

भारतीय कथा साहित्य में स्वामिभक्त सेवक कथानक रूढ़ि का भी प्रयोग किया जाता रहा है । प्रेमचन्द युगीन कहानीकारों ने परम्परागत प्राप्त प्रस्तुत रूढ़ि का प्रयोग यत्र-तत्र अपनी कहानियों में किया है । स्वामिभक्त सेविका राजकुल कुलोद्भव धाय मां पन्ना राजकुमार उदय की रक्षा के लिए, उसे पुष्प डाली में रखकर सेवक को भगा देती है और स्वयं अपने पुत्र को राजकुमार का वस्त्राभूषण पहना कर उसकी स्थान पर लिटा देती है । शत्रु के आने पर स्वयं अपनी उंगली से संकेत कर अपने पुत्र का वध भी करवा देती है । यह एक भारतीय इतिहास की प्रसिद्ध घटना है । इसी घटना के आधार पर रूपनारायण पाण्डेय ने 'उदय बालचरित' शीर्षक कहानी की रचना की है।[१] इसी रूढ़ि का प्रयोग ललितकिशोर सिंह ने 'अम्मा'[२] शीर्षक कहानी में किया है । प्रस्तुत कहानी में जमींदार सन्तसिंह और उनकी पत्नी रोहिणी अपने इकलौते पुत्र मोहन को धायमां की गोद में सौंप स्वर्गवासी हुए । धाय मां अपने प्राणों की आहुति देकर भी उसकी रक्षा एवं कुल की व्यवस्था करती है । 'करीम मर गया'[३], 'नमकहलाल नौकर'[४], 'रियासत का दीवान'[५] तथा 'राज्यभक्त'[६] इत्यादि शीर्षक कहानियों का ताना-बाना भी इसी कथानक रूढ़ि के आधार पर बुना गया है ।

सतीत्व रक्षा में प्राण-त्याग

भारतीय कथानकों--आख्यानकों--कथा-कहानियों में सतीत्वकी रक्षा में प्राण त्याग देने की कथानक रूढ़ि का अत्यधिक प्रयोग

१ द्रष्टव्य--'इन्दु',कला४,खण्ड१,किरण४,अप्रैल १९१३ई०,पृ०३७६-८२ ।
२ ,, --'हंस',वर्ष४,संख्या४,जनवरी१९३४ई०,पृ०१-१२ ।
३ कृष्णानन्द गुप्त : 'पुरस्कार',पृ०१०२ ।
४ कौशिक : 'चित्रशाला',पृ०२८३ ।
५ प्रेमचन्द :'मानसरोवर' भाग २,पृ०१७८ ।
६ ,, : ,, भाग ६,पृ०२५०-६९ ।

किया गया है । द्विवेदीयुगीन कहानीकारों ने इस रूढ़ि की भी उपेक्षा नहीं की है । शिवपूजनसहाय की 'वीणा' शीर्षक कहानी की नायिका विधवा वीणा ने देखा कि कामातुर दुष्ट जब बलात्कार करना चाहता है । तो वह अन्य उपाय न देख गंगा में कूद कर प्राण त्याग देती है[1] । ठाकुर श्रीनाथ सिंह द्वारा लिखित 'लोकलाज' शीर्षक कहानी की नायिका फेंकी को जब हनुमन्त सिंह गिराकर उसके साथ बलात्कार करना चाहते हैं, तब किसी भी तरह जान बचती न देख उसने कहा --'बच्चा । मुझे छोड़ दो । मैं राखी हूं ।' यह सुनते ही हनुमन्त सिंह ने फेंकी को छोड़ दिया । अवसर पाते ही वह उठी और चट्टान से यमुना[2] में कूद पड़ी । देखते-ही-देखते वह यमुना की गोद में सदा के लिए सो गयी । इसी कथानक रूढ़ि का प्रयोग राजा राधिकारमणप्रसाद सिंह की कहानी 'वीरबाला' में भी किया गया है । इस कहानी की नायिका अपने एक-एक अंग काट-काट कर औरंगजेब के पास[3] भेजकर प्राण दे देती है, किन्तु अपने धर्म या पातिव्रत से च्युत नहीं होती ।

मरणासन्न व्यक्ति को वचन देना और पालन करना

भारतीय लोककथा-कहानियों में मरणासन्न व्यक्ति को वचन देना और जीवनपर्यन्त उसका निर्वाह करना एक बहुप्रचलित कथानक रूढ़ि है । द्विवेदीयुगीन कहानी में इस रूढ़ि का उल्लेख श्रीमती उमा देवी मिश्रा की 'त्यागी हूं'[4], शिवरानी देवी द्वारा लिखित 'प्रण'[5] प्रेमचन्द की 'मां'[6] 'सुहाग की बैरागी'[7] तथा 'मुंबं'[8] और ज्वालादत्त शुक्ल द्वारा लिखित 'प्रत्युपकार'[9] आदि विभिन्न कहानियों में हुआ है ।

---

१ द्रष्टव्य--'विभूति', पृ०७५ ।
२ ,, --'नायिका', पृ०६७,६८ ।
३ ,, --'कुसुमांजलि', पृ०८८-६० ।
४ ,, --'मधुकरी' भाग २, पृ०३२६-३३ ।
५ ,, --'कौमुदी', पृ०१८०-८६ ।
६ ,, --'मानसरोवर' भाग१, पृ०४३-५० ।
७,८ ,, --'[illegible]', पृ० ७५-८१, पृ०५५-६१ ।
९ ,, --'इन्दु', कला ३, किरण ११-१२, अक्टूबर-नवम्बर, १९१२ई०, पृ०७७४-८२ ।

वचन लेकर इच्छा व्यक्त करना

लोककथा-कहानियों में प्राय: इस बात का वर्णन पाया जाता है कि जब तक कोई पात्र अभीप्सित वस्तु की प्राप्ति करने के लिए अन्य पात्र को वचनबद्ध नहीं कर लेता, तब तक अपनी इच्छा नहीं व्यक्त करता । प्रसिद्ध भारतीय आख्यान में भी महाराजा दशरथ से कैकेयी तभी पूर्वप्रदत्त दो वर माँगती है, जब वे वचन दे देते हैं । इस कथानक रूढ़ि का[1] उपयोग विवेच्ययुगीन कहानीकारों ने बहुतायत से किया[2] है । प्रेमचन्द की 'सुभागी' श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान[3] द्वारा लिखित 'कदम्ब के फूल', पण्डित जनार्दन[4] प्रसाद झा 'द्विज' की 'दुखिया' तथा भगवतीचरण वर्मा द्वारा लिखित 'प्रेजेन्ट्स' आदि विभिन्न कहानियों में इसी रूढ़ि का प्रयोग कर कथानक में गति एवं घुमाव पैदा किया गया है ।

पुत्र-शोक में प्राण-त्याग

पुत्र-शोक में माता अथवा पिता द्वारा प्राण-त्याग लोककथा-कहानियों की चिरपरिचित कथानक रूढ़ि है । इस सम्बन्ध में महाराजा दशरथ का आख्यान प्रसिद्ध ही है । प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी कहानी में प्रस्तुत रूढ़ि का भी प्रयोग किया गया है । पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' की 'उसकी माँ' शीर्षक कहानी इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है । स्वर्गीय पति रामनाथ की एकमात्र निशानी पुत्र लाल को जानकी पाल-पोस कर बड़ा करती है । वह बड़ा होकर देश-सेवा में लगता है । सरकार के विरुद्ध षड्यन्त्र करने के अभियोग में उसे प्राणदण्ड दिया जाता है । उसकी बूढ़ी माँ इस आघात को सहन नहीं कर पाती[5] । पुत्र-शोक से व्याकुल ममता की मूर्ति उसी रात स्वर्ग सिधार जाती है । इसके विपरीत

१ द्रष्टव्य--'मानसरोवर' भाग१,पृ०२५७-५८ ।
२ ,, --'मधुकरी' भाग २,पृ०३४२-४३ ।
३ ,, -- ,, ,, पृ०११८-१९ ।
४ ,, --'इन्स्टालमेण्ट',पृ०८८-९० ।
५ ,, --'मधुकरी',भाग१,पृ०२०७-२११ ।

श्री चण्डीप्रसाद 'हृदयेश' द्वारा लिखित 'उन्मादिनी' शीर्षक कहानी की नायिका सौदामिनी का एकमात्र पुत्र जब नहीं बचता, तब वह भी मृत बच्चे के साथ गोमती की गोद में सो जाती है।[1]

बाल-विधवा से सम्बद्ध कथानक रूढ़ियाँ

भारतीय कथानक रूढ़ियों के अन्तर्गत, बाल-विधवा का अविवाहित रहना आवश्यक मानकर, उल्लेख किया गया है। थाम्पसन महोदय के अनुसार बलात् वैधव्य रूढ़ि की संख्या टी०१३१.४ है। प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी कहानी में प्रस्तुत रूढ़ि का भी बहुत अधिक मात्रा में प्रयोग किया गया है। श्रीमती स्वर्णलता देवी द्वारा लिखित 'कृष्णा' शीर्षक कहानी में पार्वती बाल विधवा है, जिसने अपने पति का मुख भी नहीं देखा था।[2] वह नाना प्रकार के कष्टों को भोगती है, किन्तु दूसरा विवाह नहीं कर सकती।[3] सुशीला आगा की 'होली' तथा पण्डित ज्वालादत्त शर्मा की 'विधवा' शीर्षक कहानी में भी इसी रूढ़ि का उपयोग किया गया है।

इसके विपरीत जब कोई बाल विधवा किसी के प्रेम-पाश में आबद्ध होकर गर्भवती हो जाती है और कालान्तर में इस बात का रहस्योद्घाटन होता है तो इस कथानक रूढ़ि को थाम्पसन महोदय ने टी०५७५.१.१. १ संख्या पर अनुसूचित किया है। उपर्युक्त विवेचित श्रीमती स्वर्णलता देवी की 'कृष्णा' शीर्षक कहानी की नायिका बाल विधवा पार्वती के सतीत्व नाश का इच्छुक उसका देवर ही है, जो पहले प्रेम दिखाकर पार्वती को पथभ्रष्ट करता है और गर्भवती होने पर उसे दूध की मक्खी की तरह निकाल कर फेंक देता है।[4] इसी प्रकार डा०धनी राम 'प्रेम' की 'मातृमन्दिर' शीर्षक कहानी की नायिका बाल विधवा कुल मुरारीलाल गुप्त के

---

१ द्रष्टव्य--'मधुकरी' भाग१, सम्पा० विनोदशंकर व्यास, पृ०२२८-२४०।

२,४ ,, --'विश्राम', सितम्बर १९२४ई०, पृ०९-१०।

३ ,, --'अतीत के चित्र', पृ०९१-९७

५ ,, --'मधुकरी' भाग १, पृ०१०५-११०।

प्रेम-जाल में फंस जाती है और संसार के बिना जाने पति-पत्नी के समान जीवन व्यतीत करने लगती है। तीन महीने बाद गर्भ रह गया। पुरुषों से यह बात छिपाई जा सकती है, परन्तु स्त्रियों से नहीं। एक दिन सास ने कह ही दिया -- 'किससे मुंह काला कराया है' और अन्त में गर्भपात की बात को न मान वह घर छोड़ देती है। उधर मुरारी भी भाग खड़ा होता है।[1]

बन्धन अथवा कैद का जीवन व्यतीत करना

बन्धन अथवा कैद का जीवन व्यतीत करने से सम्बद्ध कथानक रूढ़ि को थाम्पसन महोदय ने आर०-आर०९९ संख्या के अन्तर्गत वर्गीकृत किया है। विवेच्ययुगीन हिन्दी कहानीकारों ने प्रस्तुत[2] रूढ़ि का भी[3] बहुधा प्रयोग[4] किया[5] है। प्रेमचन्द द्वारा[6] लिखित 'कप्तान साहब', 'कातिल', 'जुगनू की चमक', 'विस्मृति' तथा 'डामुल का कैदी' आदि विभिन्न कहानियों में इसी रूढ़ि के माध्यम से कथाक्रम[7] को विस्तार[8] दिया गया है। जयशंकर 'प्रसाद' द्वारा लिखित 'स्वर्ग के खण्डहर' तथा 'नूरी' कहानियों में भी इसी रूढ़ि का उल्लेख किया गया है।

भाग्य के उलट-फेर सम्बन्धी कथानक रूढ़ियां

लोकविश्वास समन्वित भाग्य के उलट-फेर सम्बन्धी कथानक रूढ़ियों का उल्लेख लोककथा-कहानियों में बारम्बार आता है। थाम्पसन

---

१ द्रष्टव्य--'बल्ली', पृ०८७-८५।
२ ,, --'मानसरोवर' भाग ५, पृ०११७-११६।
३ ,, -- ,, भाग ७, पृ०११२।
४ ,, -- ,, भाग ६, पृ०१४१।
५ ,, -- ,, भाग ७, पृ०२५०।
६ ,, -- ,, भाग २, पृ०२४६।
७ ,, --'आकाशदीप', पृ०४१।
८ ,, --'इन्द्रजाल', पृ०३६-४१।

महोदय ने भाग्य के उलट-फेर से सम्बद्ध कथानक रूढ़ियों को ९८०-९८०.४९६ संख्या के अन्तर्गत पंजीकृत किया है। विवेच्ययुगीन हिन्दी कहानी में प्रस्तुत रूढ़ि का अत्यधिक प्रयोग किया गया है। प्रेमचन्द द्वारा लिखित 'कप्तान साहब'[1], 'अमावस्या की रात्रि'[2] तथा 'आत्माराम'[3], जैनेन्द्र की 'अपना-अपना भाग्य'[4] तथा पण्डित ज्वालादत्त शर्मा द्वारा लिखित 'भाग्य का फेर'[5] आदि अनेक कहानियों का ताना-बाना इसी कथानक रूढ़ि के आधार पर बुना गया है। 'भाग्य के फेर' कहानी की नायिका सुरबेन अपने प्रेमी के साथ भाग निकलती है। उसका प्रेमी मझधार में छोड़कर भाग जाता है। परिणामत: वह वैश्यावृत्ति करने लगती है। एक दिन एक व्यक्ति उसके पास आता है और उस नरकमय जीवन से निकाल कर अर्धांगिनी के रूप में स्वीकार करता है। अब सुरबेन-रामप्यारी बन जाती है। उसने विलासमय जीवन का परित्याग कर धर्म पथ का अनुसरण किया। कुछ ही दिन बीते थे कि पति महोदय आर्थिक संकट में फंस जाते हैं। रामप्यारी अपने समस्त आभूषण बेंचकर ऋण चुका देती है। बाबू साहब और रामप्यारी कष्टमय जीवन व्यतीत करते हैं, किन्तु भाग्य से ठीकेदारी मिल जाने से आर्थिक संकट दूर होता है और ईमानदारी तथा निष्ठापूर्वक कार्य करने के कारण कश्मीर के महाराज द्वारा सम्मानित उपाधि के साथ-साथ राज-परिवार से अत्यधिक धन तथा आभूषण आदि मिलते हैं। फलत: सुखमय जीवन व्यतीत करते हुए विविध प्रकार प्रकार के पूजा, अनुष्ठान तथा जनहित के कार्य में धन व्यय करते हुए अन्त में सुखपूर्वक इस संसार से विदा हो जाते हैं।

---

१ द्रष्टव्य--'मानसरोवर' भाग५, पृ०११२-२० ।

२ ,, -- ,, भाग ६, पृ०२०८-१६ ।

३ ,, -- ,, भाग ७, पृ०२२१-२६ ।

४ ,, -- 'गल्प पारिजात', सम्पा० सूर्यकान्त', पृ०७६-८५ ।

५ ,, -- 'हिन्दी गल्प मंजरी, सम्पा० चतुरसेन शास्त्री, पृ०११३-११५ ।

उपर्युक्त विवेचित कथानक रूढ़ियों के अतिरिक्त स्वभाव में अचानक परिवर्तन, उत्तम कार्यों का पुरस्कार तथा दुष्ट कर्मों का दण्ड पाना, विविध उपायों द्वारा बल-बुद्धि का परीक्षण करना तथा किसी पद के लिए उचित व्यक्ति का निर्वाचन करना, मानव जीवन के नित्यप्रति व्यवहारों से सम्बन्धित शालिगत छुआछूत एवं अन्य आवर्जनाओं की अवहेलना से अनिष्ट, बदलती हुई परिस्थितियों में निर्वाह एवं संकटकाल में सान्त्वना की अनुभूति , भाग्य तथा अवसर एवं नियति , विवाहित एवं पारिवारिक जीवन से सम्बद्ध अन्यान्य सहस्रों कथानक रूढ़ियों के आधार पर प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी कहानीकारों ने कहानियों का निर्माण किया है और आधुनिक हिन्दी कहानी को लोक-कहानियों की सीमा में प्रवेश करा दिया है । प्रस्तुत प्रबन्ध में समस्त कथानक रूढ़ियों का सांगोपांग सविस्तर विवेचन विस्तार-भय की दृष्टि से सम्भव नहीं है । प्रस्तुत विषय पर तो भारतीय लोकतत्व की पृष्ठभूमि में स्वतन्त्र रूप से गम्भीर अध्ययन एवं अनुसन्धान की अत्यन्त अपेक्षा है ।

-0-

(तृतीय खण्ड)

अध्याय चार

-0-

भाषा पक्ष में लोक तत्व

तृतीय खण्ड

अध्याय चार

-०-

भाषा पक्ष में लोकतत्त्व

... भाषा--

सामान्य विवेचन : लोकभाषा तत्त्व

मनुष्य जिस माध्यम से अपने विचारों,भावों एवं इच्छाओं को व्यक्त करता है, उसे भाषा कहते हैं। किसी भी भाषा के दो रूप होते हैं-- लोकभाषा और साहित्यिक भाषा। लोकभाषा ही कालान्तर में साहित्यिक भाषा का रूप ग्रहण करती है। ‘खड़ी बोली हिन्दी’ भी पहले जनपदीय लोक-भाषा थी, किन्तु सरल और सुबोध होने के कारण इसकी लोकप्रियता बढ़ती गई और कालान्तर में साहित्य के क्षेत्र में भी प्रवेश पाने की चेष्टा करने लगी। इसकी शक्तिशाली आत्मा को पहचान कर ही साहित्यिकों ने यत्किंचित् प्रयोग अपनी रचनाओं में बहुत पहले से करते आ रहे थे,किन्तु जिस प्रकार ‘वैदिक संस्कृत’ को समझने में असमर्थ लोगों के लिए तत्कालीन लोकभाषा का संस्कार कर संस्कृत भाषा को साहित्यिक पद पर आचार्यों ने प्रतिष्ठित किया था, उसी प्रकार आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने ‘खड़ी बोली हिन्दी’ का संस्कार कर साहित्यिक पद पर प्रतिष्ठित किया। संस्कार का अर्थ ही संशोधन करना, स्वच्छ बनाना और परिष्कार करना होता है। आचार्य द्विवेदी की पैनी आँखों ने यह देख लिया था, कि साहित्यकार व्याकरण-सम्मत भाषा के व्यवहार की ओर से एकदम असावधान और विरत हैं। यही कारण था कि आचार्य द्विवेदी ने व्याकरण की शुद्धता और भाषा की सफाई का कार्य अपने हाथ में लिया था। उनके दीर्घ-दर्शन का प्रभाव हिन्दी गद्य की भाषा पर अधिकांश साहित्य के लिए तो अच्छा पड़ा, किन्तु

लोकभाषा की स्वाभाविकता पर कुठाराघात हुआ,क्योंकि इसे व्याकरण का बन्धन स्वीकार नहीं । वस्तुत: व्याकरणसम्मत भाषा में व्याकरण लोकभाषा का गुण या तत्व नहीं,वरन् दोष ही कहलायेगा । लोकभाषा किसी भी प्रकार का बन्धन स्वीकार नहीं करती और व्याकरण भाषा के लिए एक प्रकार का बन्धन ही है,अत: भाषा का व्याकरणगत विवेचन प्रस्तुत प्रबन्ध की सीमा के परे की वस्तु है । व्याकरण विवेचन मानक साहित्य का अंग है,फिर भी गद्य-लेखक भाषा के प्रति सजग होने लगे और धीरे-धीरे भाषा का रूप व्याकरणसम्मत, शुद्ध और परिष्कृत होता गया ।

परिणामत: 'द्विवेदी युग' के आरम्भ से ही आधुनिक हिन्दी साहित्य में खड़ी बोली का व्यापक प्रयोग आरम्भ होता गया । यद्यपि आचार्य द्विवेदी द्वारा खड़ी बोली हिन्दी का संस्कार हो चुका था,किन्तु जिस प्रकार संस्कार से बालक की आत्मा नहीं बदलती, उसी प्रकार खड़ी बोली हिन्दी ने अपनी जन्मजात लोकभाषा की स्वाभाविकता का परित्याग नहीं किया । प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी कहानीकारों ने इसी लोकभाषा की स्वाभाविकता से युक्त हिन्दी भाषा को अपनी रचना का माध्यम बनाया,क्योंकि ये कहानीकार जनसाधारण के व्यक्ति थे । अत: 'जो जनसाधारण का है,वह जनसाधारण की भाषा में लिखता है ।'[१] उस समय के माने हुए विद्वान् सम्पन्न द्विवेदी गणपुरी की भी यही धारणा थी कि भाषा बोलचाल की ही लिखनी चाहिए, जिसमें तद्भव तथा सर्वसाधारण में प्रचलित विदेशी शब्दों का स्वच्छन्द प्रयोग हो । यद्यपि विवेच्यकालीन कहानी-लेखकों में कुछ इस मत के अपवाद भी हो सकते हैं,किन्तु कुल मिलाकर उनकी संख्या कम ही होगी । इसके विपरीत मुंशी प्रेमचन्द,विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक', श्रीयुत सुदर्शन,ज्वालादत्त शर्मा,जनार्दनप्रसाद झा 'द्विज',राधिकारमण-प्रसाद सिंह, विश्वम्भरनाथ 'जिज्जा',भगवतीप्रसाद बाजपेयी,राजा राधिकारमण-प्रसाद सिंह, चन्द्रधरशर्मा 'गुलेरी',आचार्य चतुरसेन शास्त्री और 'उग्र' से लेकर 'प्रसाद', रायकृष्णदास, चण्डीप्रसाद 'हृदयेश' जैसे भावुक कवियों की भाषा में भी

१ प्रेमचन्द : 'कुछ विचार',पृ०२७ ।

भाषा की पात्रानुरूपता,सरलता,चुस्ती और मुहावरों की छटा प्रस्तुत युग के कहानीकारों के वे गुण हैं,जो लोककथवक्कड़ों में पाए जाते हैं । उनकी शब्दावली, मुहावरे,लोकोक्तियां,अलंकारविधान और शैली-- कुल मिलाकर भाषा का वही रूप प्रकट करते हैं, जिसे बिना हिचक के लोकभाषा कहा जा सकता है । यही कारण है कि उनकी भाषा जनसाधारण सरलता से समझ लेता है । लोकभाषा पर प्रथम अध्याय में प्रकाश डाला जा चुका है । यह सच है कि "बोलने की भाषा और लिखने की भाषा में कुछ-न-कुछ अन्तर होता ही है, लेकिन लिखित भाषा सदैव बोलचाल की भाषा से मिलते-जुलते रहने की कोशिश किया करती है । लिखित भाषा की यही खूबी है कि वह बोलचाल की भाषा से मिले । उस आदर्श से वह जितनी दूर जाती है, उतनी ही अस्वाभाविक हो जाती है ।"[1] क्योंकि इसी मिलन से साहित्यिक भाषा जीवनी-शक्ति ग्रहण करती है और लोकभाषा के तत्वों से भी युक्त होती रहती है।अत: विवेच्यकालीन हिन्दी कहानी में लोकतत्वों की विवेचना करते हुए,भाषागत लोकतत्वों का अध्ययन भी आवश्यक हो जाता है । अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से कहानी में उपलब्ध भाषागत लोकतत्वों को पांच मुख्य शीर्षकों में केन्द्रित कर लिया गया है :--

(१) लोकशब्दावली

(२) लोक मुहावरे

(३) लोकोक्तियां

(४) लोक उपमान

(५) लोकशैली

कहानी जनसाधारण की जनप्रिय साहित्यिक विधा है, उसका कलेवर भी उपन्यास की अपेक्षा अधिक छोटा होता है,अत: "थोड़े में बहुत कहने वाला" कहानीकार ही सफलता एवं लोकप्रसिद्धि प्राप्त कर पाता है और यह गुण लोकभाषा की शब्दावली,लोकप्रचलित मुहावरे और लोकोक्तियों में विद्यमान है । लोकभाषा के इस गुण को मुंशी प्रेमचन्द और उनके सम-सामयिक अन्य कहानीकारों ने भी समझा । परिणामत: लोकशब्दावली,लोकमुहावरों एवं लोकोक्तियों का बिना किसी हिचक के उन्मुक्त प्रयोग अपनी कहानियों में भी किया है ।

---

१ प्रेमचन्द : "कुछ विचार",पृ०२२८(प्रथम संस्करण) ।

यहाँ हम मात्र लोकशब्दावली पर ही विचार करेंगे। मुहावरों एवं लोकोक्तियों की विशिष्ट उपयोगिता एवं महत्ता होने के कारण उनका विवेचन स्वतन्त्ररूप से अलग किया जायगा।

(१) लोक शब्दावली

'भाषा-विज्ञान का वह अंग जो शब्दों की व्युत्पत्ति आदि पर विचार करता है, उसे पाश्चात्य भाषाओं में 'इटीमालाजी' कहते हैं।'[1] किन्तु, शास्त्रीय शब्दावली और लोक शब्दावली में अन्तर होता है। लोकशब्द-विद्या की महत्ता भाषाशास्त्रियों ने, सम्भवतः इसीलिए स्वीकार भी की है। उनके मतानुसार फोक इटीमालाजी (लोक-शब्द-विद्या) शब्दों में किसी भी प्रकार के परिवर्तन से सम्बन्ध रखती है। यह परिवर्तन उच्चारण सम्बन्धी हो या लिखने के प्रकार से सम्बद्ध हो। इस परिवर्तन का अर्थ यह होता है कि वे शब्द उनसे अधिक सुपरिचित शब्दों से अत्यधिक साम्यरूप अथवा साम्यध्वनि हो जायें। ऐसा करने में या तो व्युत्पत्ति एवं उसके अर्थों पर तनिक भी ध्यान नहीं रखता या वह ध्यान बहुत ही कम मात्रा में रखता है।[2] यह सत्य है कि संसार के बहुसंख्यक लोगों को व्याकरण की बारीकियों और व्युत्पत्ति के चक्कर में पड़ने का न तो अवकाश रहता है और न ही उनमें भाषागत शास्त्रीय विशिष्टताओं को परखने का सामर्थ्य ही होता है। यदि होता भी है, तो वास्तव में उन्हें भाषाशास्त्रीय विद्वत्ता की चिन्ता नहीं रहती। फलस्वरूप वे लोग अपने व्यवहार एवं भावाभिव्यक्ति में भाषागत स्वच्छन्दता का अनुसरण करते हैं। इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि उनके पास शब्द-रचना एवं शब्द-परिवर्तन का कोई विधान ही नहीं होता। वस्तुतः उनका निजी शब्द-परिवर्तन-विधान एवं शब्द-रचना का भी विधान होता है। वे तो वास्तव में "परिवर्तन" ही नहीं, वरन् नवीन शब्दों की रचना भी करते रहते हैं, जिनका कि लोक-मानस द्वारा व्यावहारिक प्रयोग चलता ही रहता है। फिर "फोक इटीमालाजी" शब्द द्वारा ही उसकी महत्ता

---

1 द्रष्टव्य--'इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका' वाल्यूम ८, पृ०७७० ।

2 ,, --'द डिक्शनरी आफ लिंग्विस्टिक्स' पाई पीटर ओवन लिमिटेड लन्दन'।

स्वयं सिद्ध है । लोकमानस ने ही शब्दभाण्डार को भरा है । उदाहरण स्वरूप अनुकरणात्मक एवं ध्वन्यात्मक शब्द, जो कि विश्व की सभी भाषाओं में विद्यमान हैं, इसी की देन है । उनका सीधा सम्बन्ध लोकमानस से ही है, अतः "लोकशब्दावली के अन्तर्गत उस समस्त शब्दावली की गणना होती है, जो लोकमानस द्वारा निर्मित और लोकप्रवृत्ति के अनुकूल ढली रहती है ।"[1]

लोकशब्दावली का क्षेत्र

लोकशब्दावली की दृष्टि से देशज शब्दावली का स्थान सर्वप्रथम आता है । देशज अर्थात् जनसामान्य वर्ग के बीच की शब्दावली । इन शब्दों की व्याकरणिक निरुक्ति या उत्पत्ति नहीं सिद्ध की जा सकती, क्योंकि इन शब्दों का जन्म ही लोकमानस के द्वारा होता है, अतः इन शब्दों की उत्पत्ति का कारण भी मात्र लोकमानस एवं लोकवार्ता में ही ढूंढा जा सकता है । देशज शब्दावली के साथ-ही-साथ नामवाची शब्दावली का भी ध्यान आता है । लोक में प्रायः मनुष्य के नाम के अतिरिक्त या उसी से संलग्न एक लोक नाम भी प्रायः चुपकर चलता रहता है । यह लोक-प्रवृत्ति न केवल भारत में, वरन् विश्व-भर में पाई जाती है । सम्भवतः इसी बढ़ते हुए देशी शब्दों के प्रयोग के आधार पर ही कोशकार हेमचन्द्र ने देशी नाम माला कोश तैयार किया था । इससे स्पष्ट हो जाता है कि इन शब्दों का प्रयोग एक विशेष सीमित अर्थ में होता है । इसका यह अर्थ नहीं है कि लोक शब्दावली का क्षेत्र सीमित है, क्योंकि देशज शब्दों की गणना तो इसके अन्तर्गत होती ही है, इसके साथ-ही-साथ ऐसे शब्द भी जो मूलरूप से लोक शब्द नहीं हैं, किन्तु लोकमानस ने अपनी प्रवृत्ति के अनुकूल उन्हें लोक के सांचे में ढालकर लोक शब्दों की श्रेणी में प्रतिष्ठापित कर दिया है । इस दृष्टि से तद्भव शब्द भी बहुत कुछ लोक शब्दावली के अन्तर्गत ही आते हैं । उदाहरणार्थ साक्रेटीज़ का सुकरात, अरिस्टाटिल का अरस्तू और फिर बिल्कुल छोटे-छोटे अफलातून बन गया है । इसी प्रकार अंग्रेजी का रिपोर्ट - रपट और लार्ड का लाट बन गया है । डा० सत्येन्द्र ने लोकमानस की इस प्रवृत्ति का विवेचन करते हुए

१ त्रिलोकीनाथ वर्मा : "भारतेन्दुयुगीन काव्य में लोकतत्व" (शोधप्रबन्ध), पृ०२२६ ।

अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ `लोकसाहित्य विज्ञान` में कहा है--`लोकप्रवृत्ति फिर उसके विरुद्ध सहज प्रवृत्ति होती है, इसमें शब्दों को मनोभावों के अनुकूल देश की अवस्था के अनुरूप ही नहीं, मनुष्य की निजी भाव-भूमियों के अनुकूल भी ढालते रहने की परम्परा विद्यमान रहती है । इस प्रकृति के आधीन अद्भुत अद्भुत विकार भी उत्पन्न होते रहते हैं ।` इस प्रकार लोक शब्दावली का क्षेत्र अत्यधिक विस्तृत हो जाता है,जिसका अध्ययन हम निम्नलिखित वर्गों में बांटकर कर सकते हैं--

(अ) नामवाची शब्दावली ।

(ब) देशज शब्दावली ।

(स) तद्भव शब्दावली ।

(द) लोकमूलक अपशब्द एवं गालियां ।

(अ) <u>नामवाची शब्दावली</u>

नामवाची शब्दावली भी लोक-शब्दावली के अन्तर्गत आती हैं । डा० धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार --` साहित्य, सामाजिक नियम, भाषा, राजनीतिक संगठन, धार्मिक विचारावली आदि संस्कृति के भिन्न-भिन्न अंगों के समान ही स्त्री-पुरुषों के नामों पर भी देश और काल की छाप रहती है ।`[1] इस दृष्टि से नामों में देशकाल की संस्कृति का प्रतिबिम्ब रहता है, अतः इनके सूक्ष्म अध्ययन से संस्कृति के इतिहास पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है । अतएव इन शब्दों के आधार पर किसी भी प्रदेश-विशेष की संस्कृति का अध्ययन किया जा सकता है । नामों के आधार पर भी किसी भी देश और जाति की उन्नति तथा अवनति का आकलन किया जा सकता है । जैसा कि बालकृष्ण भट्ट ने कहा है --` नामकरण भी देश या जाति की तरक्की की कसौटी है, जिस जाति में तरक्की रहती है,उस जाति में नाम भी उतने ही शिष्ट सम्प्रदाय के रखे जाते हैं । .. ...[2] नाम के सुनते ही किसी घराने या जाति के बुद्धि-वैभव की पूरी परख हो जाती है ।` वस्तुतः इनके निर्माण में लोकमानस प्रवृत्ति का हाथ होता है, अतः इनके मूल में लोकजीवन के विश्वास छिपे रहते हैं । इस दृष्टि से इनका लोकसाहित्यिक महत्व विशेष होता है । [illegible]

---

१ डा० धीरेन्द्र वर्मा : `विचारधारा`, ५वां संस्करण,पृ०१७५ ।

२ सम्पा०देवीदत्त शुक्ल, धनञ्जय भट्ट :`भट्ट निबन्धावली`,भाग१,पृ०५८ ।

हिन्दी कहानी में नामवाची लोकशब्द बहुतायत से उपलब्ध होते हैं । इन्हें ध्यान-पूर्वक देखने से स्पष्टत: दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है--

(१) मूलत: लोकमानस द्वारा ही निर्मित नामवाची शब्द ।

(२) वे शब्द, जो मूलत: लोकशब्द तो नहीं हैं, किन्तु लोकप्रवृत्ति के अनुसार लोक-सांचे में ढलकर लोकमानस ने उनका सरलीकरण कर तथा विकृत कर उन्हें ग्रहण कर लिया है ।

(१) प्रथम वर्ग में नामवाची उन विशेष शब्दों की गणना की गई है, जो मूलत: लोकमानस द्वारा ही निर्मित है और जिनके पीछे लोकमानस का विश्वास जुड़ा रहता है । लोकशब्दावली में ऐसे नामों को "डाक नाम" की संज्ञा प्रदान की गई है । यह नाम देने की प्रवृत्ति न केवल भारत में वरन् विश्वभर में पाई जाती है । बंगाल में यह लोकप्रथा विशेषरूप से पाई जाती है । वहां प्रत्येक व्यक्ति के दो नाम होते हैं-- बाहर का अलग और घर का अलग । ऐसे ही डाक नामों के संबंध में विचार करते हुए जैनेन्द्र ने लिखा है--"नामों की संख्या असंख्य है और उनमें रोज बढ़ती होती जाती है । यह प्रद्युम्न तो नाम नहीं है । अच्छे, भव्य अतिथियों को बतलाने के ही काम में आता है, व्यवहार में नहीं आता । .. ... नामों में शामिल है-- पद्दो, पद्दी, पद्दुआ, पदीना, पम्मू, पेमी, पदुमा, पदुमावती आदि बच्चे-बच्चे सभी शिल्पकारों ने इस प्रद्युम्न नामक मूल धातु को मनचाहे अनुरूप गढ़-गढ़कर अपने काम के लायक बना लिया है ।"[1] इस प्रकार शुद्ध नामों को विकृत करने की परम्परा कब से चली, इस विषय में कुछ कहा नहीं जा सकता । इस संबंध में स्वयं प्रेमचन्द का मत है कि --"नामों को बिगाड़ने की प्रथा न जाने कब से चली और कहां से शुरू हुई । कोई इस संसारव्यापी रोग का पता लगावे, तो ऐतिहासिक संसार में अवश्य ही अपना नाम छोड़ जायेगा ।"[2] इंगलैण्ड में इस प्रकार के नामों का प्रचलन १०५६ और १४०० ईस्वी के बीच माना गया है[3] ।

---

१ जैनेन्द्र : "वातायन"-"अनाता", पृ०१४८ ।

२ प्रेमचन्द--"मानसरोवर", भाग ५ -"आंसुओं की होली", पृ०१५२ ।

३ कॉर्ल एक्स वान टैसिह : "द स्पैल आफ नेम्स", पृ०८३-८५ ।

प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी कहानी में इस प्रकार के असंख्य ग्रामभाषी शब्द प्राप्त होते हैं, उदाहरणार्थ मैकू[1], झुनिया[2], गोबर[3], गोबरसिंह[4], गुदड़[5], मुंगी[6], गुजरी[7], झुनिया[8], रखसी[9], पारो[10] इत्यादि । ये शब्द पुरुषों एवं स्त्रियों के नाम हैं । इन नामों का इसी रूप में कहानी के अन्तर्गत प्रयोग भी किया गया है । इस प्रकार डाक नाम रखने की प्रथा के मूल में क्या कारण होते हैं ? इस प्रश्न पर भारतीय एवं पाश्चात्य दोनों विद्वानों ने अध्ययन और अनुशीलन करते हुए उनके कारणों को ढूंढ़ निकालने का प्रयत्न किया है । इन कारणों का विवेचन करते हुए विद्वानों ने प्राय: निष्कर्ष रूप में यही कहा है कि ये नाम कहीं तो स्नेह के कारण रखे जाते हैं और कहीं व्यक्ति के स्वभाव-विशेष के कारण । कभी-कभी देवी-देवता मानता मानने के कारण और कभी-कभी लोक-विश्वास, टोना-टोटका के आधार पर भी ये नाम रखे जाते हैं । ऐसा करने में लोक का विश्वास है कि अनिष्टकारी शक्तियाँ अनिष्ट न कर सकेंगी, क्योंकि उनका अनिष्ट डाक नाम पर ही होगा । असली नाम पर प्रभाव न पड़ने के कारण व्यक्ति पर कोई संकट न आयेगा । इस दृष्टि से नाम रखने की प्रथा आदिवासियों में भी पाई जाती है, जिससे यह सिद्ध होता है कि इन नामों का सीधा सम्बन्ध लोकमानस से है[11] । बंगाल में इस टोटके के कारण ही डाक नाम रखने की अधिक सम्भावना प्रतीत होती है, क्योंकि जादू-टोने

१,२ प्रेमचन्द : 'मानसरोवर' भाग २-'मैकू', पृ०२७५ ।
३ ,, : ,, ,, ,, पृ०२७७ ।
४ श्री पहाड़ी : 'मुख्याना की आत्मा'-'प्रतिनिधि कहानियाँ', पृ०७१
५ 'मानसरोवर' भाग २, 'सूब का नाम', पृ०२१२ ।
६ ,, ,, ,, पृ०२१३ ।
७,८ सुदर्शन : 'पनघट', 'शिकार', पृ०२१ ।
९ कमनाठ : 'पराई'-'नई कहानियाँ', पृ०१५८ ।
१० ,, : ,, - ,, पृ०१५८ ।
११ विशेष अध्ययन के लिए द्रष्टव्य -'द स्टोरी आफ वर्ड्स' - जान स्टूड फीन डेविड, पृ०१५९-१६६ ।

का बंगाल में सर्वाधिक प्रचलन है । वहाँ के निवासियों का अनिष्टकारी शक्तियों पर ही सर्वाधिक विश्वास है । प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी कहानी में उपलब्ध समस्त डाक नामों को दो प्रमुख वर्गों में विभक्त किया जा सकता है--

(१) नामों के किसी अंश को लेकर रखे जाने वाले डाक नाम ।

(२) नामों के किसी अंश पर आधारित न होकर स्वतन्त्ररूप से रखे गये डाक नाम ।

लोकवार्ता की दृष्टि से प्रथम वर्ग के उपनामों का विशेष महत्त्व नहीं है । अत: प्रस्तुत प्रसंग में द्वितीय वर्ग के नामों का ही विवेचन किया जा रहा है । प्रस्तुत वर्ग में भी कई उपवर्ग हैं, जिनका विवेचन नीचे किया जा रहा है--

(१) ऐसे नाम जिनकी कोई व्याख्या नहीं की जा सकती है -- इन नामों के मूल में मात्र स्नेह ही कारण होता है । स्नेह के[1] कारण निरर्थक तथा विचित्र नामों को रखने की प्रथा लोक में व्यापक है । विवेच्ययुगीन हिन्दी कहानी में ऐसे नामों की संख्या अत्यधिक है । ऐसे नामों की एक संक्षिप्त सूची इस प्रकार है--

मूल नाम	स्नेह सूचक डाक नाम	सन्दर्भ
वीरेन्द्र	वीरू	प्रेमचन्द : मानसरोवर, भाग२-`चमत्कार`, पृ०६५ ।
मनहर वागेश्वरी	भानु बागी	,, ,, -`उन्माद`, पृ०१२० ।
मिस्टर कानूनीकुमार	मिन्नी	,, ,,`कानूनी कुमार`, पृ०२१० ।
ज्ञानचन्द्र	ज्ञानू	,, ,,५`बहिष्कार`, पृ०११० ।
रजामियाँ	राजा भैया	,, ,, `लांछन`, पृ०१२५ ।
श्रीविलास	सिलबिल	,, ,,`आँसुओं की होली`, पृ०१६२
कौशल्या	सिलिया	,, ,,`अग्निसमाधि`, पृ०२०३ ।

१ विद्याभूषण `विभु` : `अभिधान अनुशीलन`, पृ०७,१६ ।

मूलनाम	स्नेहयुक्त डाक नाम	सन्दर्भ	
हरनाथसिंह	बच्चा	`पिचकारी का कुआँ`,पृ०१६६	
मगतराम	बच्चा	`आगा पीछा`,पृ०१२१	मा०मा०४
रानी सारन्धा	सारन	`रानी सारन्धा`,पृ०४८	,, ६
ज्ञानप्रकाश	लल्ला	`गृहदाह`, पृ०१७८ ।	,, ६
लाडली	लल्ला	`बैंक का दिवाला`,पृ०१२० ।	,, ७
लालबिहारीलाल	लल्लू	`बड़े घर की बेटी`,पृ०१५१ ।	,, ७
माधव	मद्दू	`दो भाई`,पृ०२१७	,, ७
लछमनदास	लच्छू	`प्रारब्ध`,पृ०२६६	,, ७
बड़ी स्त्री मझली छोटी	अमिरती गुलाबजामुन मोहनभोग	`निमंत्रण`,पृ०२१	,, ५
सुरबाला	सुरी,सुरो,सुरों,सुरिया	जैनेन्द्र : `वातायन`-`खेल`,पृ०१३-१४	
शकुन्तला	सन्नी	सुदर्शन :`बाप का हृदय`,पृ०६६ ।	
सुलोचना	सिल्ली,जग्गी	प्रेमचन्द :`दो कब्रें`,पृ०११	मा०मा०४
रसीना	लैली	`दारोगा जी`,पृ०८६ ।	,,
श्रद्धा	मन्नी,मुन्नी	`आगा पीछा`,पृ०११४,११६ ।	,,
मगतराम	बच्चा	,, पृ०१२१ ।	,,
विन्ध्येश्वरी	विन्नी	`मुक्त`,पृ०१७८ ।	,,
सुनीता	सुन्नी	`शान्ती`,पृ०६० ।६६	,, १
सुखिया	सुक्खी	जैनेन्द्र :`मुन्नू की कहानी`,पृ०१०८ ।	

इसी प्रकार अन्य बहुत-से स्नेहयुक्त डाक नाम द्विवेदीयुगीन कहानीकारों द्वारा प्रयुक्त हुए हैं ।

स्वभाव के आधार पर रखे गये नाम -- लोकमानस व्यक्ति-विशेष के स्वभाव,शरीर की बनावट एवं रंग-रूप के आधार पर भी डाक नाम डालने में अत्यन्त पटु है,जिसका प्रयोग द्विवेदीयुगीन कहानीकारों ने किया है --

नाम	सन्दर्भ

नाम	सन्दर्भ
सुजान महतो	"सुजान भगत" "मानसरोवर भाग ५", पृ०१८०
घानू	"माँगे की घड़ी" ,, भाग ४ ,पृ०२७६
भीमचन्द, दुर्गादास	"मृतक भोज" ,, ,, पृ०१५६
कल्लू	"सती" ,, ,, पृ०१४६
छोटे सिंह	"प्रेम का उदय" ,, ,, पृ०१४०
शीतल, बसन्त	प्रफुल्लचन्द्र ओझा "मुक्त" - "बेलपत्र", पृ०३७
बन्दर	कृष्णानन्द गुप्त - "पुरस्कार", पृ०५५
मोटेराम शास्त्री	मानसरोवर, भाग५, पृ०१४

इसी प्रकार अन्यान्य कहानीकारों द्वारा भी स्वभाव आदि के आधार पर नामों का उल्लेख किया गया है ।

(३) दिन ऋतु विशेष में जन्म होने के कारण रखे गये नाम --दिन एवं ऋतु विशेष में जन्म होने के कारण भी लोक में नाम रखने की व्यापक प्रथा पाई जाती है । विवेच्ययुगीन हिन्दी कहानियों में ऐसे नाम भी उपलब्ध होते हैं । उनमें कुछ इस प्रकार हैं--

नाम	सन्दर्भ
बसन्तकुमार	दुर्गाप्रसाद खत्री : "माया", पृ०६०
बासन्ती	चण्डीप्रसाद "हृदयेश" : "नन्दननिकुंज", पृ०६६ ।
बसन्त सिंह	सम्पा० रायकृष्णदास - "नई कहानियाँ", पृ०४३ ।
बुधी	मानसरोवर भाग ७, पृ०२३४ ।
सोमारू	रायकृष्णदास : "अनाख्या", पृ०६७ ।
पूर्णिमा	"मुक्त" — "बेलपत्र", पृ०३५ ।
मंगल	मानसरोवर भाग २, पृ०२१५ ।

(४) विभिन्न सामाजिक स्थितियों को सूचित करने वाले नाम -- इन नामों के पीछे यही विश्वास छुपा रहता है कि भविष्य में बालक के जीवन पर इन नाम का प्रभाव पड़ेगा और वे भविष्य में धनधान्य से परिपूर्ण सुखमय जीवनयापन करेंगे ।

नाम	सन्दर्भ
सेठ धनीराम,सेठ कुबेरदास	मानसरोवर भाग४,पृ०१५६-५७ ।
पन्ना	,, भाग १,पृ०१ ।
मणिमाला	गल्पपंचदशी,पृ०२७ ।
मणि	,, पृ०४० ।
सरला	पांच कहानियां,पृ०३६ ।
आनन्द	पुरस्कार, पृ०६४ ।
महारानी	,, पृ०७६ ।
सुखदेव	,, पृ०१०७ ।
मानिक	,, पृ०२६१ ।
देवमती	मालती माला ,पृ०४ ।
लक्ष्मी	मानसरोवर,भाग१,पृ०२४६ ।
राजधर	पुरस्कार,पृ०१२ ।

(५) जिनके मूल में किसी प्रकार का टोटका जुड़ा हो, ऐसे नाम -- इन नामों का बीच भी हाल नाम के ही समान लोकवार्ता से घनिष्ठतम सम्बन्ध है । यद्यपि इस बात का स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता कि इनके पीछे किस प्रकार का टोटका जुड़ा है । कहानी में इस बात का विवेचन न होने के कारण इन नामों के विषयों में मात्र संकेत ही किया जा सकता है ,फिर भी जैसा कि बालकृष्ण भट्ट का विचार है, कि "स्त्री बुद्धि की परिप्लुता ने हम लोगों में एक ख्याल पैदा कर रखा है कि घिनौना नाम रखने से बालक चिरंजीवी होता है ।"[1] इस कथन से स्पष्ट है कि इन नामों के पीछे लोकविश्वास ही प्रधान कारण होता है । संभवत: इसी आधार पर ये नाम रखे जाते हैं । ऐसे नामों की भी संख्या कम नहीं है,उनमें से कुछ नामों की तालिका यहाँ दी जा रही है--

---

१ सम्पा० देवीदत्त शुक्ल ; "धनंजय भट्ट -- "भट्ट निबंधावली" भाग १,पृ०५८ ।

नाम	सन्दर्भ
घूरे	मानसरोवर, भाग ७, पृ०७७ ।
झगड़ू साहु	,, भाग ६, पृ०१६८ ।
घीसू, केवल	,, ,, पृ०२०२ ।
झूरी, झींगुर	,, ,, २, पृ०१५१, १४२ ।
झंगड़	,, ,, २, पृ०३५३ ।
झूरन	गल्पमाला, पृ०३१
झल्लाऊ	अनाख्या, पृ०६८ ।
झगड़ू	बेलपत्र, पृ०५४ ।
टीपक	रेखा, पृ०२५ ।
टेंकी	पाथेयिका, पृ०८८ ।
टेंकूराम शास्त्री	मानसरोवर, भाग५, पृ०१६

(६) देवी देवता के नाम के आधार पर रखे गये लोक नाम — नामवाची लोक-शब्दावली का अध्ययन करते समय `सबसे पहली बात, जिसकी ओर ध्यान जाता है, वह है अधिकांश नामों पर धार्मिकता की छाप ।`[1] प्राचीनकाल से ही भारतवर्ष की सभ्यता और संस्कृति धर्मप्रधान रही है । लोकजीवन में तो प्रत्येक कार्य का सम्बन्ध धर्म से ही जुड़ा रहता है । वस्तुत: धर्म लोकजीवन का मुख्य अंग है । इसीलिए देवी-देवताओं के नाम पर बालकों और बालिकाओं का नाम रखने की प्रथा लोक में अत्यधिक प्रचलित है । लोकविश्वास के अनुसार ऐसा करने से इष्टदेव प्रसन्न होते हैं और बालक का अनिष्ट नहीं करते । तथा अज्ञात रूप से उनका नाम भी अमर हो जाता है । इसके साथ ही साथ बहुत कुछ संभव है कि इस भावना के मूल में अजामिल की कथा भी ऐसे नामों को रखने के लिए प्रेरणा प्रदान करती रही हो, जिसमें "अंतिम मति: सा गति:" के अनुसार पापी भी तर जाते हैं । यद्यपि प्राणी अन्तिम समय में अपने पुत्र को पुकारता है, किन्तु ईश्वर का नाम होने के कारण जीवात्मा को गर्भ नहीं [illegible] भोगना पड़ता, वरन् उसे मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है । यही

---

१ डा० धीरेन्द्र वर्मा : "विचारधारा", पृ०२०४ ।

आधार पर लोकजीवन में अधिकांश नाम रखे जाते हैं । ऐसे नामों का भी प्रयोग द्विवेदीयुगीन कहानीकारों ने किया है ।

नाम	सन्दर्भ
महादेव	मानसरोवर भाग ७,पृ०१२२ ।
सत्यनारायण	,, भाग ५, पृ०२५२ ।
केशव	,, ,, पृ०२०८ ।
कृष्णचन्द्र	,, भाग ६, पृ०१२४ ।
जयकृष्ण	,, भाग २ , पृ०१७३ ।
कालीचरण ~~कौशिक~~	कौशिक , गल्पमंदिर , पृ०६७ ।
गणेश	ठाकुर श्रीनाथ सिंह,`पाथेयिका`,पृ०३२ ।
नारायण	,, ,, ,, पृ०६० ।
जगन्नाथ	दुर्गाप्रसाद खत्री,`माया`,पृ०६ ।
शिवनाथ	प्रतापनारायण श्रीवास्तव-`आशीर्वाद`,पृ०१५१ ।

इसी प्रकार तीर्थस्थानों के आधार पर भी नाम रखने की लोक-प्रथा बड़ी व्यापक है । ऐसे नामों का भी प्रयोग द्विवेदीयुगीन कहानी में हुआ है-

नाम	सन्दर्भ
गंगोत्री	सुदर्शन--`तीर्थयात्रा`,पृ०४६ ।
मथुरा	मानसरोवर भाग१,पृ०११३ ।
अमरनाथ	,, भाग ६,पृ०२८ ।
गया	,, भाग २,पृ०१५६ ।
जगन्नाथ	कौशिक `गल्पमंदिर`,पृ०२७ ।
रामेश्वरप्रसाद	,, ,, पृ०६३ ।

देवताओं तथा तीर्थस्थानों के समान ही लोकदेवियों के नाम के आधार पर प्रायः लोकजीवन में बालिकाओं का नामकरण किया जाता है । ऐसे नामों की भी संख्या बहुत अधिक है,यहाँ संक्षेप में उनकी तालिका दी जा रही है --

नाम	सन्दर्भ
गौरा	मानसरोवर ,भाग ७,पृ०२७० ।
गिरिजा	,, भाग ६,पृ०२६०
शीतला	,, ,, पृ०१३६ । तथा ४५
शारदा	,, भाग ५, पृ०३२२ ।
पार्वती	मधुकरी,भाग१,पृ०१०२ ।
राधाचरण	,, ,, पृ०१०२ ।

(७) प्रकृतिमूलक नाम अर्थात् नदी,पर्वत,नक्षत्र,पेड़-पौधों के आधार पर रखे गये नाम -- आदिम मानव धरती माँ की गोद में जन्म और प्रकृति के प्रांगण में विचरण करता हुआ बड़ा हुआ है, उसका सर्वाधिक घनिष्ठ सम्बन्ध प्रकृति से ही रहा है । अतएव प्रकृति के प्रति यदि उसके मन में अगाध स्नेह हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है । अपने इसी स्नेह के कारण उसने नामकरण में भी प्रकृति को अलग नहीं होने दिया है । प्रकृतिमूलक नाम भी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होते हैं,जिनकी संक्षिप्त तालिका इस प्रकार है--

नाम	सन्दर्भ
चम्पा	`मानसरोवर` भाग ५,पृ०१६२ ।
कालिन्दी	,, ,, पृ०६६ ।
तारा	,, ,, व २,पृ०१०५ ।भाग५,पृ०२३८ और सुदर्शन -`तीर्थयात्रा`,पृ०५२ ।
गोमती	`मानसरोवर` भाग ५,पृ०१६५ तथा `अनाख्या`,पृ०४६ ।
जाह्नवी	`आशीर्वाद`,पृ०४०
गंगा	`मधुकरी` खण्ड२,पृ०३४५ ।
गंगादीन	`किशोर`,पृ०१००`पुरस्कार`,पृ०७७ तथा `तीर्थयात्रा`,पृ०६० ।
रोहिणी	`किशोर`,पृ०६२
करुणा	`मालती माला`,पृ०[illegible] ।

में डालकर लोकमानस ने उनको सरलीकरण तथा विकृत कर ग्रहण किया है। द्विवेदीकालीन कहानी-लेखकों ने ऐसे नामवाची शब्दों का भी अधिक मात्रा में प्रयोग किया है, इनकी तालिका बहुत विस्तृत है। यहां संक्षिप्त तालिका दी जा रही है--

मूलनाम	विकृत नाम	सन्दर्भ
शीतला देवी	सीतला देवी	'मानसरोवर' भाग६,पृ०४७।
रुक्मिणी	रुकिमनी	,, भाग ५, पृ०१७०।
रामशरण	रामसरन	'कौशिक', 'गल्प मंदिर',पृ०१०३।
प्रयागराज	परागराज	,, ,, पृ०१०२।
रामचरण	रामचरन	,, ,, पृ०१२६।
लक्ष्मण	लछमन	,, ,, पृ०१११।
सूर्यप्रसाद	सूरजप्रसाद	पं०इलाचन्द्र जोशी - 'होली और दीवाली',पृ०८६।
विश्वेश्वर	बिसेसर	'प्रतिनिधि कहानियां',पृ०११० ।

(ब) देशज शब्दावली

'देशज शब्द उन्हें कहते हैं, जिनकी व्युत्पत्ति का पता न हो। दूसरे शब्दों में, जो तत्सम्,तद्भव और विदेशी इन तीनों में न होकर,देश में उत्पन्न या विकसित हुए हों।'[1] प्रस्तुत परिभाषा से स्पष्ट हो जाता है कि देशज शब्दों की व्युत्पत्ति नहीं बताई जा सकती,किन्तु लोकभाषा की दृष्टि से इनका विशेष महत्व होता है। वस्तुत: देशज शब्दावली ही लोकभाषा की अपनी सम्पत्ति होती है। यही कारण है कि इनका अधिक प्रयोग भी अन्य शब्दों की तुलना में किया जाता है। लोकभाषा की निजी सम्पत्ति होने के कारण जहां एक ओर इनकी संख्या अधिक है, वहीं दूसरी ओर इनके व्यावहारिक प्रयोग का क्षेत्र भी बहुत व्यापक है। इन शब्दों का सम्बन्ध पारिवारिक वातावरण,संस्कार,त्योहार और व्यवसाय से तो है ही, साथ-ही-साथ लोककथा प्रथाओं,मनोरंजनात्मक साधनों,लोकव्यवहारमूलक और क्रीड़ा-कौतुक सूचक शब्दों से भी है। कुछ देशज शब्दों का.

1 डा० भोलानाथ तिवारी : 'भाषाविज्ञान',पृ०२२।

सम्बन्ध मानव-मानस की आश्चर्य वृत्ति तथा अन्य मानस वृत्तियों से भी है । सम्बोधनवाची शब्द भी देशज शब्दावली के ही अन्तर्गत आते हैं । लोकमानस इन शब्दों का निर्माण विशेष प्रवृत्तियों के आधार पर करता है । इन्हीं प्रवृत्तियों के आधार पर देशज शब्दों को निम्नलिखित वर्गों में विभक्त किया जा सकता है--

१- ध्वन्यात्मक या अनुरणनात्मक शब्द ।

२- मनोभावाभिव्यक्तिमूलक शब्द ।

३- अनुकरणात्मक शब्द ।

४- प्रतिध्वनि या द्वित्वमूलक शब्द ।

५- दृश्यात्मक शब्द ।

१- ध्वन्यात्मक या अनुरणनात्मक शब्द

आदिम मानव प्रकृति की गोद में जन्म लेकर, पलकर, जब बड़ा हुआ और बोलने की चेष्टा करने लगा तो सर्वप्रथम ध्वन्यात्मक शब्दों का ही उच्चारण किया होगा, क्योंकि आदिम मानव विभिन्न प्राकृतिक ध्वनियों को नित्यप्रति सुनता था, अतः उन्हीं के आधार पर अपने भावों को व्यक्त करने के लिए ऐसे शब्दों का निर्माण किया होगा । आदिममानव में यह शक्ति विद्यमान थी, जैसा कि पाश्चात्य विद्वानों का मत है कि 'उसमें एक ऐसी सहजात शक्ति थी कि जिस किसी चीज के सम्पर्क में वह आता था, उसी के लिए उसके मुंह से एक प्रकार की ध्वनि निकल जाती ।'[1] यही कारण है कि विश्व की सभी भाषाओं में इस प्रकार के शब्द पाये जाते हैं । भाषा विज्ञान के आचार्यों ने इसे डिंग-डांग वाद के अन्तर्गत माना है, और इस सिद्धान्त के आधार पर भी भाषा की उत्पत्ति पर विचार किया गया है । भाषावैज्ञानिक फरार और जान मरे ने अपनी पुस्तक 'दि स्टडी आफ द ओरीजिन आफ लैंग्वेज' में कहा है कि मानव ने प्राकृतिक ध्वनियों के आधार पर अधिक या अत्यधिक शब्दों की रचना कर अपने शब्दकोश के एक बहुत बड़े भाग को भरा है । इतना ही नहीं, वरन् तारापोरवाला ने भी इन ध्वन्यात्मक शब्दों का सम्बन्ध आदिम मानव मानस से माना है ।[2] अतः निश्चित रूप से यह

---

१ डा० भोलानाथ तिवारी : 'भाषा विज्ञान' से उद्धृत, पृ०२२ ।
२ द्रष्टव्य--तारापोरवाला-'एलिमेंट्स आफ द साइंस आफ लैंग्वेज', पृ०१४ ।

स्वीकार किया जा सकता है कि इस प्रकार के शब्द लोक शब्द ही हैं । विवेच्ययुगीन कहानी-लेखकों ने इन शब्दों का भी बहुतायत से प्रयोग किया है ,उदाहरणार्थ--
धमधम[1], धड़धड़[2], ठकठक[3], तड़ातड़[4],छमछम[5] ,टप टप[6] ,सांय सांय[7] ,कड़ कड़[8] ,गड़गड़ाहट[9],
सड़सड़ाहट[10], कड़कड़ाहट[11] इत्यादि ।

२-मनोभावाभिव्यक्तिमूलक शब्द

देशज शब्दों में दूसरा वर्ग भावाभिव्यक्तिमूलक शब्दों का है । इन शब्दों का सम्बन्ध भी लोकमानस से है और ये शब्द भी भाषा की आदिम स्थिति की कहानी-रचना में हाथ बंटाते हैं । यही कारण है कि भाषा-वैज्ञानिकों ने भाषा की उत्पत्ति के विषय में,निर्दिष्ट तत्व के रूप में इसे भी स्वीकार किया है । मनोविज्ञान का यह सत्य सिद्धान्त है कि मनुष्य, विभिन्न संवेगों और स्थितियों में, अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए मनोभावाभिव्यक्तिमूलक इस विशेष प्रकार के शब्दों का उच्चारण करता है[12] । क्योंकि आदिम मानव का जीवन पशुओं के समान ही था, वह आज की तरह विचार प्रधान नहीं था,वह तो पशुओं की तरह भावप्रधान ही था । फलस्वरूप प्रसन्नता की स्थिति

---

१ "मानसरोवर",भाग ५,पृ०२५७
२ ,, ,, पृ० ११०
३ "हिन्दी गल्प मंजरी",पृ०११२-११३ ।
४ ~~"मानसरोवर"~~ "बाहर भीतर",पृ०२७ ।
५ "कुसुमांजलि",पृ०२ ।
६ ,, पृ० ३ ।
७ "मानसरोवर"भाग ४,पृ०१६ ।
८ "कुसुमांजलि",पृ०३ ।
९ "हंस",१९३६ई०,मई,पृ०५७४ ।
१० "मानसरोवर"भाग १,पृ०२६८ ।
११ "नई कहानियां",पृ०४३ ।
१२ द्रष्टव्य--"आरिजिन्स ऑफ़ लैंग्वेज" (The Origins of Language), "लैंग्वेज एंड लैंग्वेज डेवलपमेंट",पृ०६६ ।

अथवा भावना में वाह-वाह, वाह[1], ओ हो[2], शोक अथवा दुःख की स्थिति में आह[3], हाय[4], हाय हाय[5], क्रोध की स्थिति में उफ्फोह[6], घृणात्मक भावना में छि:[7], छि: छि:[8] और आकस्मिक एवं आश्चर्य घटना से चकित होने पर अरे[9], ऐं[10], तथा उपेक्षा या उदासीनता की भावना में उंह[11] आदि जैसे शब्द भावावेश में उसके मुंह से सहज ही निकल जाया करते थे। यद्यपि इनकी संख्या बहुत अधिक नहीं है, तथापि संसार की सभी भाषाओं में ऐसे शब्दों का पाया जाना ही इस बात को सिद्ध करता है कि इनका सम्बन्ध लोकमानस से है और ये वस्तुत: लोकभाषा के ही शब्द हैं। इनका प्रयोग भी प्राय: लोकभाषा में ही अधिकतर किया जाता है। प्रेमचन्दयुगीन कहानीकार लोकभाषा के प्रेमी एवं पक्षपाती थे, यही कारण है कि ऐसे शब्दों का भी प्रयोग अधिक मात्रा में किया है, जिनके कुछ उदाहरण ऊपर दिए जा चुके हैं। यहां विस्तार-भय की दृष्टि से ऐसे शब्दों की विस्तृत तालिका देना न तो सम्भव ही है और न समीचीन ही है।

३- अनुकरणात्मक शब्द

देशज शब्दों में अनुकरण के आधार पर निर्मित शब्दों की भी गणना की जाती है। इनका सम्बन्ध भी लोकमानस से ही है। भाषा-वैज्ञानिकों के अनुसार मनुष्य ने अपने आस-पास के पशु-पक्षियों आदि से होने वाली

---

१ 'मानसरोवर' भाग २,पृ०३१ । १५५,२०२,२८६,भाग५,पृ०३६,१०६,१५३ ।
२ ,, ,, पृ०३४६,भाग ५,पृ०२६,१२६,३३०,भाग६,पृ०२५७ ।
३ ,, भाग१,पृ०२१५,भाग ५,पृ०३०४,'पचास कहानियां',पृ०६ ।
४ ,, भाग २,पृ०१०४,११२,११५,भाग ५,पृ०१०५,११०,१६८ ।
५ ,, भाग २,पृ०१०४,३६८,३७२ ।
६ ,, ,, पृ०७३,१४६०७ ७५
७ ,, ,, पृ०३४, भाग ५ पृ० ३०४,१५ 'पचास कहानियां',पृ०६ ।
८ ,, भाग ५,पृ०१५,२३ ।
९ ,, भाग २,पृ०११,४२,६२,६८,७२,८१,१६५,२२२,२७४ ।
१० ,, भाग २,पृ०३२५,भाग ५,पृ०३०३
११ ,, ,, पृ०६५,१८६ ,भाग५,पृ०२५,२५९,भाग६,६८७पृ०१८०,भाग७,पृ०१३५ ।

ध्वनियों के आधार पर अनेक विषयों एवं वस्तुओं का नामकरण किया और शब्दों की रचना भी की है, उदाहरण के लिए कांय-कांय के आधार पर कौआ, कू-कू के आधार पर कोयल और पी-पी के आधार पर पपीहा इत्यादि शब्द इसी प्रकार के हैं। आज भी प्राय: बालक पशुओं को इसी आधार पर अभिहित करते हैं। मोटर के लिए बच्चों का शब्द पी-पी, पों-पों अथवा मों-मों इसी प्रवृत्ति का उदाहरण है। इसी प्रकार लोकमानस और आदिममानस में भी शब्दों की रचना अनेक ध्वनियों के आधार पर की होगी, इससे इन्कार नहीं किया जा सकता। यही कारण है कि फरार जैसे भाषा वैज्ञानिकों ने भी अनुकरणात्मक शब्दों को भाषा के प्राचीनतम रूप एवं भाषा की आदिम अवस्था के सूचक भी माना है।[1] आधुनिक सभ्यता के रंग में रंगा हुआ प्राणी भी इसी सिद्धांत पर वस्तुओं का नामकरण एवं शब्द-रचना करता है। मोटर सायकिल के लिए फटफटिया एवं बग्घी में लगी घण्टी की टन टन ध्वनि के आधार पर उसे टमटम[2] कहकर ही पुकारा जाता रहा है। ऐसे शब्द प्रत्येक देश की भाषा में पाए जाते हैं। द्विवेदीयुगीन कहानीकारों ने भी ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है। इन शब्दों ने कालान्तर में मुहावरों का रूप भी ग्रहण कर लिया है, जिनका वर्णन मुहावरों के अन्तर्गत स्वतन्त्र रूप से किया गया है। इन शब्दों के प्रयोग से लोकभाषा की सफलता, स्वाभाविकता एवं सरसता का गुण द्विवेदीयुगीन[3] कहानियों[4] में उभर आया है। कुछ अनुकरणात्मक शब्द इस प्रकार हैं-- कांय-कांय, भांय-भांय, हुआं-हुआं[5], हूं कं[6], हूं कं, हूं कं, फफक, गुर्राना, दहाड़ना, गरजना, भिनभिनाना, इत्यादि।

---

1 द्रष्टव्य-- फरार : 'ऐन एसे आन द औरीजिन आफ लैंग्वेज', पृ०७४।

2 ,, --'पनघट', पृ०५५

3,4 ,, --'सुलझन', पृ०१५१।

5 'मानसरोवर' भाग५, पृ०११।

6 द्रष्टव्य--'हिन्दी गल्प मंजरी', पृ०१३८।

४- प्रतिध्वनि या द्वित्वमूलक शब्द

किसी एक शब्द से मिलते-जुलते दूसरे शब्द का साथ-साथ प्रयोग लोकभाषा की निजी विशेषता है । उसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति है । लोक-भाषा की इस स्वाभाविकता को प्रेमचन्दयुगीन कहानीकारों ने पकड़ा और द्वित्व अर्थात् जोड़ा शब्दों (प्रतिध्वनिमूलक शब्द भाषा वैज्ञानिकों ने किया है) का अत्यधिक मात्रा में प्रयोग कर भाषा को सरल,सरस एवं प्रभावशाली भी बनाया है । ऐसे द्वित्वमूलक प्राप्त शब्दों को एकत्रकर मर उन्हें मुख्यरूप से निम्नलिखित वर्गों में विभक्त किया जा सकता है--

१- पहला वर्ग उन शब्दों का है,जिसमें दोनों ही अर्थवान शब्द प्रयुक्त हुए हैं ।

२- दूसरे वर्ग में उन शब्दों को रखा गया है,जिनमें पहला शब्द तो सार्थक है और दूसरा निरर्थक अथवा पहला शब्द निरर्थक है और दूसरा सार्थक ।

३- तीसरा वर्ग ऐसे शब्दों का है,जिनमें दोनों ही निरर्थक शब्द प्रयुक्त हुए हैं ।

४- चौथे वर्ग में ऐसे द्वित्व शब्द रखे गये हैं,जिनमें शब्द तो एक ही है,किन्तु उनका प्रयोग एकसाथ दो बार किया गया है। इस प्रकार के शब्दों का प्रयोग भी बहुत अधिक किया गया है ।

५- पांचवें वर्ग में द्वित्वमूलक उन शब्दों को रखा गया है,जिनमें दो भाषा के एक ही अर्थ रखने वाले शब्द प्रयुक्त किए गए हैं ।

६- छठा वर्ग ऐसे द्वित्व शब्दों का है,जो देखने में अर्थहीन से लगते हैं,किन्तु प्रयोग करने पर अर्थविशिष्ट देते हैं ।

वस्तुत: द्वित्व शब्दों का विवेच्यकाल में इतना अधिक प्रयोग हुआ है कि उनकी सूची देना असम्भव-सा प्रतीत होता है,फिर भी ऐसे द्वित्व शब्दों की एक संक्षिप्त तालिका उपर्युक्त वर्गीकरण की क्रमबद्धता के अनुसार प्रस्तुत की जा रही है --

द्वित्व शब्द	सन्दर्भ
बाबा बाबा	`मानसरोवर` भाग२,पृ०३६,४६
गाय भाषा	,, भाग ५, पृ०१९९
मैल बहल	,, भाग १,पृ० १८

द्वित्व शब्द	सन्दर्भ
खाने-पीने	'मधुकरी' भाग २,पृ०४४
कहा-सुनी	,, ,, पृ०११७
हल्ला-मचना	'मानसरोवर' भाग १,पृ०१२४
खेत-खलिहान	,, भाग ७,पृ० ७८
दवा-दारू	,, भाग ८,पृ०१९३
पानी-वानी	,, ,, पृ०२८१
बनता-बनता	'वातायन' , पृ०४३ ।
भीख-वीख	,, पृ०१००
घर-बार	'इन्द्रजाल' पृ० ३४
गोल-मटोल	,, पृ० ४८
ढूँढ - ढूँढी	'मानसरोवर' भाग ६,पृ०१५०
घास - पात	,, भाग ४, पृ०१३४
कब - [illegible]	,, भाग २, पृ० ८३
कांड़- कांड़	'मधुकरी' ,भाग२,पृ० २८१
अनाप- शनाप	'मानसरोवर' भाग ६, पृ०१८६
देस - देश	,, भाग ५, पृ० ९९
भौं - भौं	'आंधी' , पृ० ७३
कहते-कहते	'आकाशदीप' ,पृ०८५
सुनते-सुनते	,, पृ०८५
सांय - सांय	'इन्द्रजाल' ,पृ०२९
धन - दौलत	'मानसरोवर' भाग २,पृ०३८
शादी - ब्याह	,, ,, पृ०२१५,२७६
चिट्ठी- पत्री	,, ,, पृ० २७५
शक्ल- सूरत	,, भाग ५, पृ०१२३
यार- दोस्त	,, ,, पृ०१४४
किस्से- कहानी	,, भाग ६, पृ०२७ ।

द्वित्व शब्द	अर्थ विशेष	सन्दर्भ
आनन- फानन	शीघ्रता	`मानसरोवर` भाग ५, पृ०२८८
तुरता- फुरती	,,	,, भाग ६, पृ०१६
पान - फूल	यथासम्भव	,, ,, पृ०३४
गने- गिने	बहुत थोड़े	,, भाग २ पृ० १४२
ऊबड़-खाबड़	बराबर न होना	`आँधी`, पृ०१२१
इक्का-दुक्का	बहुत थोड़े	`वातायन`, पृ०२६

५- ध्वन्यात्मक शब्द

आदिम मानव ने प्रकृति में अनेक दृश्य देखे होंगे । इन दृश्यों को देखकर उसके मुंह से सहसा कुछ शब्द अवश्य निकले होंगे, जिन्हें कुछ भाषा-वैज्ञानिकों ने ध्वन्यात्मक शब्दों की संज्ञा प्रदान की है । प्रेमचन्दयुगीन बहुसंख्यक कहानीकारों ने ऐसे शब्दों का भी प्रयोग यथावसर ऐसे भावों को व्यक्त करने के लिए किया है, और इस रूप में भाषा को शक्तिशाली भी बनाया है ।

उदाहरणार्थ -- खनखनाती --`भीतर बाहर`, पृ० २६
जगमगाती --`मानसरोवर` भाग५, पृ०२१३
भनभनाती --`हिन्दी गल्प मंजरी`, पृ०१६२
धमधम --`पनघट`, पृ०४३ -- इत्यादि ।

(ख) तद्भव शब्दावली

मूल भाषा के शुद्ध शब्दों से निकले, बिगड़े या विकसित शब्दों को, भाषा-वैज्ञानिकों ने `तद्भव` शब्द की संज्ञा प्रदान की है । ऐसे शब्दों को ग्रामीण या गंवारू समझने के कारण परिनिष्ठित भाषा में इनका प्रयोग कम-से-कम और तत्सम शब्दों का अधिक-से-अधिक प्रयोग किया जाता है । ये तद्भव शब्द जनवाणी की सम्पत्ति हैं । हिन्दी भाषा के शब्द-समूह के अन्तर्गत एक बहुत बड़ा भाग तद्भव शब्दों का भी है, जिनका प्रयोग लोकजीवन में नित्यप्रति के बोलचाल में निःसंकोच किया जाता है । जनसामान्य के बोलचाल के शब्द होने

के कारण इनके प्रयोग से ही भाषा में सरसता, सरलता एवं सजीवता आती है। इन शब्दों में कुछ तो संस्कृत से विकसित हुए हैं और कुछ अंग्रेजी से, कुछ अरबी-फारसी या उर्दू से और कुछ अन्य विदेशी भाषाओं से भी विकसित हुए हैं। प्रेमचन्दकालीन हिन्दी कहानी में तद्भव शब्दों का भी प्रयोग बहुत अधिक किया गया है। ऐसे शब्दों की सूची बहुत बृहद् है, फिर भी प्रस्तुत प्रसंग में ऐसे शब्दों की एक संक्षिप्त तालिका देना समीचीन होगा। स्पष्टता के लिए ऐसे शब्दों के मूलरूप को भी विकृत रूप के साथ-साथ दिया जा रहा है --

मूल रूप	विकृत रूप	सन्दर्भ
ब्राह्मण	बराम्हन	"हिन्दी गल्प मंजरी", पृ०१५० ।
प्रयाण	पयान	"झांकी", पृ० ५ ।
दरिद्र	दलिद्री	"गल्पमंदिर", पृ०१७१ ।
भिक्षु भिक्षु	भिक्षुर	"मधुकरी" भाग१, पृ०१३७।
परमेश्वर	परमेसर	"पनघट", पृ०४२ । "तीर्थयात्रा", पृ०८ ।
कृष्ण	किरष्न	,, पृ०४० ।
कृपा	किरपा	,, पृ०१४६ ।
योगी	जोगी	,, पृ०१४३ ।
चातुर्मास्य	चौमासा	,, पृ०१० ।
पूर्ण	पूरन	"विभाती और होली", पृ०८६ ।
प्राण	परान	"मानसरोवर" भाग १, पृ०१६३ ।
बीड़ा	बीरा	,, ,, पृ०१७७ ।
योग्य	जोग	,, ,, पृ०१७१ ।
रिपोर्ट	रपट	"हिन्दी गल्प मंजरी", पृ०१५० ।
लार्ड	लाट	,, पृ०१५२ ।
लैंटर्न	लालटेन	"नई कहानियां", पृ०७३ । "झांकी", पृ०९७।
कारण	कारज	"पनघट", पृ०१४७ ।

मूल रूप	विकृत रूप	सन्दर्भ
आफिसर	अपसर	`पनघट`,पृ०१५४ ।
लेफ्टिनैण्ट	लपटन	`हिन्दी की आदर्श कहानियां`,पृ०३३।
प्लेग	पिलेग	`गल्प मन्दिर`,पृ०१०५ ।
कार्य	काम	`मधुकरी`,भाग १,पृ०११७ ।
मैडम	मैम	`पुरस्कार`,पृ०८ ।
अर्ज़ी	अरजी	`पनघट`, पृ०१५५ ।
मज़दूर	मजूर	,, पृ०१५३ ।
कर्ज़	करजा	,, पृ०१५० ।
सब्र	सबर	`प्रतिनिधि कहानियां`,पृ०१३१ ।

वस्तुतः इन शब्दों में विकार उत्पन्न होने का मूल आधार `मुख-सुख` (प्रयत्न लाघव या उच्चारण सुविधा) ही माना जाता है । किन्तु प्रस्तुत सन्दर्भ में लोक शब्दावली की उत्पत्ति-व्युत्पत्ति के नियमों का अनुसन्धान करना प्रस्तुत विषय की सीमा से परे है ।यहां तो मात्र कहानीकार द्वारा व्यवहृत शब्दावली,मुहावरे तथा लोकोक्तियाँ आदि के उपयोग-प्रयोग द्वारा कहानीकार को कहानियों की रचना में लोकतत्व का सम्यक् समावेश करने में सफलता मिलती है, इसी ओर साहित्यानुशीलन को उन्मुख करना ही अभीष्ट है । ऐसे लोक-शब्दों के उपयोग द्वारा कहानीकार को यथातथ्य चित्रण करने में सहायता तो मिलती ही है,इसके साथ-ही-साथ शिष्ट कहानी लोककहानी की विशिष्टताओं--सरलता,सरसता और व स्पष्ट भावाभिव्यक्ति आदि-- से भी अभिभाषित होती है जिससे कहानी में लोकप्रियता का गुण विशेष आ जाता है और लोक-शैली की मिठास भी बनी रहती है ।

(घ) लोकमूलक अपशब्द एवं गालियाँ

किसी भी भाषा के साहित्य की वृद्धि के साथ-साथ शब्द-कोश की भी वृद्धि होती है। शब्दकोश में शिष्ट एवं अशिष्ट दोनों ही प्रकार के शब्दों को स्थान मिलता है,परन्तु साहित्य में अश्लील शब्दों का प्रयोग अश्लीलत्व दोष और ग्रामीण शब्दों का प्रयोग ग्राम्यत्व दोष के अन्तर्गत माना जाता है। यह होते हुए भी प्रेमचन्दयुगीन कहानीकारों ने अपशब्दों एवं ठेठ ग्रामीण शब्दों का प्रयोग किया है,क्योंकि `सभ्यता एवं संस्कृति का मध्य जिन प्रवृत्तियों, विश्वासों, आचारों और अभिव्यक्तियों को घृणा की दृष्टि से देखता है और त्याज्य बना देता है, वे ही तो लोकवार्ता और लोकतत्वों का नाम प्राप्त कर लेते हैं।`[1] विवेच्यकालीन कहानी में इनका आना स्वाभाविक था,क्योंकि कहानीकारों ने जहाँ संस्कार और परिष्कार द्वारा कहानी-कला को परिमार्जित एवं विकसित किया, वहीं समाज का यथार्थ रूप भी पाठकों के समक्ष प्रस्तुत भी किया। उन्होंने वेश्या-वृत्ति, जुआ एवं मदिरा के प्रयोग द्वारा मानव की वीभत्स परिणति, दास-वृत्ति,जमींदारों का अत्याचार एवं उनकी विलासी कामवासना का, पीड़ित किसानों की अवहेलना, न्यायालयों की दोषपूर्ण पद्धति एवं पुलिस विभाग की चालबाजियों तथा विज्ञापन के आड़ में होने वाले कुकृत्यों का भण्डाफोड़ भी किया है। भाषा भावों की अनुगामिनी होती है। जैसा भाव होगा, उसी के अनुसार जब शब्दावली प्रयुक्त होगी,तभी पाठक पर उसका प्रभाव पड़ेगा,अतएव स्वाभाविक रूप में ही ऐसे शब्दों का प्रयोग कहानी में हुआ है।

वस्तुतः अपशब्द एवं गालियाँ आदिम मानव की बर्बरता का ही अवशिष्ट रूप है,जो आज सभ्य कहलाने वाले मानव के अन्तर्मन में छिपे हुए हैं और अवसर पाते ही प्रकट हो जाते हैं। प्रायः क्रोध में इनके निकलने की सम्भावना अधिक होती है। ऐसी स्थिति में ये शब्द जान-बूझकर प्रयोग किए जाते हैं। स्वयं प्रेमचन्द के शब्दों में--` यों तो गालियाँ हमारा प्यारा शृंगार है,

---

१ डा० सत्येन्द्र :`मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोकतात्त्विक अध्ययन`,पृ०६१।

मगर खासतौर पर जबर्दस्त गुस्से की हालत में हमारी ज़बान के पर लग जाते हैं । गुस्से की घटा सर पर मंडलायी और मुंह से गालियां मूसलाधार मेंह की तरह बरसने लगीं ।......... गुस्से की हालत में ज़बान की यह रवानी औरतों में ज्यादा रंग दिखाती है । दो हिन्दुस्तानी औरतों की तू-तू, मैं-मैं देखिए और फिर सोचिए कि जो लोग उनको अर्द्ध बर्बर कहते हैं वे किस हद तक ठीक कहते हैं ।" इसी प्रसंग में उन्होंने आगे विचार करते हुए फिर कहा है कि "कुंजड़े, खटिक, भटियारे यह सब जातियां ज़बानी गन्दगी (क्या नैतिक गन्दगी नहीं ?") के लिए खासतौर पर मशहूर हैं ।" किन्तु ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य जैसे उच्च वर्ण एवं उच्च घरानों में भी इनका नितान्त अभाव नहीं है । यदि कोचवान घोड़े को गालियां देता है, तो उसे जमींदारों एवं उच्च वर्ण वालों से यही कुछ मिलता है । और उच्च वर्ण वाले जमींदारों को अधिकारियों की खरी-खोटी सुननी ही पड़ती है । इतना ही नहीं, वरन् पुलिस विभाग में तो ऐसा लगता है, कि बिना गाली के उनका काम ही नहीं चलता । लोकजीवन का सच्चा प्रतिनिधि, कोई भी कहानीकार, जब ऐसे विभाग का पर्दाफाश एवं रहस्य खोलने बैठता है, तो निश्चय ही उसकी शब्दावली कैसी होगी, इसे निम्नलिखित उदाहरण से स्पष्टतः समझा जा सकता है :--

" इसी समय एक देहाती, जो देखने में कोई कुली मालूम होता था, आकर दीवान जी के सामने खड़ा हो गया । दीवानजी ने उससे पूछा -- क्या है बे ?

वह बोला -- सरकार, एक रपट लिखाना है ।

दीवानजी -- काहे की रपट ?

वह -- सरकार एक आदमी हमें मारने को कहता है ।

मुंशी(लिखनेवाले)-- चुप बदमाश ! मारने को कहता है, बस, इसी पर रपट लिखाने चला दिया ।

दीवान जी --"कौन आदमी है ?

वह -- एक बराम्हन है ।

---

१ प्रेमचन्द : "विविध प्रसंग", भाग ३(गालियां), पृ०१४८, १५० ।

दीवान जी -- कुछ मालदार है ?

वह -- मालदार काहे नहीं है । कुछ गोईं की खेती करत हैं, बाग बगीचा है । कुछ भैंसी हैं, एक घोड़ा है । सबै कुछ तो है ।

+ + +

दीवान जी -- तो साले, यह क्यों नहीं लिखाता कि उन्होंने मारा ?

वह -- अब हे मालिक, झूठ कइसे लिखाइ देई ?

दीवान जी गफूर खां से बोले -- गफूर खां, इस हरामजादे को हवालात में बन्द करो, साला झूठी रपट लिखाने आया है ।

+ + +

गफूर खां उसे घसीट कर अलग ले गया और बोला -- सुनता है बे, या तो यह लिख ब्राम्हन बनिया ने हमें मारा है, या हवालात में बैठ ।

देहाती (हाथ जोड़कर) -- मालिक, ऐसी दगाबाजी !...

वाक्य पूरा होने के पूर्व ही गफूर खां ने उसके एक थप्पड़ मारा, और कहा -- साले, अपनी ही कहे जाता है, हम जो कहते हैं, वह नहीं सुनता ?

देहाती थप्पड़ खाकर अत्यन्त भयभीत हो गया, हाथ जोड़कर बोला -- मालिक ! मारो न, जस हुकुम होय, तस करौं ।"[1]

उपर्युक्त उद्धरण में अपशब्दों एवं गालियों के अभाव में पुलिस वर्ग का क्या सजीव चित्रण हो सकता था ? स्पष्ट है कि पुलिस वर्ग का सजीव चित्रण गालियों और अपशब्दों द्वारा ही सम्भव है । इसी प्रकार द्विवेदीयुगीन कहानीकारों ने अपशब्दों का प्रयोग वातावरण एवं परिस्थिति के अनुकूल ही किया है । रायकृष्णदास द्वारा लिखित "माहात्म्य" शीर्षक कहानी में साधु द्वारा अपने ही भक्त के लिए अपशब्दों का प्रयोग किया गया है--

" अरे, ओ ईश्वरीप्रसवा साले," कहते हुए महात्मा जी ने ईश्वरीप्रसाद की पीठ पे दो चपत जमाते हुए कहा -- ईश्वरीया "अबे, मोटी बोटी तो नहीं कमीनेपन पै हाथ कतर लोगे ...". छि: छि: अरे, तू तो रोटिया के इतना डरता है । शास्त्रों

१ कौशिक : "प्रतीक्षा"(हिन्दी गल्पमाला),पृ०१४८-१५२ ।

में ठीक कहा है— कलियुग में पुरुष स्त्री के दास होंगे ।" ...

ईश्वरी के लौटने पर बाबा ने कड़क कर कहा --"ससुरे, कलियुग के कुत्ते, नीच, पापी, लुच्चे, तूने मुझे क्या और समझा है ? क्या मुझमें अब यही काम बाकी रह गया है । ले अपना सांचा-फांचा । नीम के टुकड़े को मसल कर गोलाकार बनाकर बाबा ने जोर से उसके सिर पर मारा ।

इसी प्रकार अनेक कहानीकारों ने सफल एवं सजीव चित्रण के लिए यथावसर अपशब्दों एवं गालियों का प्रयोग भी किया है । यहां पर कहानीकारों द्वारा प्रयुक्त ऐसे शब्दों की एक संक्षिप्त तालिका प्रस्तुत की जा रही है --

अपशब्द एवं गालियां	सन्दर्भ
क्यों बे ?	जयशंकर प्रसाद : "आंधी", पृ०७४, "आकाशदीप" पृ०५०, "मानसरोवर" भाग७, पृ०२८१ ।
बे, अबे, हां बे	"मानसरोवर" भाग ७, पृ०६१, भाग २, पृ०१६१, २१७ भाग ८, पृ०२१४, भाग ५, पृ०८७ ।
नीच	"मानसरोवर" भाग३, पृ०१५, भाग२, पृ०२५, भाग५, पृ० १५१। "प्रसाद" : "आंधी", पृ०१०६ ।
निगोड़ा	"मानसरोवर" भाग५, पृ०१२३, १३४, भाग६, पृ०१६३। विनोदशंकर व्यास : "पचास कहानियां", पृ०७ । "प्रसाद" : "इन्द्रजाल", पृ०६७ ।
बदजात	जैनेन्द्र : "वातायन", पृ०१०१
दाढ़ीजार	"मानसरोवर भाग२", पृ०६७, पृ०२१२, २८१, भाग५, पृ० ३२७ ।
साले	"मानसरोवर" भाग२, पृ०३५। रायकृष्णदास : "अनाख्या" पृ०३७ ।
हरजाई	"मानसरोवर" भाग२, पृ०३५८। जैनेन्द्र : "वातायन" पृ०१३५

रायकृष्णदास : "अनाख्या"-"[illegible]", पृ०३४-३५ ।

अपशब्द एवं गालियाँ	सन्दर्भ
नमकहराम	`मानसरोवर` भाग ६,पृ०२३६,२५२,भाग ७,पृ०२७। `इन्द्रजाल`,पृ०१०३ ।
गधा,गधी,गधे	`मानसरोवर` भाग२,पृ०१५८,२८९,२२६ और ३४४ ।
बुड्ढे	`मानसरोवर` भाग ५,पृ०८,२००,२७४,भाग७,पृ०२१३
पापी	`मानसरोवर` भाग८,पृ०१०३,`आंधी`,पृ०३९,० ४५, १०६,`इन्द्रजाल`,पृ०२३,६६,`अनास्था`,पृ०१९ ।
दुष्ट	`मानसरोवर` भाग २,पृ०३२९,भाग ५,पृ०१९,१४७,६२०९, भाग ६,पृ०२५,२३६ ।
कुत्ते	`मानसरोवर` भाग २,पृ०३६१,भाग५,पृ०१९,२१८ ।
कम्बख्त	`वातायन`,पृ०१०२ ।
डाइन	`मानसरोवर` भाग५,पृ०१७७,२०१ । `वातायन`,पृ०१३४
हत्यारे	`आंधी`,पृ०६९,७५ ।
वेश्या	`मानसरोवर` भाग६,पृ०१७९,२४३ ।
लुच्ची	`आंधी`,पृ०६९
हरामी	`मानसरोवर` भाग४,पृ०३१,८८
कुलटा	`मानसरोवर` भाग४,पृ०२१२,भाग१,पृ०२१४,३२९ ।

उपर्युक्त लोकमूलक अपशब्दों एवं गालियों की तालिका के अतिरिक्त अनेक ठेठ ग्रामीण अपशब्दों एवं गालियों के प्रयोग द्वारा विवेच्य-युगीन कहानीकारों ने साहित्यिक कहानी में यथासम्भव वातावरण का चित्रण प्रस्तुत कर कहानी को लोक-वातावरण के अनुकूल बना दिया है ।

(२) मुहावरे एवं लोकोक्तियाँ

सामान्य विवेचन

शब्दावली के साथ-ही-साथ " प्रत्येक[1] भाषा में उसके अपने कुछ मुहावरे और लौकिक वाक्यांश (लोकोक्तियाँ) होते हैं। ये मुहावरे और लोकोक्तियाँ लोकभाषा की मूल शक्ति हैं, भाषा का प्राण अथवा उसकी आत्मा हैं, यही कारण है कि इनका प्रयोग बहुत अधिक होता है, अतः प्रेमचन्द-युगीन हिन्दी कहानी में भाषा पक्ष में लोकतत्वों का अनुसन्धान करते समय इनका भी अध्ययन आवश्यक हो जाता है।

मुहावरों एवं लोकोक्तियों[2] का लोकवार्ता की दृष्टि से भी विशेष महत्व है। इनके द्वारा[3] सामाजिक जीवन, प्राचीन रीति-रिवाज तथा नृतत्वशास्त्र पर प्रकाश पड़ता है। इस प्रकार मुहावरों और लोकोक्तियों के माध्यम से किसी भी जाति की सभ्यता, संस्कृति के वास्तविक रूप का भली भाँति हमें ज्ञान प्राप्त हो सकता है। हिवरावली के मतानुसार तो यही सभ्यता के आदिम अवस्थाओं में नैतिकता के अतिरिक्त नियम भी थे। प्रस्तुत अध्ययन इसलिए भी आवश्यक हो जाता है कि मुहावरों और लोकोक्तियों द्वारा भाषा में जहाँ रस और व्यंजना-शक्ति प्राप्त होती है, वहाँ दूसरी ओर मानव को अपने विचार-विनिमय में सरलता होती है और यह सरलता की प्रवृत्ति लोकमानस की निजी सम्पत्ति है। इसी बात को डा० रवीन्द्र 'भ्रमर' ने इस रूप में कहा है--'इनके व्यवहार से साहित्य को दुहरा लाभ होता है। एक तो उसमें लोकभाषा की मिठास आ जाती है, दूसरे

---

१ द्रष्टव्य-- शोवेल :"शार्टर आक्सफोर्ड इंगलिश डिक्शनरी",वाल्यूम १,पृ०७ ।

२ लौकिक वाक्यांश अर्थात् लोकोक्तियों के लिए विद्वानों ने-कहतूत,कहनूत,कहनावत, पदोक्ति,कहावत और मसल इत्यादि अनेक शब्दों का प्रयोग किया है। प्रस्तुत विवेचन में मात्र लोकोक्ति शब्द का ही प्रयोग किया गया है।

३ लांग,आर०जे० :"ईस्टर्न प्रावर्ब्स एण्ड इम्बलेम्स",पृ०४ ।

लोकाभिव्यक्ति का दीपायन।"[1]

मुहावरे तथा लोकोक्तियों का तात्विक अन्तर एवं साम्य

यद्यपि मुहावरे तथा लोकोक्तियाँ भाषा की दृष्टि से दोनों का ही विशेष महत्व है और दोनों ही से भाषा-सौन्दर्य में अभिवृद्धि भी होती है, फिर भी दोनों में कई प्रकार का अन्तर भी है। उपयोगिता की दृष्टि से लोकोक्तियों की अपेक्षा मुहावरे अधिक उपयोगी होते हैं, क्योंकि लोकोक्तियाँ प्रायः किसी बात के समर्थन और पुष्टिकरण अथवा विरोध एवं खण्डन तथा उपालम्भ या चेतावनी के लिए प्रयुक्त की जाती हैं। लोकोक्तियाँ स्वयं सिद्ध होती हैं, उनमें भूतकाल का अनुभव, उसका परिणाम तथा सिद्धान्त दोनों ही निहित रहता है। इसके विपरीत मुहावरे का प्रयोग किसी वाक्य के अर्थ में चमत्कार लाने अथवा उसे प्रभावशाली बनाने, समृद्ध बनाने, उत्कृष्ट और ओजपूर्ण बनाने के लिए किया जाता है।

लोकोक्तियों का शाब्दिक कलेवर विस्तृत होता है, इसके विपरीत मुहावरे का छोटा। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि लोकोक्ति का पूर्ण वाक्य है और मुहावरा खण्डवाक्य। दोनों में एक अन्तर यह भी है कि लोकोक्तियों में परिवर्तन नहीं किया जा सकता परन्तु मुहावरों का स्वरूप प्रयोग के आधार पर परिवर्तित होता रहता है।

जहाँ लोकोक्ति में उद्देश्य एवं विधेय दोनों विद्यमान रहता है और उसके अर्थ को समझने के लिए किसी अन्य साधन की आवश्यकता नहीं पड़ती, वहीं मुहावरे में इस प्रकार का कोई विधान नहीं पाया जाता। फलस्वरूप वाक्य-प्रयोग के अभाव में उसका ठीक-ठीक अर्थ नहीं समझा जा सकता। इस प्रकार कहा जा सकता है कि जहाँ लोकोक्ति अर्थ की दृष्टि से पूर्ण है, वहीं मुहावरे अपूर्ण हैं।

उपर्युक्त अन्तर होते हुए भी यदि दोनों में समानता है तो यह कि दोनों में अर्थ-विलक्षणता भी पाई जाती है। दोनों में अभिधा और

---

१ द्रष्टव्य --"हिन्दी भक्ति साहित्य में लोकतत्व",पृ०१९१।

लक्षणा के स्थान पर व्यंजना की ही प्रधानता रहती है । इन दोनों का लक्ष्य प्रस्तुत के द्वारा अप्रस्तुत की अभिव्यंजना करना है ।

उत्पत्ति

मुहावरों और लोकोक्तियों की उत्पत्ति के विषय में प्राय: यही कहा गया है कि लोक-हृदय ने अपने बाहर प्रकृति,पशु-पक्षी इत्यादि से जो सत्य ग्रहण किए और साथ ही उन्हें अपने जीवन के सत्यों से टकराते पाया अथवा किसी दृश्य को देखकर या स्वत: व्यक्ति के मस्तिष्क में यह बात आई कि यह सभी जगह एक समान घटती है, तो उसकी लोक-चेतना ने उपमा,रूपक,उक्ति-वैचित्र्य और उक्ति चमत्कार का सहारा लेकर जो कुछ भी कहा तथा जब इसी विचार को परम्परा में मान लिया गया, फलस्वरूप लोक-जीवन में उसका व्यवहार भी होने लगा तो वह मुहावरा अथवा लोकोक्ति बन गई । इसी बात को ध्यान में रखकर[1] पाश्चात्य विद्वान् रसेल ने कहा था --`बहुतों की अनुभूति और एक की उक्ति`। इसमें `अनेक की[2] विदग्धता और ज्ञान का योग है, किन्तु यह एक की चतुरता का परिणाम है` ।

जहां तक मुहावरों तथा लोकोक्तियों में प्राप्त आदिम मानव की स्थिति का प्रश्न है, इस सम्बन्ध में निश्चित: डा० सत्येन्द्र का मत ग्राह्य है --`फिर इसमें सन्देह नहीं कि कहावतें शुद्ध आदिम मानव से उद्भूत नहीं मानी जा सकती जैसी लोकगीत अथवा लोककहानियां नाम की चीजें मानी जा सकती हैं,क्योंकि लोकमानव चित्रों की छाप को सहज ही ग्रहण कर लेता है और उन्हें वह गीत और कहानियों में प्रकट करता है । मानव चित्रों के ऊपर उठकर बौद्धिक भाव-तत्वों के संयोजन के लिए जिस स्थिति की आवश्यकता होती है,वह स्थिति आदिम मानव की अन्तिम विकास-कोटि की सीमा पर पहुंचती है । वहां से अन्य लेकर ये कहावतें निरन्तर ऐतिहासिक विकास के साथ विकसित होती गई हैं ।

१`विज़डम आफ मैनी एण्ड द विट आफ वन `-- रसेल
  --उद्धृत कृष्णदेव उपाध्याय `लोकसाहित्य की भूमिका` से उद्धृत ,पृ०२५७ ।

२`डिक्शनरी आफ फोकलोर माइथालाजी एण्ड लीजेण्ड`,पृ० ९०२ ।

कहावतों का क्षेत्र गीतों और कहानियों से भिन्न व्यवहार और व्यवसाय का क्षेत्र है ।"[1]

कहानी में मुहावरे एवं लोकोक्तियों की आवश्यकता

कहानी साहित्य की एक छोटी विधा है । कहानी में उपन्यास की भाँति वृहद् कलेवर का अभाव होता है,अत: कहानीकार- उपन्यासकार की भाँति अपने भावों एवं विचारों को विस्तारपूर्वक नहीं रख सकता । वह तो गागर में सागर भरना चाहता है और यह कार्य मुहावरों द्वारा ही अधिक सरलता और सुन्दरता के साथ सम्पन्न किया जा सकता है । कभी-कभी ऐसी अवस्था भी आ जाती है, जब कि कहानीकार के पास भाव-विशेष को प्रकट करने के लिए भाषा पंगु-सी दीख पड़ती है, और कहानीकार असहाय होकर कहता[2] है--"कहानी के इस स्थल पर इन्हें समझाने के लिए हमारे पास कोई साधन नहीं है ।" ऐसे अवसरों पर कुशल कहानीकार इंगित भाषा के माध्यम से अपने एवं पात्रों की भावनाओं को व्यक्त कर देता है । "भाव के व्यक्तीकरण में इंगित का महत्व विशेष रहता है, जो बात शब्दों से नहीं प्रकट होती,वह इंगित से हो जाती है, और परस्पर विरोध होने पर इसके द्वारा जताया हुआ भाव ही विजयी होता है । इंगित की मदद न पाकर वाणी,भाव के व्यक्तीकरण में बहुत अपूर्ण रह जाती है[3] ।" ये इंगित भी मुहावरों का रूप धारण कर लेते हैं, अत: कहानी में मुहावरों का प्रयोग आवश्यक हो जाता है । अनुकरण के आधार पर भी मुहावरों का निर्माण और प्रयोग होता है, यही कारण है कि इनके प्रयोग द्वारा आदिम मानस की स्थिति भी स्पष्टत: लक्षित होती रहती है और यह अन्तिम अनुकरण की प्रवृत्ति आदिम मानस की है ।

---

१ डा० सत्येन्द्र : "लोकसाहित्य विज्ञान",पृ०४५१-४५२ ।

२ कन्हैयाप्रसाद सिंह :"चित्रकथा"हमनी-रत्न",पृ०७१

३ डा० बाबूराम सक्सेना :"सामान्य भाषा विज्ञान",पृ०७ ।

ठीक यही कारण लोकोक्तियों के विषय में भी पाया जाता है। जब कहानीकार अपने किसी मत की पुष्टि करना चाहता है, तो वाग्जाल से बचने के लिए स्थानाभाव के कारण उसे थोड़े-से शब्दों द्वारा अत्यन्त प्रभावोत्पादक ढंग से लोकोक्ति के माध्यम से सहज रूप में ही कह डालता है। इनका प्रयोग इसलिए भी आवश्यक हो जाता है कि इनके द्वारा भाषा सुन्दर, सजीव और सुसज्जित भी हो जाती है। संस्कृत भाषा के अलंकारशास्त्रियों ने तो लोकोक्तियों को अलंकार के रूप में ही ग्रहण किया है --('लोकप्रवादानुकृतिर्लोकोक्तिरितिकथ्यते') अलंकारशास्त्र में इसे लोकोक्ति अलंकार कहते हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि लोकोक्ति मात्र अलंकार ही हैं, क्योंकि लोकोक्तियां सैकड़ों वर्ष की अनुभूति की प्रतीक हैं, इसलिए इनमें कही हुई बातें राई रत्ती सच्ची तथा मानवीय होती हैं। इतना ही नहीं, वरन् इनका कलेवर लोक-चेतना से उद्भूत होता है और लोक-चेतना पर चारों ओर की परिस्थितियों तथा वातावरण का प्रभाव निःसन्देह पड़ता है, परन्तु मूलरूप में लोकचेतना पर देश और काल का बन्धन लागू नहीं होता। यही कारण है कि भारत के विभिन्न लोक-समूहों में ही नहीं, बल्कि विश्व के विभिन्न भू-भागों में एक ही प्रकार की लोकोक्तियां पाई जाती हैं[1]। अस्तु इनके प्रयोग से सार्वभौमिक सत्य की अनुभूति भी होती है।

प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी कहानी में मुहावरों एवं लोकोक्तियों का अत्यधिक एवं सफलतापूर्वक प्रयोग किया गया है, अतएव इनका अध्ययन एवं विवेचन आवश्यक है। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से हम इनका अलग-अलग विवेचन करेंगे --

(अ) <u>प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी कहानी में मुहावरे</u>

बालमुकुन्द गोस्वामी ने मुहावरों और कहावतों के संबंध का विवेचन करते हुए कहा है --"मुहावरे अधिकांश में वाक्य का एक अंश होते हैं और इनका विधान कुछ भिन्न कोटि का होता है, जिससे कहावतों से इनकी

---

१ शिवचन्द्र नागर : 'गुजराती लोकोक्तियां और उनका हिन्दी रूपान्तर', पृ०१६।

रिश्तेदारी नहीं बैठती[1]।" किन्तु विवेच्ययुगीन कहानीकारों की कहानियों से सिद्ध हो जाता है कि उपर्युक्त कथन भ्रामक है। प्रेमचन्द के सम-सामयिक कहानीकारों ने मुहावरों का जितना अधिक एवं सफल प्रयोग किया है, उतना किसी अन्य काल में नहीं किया गया। इस दृष्टि से यदि मात्र प्रेमचन्द को ही लिया जाय, तो बिना किसी हिचक के उन्हें 'मुहावरों का जादूगर' कहा जा सकता है। जितना सटीक और सफल मुहावरों का प्रयोग मुंशी प्रेमचन्द ने किया है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। इस बात की पुष्टि के लिए यहाँ एक उदाहरण समीचीन होगा --'इस घटना को हुए कई महीने बीत गए परन्तु जब अपने बैल का दाम मांगते तब साहु और सहुआइन, दोनों झल्लाए हुए कुत्ते की तरह चढ़ बैठते और अण्ड बण्ड बकने लगते। वाह! यहाँ तो सारे जन्म की कमाई लुट गई, सत्यानाश हो गया, इन्हें दामों की पड़ी है। मुर्दा बैल दिया था, उसपर दाम मांगने चले हैं। आँखों में धूल झोंक दी, सत्यानाशी बैल गले बाँध दिया, हमें निरा पोंगा ही समझ लिया है। हम भी बनिए के बच्चे हैं, ऐसे बुद्धू कहीं और होंगे। पहले जाकर किसी गड्ढे में मुँह धो आओ, तब दाम लेना। न जी मानता हो, तो हमारा बैल खोल ले जाओ। महीना भर के बदले दो महीना जोत लो। और क्या लोगे[2]?' इससे स्पष्ट हो जाता है कि मुहावरे कहानी के छोटे-से कलेवर में एक प्रकार की संजीवनी शक्ति उत्पन्न कर देते हैं। 'यह भाषा के साथ भावों को भी सजग और सजीव बना देते हैं। कैसे ही गूढ़ विषय क्यों न हों, इनकी सहायता से एक और एक दो की तरह स्पष्ट हो जाते हैं[3]।' प्रेमचन्द ने लगातार मुहावरों से ही वाक्य पूरे किये गये हैं-- 'उस समय गिरधारीलाल का चेहरा देखने योग्य होगा, मुँह का रंग बदल जायगा, हवाइयाँ उड़ने लगेंगी, आँखें न मिला सकेगा। शायद फिर मुझे मुँह न दिखा सके[4]।' इसी प्रकार अनेक उदाहरण प्रेमचन्द की कहानियों में भरे पड़े हैं।

---

१ बालचन्द्र गोस्वामी 'प्रखर' : 'कहानी दर्शन', पृ०८० ।

२ प्रेमचन्द : 'मानसरोवर' भाग ७, 'पंचपरमेश्वर', पृ०१६१ ।

३ डा० ओमप्रकाश : 'मुहावरा मीमांसा', पृ०१५-१६ ।

४ प्रेमचन्द : 'मानसरोवर' भाग ५, 'ममता', पृ०२०६ ।

प्रेमचन्द की मुहावरेदानी के दर्शन सुदर्शन की कहानी में होते हैं । `हमें प्रायश्चित पर सवार देखकर उन लोगों की क्या हालत होगी हैरान हो जायगी, दंग रह जायगी आँखें मल-मलकर देखेंगे कि कहीं कोई और तो नहीं है । मगर हम ऐसा जाहिर करेंगे जैसे कुछ मालूम ही नहीं, जैसे यह सवारी हमारे लिए मामूली बात है ।[1] मुहावरों का यह जमघट आचार्य चतुरसेन शास्त्री, `उग्र`, ज्वालादत्त शर्मा, विश्वम्भरनाथ शर्मा `कौशिक`, डा०धनीराम `प्रेम`, भगवतीचरण वर्मा आदि अन्यान्य कहानीकारों की कहानियों में भी देखा जा सकता है ।

शारीरिक चेष्टाएं एवं मुहावरे

शास्त्रकारों ने भी हाव-भाव, संकेत,गति,चेष्टा, भाषण और मुख तथा नेत्रों के विकार को मन की बात जानने का सर्वोत्तम साधन माना है । इसी बात की पुष्टि अंगरेजी कहावत `दि फेस इज द इण्डेक्स आफ माइण्ड` (मुंह से मन का पता चल जाता है) करती है ।ये विकार मनुष्य एवं मनुष्येतर अन्य जीवधारियों में भी भावों की तीव्रता के कारण उत्पन्न होते हैं । शारीरिक क्रियाओं का मूल कारण इन्हीं भावों तथा मनोवेगों की तीव्रता में निहित है । भाव (फीलिंग्स) और मनोवेगों (इमोशन्स) का विवेचन करते हुए बाबू गुलाबराय ने लिखा है-- `हमारे जीवन में भावों एवं मनोवेगों का विशेष स्थान है । सुख और दुःख को हम भाव कहते हैं । रति,उत्साह,भय,क्रोध,विस्मय आदि मनोवेग हैं । मनोवेग सुखात्मक हैं और दुःखात्मक भी । रति ,हास ,विस्मय,उत्साह सुखात्मक हैं और शोक,घृणा, भय क्रोध आदि दुःखात्मक हैं । ... साधारण लोकजीवन के व्यावहारिक धरातल में यह हमारी ज्ञानात्मक और क्रियात्मक वृत्तियों को हल्का या गहरा रंग देकर उनमें एक निजत्व उत्पन्न करते हैं । ...वे हमारी क्रियाओं के प्रेरक चाहे न हों,किन्तु उनको शक्ति और गति अवश्य देते हैं ।[2]` इस कथन से स्पष्ट हो जाता है कि ये भाव एवं मनोवेग हमारी क्रियाओं में शक्ति एवं गति अवश्य प्रदान करते हैं । इनके माध्यम से अनेकानेक मुहावरों का जन्म हुआ है,जिनका

---

१ सुदर्शन : `पनघट`,`प्रायश्चित की सवारी`,पृ०१२० ।

२ डा० गुलाबराय :`सिद्धान्त और अध्ययन`,पृ०१७५ ।

प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी कहानीकारों ने अत्यधिक प्रयोग किया है । उदाहरण के लिए हम मनोवेग `भय` को लेते हैं,[1] जो एक आदिम मानस[2] - मनोवेग है । भय के कारण प्राणी[3] सूख जाता है, घिग्घी बंध जाती है, और कभी-कभी चीख निकल जाती है, किन्तु भय के हटते[4] ही प्राणी को `क्षोभ` आ घेरता है, क्षोभ के कारण हृदय[5] धड़कने लगता है और अन्ततोगत्वा मुख का रंग फीका पड़ जाता है । इस स्थिति के बाद ही[6] प्राणी क्रोध के वशीभूत हो जाता है और उसका चेहरा तमतमाने लगता है, आंखें चढ़ जाती हैं तथा कभी-कभी मुंह फैल जाता है, इतना ही नहीं, वरन् जैसे-जैसे क्षोभ बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे शारीरिक चेष्टाएं भी तीव्र से तीव्रतर और तीव्रतर से तीव्रतम होती जाती हैं । जैसे ही मुखाकृति में परिवर्तन या विकार उत्पन्न होता है, वैसे ही विकार की यह क्रिया मुख से आगे बढ़कर हाथ[7] और पांव पर भी अधिकार कर लेती है, फलस्वरूप हाथ-पांव कूदने लगते हैं, प्राणी[8] कांपने लगता है, उसके पांव लड़खड़ाने लगते हैं, रोंगटे खड़े हो जाते हैं और कभी-कभी टट्टी-पेशाब भी छूट जाता है । क्षोभ का यही चरम बिन्दु होता[9] है, मानव की शारीरिक चेष्टाएं रुक जाती हैं, हाथ-पांव जवाब दे जाते हैं[10] और कभी-कभी एकाएक श्वांस-क्रिया बन्द हो जाती है । सांस रुक जाना, हार्ट फेल हो जाना आदि

---

१ `मानसरोवर` भाग६,पृ०१६ ।
२ ,, भाग५,पृ०१३३ ।
३ `कहानी खत्म हो गई`,पृ०४७ ।
४ ,, पृ०८० ।
५ `मानसरोवर` भाग५,पृ०२७६ ।
६ ,, पृ०१६८ ।
७ `दीपिका`, पृ०५७ ।
८ `मानसरोवर` भाग ४, पृ० १७६ ।
,, भाग २, पृ०३०१ ।
९ ,, भाग ६, पृ० १६ ।
१० ,, भाग ५, पृ०२६० ।

मुहावरे इसी अवस्था के द्योतक हैं । इस रूप में कहा जा सकता है कि जहां वाणी हमारा साथ छोड़ देती है,वहीं मुहावरे हमें अच्छे और स्वस्थ सहायक के रूप में मिल जाते हैं ।

<u>अस्पष्ट ध्वनियों के आधार पर निर्मित मुहावरे</u>

मानव में अनुकरण की प्रवृत्ति जन्मजात होती है, इसी प्रवृत्ति के कारण विश्व की प्रत्येक भाषा में कुछ-न-कुछ अनुकरणात्मक शब्द भी विद्यमान रहते हैं । अनुकरण के सिद्धान्त पर बने हुए शब्दों को भाषाविद् फरार अपनी पुस्तक `औरिजिन आफ लैंग्वेज`[1] में अस्पष्ट ध्वनियों द्वारा निर्मित मानते हैं । किसी भी देश की भाषा, चाहे वह कितनी ही समुन्नत क्यों न हो,उसमें ऐसे शब्द अवश्य ही उपलब्ध होते हैं । इस बात को भाषाशास्त्री ब्लूम फील्ड ने भी स्वीकार करते हुए कहा है--`जहां भाषा विकास की चरम सीमा पर होती है, वहां भी किसी-न-किसी रूप में इन अति प्राचीन आदिम ध्वनियों की छाया उसके साथ रहती ही है ।`[2] इन ध्वनियों के दो रूप होते हैं-- मुख्य और गौण । ये ध्वनियां परिस्थिति के कारण तीव्रतम भावावेश में सहसा मानव-मुख से फूट पड़ती हैं । उदाहरणार्थ जब किसी प्राणी का कोई अंग असावधानी,भूल अथवा प्रमाद के कारण किसी गर्म वस्तु से छू जाता है, तो अनायास उसके मुंह से `आह`, `ओह` इत्यादि ध्वनियां निकल पड़ती हैं । ये ध्वनियां यद्यपि अस्पष्ट हैं,फिर भी ध्वनि की दृष्टि से स्पष्ट हैं । यही अस्पष्ट एवं स्पष्ट ध्वनियां जब किसी रूढ़ अर्थ में प्रयुक्त होकर परम्परा द्वारा ग्रहण कर ली जाती हैं, तो वह मुहावरा का रूप ग्रहण कर लेती हैं ।

भाव और मनोवेगों के आधार पर इनके कई रूप हो जाते हैं । इनके अतिरिक्त मनुष्येतर अन्य जड़ तथा चैतन्य सृष्टि की ध्वनियों के <u>अनुकरण पर भी मुहावरों</u> का जन्म एवं प्रयोग होता रहता है । ऐसे मुहावरों

१ द्रष्टव्य--`ऐन एस्से आन द औरिजिन आफ लैंग्वेज`,पृ०७१-७८ ।

२ ,, --`द स्टडी आफ लैंग्वेज`,पृ०७१ ।

का भी क्षेत्र बहुत विस्तृत है । ये मुहावरे पशु-पक्षी, नदी, वायु आदि की ध्वनियों के आधार पर निर्मित हो जन-जीवन में परम्परा द्वारा अनुमोदित होकर मुहावरे का रूप ग्रहण कर लेते हैं, जिनका प्रयोग साहित्य में भी होने लगता है । उदाहरणार्थ-- कांव-कांव करना, फांय-फांय करना, टर्र-टर्र करना, मिमियाना, फनफनाना, टप-टप गिरना इत्यादि मुहावरे इसी कोटि के हैं ।

वैज्ञानिकों के मतानुसार दो भिन्न जातियों के मेल से किसी नवीन वस्तु का जन्म होता है , जो अपने सजातियों से अधिक शक्ति-शाली एवं उपयोगी होते हैं । इस कथन की सत्यता भाषा द्वारा भी सिद्ध होती है । भारत-भूमि जहां एक और सदैव से शरणागत की रक्षा में अग्रगण्य रहा है, वहीं दूसरी ओर विभिन्न जातियों के आक्रमणों द्वारा पराभूत भी हुआ है । इन आक्रमणकारियों में यवनों का विशेष महत्व है । इनकी अपनी भाषा एवं संस्कृति भी थी, जिसका प्रभाव भारतीय भाषाओं पर भी पड़ा ,फलस्वरूप लोकभाषा में नवीन शब्द एवं मुहावरों का विकास भी हुआ । उदाहरणार्थ 'जामे से बाहर होना', 'दिल देना', 'बाज आना';हुक्का-पानी बन्द होना', 'मेल-मुहब्बत होना' आदि उल्लेखनीय हैं ।

प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी कहानीकारों ने उपर्युक्त सभी प्रकार के मुहावरों का अत्यधिक मात्रा में प्रयोग किया है, इस दृष्टि से मुहावरों पर स्वतन्त्र कार्य की अपेक्षा है । यहां हम इन मुहावरों की एक संक्षिप्त तालिका प्रस्तुत कर रहे हैं ।

प्रेमचन्दयुगीन कहानी में प्रयुक्त मुहावरों की संक्षिप्त तालिका

मुहावरे	प्रयोग	सन्दर्भ
आंख चढ़ाना	आंखें चढ़ाकर कहा	'मानसरोवर' भाग ५, पृ० २२३
आंखें तरेरना	आंखें तरेरती हुई बोली	,, भाग १, पृ० १५६
आंखें पथराना	आंखें पथरा गयीं	,, भाग ५, पृ० २९०
आंखें मारना	आंखें मारकर कहा	,, भाग २, पृ० २५०
आस्तीन का सांप	आस्तीन के सांप हो गये	,, ,, पृ० २८
आबरू बचाना	आबरू बचाती फिरती हूं	,, ,, पृ० २८६
ईंट का जवाब पत्थर	ईंट का जवाब पत्थर है नहीं	,, भाग ५, पृ० ३२९
उछल पड़ना	एकाएक उछल पड़े	,, ,, पृ० २५४
उड़ा देना	माल उड़ा दिया	,, भाग २, पृ० ६८
अंगूठा दिखाना	अंगूठा दिखा देंगे	,, भाग ६, पृ० १५०
फूट फूट कर रोना	फूट फूट कर रोने लगी	'पाथेयिका', पृ० १९
आग बबूला होना	आग बबूला हो रहे थे	'गल्प माला', पृ० ४२
चम्पत होना	चम्पत हो गया	,, पृ० ४३
मुंह में पानी आना	सब के मुंह पानी आ गया	'दीपिका', पृ० ४५
हक्का-बक्का होना	सभी हक्के-बक्के हो गये	,, पृ० ४६
मुंह लटकाना	माधव ने मुंह लटका कर कहा	'पाथेयिका', पृ० १७
आपे से बाहर	आपे से बाहर हो गया	,, पृ० १८
कान काटना	कान काटती थी	'मानसरोवर' भाग ५, पृ० २०६
कान भरना	कान भरने लगी	,, भाग २, पृ० ३५२
कान गर्म करना	कान गर्म कर दूंगी	,, ,, पृ० ३१८
काठ का उल्लू	काठ में उल्लू की तरह खड़ा रहा ।	,, ,, पृ० १३८
कायल होना	कायल हो गये	,, भाग ५, पृ० ८८
कांव कांव	कांव कांव मचा रखी है	,, भाग ६, पृ० १५६

मुहावरे	प्रयोग	सन्दर्भ
फाड़ खाना	कुत्ता घर उसे फाड़े खाता था	मानस०भाग६,पृ०१८७
सलाम करना	सलाम करता रहा	,, भाग१,पृ०१५७
बदल जाना	यहाँ आते ही बदल गये	,, भाग५,पृ०२१२
बेसुध होना	बेसुध हो गया	,, भाग२, पृ०४३
दांत खट्टा करना	जर्मनी के दांत खट्टे कर दिए	'इन्स्टालमेंट',पृ०८५
कचूमर निकालना	जोंक का कचूमर निकाल देगी	,, पृ०८५
दाल में काला	कुछ दाल में काला है	,, पृ०१८५
वज्र गिरना	हृदय के ऊपर वज्र गिरा	'नन्दननिकुंज',पृ०७९
रंग में भंग	रंग में भंग कर देगी	,, पृ०१२७
कहकहा लगाना	देर तक कहकहा लगाते रहे	'गुनगुन' पृ०१५८
हाथ पैर फूलना	हाथ पैर फूल गये	,, पृ०१५८
पसीने से तर होना	पसीने से तर हो गये	,, पृ०१५९
प्रयाण करना	प्रयाण कर गयी	'द्रौपदी' पृ०५
आग लगना	सिर से पैर तक आग लग गई	'फूल की बीबी',पृ०१००
मुंह फेरना	लोग मुंह फेर लेते हैं	,, पृ०१००
गिटपिट करना	गिटपिट बातें करते रहे	'गुनगुन',पृ०१४३
खून उतर आना	आंखों खून उतर आया	'पनघट',पृ०१३
सन्नाटे में आना	सन्नाटे में आ गये	,, पृ०१५
चिनगारियां निकलना	आंखों से चिनगारियां निकलने लगीं	,, पृ०१५
आंखें खुलना	महाराज की आंखें खुल गयीं	,, पृ०१६
आग लगना	देह में आग लग गई	,, पृ०२५
लोट पोट होना	लोट पोट हो गये	,, पृ०१८
भाग्य को रोना	भाग्य को रोते रहे	,, पृ०२२
पछाड़ खाना	पछाड़ खा कर गिर पड़ी	'कुसुमांजलि',पृ०७१
आंखें बिछाना	आंखें बिछा रहे हो	'हिन्दी गल्प मंजरी',पृ०२१२
पासा उलट पड़ना	परीक्षा का पासा उलटा पड़ा	,, पृ०२५७
[illegible]	[illegible] निकल आई	'गल्पसंकरी',पृ०[illegible]

मुहावरे	प्रयोग	सन्दर्भ
साँस खींचना	काकी ने लम्बी साँस खींचकर कहा	'नई कहानियाँ', पृ०१३४
आवाज लगाना	रामू ने आवाज लगाई	,, पृ०१४८
कराहना	कराह रहे थे	'हिन्दी की आ०कहानियाँ', पृ०३४ ।
सौगन्ध खाना	सौगन्ध खाई	,, पृ०३५
डाट डपट करना	डाट डपट लगी रहती थी	,, पृ०११५
चकित होना	विमला चकित होकर बोली	'गल्प मंदिर', पृ०८६
चेहरा पीला पड़ना	चेहरे का वर्ण पीला हो गया	,, पृ०१२४
छुरी फेरना	उसपर भी छुरी फेर दी	'वल्लरी', पृ०१५७
जान देना	समानता पर जान देता है	,, पृ०२२३
दाग जमाना	उसपर कुछ दाग जमाना चाहिए	,, पृ०२४६
टकटकी बाँधना	घरों की टकटकी बंध रही है	'स्वराज', पृ०७७
दूर दूर करना	हाथ से दूर दूर करके	,, पृ०१४४
मड़राना	ब्याह करने वाले मड़राने लगे	'सखी के बच्चे', पृ०४०
दंग रह जाना	दंग रह जाना पड़ता था	,, पृ०४७
खींच खचाव करना	खींच खचाव से काम चल जाता था	,, पृ०४७
खून सवार होना	उनके सिर पर खून सवार था	'सुधांशु', पृ०६६
हृदय से लगाना	अपने उन्मुक्त हृदय से लगा लिया	,, पृ०८६
जीभ चटकारना	जीभ चटकारता था	'हि०कहानी संग्रह', पृ०३६
ठण्डी साँस लेना	ठण्डी साँस लेते थे	,, पृ०४६
ठहाका मारना	मैं ठहाका मार कर हँस पड़ा	,, पृ०६६
खून खराबा	खून खराबी का बाजार गर्म था	'कहानी खत्म हो गई', पृ०१२६
टुकुर टुकुर देखना	मेरी ओर टुकुर टुकुर देखने लगी	,, पृ०१५
लकीर पीटना	पुरानी लकीर पीटते थे	'मानसरोवर' १, पृ०२८५
लट्टू होना	लट्टू हो जायगी	,, पृ०२२६
[illegible]	[illegible] देना चाहिए कि [illegible] वाला ।	,, भाग२, पृ०७७
लहू का घूँट पीना	लहू का घूँट पीकर रह गये	,, भाग५, पृ०१२६

मुहावरे	प्रयोग	सन्दर्भ
तूती बोलना	उनकी तूती बोलती है	"पाथेयिका", पृ०८१
दाल न गलना	उनकी दाल न गलने दी	,, पृ०८०
चूं न करना	कोई चूं तक नहीं करता	,, पृ०८१
आँखें लाल पीली करना	यहां पर लाल पीली आँखें न कीजिए	"आशीर्वाद", पृ०१७२
दांत पीसना	दांत पीस कर बोले	"माया", पृ०१०५
मन खट्टा होना	उनसे मन खट्टा हो गया	,, पृ०३४
नाक का बाल होना	नाक के बाल हो रहे थे	,, पृ०३
आंख लड़ाना	आंख लड़ाने की आदत पड़ गई	,, पृ०६
गले बांधना	उसके गले बांध दूंगी	"मानसरोवर" भाग४, पृ०१६८
गला घोंटना	तुम्हारा गला घोंट दिया होता	,, पृ०२५६
गिड़गिड़ाना	मैं बहुत गिड़गिड़ाई	"अतीत के चित्र", पृ०४०
कचूमर निकालना	मेरा कचूमर निकल जायगा	"मानस०भाग" ४, पृ०६५
काटो तो खून नहीं	बुढ़िया की देह में काटो तो लहू नहीं।	,, ,, पृ०१४८
सांप लोटना	कलेजे पर सांप लोटने लगता है	,, ,, पृ०२०७
कच्चा चबा जाना	मुझे कच्चा ही चबा जायगी	,, ,, पृ०२०१
नाक कटवाना	सब मिलकर कुल की नाक कटवाएंगी	,, भाग१, पृ०६०
हवा से लड़ना	क्या हवा से लड़ेगी	,, ,, पृ०५
हंसी उड़ाना	लोग हंसी उड़ाएंगे	,, ,, पृ०५०
हाय हाय करना	वे लोग हाय हाय कर रहे हैं	,, ,, पृ०७५
रंग जमाना	ऊपर से और रंग जमाया	,, ,, पृ०१११
रंग उड़ना	चेहरे का रंग उड़ गया	,, भाग४, पृ०१४८
मुहताज होना	रोटियों को मोहताज हैं तो क्या	,, ,, पृ०२०६
रंग बदलना	कल्याणी के जीवन ने फिर रंग बदला	,, भाग१, पृ०५४
हाथ फेरना	मूंछों पर हाथ फेरकर भोजन किया	,, भाग४, पृ०२३

मुहावरे	प्रयोग	सन्दर्भ
थुड़ी थुड़ी होना	शहर में थुड़ी थुड़ी हो रही है	`मानस०भाग१`,पृ०६२
ढिंढोरा पीटना	ढिंढोरा पीटना लज्जा की बात है	,, भाग४,पृ०२८४
ढोल बजाना	अब जा ढोल बजा	,, भाग१ ,पृ०१५
डंक मारना	देवी जी ने डंक मारा	,, भाग४,पृ०६५
डकार जाना	रुपए लिए और साफ डकार गया	,, ,, पृ०३१
डेरा डालना	उसने डेरा डाल दिया	,, ,, पृ०१०३
डोरे डालना	सोचते मुझ पर डोरे डालेंगे	,, भाग४,पृ०२४३
तिलमिलाना	मैं सुनकर तिलमिला उठी	,, ,, पृ०२२०
ताड़ लेना	उनके शब्दों को ताड़ गई	,, ,, पृ०४७
पता बताना	इसे पता बताओ	,, भाग१,पृ०९४
अवाक् होना	बुढ़िया अवाक् रह गई	`बाहर भीतर`,पृ०२०१
ओठ चबाना	हीरा गुस्से से ओठ चबाकर उठी	,, पृ०२००
मुंह ताकना	उसके मुंह को ताकते रहे	,, पृ०२०५
टकराना	सिर से सिर टकराता था	`विभूति` ,पृ०१४७
आंखें ठण्डी करना	अपनी आंखें ठण्डी कर लेती	,, पृ०१८२
नाक रगड़ना	वह नाक रगड़ कर रह जाय	`मानस०`भाग४,पृ०८१
नाक भौं सिकोड़ना	नाक भौं बकर सिकोड़ा था	,, ,, पृ०६५
नाम को रोना	अब नानी के नाम को रोओ	,, ,, पृ०२८७

उपर्युक्त तालिका में दिए गए मुहावरे लोकजीवन में आज भी प्रचलित हैं। इनके प्रयोग के कारण विवेच्ययुगीन कहानी सहज रूप से बोधगम्य हो गई है तथा इन कहानियों में लोकमानस की वास्तविक अभिव्यक्ति भी हो सकी है। इन मुहावरों के प्रयोग द्वारा विवेच्ययुगीन कहानीकारों ने साहित्यिक भाषा को लोकभाषा का रूप प्रदान किया है और अपनी कहानियों में यथास्थान इनका प्रयोग कर कहानी को लोक रूप प्रदान किया है। यदि प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी कहानी में प्रयुक्त समस्त मुहावरों की एक तालिका तैयार की जाय तो वह हिन्दी भाषा के लिए एक आदर्श मुहावरा-कोश बन सकता है।

(आ) प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी कहानी में लोकोक्तियां

मुहावरों का विवेचन करते समय लोकोक्तियों की प्रयोगगत आवश्यकता, कारण और महत्व का कुछ विवेचन किया जा चुका है । यहां पर प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी कहानी में प्रयुक्त लोकोक्तियों का विवेचन मात्र अभिप्रेत है । मुहावरों की ही भांति लोकोक्तियां भी लोकभाषा के अविभाज्य अंग हैं, जिनका प्रयोग नित्यप्रति की बोलचाल की भाषा में भी किया जाता है । विवेच्ययुगीन कहानी को लोकरूप प्रदान करने में इनका भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है । कहानीकारों ने यथावसर मूल रूप में अथवा कुछ हेर-फेर के साथ, अपनी कहानियों में सफल एवं सटीक प्रयोग कर , इनके द्वारा भाषा में प्राणदा शक्ति का संचार किया है । इस प्रकार न केवल कहानी को लोकरूप दिया है, बल्कि कुछ कहानियों की तो रचना भी लोकोक्तियों के आधार पर हो की है ।

विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न प्रकार से लोकोक्तियों की परिभाषा दी है । डा० उदयनारायण तिवारी के अनुसार --"लोकोक्तियां अनुभूत ज्ञान की निधि हैं । शताब्दियों से किसी जाति की विचारधारा किस ओर प्रवाहित हुई है, यदि इसका दिग्दर्शन करना है तो उस जाति की लोकोक्तियों का अध्ययन आवश्यक है ।"[1] लोकोक्तियों के विषय में अपना मौलिक विचार प्रस्तुत करते हुए डा० वासुदेवशरण अग्रवाल का कथन है--" लोकोक्तियां मानवी ज्ञान के चोखे और चुभते हुए सूत्र हैं । अनन्तकाल तक धातुओं को तपाकर सूर्य-रश्मि नाना प्रकार के रत्न-उपरत्नों का निर्माण करती है, जिनका आलोक सदा छिटकता रहता है । उसी प्रकार लोकोक्तियां मानवी ज्ञान के घनीभूत रत्न हैं, जिन्हें बुद्धि और अनुभव की किरणों से फूटने वाली ज्योति प्राप्त होती है । लोकोक्तियां प्रकृति के स्फुलिंगी तत्वों की भांति अपनी प्रखर किरणें चारों ओर फैलाती रहती हैं । उनसे मनुष्य को व्यावहारिक जीवन की गुत्थियों या उलझनों में बहुत बड़ी सहायता मिलती है । लोकोक्ति का आश्रय पाकर मनुष्य की तर्क-बुद्धि शताब्दियों के संचित ज्ञान से आश्वस्त-सी बन जाती है

१ द्रष्टव्य --"हिन्दुस्तानी", अप्रैल १९३९ ई०

और उसे अंधेरे में उजाला दिखाई पड़ने लगता है, वह अपना कर्तव्य निश्चित करने में तुरन्त समर्थ बन जाती है ।"[1]

"लोकोक्ति" किसी वर्ग-विशेष में प्रचलित कोई ऐसा वाक्य है, जिसका "आधार लोक अनुभव है और जिसे जीवन की सारभूत समीक्षा" कहा जा सकता है ।"[2]

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट हो जाता है कि मानव ने सूक्ष्म निरीक्षण बुद्धि और प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर ज्ञान का जो साक्षात्कार किया, वही लोकोक्तियों के रूप में प्रकट हुआ । प्रत्यक्ष अनुभव पर आधारित होने के कारण लोकोक्तियां मानव की उलझनें सुलझाने में सहायक सिद्ध होती हैं, उसे पथ-प्रदर्शन एवं नैतिक बल प्रदान करती हैं और वह उनके माध्यम से धर्म,नीति, उपदेश तथा व्यवहार शास्त्र की बातें प्रकट करता है । "ये जनजीवन के अर्द्ध चेतन मन में इतनी समाविष्ट रहती हैं, कि चेतना में आने के लिए केवल एक प्रेरणा चाहिए और उस प्रेरणा के लिए किसी भी ऐसी अनुरूप घटना की आवश्यकता होती है, जिसपर कि वह उक्ति ठीक घटित हो सके । ये तत्काल बुद्धि की परिचायिकाएँ और अनुभवों की सूत्रात्मक अभिव्यक्ति तथा जन-जीवन की सहज संगिनी हैं ।"[3] यही कारण है कि अपने विचारों की पुष्टि में इनका प्रयोग मूर्ख और पण्डित, शिक्षित और अशिक्षित अर्थात् एक विद्वान् से लेकर गंवार तक करता है । परिणामतः अभिजात्य कोटि के साहित्य में भी इनका उपयोग प्रचुरमात्रा में होता रहा है ।

लोकोक्तियों का वर्गीकरण करते समय सहज ही प्रश्न उठता है कि वर्गीकरण की आवश्यकता क्या है ? और वर्गीकरण का आधार क्या है ? विवेच्य विषय में प्राप्त लोकोक्तियों की अध्ययन-सुविधा ही वर्गीकरण

---

१ डा० वासुदेवशरण अग्रवाल : "पृथिवी पुत्र",पृ०१११ ।

२ टी० शिप्ले : "डिक्शनरी आफ वर्ल्ड लिटरेरी टर्म्स", पृ०३२७ ।

३ डा० सत्या गुप्त : "खड़ी बोली का लोक साहित्य",पृ०२९१ ।

की आवश्यकता की जननी है । वर्गीकरण इसलिए भी आवश्यक है कि लोकोक्तियाँ लोक-चेतना की देन है । "लोक-चेतना पर चारों ओर की परिस्थितियाँ तथा वातावरण का प्रभाव नि:सन्देह पड़ता है पर मूलरूप में लोक-चेतना पर देशकाल के बन्धन लागू नहीं होते । यही कारण है कि भारत के विभिन्न लोक-समूह में ही नहीं, बल्कि विश्व के विभिन्न भू-भागों में एक ही प्रकार की लोकोक्तियाँ पाई जाती हैं ।"[1] इस प्रकार तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से भी वर्गीकरण आवश्यक हो जाता है । अनेक विद्वानों ने लोकोक्तियों के वर्ण्य-विषय, उनके उद्भव एवं विकास-क्रम तथा साहित्यिक एवं लौकिक आधार पर वर्गीकरण किया है, किन्तु प्रस्तुत प्रसंग में विवेच्ययुगीन कहानी-साहित्य में प्राप्त लोकोक्तियों के आधार पर ही वर्गीकरण करना उचित है । इस दृष्टि से लोकोक्तियों को निम्नलिखित वर्गों में बाँटा जा सकता है --

१- कथात्मक लोकोक्तियाँ ।
२- व्यंग्यात्मक लोकोक्तियाँ ।
३- उपदेशात्मक लोकोक्तियाँ ।
४- नीतिपरक लोकोक्तियाँ ।
५- आलोचनात्मक लोकोक्तियाँ ।
६- असम्बद्ध अर्थ प्रकट करने वाली लोकोक्तियाँ ।
७- साहित्यिक लोकोक्तियाँ ।
८- ऐतिहासिक लोकोक्तियाँ ।

१- कथात्मक लोकोक्तियाँ

कथात्मक लोकोक्तियों के पीछे लोकमानस का कोई अनुभव छिपा रहता है, जिसका आधार कोई घटना-विशेष होती है । यही घटना-विशेष लोकोक्ति के पीछे कथारूप में विद्यमान रहती है और बातचीत के मध्य अथवा साहित्यिक कहानियों में अपने कथन की पुष्टि के लिए उसका प्रयोग किया जाता है ।

[illegible]

१ शिवचन्द्र नागर : "गुजराती लोकोक्तियाँ और उनका हिन्दी रूपान्तर", पृ०१६

क्योंकि लोकोक्तियों के पीछे जो कथाएं जुड़ी रहती हैं,उनकी बार-बार आवृत्ति नहीं की जा सकती।१ अतएव उनके द्वारा उसका संकेत कर दिया जाता है । यह संकेत प्राय: कहानी के चरम वाक्य में छिपा रहता है । इस प्रकार साहित्यिक कहानियों में जो स्थान चरम सीमा का होता है, वही इन लोकोक्ति सम्बन्धी कहानियों में चरम वाक्य का होता है । उदाहरण के लिए यहां पर लोकोक्ति से सम्बन्धित एक अन्तर्कथा देना समीचीन होगा -- `चोर चोरी से जाय कि हेरा फेरी से ।`अवधी भाषा में यही लोकोक्ति --`चोर चोरी से जाय तौ का लोकन लउका टारिउ से जाय`(यदि चोर चोरी करना छोड़ दे तो क्या कमण्डल भी इधर-उधर न करे) । यह लोकोक्ति लोकजीवन में बहुप्रचलित है,इसके पीछे एक लोककथा कही जाती है,जो इस प्रकार है-- एक चोर साधु हो गया और साधुओं की मण्डली में रहने लगा । साधुओं के उपदेश से उसने चोरी करना तो छोड़ दिया, किन्तु रात्रि में जब उसका मन चोरी करने के लिए व्याकुल हो उठता तो अन्य साधुओं के सो जाने पर वह उनके कमण्डलों को स्थानान्तरित कर दिया करता था । अन्त में ज्ञात होने पर साधुओं ने उससे पूछा-- तुम ऐसा क्यों करते हो ? इसपर उसने उत्तर दिया --`चोर चोरी से जाय तौ का लउका टारिब से जाय`,अर्थात् यदि चोर चोरी छोड़ दे तो क्या कमण्डलों को इधर-उधर भी न रखे । इस प्रकार की कथात्मक लोकोक्तियों का प्रयोग विवेच्यकालीन कहानीकारों ने किया है ।

२- व्यंग्यात्मक लोकोक्तियां

विवेच्ययुगीन कहानियों में उपलब्ध लोकोक्तियों में एक वर्ग व्यंग्यात्मक लोकोक्तियों का भी है । इन लोकोक्तियों के द्वारा जिस व्यक्ति पर व्यंग्य बाण चलाया जाता है, वह सुनकर क्रुद्ध तो जाता है, किन्तु सत्य होने के कारण वह कुछ कह नहीं पाता है । उदाहरण के लिए जनजीवन में प्रचलित एक प्रसिद्ध लोकोक्ति द्रष्टव्य है-- `सात सौ चूहे खाके बिल्ली हज को चली` । अथवा `जप तप करने चली बिलरिया नौ सौ चूहे खायके`--सुनने वाला व्यक्ति अर्थात् जिसे

१ `मानसरोवर` भाग २--`वैश्या`,पृ०५७ ।

२ सुदर्शन :`तीर्थयात्रा`--`चोर पाप`,पृ०४६ ।

व्यंग्य का लक्ष्य बनाया गया है, उसका आरम्भिक जीवन घृणास्पद रहा होगा। अब वह सत्कर्मों की ओर प्रवृत्त हुआ। अपने जीवन की सत्यता को सुनकर उसे चोट भी पहुंची होगी, किन्तु प्रतिकार कर भी कैसे सकता है ? इसी प्रकार की अन्य व्यंग्यभरी लोकोक्तियों का प्रयोग कहानीकारों ने किया है। कभी-कभी इन व्यंग्यों में हास्य का भी पुट रहता है, किन्तु सत्य का अंश रहने के कारण प्राणी व्यंग्य भूल[1] जाता है और स्वयं भी हंसने लगता है, जैसे--`बगल अन्दर तो भाई सिकन्दर`।

इसी प्रकार प्राय: व्यंग्य में पूरी लोकोक्ति का प्रयोग न कर उसके किसी अंशमात्र से संकेत कर दिया जाता है, उदाहरणके लिए लोकोक्ति है--`घर में भुंजी भांग नहीं, अम्मां चली भुनाने।` इसके स्थान पर मात्र `घर में भुजी[2] भांग नहीं` से संकेत कर दिया जाता है। इस प्रकार अब लोकोक्तियों का आंशिक प्रयोग अन्य वर्ग की लोकोक्तियों में भि देखा जा सकता है।

३- उपदेशात्मक लोकोक्तियां

उपदेशात्मकता की प्रवृत्ति लोकमानस की प्रवृत्ति है, जिसकी झलक लोकोक्तियों में भी मिलती है। इन लोकोक्तियों का उद्देश्य शिक्षा देना होता है। ऐसी लोकोक्तियों का भी प्रयोग कहानीकारों[3] ने बहुत अधिक मात्रा में किया है, जैसे--`लड़का से लड़की भली जो कुलवंती होय`।

४- नीतिपरक लोकोक्तियां

उपदेशात्मक लोकोक्तियों के समान ही नीतिपरक लोकोक्तियों का अपना अलग वर्ग है और महत्व भी है। इसका आधार भी लोकानुभव है। ऐसी

---

१ `मानसरोवर` भाग५, पृ०१६२।

२ ,, भाग१, पृ०१७०, भाग ४, पृ०२०७, भाग ५, पृ०१८८।

३ ,, भाग १, पृ०२५२।

लोकोक्तियों की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है । इनके मूल प्राचीन साहित्य में मिलते हैं,जिन्हें देखकर नि:संकोच इनकी प्राचीनता स्वीकार की जा सकती है । यहाँ पर सहल जी द्वारा दिए गए एक उदाहरण से यह कथन स्पष्ट हो जाता है --
राजस्थानी भाषा की एक कहावत है, `गोदी काने गेर कर पेट आली आस करें` अर्थात् गोद के बच्चेको गिराकर गर्भस्थ की आशा करती है है । इस कहावत में ध्रुव को छोड़कर अध्रुव की ओर दौड़ने वाले व्यक्ति पर व्यंग्य है । बहुत सम्भव है कि इस कहावत का मूल `कथासरित्सागर` की निम्नलिखित कथा हो--

` एक दिन एक स्त्री जिसके एक ही पुत्र था, दूसरे पुत्र की लालसा से किसी पाखण्डी दुष्ट तापसी के पास गयी । तापसी ने कहा -- यह जो तुम्हारा पुत्र है,यदि इसे तू देवता की बलि चढ़ा दे, तो निश्चय ही दूसरा पुत्र उत्पन्न होगा । जब वह ऐसा करनेको उद्यत हुई, तो एक भली वृद्धा स्त्री ने उसे एकांत में ले जाकर कहा -- अरी पापिनी, उत्पन्न हुए पुत्र को तो तू मार रही है, जो उत्पन्न नहीं हुआ, उसकी इच्छा कर रही है । मान लो यदि दूसरा पुत्र उत्पन्न न हुआ[1] तो तू क्या करेगी ? इस प्रकार वृद्धा ने उसे उस पाप कर्म के करने से रोक दिया । विवेच्ययुगीन कहानीकारों ने यथावसर अपनी कहानियों में नीतिपरक[2] लोकोक्तियों का सटीक प्रयोग किया है, जैसे --`आधी छोड़ सारी का धावे` । वस्तुत: यह तो लोकोक्ति का अंशमात्र है(जिसके द्वारा संकेत किया गया है)पूरी लोकोक्ति इस प्रकार है-- `आधी छोड़ सारी का धावे, आधी बचे न पूरी पावे` ।

५- आलोचनात्मक लोकोक्तियां

नीतिपरक लोकोक्तियों के समान ही लोकजीवन में आलोचनात्मक लोकोक्तियों का भी प्रयोग किया जाता है, इस प्रकार की लोकोक्तियों में जातीय गुणों की आलोचना की जाती है । इस दृष्टि से लोकजीवन में कोई भी

१ सत्यव्रत अवस्थी : `लोकसाहित्य की भूमिका`,पृ०२७८ ।
२`मानसरोवर भाग १`,पृ०१२२ ।

जाति दोषमुक्त नहीं मानी गई है, यही कारण है कि प्राय: प्रत्येक जाति एवं वर्ण-विशेष की आलोचना लोकोक्तियों में पाई जाती है , जैसे --"बनिया मीत न वेश्या सती", "काग कबैल धोबी वर्जी, तीन जाति कलरखी", "बाम्हन कूकुर नाऊ जाति देखि गुर्राऊ"। विवेच्ययुगीन कहानीकारों ने ऐसी ही आलोचनात्मक लोकोक्तियों से मिलती-जुलती अन्य लोकोक्तियों के माध्यम से जातीय गुणों की ओर तथा वर्ग-विशेष अथवा व्यक्ति-विशेषकी आलोचना की है । उदाहरणार्थ,[1] "नीच के घर खाने को कुआ और वाले बदली"।[2] "धनवानों का पेट कभी नहीं भरता"। कभी-कभी व्यंग्यात्मक और आलोचनात्मक उक्तियों में इतना अधिक साम्य(ओवर-लैपिंग) हो जाता है कि उनको अलग करना कठिन-सा जान पड़ता है । ऐसी उक्तियां प्रयोग के आधार पर ही वर्ग-विशेष के अन्तर्गत रखी गई हैं ।

६- असम्भव अर्थ प्रकट करने वाली लोकोक्तियां

लोकमानस असम्भव बात को भी सम्भव बनाने में नहीं हिचकता । लोक-प्राणी उसपर विश्वास भी करता है,क्योंकि वह सहज विश्वासी जो ठहरा । उसमें आधुनिक सभ्य समाज के समान तर्क और बुद्धि के व्यवसाय के स्थान पर सहज विश्वसनीयता का ही बोलबाला होता है । विवेच्यकालीन कहानियों में ऐसे भी वाक्य लोकोक्तियों के रूप में प्रयुक्त हुए हैं, जो असम्भव अर्थ को प्रकट करते हैं । यद्यपि इनकी संख्या कम है,फिर भी इनका नितान्त अभाव नहीं है । उदाहरण के लिए "पत्थर पर दूब जामी",[3] "शेर बकरी एक घाट पर पानी पीते हैं।"[4]

७- साहित्यिक लोकोक्तियां

जहां एक ओर साहित्यकारों द्वारा साहित्य में लोकोक्तियों का प्रयोग किया जाता है, वहीं दूसरी ओर साहित्यकारों की प्रभावपूर्ण उक्तियों को लोकमानस ग्रहण कर लोकोक्तियों का रूप दे देता है । इस रूप में उनका प्रयोग

---

१ "मानसरोवर" भाग४,पृ०२४ ।

२ ,, भाग २,पृ०२५९ ।

३ ,, भाग ५,पृ०१०१ १०२ ।

४ ,, भाग ६,पृ० २०४ ।

लोकजीवन में बराबर होता रहता है । कभी-कभी यह निर्णय लेना भी कठिन हो जाता है कि साहित्यकार ने लोक-कहावत को ही साहित्यिक परिवेश में प्रकट कर दिया है अथवा कोई साहित्यिक उक्ति लोकोक्ति बन गई है । यह सब होते हुए भी परम्परा के प्रवाह में प्रचलित इस प्रकार की लोकोक्तियों का प्रयोग कहानीकारों ने किया है, जैसे --

'अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न काम ।
दास मलूका कह गये, सब के दाताराम ।।'[1]

अथवा

'प्रेम सहित मरबो भलो, जो विष देइ बुलाय ।'[2]

८- ऐतिहासिक लोकोक्तियां

कुछ लोकोक्तियों का सम्बन्ध ऐतिहासिक घटनाओं से होता है । इस प्रकार की लोकोक्तियां देशकाल से प्रभावित रहती हैं, किन्तु वे सीमित नहीं रहतीं । कभी-कभी तो ऐतिहासिक व्यक्ति की उक्ति भी लोकोक्ति बन जाती है और भिन्न-भिन्न देशों तथा कालों में रूपान्तरित होकर प्रचलित रहती हैं, उदाहरणार्थ तानाजी की मृत्यु पर शिवाजी के मुंह से सिंहगढ़ विजय के अवसर पर सहसा निकल पड़ा था--'गड आला पर सिंह गेला' अर्थात् गढ़ तो आ गया पर सिंह चला गया । शिवाजी का यह वाक्य महाराष्ट्र में प्रचलित होकर लोकोक्ति बन गया । इसी उक्ति के आधार पर विवेच्ययुगीन प्रसिद्ध कहानीकार आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने 'सिंहगढ़ विजय' शीर्षक कहानी की रचना की और कहानी का अन्त भी 'सिंहगढ़ आया पर सिंह गया' लोकोक्ति द्वारा हुआ है[3] । इसी प्रकार 'मुट्ठी भर बाजरे के लिए दिल्ली का राज्य खोया'-- इस वचन को शेरशाह ने मारवाड़ विजय पर कहा था । जिसका अर्थ है--अधिक परिश्रम करने पर थोड़ा लाभ होना । इसी के समानान्तर 'खोदा पहाड़ निकली चुहिया' लोकप्रचलित है ।

१ 'मानसरोवर' भाग५, पृ०१४ ।
२ ,, भाग ४, पृ०११३ ।
३ 'कहानी खत्म हो गई', पृ०२११ ।

प्रयुक्त लोकोक्तियाँ	सन्दर्भ
जिस पत्तल में खाना उसी में छेद करना	मानसरोवर भाग २,पृ०२८ तथा १२८
जैसे उदय वैसे भान, न उनके चोटी न उनके कान ।	,, भाग ६, पृ०४१
जी से जहान है	,, भाग ५, पृ०१९० ।
गेहूं के साथ घुन भी पीसा जाता है	,, भाग ६, पृ०५६ ।
दीवारों के भी कान होते हैं	,, ,, पृ०२६२ ।
सात पांच मिलि कीजे काज, हारे जीते नाहीं लाज ।	"अनाख्या",पृ०५८ ।
नौ नकद न तेरह उधार	"मानसरोवर" भाग ७,पृ०१७० ।
थोड़ा खाना मोटा पहनना	,, भाग ५,पृ०२०९ ।
लात के आगे भूत भागता है	,, भाग ७, पृ०६३ ।
आम में रस ही न रहा तो गुठली किस काम की	,, भाग २, पृ०६० ।
जैसा मुंह वैसा बीड़ा	,, भाग ४, पृ०२०८ ।
ऐसा की भी बखशीश सी सी	,, ,, पृ०१९१ ।
दमड़ी की हांड़ी गई कुत्ते की जात पहचानी गई	,, ,, पृ०७४ ।
चोर का दिल आधा	,, ,, पृ०२७ ।
छलना का बाप लगाया	,, ,, पृ०९२ ।
अब्बर के बबै सबै अब्बर	"अनाख्या" पृ०८६ ।
पढ़े फारसी बेचे तेल	"मानसरोवर" भाग८,पृ०८० ।
बुढ़ापे का गुस्सा दाढ़ी पर	,, ,, पृ०११६ ।
पुन का फल बेकाम जाता है	,, ,, पृ०१२२ ।
जिसके बात में फरक है उसके बाप में फरक है	,, ,, पृ०२०४ ।
चोरी ऊपर से सीना चोरी	"वातायन",पृ०२२ ।
जिस धरती पर धूल का डेरा	"मानसरोवर",भाग ३,पृ०२५ ।
घर की मुर्गी दाल बराबर	,, भाग २, पृ०१०१ ।
चार दिन की चांदनी फिर अंधेरा पाख	,, ,, पृ०३६६ ।

प्रयुक्त लोकोक्तियां	सन्दर्भ
अंधा जब पतिआवै जब दो आँखें पावै	'चित्रशाला', पृ० ११७
कीर्तिर्यस्य स जीवति	'अनाख्या' पृ० ५८
विनाश काले विपरीत बुद्धि	'मानसरोवर' भाग२, पृ०२९ ।
शुभस्य शीघ्रं	'कुसुमांजलि' पृ०११ ।
आंधी आवै बैठि गंवावै	'कुमुदी' पृ०३० ।
भयल बियाह मोर करबे का	'हंस' वर्ष ३, संख्या १०, जुलाई १९३३, पृ०३४
जान का खतरा बिल्ली के शिकार में	,, ,, ११ अगस्त १९३३, पृ०३३
खिसियानी बिल्ली खंभा नोचे	,, ४ ,, ४ जनवरी १९३४, पृ० ९
न तीन में तेरह में	,, ,,,, ,, ,, ,,
आज मरे कल दूसर दिन	,, ,, ,, ,, ,,
कै भैंस के आगे बीन बजावै भैंस खड़ी पगुराय	'इन्दु', कला ६, खंड २, किरण ४-५ नवम्बर १९१४ई०, पृ० ३०३ ।
घी का लड्डुवा टेढ़ै भेढ़	'हंस', वर्ष १, अंक २, अप्रैल १९३०, पृ०३० ।
जब तक स्वांसा तब तक आसा	,, ,, ३ सं०७ ,, १९३३, पृ०४५ ।
सावन सूखा न भादों हरा	'पांच कहानियां', पृ०१२
धन की शुद्धि दान है देह की शुद्धि स्नान है	,, पृ०६८
रस्सी जल गई पर ऐंठन नहीं गई	'पनघट', पृ० १७१
घड़ी बहुरार ब्यारि के होता	'कुसुमांजलि', पृ०३५
अंधे के आगे रोकर अपना दीदा कौन खोवे	'हंस', वर्ष २, अंक७, मार्च १९३२, पृ०३५ ।
दूर के ढोल सुहावने	'इन्दु', कला ४, खण्ड १, किरण ६, जून १९१३ पृ० ५६३ ।
बारह बरस दिल्ली रहे पर भाड़ ही झोंका किए ।	,, कला ६, खण्ड १, किरण ३, फरवरी, १९१५ई०, पृ० २६४ ।
जब बड़े देवी सवार तब पीठ देवी कीजिए	,, पृ० २६६ ।
डूबन चाहे लौ में या कुएँ में	,, कला ४, खंड१, किरण४, अप्रैल१९१३ई०, पृ०३६८।
न रहेगा बांस न बजेगी बांसुरी	,, कला ६, खंड१, किरण२, फरवरी१९१५ई०, पृ०१५१

प्रयुक्त लोकोक्तियाँ	सन्दर्भ
घर फूँक तमाशा देखें	'इन्दु' कला ६, खंड१, किरण ३, फरवरी १९१५, पृ०२६३ ।
लातों के आदमी बातों से नहीं मानता	'चित्रशाला', पृ०८४
फटकचन्द्र गिरधारी, जिनके लोटा न थारी	'विभूति', पृ०१४२ ।
धोबी बसके का करे दीगम्बर के गांव	'कहानी संग्रह-सतमी के बच्चे', पृ०३५
दिल्ली को चीखड़े के ही नजर आते हैं	'इन्दु' कला ८, किरण २, फरवरी १९२७ पृ० ६७ ।
हानि लाभ जीवन मरन, | यश अपयश विधि हाथ |	'हंस' वर्ष ३, संख्या १०, जुलाई १९३३ पृ०३२ ।
अति सर्वत्र वर्जयेत	,, ,, ,, ,,पृ०३४।

उपर्युक्त विवेचन एवं लोकोक्तियों की तालिका को देखते हुए स्पष्ट है कि कहानीकारों ने मुहावरों एवं लोकोक्तियों के द्वारा प्रभावशाली ढंग से वाक्यों की रचना की है--'मां बाप की तो उमर धान छीलते छीलते बीत गई, यह (बुधिया) रामायण पढ़ती है ।' 'बौड़े के घर तीतर, बाहर बांधूं की भीतर ।' 'जरा सी हिन्दी क्या पढ़ ली अब अपने सामने किसी को समझती ही नहीं, रहे झोंपड़ों में, सपना देखे महलों का । दिन-ब-दिन अमीरी बढ़ती जाती है । वाह! 'मुंह लगाई डोमनी गावे ताल बेताल ।'[1] इस प्रकार कहानी का लोकशैली में सफल संयोजन कर अपनी लोकग्राहिणी प्रतिभा का अद्भुत परिचय दिया है ।

---

१ विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' : 'चित्रशाला' (भाग१), पृ०२५१ ।

(३) शैली

सामान्य विवेचन

कहानी-कला का विकास ही मौखिक परम्परा से हुआ है । कहने और सुनने में ही तो कहानी का आनन्द है । किन्तु जब उसे लिपिबद्ध करने की आवश्यकता पड़ी, तब शैली की भी आवश्यकता पड़ी । आरम्भिक काल की कहानी में लोक(कथा) कहानी की ही शैली प्रयुक्त होती रही, परन्तु धीरे-धीरे उसका परिष्कार हुआ । परिणामत: शिष्ट शैली और लोक-शैली का भेद स्पष्ट दिखायी पड़ने लगा । क्योंकि शिष्ट साहित्य की वह विधा, जिसे कहानी कहते हैं, उसका मूल उत्स लोकमानस है और उसका कथानक जनसाधारण का लिया जाता है, अत: प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी कहानीकारों ने लोक-शैली का प्रयोग कर, लोक-प्रवृत्ति के अनुकूल ही कहानियां प्रस्तुत कीं । शिष्ट शैली में भी उन्होंने जो कुछ लिखा, उसे भी लोक-प्रवृत्ति के अनुकूल ही ढालकर प्रस्तुत किया । यही कारण है कि विवेच्यकालीन कहानी लोक-कहानी के अधिक निकट रही है तथा लोक ने उसे उसी रूप में ग्रहण भी किया । इससे पूर्व काल में तिलस्मी चमत्कार से चकाचौंध पाठक, कहानी कला को तिलस्मी सीमा में ही देख पाया था, अथवा पशु-पक्षी के माध्यम से शिक्षा ही प्राप्त कर सका था, किन्तु विवेच्यकालीन कहानीकारों ने जन-जीवन की झांकी, लोक की समस्याओं, ग्रामीण कृषकों की दैन्यदशा, पीड़ित नारी की विरह-वेदना आदि को देखा है, क्योंकि वे सभी लोक जीवन के आदमी थे । अत: सामान्य जन-जीवन के वातावरण में इन्हें सब कुछ कहना-सुनना था । प्रेमचन्द ने स्वयं यथार्थ का चित्रण किया और आदर्श की कल्पना की । इसके साथ-ही-साथ अपने समय के अन्य सहयोगियों को भी इस बात की प्रेरणा दी कि लोक-शैली के माध्यम से ही कहानी लोकमानस के समीप, उसके हृदय में स्थान प्राप्त कर सकती है । इस दृष्टि से प्रेमचन्द ने ही सर्वप्रथम लोक-शैली के महत्व को समझाया । परिणाम यह हुआ कि 'सरस्वती', 'हंस' माधुरी आदि विभिन्न पत्रिकाओं में लोकशैली पर आधारित कहानियां जन सामान्य के बीच प्रकाश में आने लगीं । यही कारण था कि इनमें लोक भाषा का भी खुलकर प्रयोग होने लगा और कहानी जन-साधारण के गले का हार बन गयी । लोक जहाँ बात से

उसे पढ़ने और सुनने लगे । बचपन में दादी और नानी के द्वारा जिस शैली में कहानी का रसास्वादन किया था, उसी के निकट शिष्ट कहानी में भी रस लेने लगा । शैली का अपना स्वयं का आकर्षण यदि अन्य सब बातें या परिस्थितियां एक-सी या प्रायः एक-सी[1] हों, जन-रुचि को आकर्षित करने का निर्णायक कारण शैली ही[2] होगी । और "प्रेमचन्द जैसे असंख्य लेखक अपनी शैली के कारण महान हो गये । "इसी कारण वे अपने पाठकों पर छा गये । आज भी उनकी रचनाएं बड़े प्रेम से पढ़ी जाती हैं और सुनी जाती हैं । यही वह कारण था[3] कि हिन्दी पत्रिकाओं में उन्हें अपनी रचना देने तक की फुर्सत न मिलती थी । शायद ही कोई ऐसी पत्र-पत्रिका बची हो, जिसमें उनकी रचनाएं न छपी हों ।

लोक शैली एवं लोक-प्रवृत्ति में अन्तर

लोक-शैली एवं लोक प्रवृत्ति के प्रयोग के कारण प्रेमचन्दयुगीन कहानी का लोकतात्त्विक अध्ययन करते समय विवेच्यकाल की कहानी का इस दृष्टि से भी अध्ययन आवश्यक हो जाता है । प्रस्तुत विवेचन के पूर्व शैली, लोक शैली तथा लोक शैली और लोक प्रवृत्ति में जो अन्तर है उसे स्पष्ट कर देना समीचीन होगा ।

संसार के प्रायः सभी विचारकों ने शैली को अभिव्यक्ति कहा है, किन्तु डा० श्याम शर्मा[4] शैली के नियामक तत्वों का वृहद् विश्लेषण कर शैली की परिभाषा देते हुए निष्कर्ष रूप में कहा है--"शैली व्यक्तित्व भी नहीं है, विषय-वस्तु का गुण-धर्म भी नहीं है, युग का प्रतिबिम्ब भी

---

१ "अदर थिंग्स बीइंग इक्वेल, आर अप्रियरिंग टु बी इक्वेल, द डिटरमिनिंग प्रिन्सिपल फार द पब्लिक ब्यास विल बी इन द स्टाइल ।"
-- थामस डे क्विंसी : "स्टाइल एण्ड रिटौरिक", पृ०१६८।

२ शंकरदयाल चौऋषि :"द्विवेदीयुगीन हिन्दी गद्य शैलियों का अध्ययन", पृ०२०

३ द्रष्टव्य-- प्रेमचन्द :"चिट्ठी-पत्री", भाग२, पत्र संख्या २६८, प्रेमचन्द का पत्र पद्मकान्त मालवीय को ।

नहीं है और न ही भाषा है, किन्तु अदृश्य रहते हुए भी इन सब में परिव्याप्त है, सबसे अपना पोषण पाती रहती है । .... लेखक की अनुभूति से लगाकर पाठक की रसानुभूति तक जो एक प्रक्रिया है, उसका कोई भी अंश ऐसा नहीं है, जो शैली से अछूता हो, जहां शैली का अस्तित्व न हो, सत्ता न हो । यदि रूपक का सहारा लिया जाय तो कहा जा सकता है कि शैली उस पुष्प की सुरभि है जो अपनी जड़ों को जमीन के नीचे धंसाये पोषण रस ग्रहण करता है, पत्तों के उन्मुक्त वातावरण में फैलाये प्राण वायु का सेवन करता है । इस रूपक में सुरभि शैली है, पुष्प रचना है और सम्पूर्ण पौधा लेखक है, मिट्टी परम्परा है जहां से लेखक संस्कार पाता है, वातावरण वर्तमान युग है जहां से लेखक प्राण-वायु के समान प्रभाव ग्रहण करता रहता है और फूल और फूल की सुरभि से मुग्ध होने वाले सहृदय पाठक हैं ।[१]" इस प्रकार शैली का सम्बन्ध किसी एक तत्व से न होकर अनेक तत्वों के सम्यक् सामंजस्य में है । यही कारण है कि शैली सिखाई नहीं जा सकती, ठीक उसी प्रकार जैसे कहानी कहने वाले के "ढंग" को सुनकर अनुभव तो किया जा सकता है, किन्तु देखा नहीं जा सकता । यह सत्य है कि शैली भाषा के अतिरिक्त है, परन्तु इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता कि सृजन की समग्र प्रक्रिया अमूर्त है और यदि वह मूर्त होती है, तो उसका आधार भाषा ही है । अतः शैली का यही एक तत्व --भाषा-प्रत्यक्ष और मूर्त होने के कारण विश्लेषण साध्य है । " अतः लोक-धारा की शैली का सर्वप्रधान लक्षण भाषा की दृष्टि से बोलचाल की भाषा से निकटता है । इस निकटता में मात्रा की दृष्टि से अन्तर हो सकता है-- कहीं निकटता अधिक होगी, कहीं कम । लोकधारा शैली पर विचार करते हुए अमरनाथ सिन्हा ने शैली के अन्य लक्षणों की ओर संकेत करते हुए लिखा है--" इसके अन्य लक्षण होंगे- सामान्य जीवन में अति प्रचलित शब्दों के प्रयोग, अलंकारों का लोकजीवन से चुनाव, बोलचाल के लहजे, मुहावरे तथा लोकोक्तियों का प्रयोग, तद्भव तथा देशज शब्दों का बाहुल्य, लोकजीवन से विषय का चुनाव तथा उसी की

---

१ डा० श्याम शर्मा : "आधुनिक हिन्दी गद्य शैली का विकास", पृ०११८ ।

भाषा द्वारा विश्वसनीय वातावरण का निर्माण तथा भाषा-संस्कार का अभाव ।[1] द्विवेदीयुगीन कहानीकारों की कहानी की भाषा-शैली, कथा और वातावरण की विश्वसनीयता इसी लोकाभिव्यक्ति की शैली की देन है ।

ये कहानीकार लोकजीवन से सम्बद्ध थे । सामान्य जन-जीवन के वातावरण में ही सब कुछ कहना-सुनना होता था, अतएव ये जब भी बोलते हैं, तब लोक-कण्ठ की वाणी में, जब लिखते हैं, तब बोलचाल की भाषा में । इन्हें जब भी जनता से कोई विशेष बात कहनी होती थी या जीवन के किसी आदर्श-विशेष से सन्देश देना होता, तो ये कहानीकार लोककथाओं का आश्रय लेकर लोक-शैली में ही अपनी अभिव्यक्ति करते थे । यही कारण है कि प्रेमचन्दयुगीन कहानी में कथारस- कहानी का आनन्द कहीं भी नहीं होता । 'नानी की कहानी के 'ऐसे ऐसे एक राजा था ' से लेकर 'जैसे उनके दिन फिरे वैसे सब के फिरें', तक की कुतूहलोत्पादकता, कल्पना और भावना से परिपूर्ण हैं ।

शैली से अभिप्रेत अभिव्यक्ति सरणियाँ

इस प्रकार लोकशैली से हमारा तात्पर्य है-- लोककहानी में कहानी कहने वाले का 'ढंग', जो लोकमानस से सम्बन्धित है और जिसका प्रयोग आदिमवासियों, अशिक्षितों तथा अपढ़ ग्रामीणों में है और जिसका प्रयोग शिष्ट कहानी में नहीं होता । डा० सत्येन्द्र के मतानुसार जो शिष्ट द्वारा त्याज्य होता है, वही तो वास्तव में लोकतत्व का रूप ग्रहण करता है ।[2] वास्तविकता भी यही है कि प्रत्येक वर्ग-विशेष की एक शैली विशिष्ट होती है, जिसके आधार पर ही यह निर्णय किया जाता है कि शैली लोकवर्ग की है या शिष्ट वर्ग की । एक का सम्बन्ध बुद्धि-मानस से है और एक का लोकमानस से । लोक-शैली के मूल में लोक की प्रवृत्तियाँ विद्यमान रहती हैं, जिसके माध्यम से अन्य लोक

---

१ जगन्नाथ मिश्रा : 'हिन्दी गद्य शैली और विधाओं का विकास', पृ०२२ ।
२ द्रष्टव्य --'मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोकतात्विक अध्ययन', पृ०६१ ।

सांस्कृतिक तत्वों के साथ भाषा और शैली का निर्माण होता है और लोक-प्रवृत्ति के मूल में लोकमानस निहित रहता है। इस प्रकार लोकमानस से लोक-प्रवृत्ति और लोक प्रवृत्ति से लोक-शैली का जन्म होता है। इस 'वंशानुक्रमिक सम्बन्ध के सिद्धान्त के समान, इस प्रकार हम लोक साहित्य द्वारा लोकशैली का लोकशैली द्वारा लोक-प्रवृत्ति का और लोक प्रवृत्ति द्वारा लोकमानस का अध्ययन कर, यह निर्णय कर सकते हैं कि किस साहित्य में कितनी मात्रा में लोक-शैली, लोक प्रवृत्ति और लोकमानस का योग है।'[1] परन्तु शिष्ट साहित्य के मूल में कितनी मात्रा लोक-शैली या लोकप्रवृत्तिगत है, इसका मात्र संकेत ही किया जा सकता है। इस दृष्टि से यही कहा जा सकता है कि अमुक शैली अथवा अमुक प्रवृत्ति लोक-प्रवृत्ति के समान है। यद्यपि मुनि-मानस का निर्माण ही लोकमानस से हुआ है अतएव जहां मुनि मानस होगा, वहां लोक-मानस की स्थिति भी होगी, तथापि यह बात आधिकारिक शब्दों में कहा ही नहीं जा सकता, क्योंकि लोकमानस और मुनि मानस दोनों ही एक-दूसरे को प्रभावित करते रहे हैं।

<u>प्रेमचन्दयुगीन कहानी में लोकशैली के विविध रूप</u>

शैली की दृष्टि से प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी कहानी को हम मुख्यरूप से दो वर्गों में विभक्त कर सकते हैं--- प्रथम वर्ग में वे कहानियां आएंगी, जो पूर्णरूप से लोककहानियां हैं और जिनका वर्णन भी लोक शैली में किया गया है। ऐसी कहानी लोक प्रवृत्ति के आधार पर लोकभाषा और लोकशैली में ढालकर लिखी गई हैं। दूसरे वर्ग में वे कहानियां आती हैं, जिनकी शैली अधिक शिष्ट और परिमार्जित है। इस वर्ग की कहानी में लोकभाषा तत्व तथा ग्रामीण प्रवृत्ति तत्व अभावप्राय होने के कारण लोकशैली या लोकप्रवृत्तिगत विशेषताओं का अन्वेषण असम्भव नहीं तो कष्टसाध्य अवश्य है। इस वर्ग की कहानियों में कहानीकार का व्यक्तित्व अधिक मुखरित है, फिर भी इनमें एक

1 डा० विमलकान्ति वर्मा : 'भारतेन्दुयुगीन काव्य में लोकतत्व', पृ० ४६।

ग्रामीण ऐसा लोक-मानस एवं लोक-शैली की विद्यमान ही रहती है ।

यहाँ यह भी स्पष्ट कर देना आवश्यक प्रतीत होता है कि प्रेमचन्दयुगीन कहानीकारों ने लौकिक, पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा धार्मिक आदि विविध कथाओं को आधार मानकर कहानियों की रचना की हैं । बिना कथानक के कहानी का अस्तित्व कैसा ? इनमें वर्णन की ही प्रधानता दिखलायी पड़ती है और कथा की भी स्थिति है। अतएव कथा के मूल उपादान कथानक रूढ़ियां अथवा अभिप्राय का अध्ययन स्वतन्त्र रूप से प्रस्तुत प्रबन्ध में पूर्व ही किया जा चुका है । यहाँ लोक-शैली की जो वर्णन-पद्धति है, वर्णन-पद्धति की जो सहजता है, वर्णन के बीच-बीच में जो आशीर्वादात्मक, व्यंग्यात्मक, प्रश्नोत्तर तथा चम्पू आदि शैली के साथ-साथ साधारण बात कहकर लोकोक्तियाँ, मानस की अर्द्धालियाँ अथवा अन्य किसी प्रसिद्ध पंक्ति से अपने कथन की पुष्टि करने की लोक-प्रवृत्ति, उपदेशात्मकता तथा पुनरावृत्ति आदि विभिन्न लोक-प्रवृत्तियों का ही अध्ययन किया जायगा ।

ऊपर हम कह आये हैं कि प्रेमचन्द-युग में अधिकतर कहानियां लोककथा-शैली के आधार पर ही लिखी गई हैं । इस दृष्टि से आरम्भिककाल की कहानी-लेखिकाओं के विषय में तो डा० उर्मिला गुप्ता का स्पष्ट कथन है कि 'वस्तुत: इन कहानियों का विवेचन शुद्ध साहित्यिक धरातल पर न करके इस आधार पर किया जाना चाहिए कि इनमें साहित्यिक कथा-शैली के अंचल में लोककथाओं की शैली से का अनिवार्य गुम्फन हुआ है ।'[१] परन्तु कहानी का एक बहुत बड़ा भाग इसी शैली पर नहीं लिखा गया, फिर भी उनमें लोकशैली एवं लोक-प्रवृत्ति के तत्त्व मिलते अवश्य हैं । ऐसी कहानियों के विषय भी लोकविषय हैं, उनकी भाषा लोकभाषा के समीप है तथा लोकशैली के ही अनुरूप शब्दावली, मुहावरे, लोकोक्तियां एवं अलंकारों आदिका प्रयोग किया गया है । लोकशैली के

---

१ द्रष्टव्य-- 'हिन्दी कथा साहित्य के विकास में महिलाओं का योगदान', पृ०८५।

इन विभिन्न तत्वों अर्थात् भाषा, शब्दावली, मुहावरे, लोकोक्तियां तथा अलंकारों आदि का प्रबन्ध में यथास्थान विस्तृत विवेचन किया गया है। यहां पर लोकशैली तथा लोकप्रवृत्ति के उन्हीं तत्वों पर विचार किया गया है, जिनका स्वतन्त्ररूप से प्रबन्ध में अन्यत्र विवेचन नहीं किया गया है।

कहानी के आरम्भ में शैली का महत्व

शैली की दृष्टि से कहानी का आरम्भ सर्वाधिक महत्व का होता है। लोककथा शैली की मौलिक प्रकृति के सम्बन्ध में लोकवार्ताविद् हेनरी आई० फ्राउस्ट ने लोककथाशैली में कहने के "ढंग" की ओर संकेत करते हुए जो कुछ कहा है, वह बड़े महत्व का है। उन्होंने अपने ग्रन्थ "मिथ्स एण्ड फोकलोर" में कहा है--"एक क्षण के लिए ऐसे दृश्य की कल्पना कीजिए, जो कभी सम्पूर्ण विश्व में सर्वत्र देखा जा सकता था और वर्तमान समय में भी अनेक ग्रामों में देखा जा सकता है। जगतीतल पर रात्रि उतर आयी है और शीत का कम्बल फैला दिया है....... .. सायंकालीन भोजन हो चुका है। कहानी कहने वाले के चारों ओर सतृष्ण नेत्रों से व्यक्ति बैठे हैं। कथक्कड़ जादूभरे चार शब्द बोलता है और श्रोतागण किसी दूसरे ही लोक में पहुंच जाते हैं। "वे जादू भरे चार शब्द क्या हैं?" --"एक समय की बात है......." या ऐसा ही कोई दूसरा मूल वाक्य। भला इन शब्दों में क्या जादू भरा है? इस प्रकार जब श्रोतागण मन्त्रमुग्ध की तरह उत्कण्ठायुक्त व्यग्रता से कथक्कड़ की ओर टकटकी लगाते हैं, वह अपनी कहानी का ताना-बाना बुनना प्रारम्भ करता है। वर्षों, सौ सौ वर्षों की गणना में इस प्रकार लोककथाएं, काल के आदिकाल से ही जनसामान्य में प्रचारित रही हैं। ऐसा लगता है कि वह, अब बिना कहानी सुने लोग रह ही नहीं सकते, विशेषत: ऐसी कहानी बिना जो कि कल्पना को उद्वेलित करती हो।"

---

१ हेनरी आई० फ्राउस्ट : "मिथ्स एण्ड फोकलोर", यूनिट ५, "फोकटेल्स एण्ड बैलेड्स", पृ० १०४ ।

लोकशैलीगत सरलता का निर्वाह

विवेच्ययुगीन कहानीकारों ने भी अधिकांश कहानियों का प्रारम्भ इसी प्रकार लोकशैली में किया है। स्वयं प्रेमचन्द कहानी में एक निश्चित परिचयात्मक आरम्भ एवं स्वाभाविक अन्त को अनिवार्य समझते हैं। शैलीगत जटिलता के वे विरोधी हैं। लोकशैली की सर्वप्रधान विशेषता सरलता है, जिसे स्वयं प्रेमचन्द ने कहानी का अनिवार्य गुण माना है[1]। उन्हीं की कहानी 'सवा सेर गेहूं' गांवों में होने वाली महाजनी लूट की एक बहुत भयानक क्रूर कहानी है, जिसे इतने सहज ढंग से प्रस्तुत किया है कि लोककहानी का स्मरण हो आता है। शैली भी पूर्णरूप से लोकशैली ही है। सीधी-सादी, चौपाल में कही जाने वाली कहानी की ही भांति कहानी आरम्भ होती है--

"किसी गांव में शंकर नाम का एक कुरमी किसान रहता था। सीधा-सादा गरीब आदमी था, अपने काम-से-काम, न किसी के लेने में, न देने में। छक्का पंजा न जानता था, छल प्रपंच की उसे छूत भी न लगी थी, ठगे जाने की चिन्ता न थी, ठग विद्या न जानता था, भोजन मिला, खा लिया, न मिला तो पानी पी लिया और राम का नाम लेकर सो रहे[2]।"

इसी प्रकार लोकशैली से प्रारम्भ होने वाली कुछ अन्य कहानियों के भी उदाहरण द्रष्टव्य हैं--

---

१ 'पर आजकल कथा भिन्न-भिन्न रूप से आरम्भ की जाती है। कहीं दो मित्रों की बातचीत से कथा आरम्भ हो जाती है, कहीं पुलिस कोर्ट के एक दृश्य से। परिचय पीछे आता है। यह अंग्रेजी आख्यायिकाओं की नकल है। इससे कहानी अनायास ही जटिल और दुर्बोध हो जाती है। ... पर वास्तव में इससे कहानी की सरलता में बाधा पड़ती है। यौरप के विज्ञ समालोचक कहानियों के लिए किसी अंत की भी जरूरत नहीं समझते। इसका कारण यही है कि वे लोग कहानियां केवल मनोरंजन के लिए पढ़ते हैं।' -- प्रेमचन्द : 'कुछ विचार' (सं०१९५४); पृ०२९-३० ।

२ 'मानसरोवर भाग ४' -- 'सवा सेर गेहूं', पृ० १५४ ।

'किसी समय गौरी नामक गांव में सुबोध नाम का एक बे-मां बाप का लड़का रहता था । निस्सहाय और निरवलम्ब देखकर उसके भरण-पोषण का भार उसके गांव वालों ने ले लिया था । सुबोध बड़ा सुबोध बालक था ।'[1]

'बहुत, बहुत, दिन की बात है । दुनिया के एक कोने में एक बड़ा पुराना राज्य था, जिसका नाम 'कुन्द' था ।'[2]

'बहुत पहले की बात कहते हैं । तब दो युगों का संधिकाल था । भोग युग के अस्त में कर्मयुग फूट रहा था ।'[3]

'किसी नगर में एक बड़ा प्रताप राजा रहता था । राजा के दो रानियां थीं, दोनों को एक-एक पुत्र भी था । राजा छोटी रानी को प्राणों से बढ़कर मानता था ।'[4]

'अब से बहुत दिन पहले- सतयुग और कलियुग में लड़ाई हो रही थी । दो-च.... सतयुग बूढ़ा था, हार गया, वेश बदल कर छिपा रहता, कलियुग ने उसका षड्यन्त्र तोड़ दिया ।'[5]

'बहुत दिनों की बात है, जिस दिन गरीब मंसूरअली की बहन रूकसत दस वर्ष की अवस्था में विधवा होकर पित्रालय लौट आयी थी ।'[6]

'एक था राजा । उसके पांच लड़के थे ।...'[7]

---

१ पं० ईश्वरीप्रसाद शर्मा : 'गल्पमाला'--'चम्पाकली', पृ०४० ।

२ दुर्गाप्रसाद खत्री : 'माया'--'संगति', पृ०१

३ रायकृष्णदास : 'अनाख्या' -- 'कल्पना', पृ०१२२ ।

४ मोहनलाल महतो 'वियोगी' : 'रेखा'--'सत्यासत्य', पृ०४८ ।

५ रामनाथ पाण्डेय : 'हंस', वर्ष १, अंक१२, जून, १६३१ई०, 'सतयुग का निवासस्थान' पृ०२१ ।

६ उषा देवी मित्रा : 'हंस', वर्ष ३, अंक११, अगस्त १६३३ई०, 'मातृत्व', पृ०१

७ विष्णु : 'हंस', वर्ष ८, अंक३, दिसम्बर १६३७, 'आरम्भ', पृ०२१६ ।

'बहुत दिनों की बात है। एक दिन रविवार के दोपहर में भोजन के पश्चात् धूप खाने के लिए बैठक के बाहर कुर्सी डाले बैठा था।'[1]

'बहुत दिनों की बात है। तब मैं लगातार साहित्य-समुद्र मन्थन कर रहा था।'[2]

यहां पर लोक शैली से आरम्भ होने वाली कहानियों के उद्धरणों का जमघट लगा देना उद्देश्य नहीं है, प्रयोजनमात्र यह बतलाना है कि विवेच्यकालीन अधिकांश कहानियों का आरम्भ, लोककहानियों की ही भांति, लोकशैली में ही हुआ है।

शैलीगत वर्णनात्मकता : लोकमानस की वस्तु

कथा साहित्य में वर्णनात्मकता का विशेष महत्व होता है, क्योंकि इसका मुख्य उद्देश्य ही कथा कहना होता है, जो वस्तुत: लोकमानस की वस्तु है। प्राचीनकाल से ही मानव ने लोककथाओं के माध्यम से अपने को अभिव्यक्त किया था और आज भी करता आ रहा है। निश्चय ही आदिम मानव भोजन इत्यादि के लिए भटकता रहा होगा और इस संदर्भ में उसे विभिन्न प्रकार के सुखात्मक एवं दु:खात्मक अनुभव भी होते रहे होंगे। दिन भर के अथक परिश्रम के पश्चात् सायंकाल भोजनोपरान्त अपनों के बीच बैठ दूसरों की सुनता और अपने अनुभव रस लेकर सुनाता रहा होगा। वास्तव में भोक्ता के मुंह से जो बात निकलती है, वह उसके आत्मरस से सिक्त होती है, इसलिए सीधे श्रोता के मर्म को स्पर्श कर लेती है। फलस्वरूप कहने और सुनने वाले में शीघ्रातिशीघ्र आत्मीयता का सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। कहने वाला सुनने वालों को अपना अन्तरंग एवं अभिन्न मानकर रात्रि रही

---

1 वाचस्पति पाठक : 'प्रदीप'—'फेरीवाला', पृ०४५।

2 'निराला' : 'सुकुल की बीबी', पृ०१।

अपना सुख-दु:ख कह डालता है और स्वयं आनन्दानुभव करता है । सुनने वाले भी वैसे ही आनन्द से पुलकित होकर कथा सुनने बैठते हैं । अतएव सुनाने वाले का सुख-दु:ख सुनने वाले का सुख-दु:ख बन जाता है । आज भी कहानीकार या तो अपनी बीती सुनाता है, अथवा जगबीती और कभी-कभी तो दोनों का सुन्दर समन्वय कर देता है । यही आप बीती सुनाने की आदिम प्रणाली ही आधुनिक आत्मकथा प्रणाली की जननी है, जिसमें कथाकार स्वयं अथवा उसका प्रमुख पात्र स्वयं अपनी कथा कहता है । इस प्रकार की अनेक कहानियाँ कहानीकारों द्वारा लिखी गई हैं । यह बात अवश्य है कि आदिम मानव की ही भाँति वह अपने अनुभव तो सुनाता है, परन्तु कालभेद के कारण स्थान-भेद हो गया । आदिम मानव जहाँ अपनी झोंपड़ी के बाहर चौपाल में बैठकर अथवा नीले वितान के नीचे धरती के आँगन में बैठकर अपनी बीती सुनाता था, वहीं आधुनिक कहानीकार कभी तो चाय की दुकान में, कभी क्लब-घर में, कभी किसी मित्र के ड्राइंग रूम में अपनी मित्रमण्डली के मध्य आप बीती सुनाना आरम्भ कर देता है । कृष्णानन्द गुप्त की `पुरस्कार` शीर्षक कहानी इसी लोक-कथन शैली से आरम्भ होती है । देखिए--`इस समय चारपाई के ऊपर हूं । एक तरह से मृत्यु के निकट हूं, इसीलिए जाने से पहले अपने जीवन की एक घटना सुना देना चाहता हूं । वह घटना हो नहीं पाई । होते-होते बच गई । यदि हो जाती तो उसके सम्बन्ध में कुछ लिखने की आवश्यकता न पड़ती । किन्तु जब जीवित हूं, तब उसे लिख जाने में हर्ज क्या है ?

अच्छा तो गदर के दिन थे । वे दिन मैंने सब अपनी आँखों से देखे हैं । ...[1] और कहानी चल निकली है ।

इस दृष्टि से रायकृष्णदास द्वारा लिखित `भाग्य के फेर` शीर्षक कहानी भी महत्व की है । `साईं बाबा को गाँव वालों ने घेर लिया और उनके विषय में जानने की इच्छा से पूछना प्रारम्भ किया --`अच्छा साईं,

१ द्रष्टव्य --`पुरस्कार`, पृ०७ ।

कब सुनाओगे ?` बूढ़ा चुप रहा । सब लोग उसके चारों ओर जुट गये । जिस प्रकार रात को लड़के नानी की कहानी सुनने के लिए उसके चारों ओर घेर लेते हैं, उसी तरह । ... सब श्रोताओं के एकत्र होने पर कलवाक ने कहा -- `हाँ साईं जी ।` साईं ने एक दीर्घ निश्वासपूर्वक कहा, `बेटा, चौहट्टे में पत्थर की हवेली जानते हो न ?` .... सबों ने कहा --`हाँ बाबा, भला शहर में ऐसा कौन है,जो उसे न जानता हो ।` ...` हाँ बेटा, वही कोठी । एक दिन ... ।`[1] इसी प्रकार भगवतीचरण वर्मा की `प्रेजेन्ट्स` शीर्षक कहानी में परमेश्वरी[2] , भगवती प्रसाद वाजपेयी की कहानी `अपमान का मान्य` में मिस्टर अग्निहोत्री[3] , तथा इलाचन्द्र जोशी द्वारा लिखित `पतिव्रता या पिशाची` शीर्षक कहानी के डाक्टर साहब[4] अपनी-अपनी कहानी सुनाते हैं ।

<u>कुतूहल की पूर्ति</u>

इस शैली में लिखी गई कहानियों में, यदि कहानी कहने वाला, तनिक भी रुकता है तो श्रोतागण व्याकुल हो उठते हैं और `फिर क्या हुआ ?` की जिज्ञासा रोके नहीं रुकती, जो लोक-कहानी की शैलीगत अन्यतम विशेषता है । जैसे--`बालकों ने साधु को घेर रखा है । उनकी कथा सुनने के लिए । एक ने तो अभी जुबान से प्रश्न पूछ ही डाला --`तब आप साधु क्यों हो गए ?` साधु ने कुछ गम्भीर स्वर में कहा --`यही मैं तुम लोगों

---

१ द्रष्टव्य--`कलात्मा`,पृ०४७-४८ ।

२ ,, --`इन्स्टालमेण्ट`,पृ०१ ।

३ ,, --`किशोर`,पृ०१-१० ।

४ ,, --`होली और दीवाली`,पृ०१७ ।

को सुनाने लगा हूं । यद्यपि अपने पूर्वाश्रम का हाल कहना सन्यासी को वर्जित भी है, फिर भी कहता हूं । न जाने कौन-सी शक्ति मुझसे इस समय कहला रही है । .. खैर,..." ।जरा देर साधु रुका फिर कहने लगा, " तुम लोगों ने पूछा कि आप क्यों इस तरह नंग-धड़ंग बेशर्म की तरह घूम रहे हैं । इसका सबब मेरा हाल सुनकर मालूम हो जायगा । लड़कों! एक समय था, जब मेरे ठाट-बाट का ठिकाना न था । ..." उसे नदी की ओर जाते देख लड़के भी चौंक कर खड़े हुए और उसे चारों ओर से घेर कर पूछने लगे "फिर क्या कहुआ," "फिर क्या हुआ ?"

पर वह मानो इनकी बात सुन ही नहीं रहा था ।...
आखिर लड़कों ने जबरदस्ती उसका हाथ पकड़ कर झकझोरते हुए पूछा --" नहीं, नहीं, हम जाने न देंगे , पहले बतलाइए कि क्या हुआ ? आपने तब क्या किया ?"[१]

विवेच्यकाल में इस प्रकार की भी बहुत अधिक कहानियां लिखी गई हैं । इनमें वर्णन की ही प्रधानता होती है । इसी शैली के माध्यम से कहानीकार पात्रों एवं वातावरण का भी चित्रण करता जाता है । इस दृष्टि से भी वर्णन दो प्रकार से किया जाता है-- सामान्य वर्णन पद्धति और चित्रात्मक वर्णन-पद्धति । उपर्युक्त दोनों ही लोकशैलियों के उद्धरणों से स्पष्ट हो जाता है कि सामान्य वर्णन-शैर्ड पद्धति लोक की पद्धति है और इसी पद्धति में विवेच्यकालीन कहानी का अधिकांश भाग लिखा गया है ।

चित्रात्मक वर्णन पद्धति

चित्रात्मक वर्णन-पद्धति लोकशैली से कुछ भिन्न और शिष्ट शैली के कुछ अधिक निकट ठहरती है । फिर भी मूलरूप से यह लोक-मानस की ही शैली । इसमें वर्णन की एक परिपाटी होती है, जिसमें विशेष

---

१ दुर्गाप्रसाद खत्री :"माया"-"सन्यासी",पृ०८-३४ ।

शब्दावली का प्रयोग होता है और कहीं-कहीं सामान्य लोक-शैली की वर्णन-पद्धति भी ऐसी ही की जाती है कि वर्णनात्मकता में ही व्यक्ति का बाह्य रूप, वेश-भूषा, रहन-सहन, चाल-ढाल व्यक्तित्व का एक विशिष्ट पक्ष अथवा वातावरण का सजीव चित्र पाठक के समक्ष उपस्थित हो जाता है। चित्रात्मक वर्णन-पद्धति का एक व्यक्ति-वर्णन देखिए--"वह पचास से ऊपर था, तब भी युवकों से अधिक बलिष्ठ और दृढ़ था। चमड़े पर झुर्रियां नहीं पड़ती थीं। वर्षा की झड़ी में, पूस की रात की छाया में, कड़कती हुई जेठ की धूप में, नंगे शरीर घूमने में वह सुख मानता था। उसकी चढ़ी मूँछें बिच्छू के डंक की तरह, देखने वालों की आँखों में चुभती थीं। उसका सांवला रंग, सांप की तरह चिकना और चमकीला था। उसकी नागपुरी धोती का लाल रेशमी किनारा, दूर से भी ध्यान आकर्षित करता। कमर में बनारसी सेल्हे का फेंटा, जिसमें सीप की मूठ का बिछुआ खुंसा रहता था। उसके घुंघराले बालों पर सुनहले पल्ले के साफे का छोर चौड़ी पीठ पर फैला रहता। ऊंचे कंधे पर टिका हुआ चौड़ी धार का गड़ांसा, यह थी उसकी धज। पंजों के बल जब वह चलता, तो उसकी नसें चटाचट बोलती थीं। वह गुण्डा था।"[१] प्रस्तुत उद्धरण में पात्र की बाह्य रूपरेखा वेशभूषा तथा व्यक्तित्व का एक विशिष्ट पहलू हमारे सामने आता है। यह वर्णन चित्रण के अधिक निकट पहुंच गया है। निश्चय ही लोककहानियों की भांति प्रस्तुत कहानी का आरम्भ नहीं हुआ है, फिर भी लोककथाओं की शैली की सरलता का गुण, जो लोकशैली का प्राथमिक गुण है, बना हुआ है। यही कारण है कि वर्णन की स्वाभाविकता बनी हुई है, इससे इनकार नहीं किया जा सकता।

व्यक्ति वर्णन के साथ-ही-साथ लोककथा-कहानियों में परिस्थिति का चित्रण भी मिलता है। इसी चित्रण के द्वारा तो कहानीकार कहानी की मूल संवेदना को प्रकट करने में सफल होता है। क्योंकि परिस्थितियों

---

१ जयशंकर 'प्रसाद' : 'इन्द्रजाल'--'गुण्डा', पृ०१६८।

के सम्यक् ज्ञान के अभाव में तो पात्रों की संवेदना की तह तक पहुंचने में पाठक या श्रोता समर्थ ही नहीं हो सकता । प्रेमचन्द की कहानी `बूढ़ी काकी` से परिस्थिति का एक वर्णनात्मक चित्रण का उदाहरण द्रष्टव्य है, जिसमें उन्होंने तिलक का सजीव वातावरण प्रस्तुत कर दिया है,१---

`रात का समय था । बुद्धिराम के द्वार पर शहनाई बज रही थी और गांव के बच्चों का झुण्ड विस्मयपूर्ण ढंग से गाने का रसास्वादन कर रहा था । चारपाइयों पर मेहमान विश्राम करते हुए नाइयों से मुक्कियां लगवा रहे थे । .... आज बुद्धिराम के बड़े लड़के सुखराम का तिलक आया है। यह उसी का उत्सव है । घर के भीतर स्त्रियां गा रही थीं और रूपा मेहमानों के लिए भोजन में व्यस्त थी । भट्ठियों पर कड़ाह चढ़ रहे थे । एक में पूड़ियां, कचौड़ियां निकल रही थीं, दूसरे में अन्य पकवान बनते थे । एक बड़े हण्डे में मसालेदार तरकारी पक रही थी । घी और मसालों की क्षुधावर्द्धक सुगन्धि चारों ओर फैली हुई थी । ... रूपा इस समय कार्यभार से उद्विग्न हो रही थी। कभी इस कोठे में जाती, कभी उस कोठे में, कभी कड़ाह के पास जाती, कभी भण्डार में जाती । किसी ने बाहर से आकर कहा --`महाराज ठण्डाई मांग रहे हैं ।` ठण्डाई देने लगी । इतने में फिर किसी ने आकर कहा-- `भाट आया है, उसे कुछ दे दो ।` भाट के लिए सीधा निकाल रही थी कि तीसरे आदमी ने आकर पूछा --`अभी भोजन तैयार होने में कितना विलम्ब है ? जरा ढोल मजीरा उतार दो ।` बेचारी अकेली स्त्री दौड़ते-दौड़ते व्याकुल हो रही थी, झुंझलाती थी, कुढ़ती थी, परन्तु क्रोध प्रकट करने का अवसर न पाती । भय होता, कहीं पड़ोसिनें यह न कहने लगें कि इतने में उबल पड़ीं । प्यास से स्वयं कण्ठ सूख रहा था । गर्मी के मारे फुंकी जाती थी, परन्तु इतना अवकाश भी नहीं था कि जरा पानी पी ले अथवा पंखा लेकर झले । यह भी खटका था कि जरा आंख हटी और चीजों की लूट मची ।`

---

१ प्रेमचन्द : `मानसरोवर` भाग८, `बूढ़ी काकी`, पृ०१८४-१८७ ।

आज भी ऐसा ही वातावरण देखा जा सकता है, जिसमें कार्यव्यस्तता के कारण झुंझलाहट तथा उद्विग्नता स्वाभाविक रूप से चेहरों पर झलक जाती है।

इसी प्रकार विवाह के वातावरण का एक वर्णनात्मक चित्रण देखिए--"रनिवास में डोमनियां आनन्दोत्सव के गीत गा रही थीं। कहीं सुन्दरियों के हाव-भाव थे, कहीं आभूषणों की चमक-दमक, कहीं हास-परिहास की बहार। नाइन बात-बात पर तेज होती थी। मालिन गर्व से फूली न समाती थी। धोबिन आंखें दिखाती थी। कुम्हारिन मटके के समान फूली हुई थी। मण्डप के नीचे पुरोहित जी बात-बात पर सुवर्ण मुद्राओं के लिए ठुनकते थे। रानी सिर के बाल खोले भूखी-प्यासी चारों ओर दौड़ती थी। सब की बौछारें सहती थीं और अपने भाग्य को सराहती थी। दिल खोलकर हीरे-जवाहरात लुटा रही थी। आज प्रभा का विवाह है। बड़े भाग्य से ऐसी बातें सुनने में आती हैं।"[1]-- इस प्रकार का वर्णनात्मक पद्धति का चित्रण लोकशैली की स्वाभाविकता से परिपूर्ण रहता है।

लोकनीति या उपदेशात्मक शैली

लोककथाओं के माध्यम से ज्ञानोपदेश देना या किसी तत्त्व-दर्शन को प्रचारित करना भारतवर्ष के चिन्तकों की एक प्रिय शैली रही है। 'पंचतंत्र' और 'हितोपदेश' की कहानियां इसी ओर संकेत करती हैं। इस शैली का प्रयोग द्विवेदीयुगकालीन कहानीकारों ने हू-ब-हू उसी रूप में तो नहीं किया, किन्तु जीवन की कोई घटना अथवा कथा सुनाने के पश्चात् उपदेश देने की जो प्रवृत्ति लोक में पाई जाती है, उसकी अवहेलना नहीं कर सके हैं। इस शैली का मुख्य उद्देश्य असत् पथ से हटाकर सत्पथ पर लाना, कष्टमय जीवन से छुटकारा दिलाकर सुखमय जीवन का मार्ग दिखलाना, पारिवारिक कलह के कारणों की खोज कर उन्हें दूर करने तथा सुख और शान्तिपूर्ण जीवन व्यतीत करने के लिए

---

१ प्रेमचन्द : 'मानसरोवर' भाग ६-'मर्यादा की वेदी', पृ०९९।

मार्ग प्रशस्त करना ही काम पड़ता है । आरम्भिक काल की कहानियों में इस शैली का अत्यधिक प्रयोग कहानीकारों ने किया है, शायद ही कोई कहानीकार ऐसा हो, जिसने लोक-शैली में कहानी की रचना न की हो और लोक में व्याप्त उपदेशात्मक शैली का आश्रय न ग्रहण किया हो ।

परिवार में आए दिन विभिन्न कारणों से कलह मचा ही रहता है । उन कारणों में से विवाह भी एक है । माता-पिता की दृष्टि में धन का महत्व होता है, अत: वे दहेज चाहते हैं और पुत्र सुन्दर पत्नी । यदि कन्या सुन्दर न हुई तो प्राय: जीवन दु:खमय हो जाता है, जिसका परिणाम भयंकर होता है । देखिए, गहरा दहेज मिलने के कारण माता-पिता ने कुरूप लड़की से अपने पुत्र का विवाह कर दिया और सर्वगुण-सम्पन्न सुन्दरी की दहेज न मिलने के कारण उपेक्षा की । क्योंकि धन नहीं था । परिणामत: जीवन विषमय हो गया, घर में नित्य ही किचकिच मची रहती थी और एक दिन जब विष खाकर पत्नी ने आत्महत्या कर ली तो उसके पिता का भी हृदय कठोर हो गया । उन्होंने मुकदमा चला दिया । फल यह हुआ कि पति महोदय को कारावास का दण्ड मिला और 'कारागार से किसी कैदी के गले से बार-बार नीचे लिखे पद का पढ़ना सुनायी दे रहा है--

'प्रेम का आदर न कर मैं, लोभ के वश में हुआ ।
भाइयों ! परिणाम उसका, देख लो दु:खमय हुआ ।।'[१]

इसी प्रकार कहानी के अन्त में कहानीकार द्वारा प्रयुक्त उपदेशात्मक शैली का एक अन्य उदाहरण देखिए--'पाठक ! मातृ स्नेह का अनेक दृष्टांत आपने पढ़ा होगा, किन्तु एक यह भी सत्य घटनामूलक दृष्टांत पर दृष्टिपात कीजिए और समझ कर चलिए, नहीं तो आप भी उलझन में फंस जायेंगे । देखिए, जो लोग माता-पिता की आज्ञा का उल्लंघन करते हैं और अपने सामाजिक बन्धन को ढीला कर प्रतिकूल आचरण कर दिखाते हैं,

---

१ प्रभाकर : 'इन्दु', कला ३, किरण १२, अक्टूबर-नवम्बर, १९१२ई०- 'पाप और परिणाम', पृ०१००७ ।

वे ऐसे ही अपनी सर्वोच्च स्नेही वस्तु को खोकर पश्चाताप करते हैं।[1]'

इस दृष्टि से प्यारेलाल गुप्त की कहानी 'राजभक्ति' भी महत्व की है। कहानीकार ने कहानी के अन्त में जो शब्द पाठकों को सम्बोधित करते हुए लिखा है, वह लोक-शैली के ही अनुरूप है--'प्रिय पाठकगण! जिसने अपने राजा के लिए मातृभूमि के लिए अपने स्वदेश बान्धवों के लिए कुछ न किया, उसका जन्म व्यर्थ है। एक बार इस वर्ष स्वतन्त्र दया धन परमेश्वर से प्रार्थना करिए-- हे परमेश्वर! हम सब को नारायण-सा राजभक्त और स्वदेश प्रेमी बना... ...[2]'

व्यंग्य शैली

लोक-शैली की एक विशेषता यह भी रही है कि कहानी में यत्र-तत्र नोक-झोंक के साथ-साथ छींटाकशी और करारा व्यंग्य भी किया जाता है। लोक-जीवन में ननद-भौजाई की नोक झोंक किसी से छिपी नहीं है। इसी प्रकार विवेच्ययुगीन कहानीकारों ने भी लोकमानस के ही अनुकूल करारे एवं चुभते हुए व्यंग्य किए हैं। पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ा हुआ भारत कराह रहा था और भारत माँ की प्यारी सन्तानों को इच्छा के विरुद्ध 'इंगिलस्तान का इतिहास' पढ़ना आवश्यक था। अंग्रेजों के इतिहास में एक विचित्रता है, नामों की। जिसे रटने में बुद्धि चकरा जाती है। अंग्रेजों में नाम रखने की प्रथा पर मुंशी प्रेमचन्द का करारा व्यंग्य देखिए --'बादशाहों के नाम याद रखना आसान नहीं। आठ-आठ हेनरी हो गुजरे हैं। कौन-सा काण्ड किस हेनरी के समय में हुआ, क्या यह याद कर लेना आसान समझते हो? हेनरी सातवें के बाद हेनरी आठवां लिखा और सब नम्बर गायब! सफाचट! सिफर भी न मिलता, सिफर भी। हो किस ख्याल में। दर्जनों तो जेम्स हुए हैं, दर्जनों विलियम, कोड़ियों चार्ल्स! दिमाग चक्कर खाने लगता है। आंधी रोग हो जाता है। इन अभागों को नाम भी न जुड़ते थे। एक ही नाम के पीछे दोयम, सोयम, चहारुम, पंजुम लगाते चले गये।[3]'

1 लक्ष्मीनारायण सिंह: 'इन्दु', कला २, किरण १, श्रावण सं० १९६८ 'मातृस्नेह'; पृ० ३२।
2. द्रष्टव्य-- 'इन्दु', कला १, किरण २, फरवरी, १९१२ ई०, पृ० १६६-६७।
3 'मानसरोवर भाग १' -- 'बड़े भाई साहब', पृ० ८२।

इसी प्रकार सामाजिक जीवन में अनमेल विवाह, बाल-विवाह, आदि पर भी व्यंग्य किए गए हैं। विवाह-षोडश संस्कारों में प्रधान संस्कार माना गया है। विवाह के पूर्व प्राय: सभी बालक-बालिका एवं वृद्ध प्रसन्न रहते हैं। मन के लड्डू बनाते हैं, हवाई मंसूबे बांधते हैं, किन्तु विवाह के बाद चीखते-चिल्लाते नजर आते हैं। देखिए, खीझा हुआ पति विवाह बन्धन के साथ-साथ अपनी धर्मपत्नी पर भी कैसा करारा व्यंग्य-बाण छोड़ता हुआ कहता है--`यह विवाह करने का मजा है। उस वक्त कैसे प्रसन्न थे, मानो चारों पदार्थ मिले जा रहे थे। अब नानी के नाम को रोवो। घड़ी का शौक चर्राया था, अब उसका फल भोगो।`[1] इसी प्रकार वृद्ध और बाल विवाह के भयंकर परिणामों को स्पष्ट करते हुए कहानीकार प्रेमचन्द ने `नया विवाह`[2] शीर्षक कहानी में करारा व्यंग्य किया है।

श्रीमती शिवरानी देवी भी नारी के प्रति समाज के अन्याय का वर्णन करते समय अनेकश: व्यंग्य शैली में ही अभिव्यक्ति की है। उदाहरण के लिए `सौत` शीर्षक कहानी के प्रारम्भ की पंक्तियां देखिए--`स्त्री का रूपवती होना जरूरी है, नहीं तो उसका जीवन वृथा है। उसमें और कितने गुण हों, वह कितनी ही सुशीला हो, कितनी ही स्नेहमयी हो, कितनी ही प्रबन्ध-कुशल हो, पर रूप नहीं तो कुछ नहीं। फिर पुरुष के लिए दूसरा विवाह लाजिमी हो जाता है। आखिर बेचारा कुरूप स्त्री के साथ जीवन कैसे सानन्द बिताए?`[3] मजे की बात तो यह है कि लड़की तो चाहिए स्वर्णसुंदरी, सर्वगुण सम्पन्न, जादू की पुड़िया, भले ही `लड़का चाहे काला, काना, कुबरा, ठिंगा, ऐंचा-ताना, सिर कद्दू जैसा, पैर कछुआ जैसे, शरीर अष्टावक्र मुनि को भी लजाने वाला--`कोई बात नहीं, घी का लड्डू चाहे सीधा हो या टेढ़ा।`[4] ... कई बकरा रण्डी के यहां पकड़ा गया है।` इससे क्या हुआ? वह लड़का है,

---

१ प्रेमचन्द : `मानसरोवर` भाग४---`नानी की घड़ी`, पृ०२८७ ।
२ ,, ,, भाग २ `नया विवाह`, पृ०३४६ ।
३ शिवरानी देवी : `नारी हृदय`-`सौत`, पृ०८८ ।
४ कृपाशंकर मिश्र : `हंस`, अंक २, अप्रैल १९३०-`धर्मपत्नी`, पृ०३० ।

मंवरा है, सब ठीक है, उसके सारे दोष मानव समाज के गुण हैं । सामाजिक कुरीतियों से परिपूर्ण हिन्दू समाज एवं पुरुष वर्ग की क्रूरता पर विवेच्य-कालीन कहानीकारों ने करारा व्यंग्य किया है । 'विधवा' शीर्षक कहानी में बाल विधवा मालती का सतीत्व नष्ट करने वाले उसके देवर मोहन की यह उक्ति प्रकारान्तर से समाज के प्रति गहरा व्यंग्य है --'वाह ! तुम यही समझती हो कि तुम्हारे साथ मेरे माता-पिता या समाज मुझे भी छोड़ देगा ? सो मत समझो, मेरा समाज ऐसा बेहूदा नहीं है कि वह[1] पुरुषों को कुकर्म के लिए सजा दे । यह सब दुर्दशा तुम्हीं स्त्रियों के मत्थे है ।'

इसी प्रकार सनातनधर्म की रूढ़ियों के विरोध में लिखी गई 'इन्दुमती' शीर्षक कहानी में एक ओर नायिका के चरित्र द्वारा कष्ट सहिष्णुता और पति-भक्ति का सन्देश दिया गया है, तो दूसरी ओर विदेश से लौटने पर कृष्ण बाबू को प्रायश्चित[2] का सुझाव दिखाकर समाज की रूढ़िवादी मनोवृत्ति पर व्यंग्य किया गया है । इसदृष्टि से अनेकानेक कहानियों में बाल-विवाह, वृद्ध विवाह, बहु विवाह, पर्दा-प्रथा, अशिक्षा, स्त्री-हत्या, विधवाओं पर अत्याचार इत्यादि सामाजिक बुराइयों पर कहानीकारों ने करारा व्यंग्य किया है ।

दासता की बेड़ियों में जकड़ा भारत जब स्वतंत्र होने के लिए व्याकुल हो रहा था, तो भी भारत माँ कितने ही सपूत अंग्रेजों की गुलामी करने में ही अपने को कृतकृत्य समझते थे । सरकारी नौकरी प्राप्त करने के लिए होड़-सी लगी थी । और जिसे सरकारी नौकरी मिल गयी, वह पालतू कुत्ते की तरह उन्हीं के आगे-पीछे दुम हिलाते हुए फिरा करते थे । ऐसे ही सरकारी नौकरी करने वाले भक्तों पर राजा राधिकारमणप्रसाद सिंह ने जो तीखा व्यंग्य किया है, वह दर्शनीय है --'दिन भर मसी-प्लावित मेज पर बैठ कर प्रभामय अक्षीवृन्द को मसी-प्लावित करो । वञ्चनाहारी हुक्काम-- पादपद्म

---

१ श्रीमती शारदाकुमारी : 'कल्पविनोद' - 'विधवा', पृ०५६ ।

२ ,, ,, ,, पृ०७१ ।

अफसर की छायामूर्ति अपने सर पर बैठा करो । शाम को छै पर लौटकर फिर छैलन व्यायाम करो । फिरोसिन तेल के धुम से मस्तिष्क को आमोदित करो, खाने के समय बिचारी बहू से मन्दाग्नि की शिकायत करो और फिर रात भर सोये-सोये अपने दुर्लभ - दर्शन- देव देव को कर जोर जोर कर धर झुकाया करो । उनकी शास्य में इन्द्रासन देखो या छू- कुंभन में यमासन .... क्योंकि कुलदेवता यही हैं[1] ।`

शराब पीना लोक-व्यसन है । यह ऐसी शराब लत है कि एक बार मुंह लग जाय तो फिर छूटने का नाम नहीं लेती । भले ही अपनी अर्धांगिनी की साड़ी तार-तार हो, बच्चे का पेट पीठ से चपक गया हो, घर में भुंजी भांग न हो, परन्तु समय पर शराब अवश्य चाहिए, यह लोक में इतना व्यापक व्यसन है, चाहे पढ़ा-लिखा समाज का शिष्ट प्राणी हो, चाहे निम्न वर्ग का अनपढ़ गंवार अथवा मध्यम वर्ग का साधारण खाता-पीता व्यक्ति ही क्यों न हो ? इससे कोई बचा नहीं है । नगर के सम्भ्रान्त वकील साहब शराब के लतियड़ पियक्कड़ हैं । अंग्रेज साहब की डाक कोठी में खाते-पीते देख कुत्ते की तरह बरामदे में खड़े रहे और फिर खानसामा को दस रुपया घूंस देकर चोरी करवा कर चोरी की शराब पीते हैं । पर दुर्भाग्य यह कि खानसामा तो वचन का पक्का निकला, मार खाकर भी कबूल न किया, परन्तु चोर की दाढ़ी में तिनका के आधार पर सब कुछ वकीलसाहब ने ही स्वीकार कर लिया । फलस्वरूप अंग्रेज द्वारा उन्हें जो दण्ड मिला, वह दर्शनीय है--

' साहब बूट से मेरे मुंह में कालिख पोत रहे थे, वह कालिमा पीछे धोने के लिए मेरे चाबुक की चढ़ात थी और मैं भीगी बिल्ली की भांति खड़ा था । उन दोनों यमदूतों को भी मुझ पर दया न आती थी । दोनों हिन्दुस्तानी थे, पर उन्हीं के हाथों मेरी यह दुर्दशा हो रही ... साहब कालिख पोतते जाते थे और हंसते जाते थे, यहां तक कि आंखों के सिवा सिरभर भी जगह न बची

---

१ द्रष्टव्य--`कुसुमांजलि`-`सुरबाला`, पृ०५ ।

थोड़ी-सी शराब के लिए आदमी से बनमानुष बनाया जा रहा था । दिल में सोच रहा था, यहां से जाते-ही-जाते बच्चा पर नालिश कर दूंगा या किसी बदमाश से कह दूंगा, इजलास ही पर बचा की जूतों से खबर ले । मुझे बनमानुष बनाकर साहब ने मेरे हाथ छुड़वा दिए और ताली बजाता हुआ मेरे पीछे दौड़ा ।... 'लेना लेना, जाने न पावे' का गुल मचाते दौड़े आते थे ।'[1] लोकसापेक्ष, सरल तथा सामान्य बोलचाल की भाषा में शराब पीने वालों की दुर्दशा का दिग्दर्शन कराते हुए प्रेमचन्द ने जो व्यंग्य किया है और इसी माध्यम से जो उपदेश दिया है, वह दर्शनीय है ।

चम्पू शैली

अन्य शैलियों की ही भांति लोककथाओं में चम्पू शैली का भी प्रयोग हुआ है । संस्कृत के आचार्यों ने चम्पू को गद्य-पद्यमय काव्य कहा है ।[2] प्राचीन कथाओं में भी कभी-कभी गद्य और पद्य मिला रहता है । वैसे तो लोककथाओं में गद्य की ही प्रधानता होती है, किन्तु बीच-बीच में पद्यों का प्रयोग भी देखने को मिलता है । इस प्रकार पद्यों के प्रयोग से पाठकों अथवा श्रोताओं पर स्थायी प्रभाव पड़ता है तथा कहानी में आकर्षण भी उत्पन्न हो जाता है । इस शैली से लोकमानस का मनोरंजन भी अधिक होता है । जिससे कथाओं का महत्व एवं प्रभाव दोनों ही बढ़ जाता है । द्विवेदीयुगीन कहानीकारों ने इस शैली का भी सफल संयोजन किया है । इस शैली के[3] सर्वश्रेष्ठ कहानीकार श्री चण्डीप्रसाद 'हृदयेश' हैं और उनका 'नन्दननिकुंज' इस शैली का सर्वोत्कृष्ट संग्रह है । प्रस्तुत संग्रह की प्राय: समस्त कहानियां इसी शैली में लिखी गई हैं, एक उदाहरण लीजिए -- 'कहानी का शीर्षक है-- 'प्रेम परिणाम' । प्रस्तुत कहानी गद्य में प्रारम्भ होती है किन्तु कहानी के

---

१ द्रष्टव्य-- 'मानसरोवर' भाग १, 'दीक्षा', पृ०२०२ ।

२ 'गद्य पद्य मयं काव्यं चम्पूरित्यभिधीयते' -- 'साहित्य दर्पण' (आचार्य विश्वनाथ)

३ द्रष्टव्य-- चण्डीप्रसाद 'हृदयेश' ('नन्दननिकुंज', सम्पा० दुलारेलाल भार्गव

बीच-बीच में विभिन्न कवियों की पद्यबद्ध रचनाएं भी अंगूठी में नगीने की भांति जड़ी हुई हैं । शैलेन्द्र सरला को प्रेम करते हैं । उनकी पत्नी विमला उसे सौत सम्बोधन न देकर `बहन` शब्द से सम्बोधित करती है, किन्तु विमला के लिए सरला का सम्बोधन है `छोकरी` ।आज भी शैलेन्द्र उसी निकुंज में बैठे गा रहे हैं ।

आली, चलु तोहि बुलवत श्याम ।
तू इत दामिनि-सी दुरि बैठी, उत छाये घनश्याम ।
वन ,उपवन,नवकुंज पुंज सब, लसत आज अभिराम ।
ढूंढ़ फिरे ब्रजराज तोहिं सखि, डगर-डगर ब्रजधाम ।
तो बिनु अब `हृदयेश` विकल इमि जिमि रति को बिन काम।।

आज विमला ने बहन सरला को न्यौता देकर बुलाया है, क्योंकि शैलेन्द्र आने वाले हैं । उसने सौत को बुलाया भी है और उसकी बड़ी बहन कमला का आदर भी करती है । बातचीत के दौरान विमला ने कुछ लज्जित हो कर कुछ मन्द हास्य करके छोटा-सा घूंघट काढ़ लिया । कवि का कहना है-- `प्रेम अंधा है` (लव इज ब्लाइण्ड) । जीवन का मोह, प्राण की वासना, हृदय की अभिलाषा, मान का ध्यान, अपमान का गुमान सब को सच्चा प्रेमी भूल जाता है । यही कारण है कि उर्दू-फारसी के लैला मजनूं,शीरीं फरहाद, हीर रांझा,अंग्रेजी के रोमियो और जूलियट संस्कृत साहित्य के नल-दमयन्ती शकुन्तला और दुष्यन्त तथा कृष्ण-गोपिकाएं गाती हैं--

जा थल कीन्हें बिहार अनेकन,ता थल कांकरि बैठि चुन्यो करैं ।
जा रसना कियो रस बातन, ता-रसना सो चरित्र गुन्यो करैं ।
आलम जौन से कुंजन में करी केलि तहां अब सीस धुन्यो करैं ।
नैनन में जे सदा रहते, तिन की अब कान कहानी सुन्यो करैं ।।

प्रेम के उदय का कारण भी है । एक बार सरला ने शैलेन्द्र को हंसी-हंसी में अपनी `हृदयवाटिका का माली` कहा था । बस शैलेन्द्र को प्रेम का पुष्ट आधार मिल गया और वे जब जब कभी सरला को पत्र लिखते हैं तो अपने-आपको माली लिखते हैं । ... शैलेन्द्र टहलते-टहलते गाने लगे --

रँगीली रंग- रँगी रतनार।

बार-बार बरजत पिय तोहूं, करहु न मोसन रार ॥

सोवत निसिदिन नित सौतन संग, हमसों करत करार ।

जाहु जाहु नहिं छुवहु छबीले, नहिं छुवें हैं तकरार ॥ ....

शैलेन्द्र एक टक देखने लगे ।

सरला बोली--"शैलेन्द्र"।

शैलेन्द्र --"तुम्हारे बिना संसार असार है ।"

सरला -- "शैलेन्द्र उन्मत्त न हो, तुम जानते हो इस प्रेम का पथ बड़ा कठिन है ।"

शैलेन्द्र सम्हलकर बोले --"किन्तु अप्राप्य तो नहीं ।"

सरला बोली --" नहीं, किन्तु प्राप्त है केवल मरण के उपरान्त ।"

शैलेन्द्र स्तब्ध हो गए.... तो क्या प्रेम , उन्माद और मरण एक ही पदार्थ है?[1]

चम्पू शैली के अन्य कहानीकार शिवपूजनसहाय हैं । उनके कहानी-संग्रह "विभूति" में कुल सोलह कहानियां संगृहीत हैं, जिनमें से सात कहानियां इसी शैली में लिखी गई हैं[2]। इसी प्रकार अन्यान्य कहानीकारों ने भी कहानी के बीच-बीच में काव्य-पंक्तियों को स्थान दिया है । कतिपय उदाहरण देना समीचीन होगा । प्रेमचन्द की "धमरयात्रा" शीर्षक कहानी में बुढ़िया नोहरी नृत्य करती कुछ अपने शब्द ओजस्वी करके कहती है ।....

यात्रियों के चेहरे चमक उठे, हृदय खिल उठे । प्रेम से डूबी हुई ध्वनि निकली--

"एक दिन था कि पारस थी यहां की सर जमीन ।

एक दिन यह है कि यों बे- दस्तोपा कोई नहीं ।।"[3]

लोक में नाना प्रकार के मादक द्रव्यों का सेवन किया जाता है ,देखिए,प्रेमचन्द का पात्र मदान भरत की तरंग में कैसा गीत गा रहा है--

---

१ द्रष्टव्य --"मन्मथ निर्मूल ",पृ०१०-१२ ।

२ ,, --"विभूति" प्रकाशक, पुस्तक भंडार, लहेरिया सराय, पटना, प्र०सं० सं०१९९८ ।

३ ,, --"मानसरोवर" भाग७, पृ०७७ ।

ठगिनी ? क्या नैना झमकावै ।
कद्दू काट मृदंग बनावै, नीबू काट मंजीरा ,
पांच तरोई मंगल गावै, नाचै बालम खीरा ।
रूपा पहिरि कै रूप दिखावै, सोना पहिरि रिझावैं,
गले डाल तुलसी की माला, तीन लोक भरमावै ।।[1]

और उधर चमार मृदंग बजा-बजाकर गा रहे थे --

नाहिं घर श्याम, घेरि आई बदरा
सोवत रहेउं, सपन एक देखेउं, रामा ।
खुलि गयी नींद, ढरक गये कजरा ।
नाहीं घरे श्याम घेर आए बदरा ।।[2]

कहीं-कहीं विरह-विदग्ध नारी भी कहानी के मध्य अपनी दर्दीली तान छेड़ देती है, तो पड़ोसी का अन्तस भी व्याकुल हो उठता है--

'परदेसी की प्रीति रे.... ।'

जीवन ने खिड़की से सिर निकाल कर सामने वाली छत पर देखा । तानपूरे के तारों को झंकृत करती हुई पतली-पतली सुन्दर उंगलियां नाच रही थीं । देवी के वरदान-सी सुन्दर युवती सुरीली किन्तु दर्दीली आवाज से पुनः दुहराया --'छोड़ गया मुख मोड़क गया रे -- ' और इधर जीवन मन्त्रमुग्ध-सा सुनता रहा... वह चौंक कर पीछे हटा, छि: किसी युवती के विषय में सोचने वाला मैं कौन ? ... वह खिड़की बन्द करना ही चाहता था कि उसने सुना --

' सावन जल मेरे नैनन से ।'

तेजी से खिड़की बन्द कर ली उसके कान में अंतिम पद गूंजता रहा --'सावन जल मेरे नैनन से ।'[3] ..

---

१ प्रेमचन्द : 'मानसरोवर' भाग ५-'अग्नि समाधि', पृ०१७८-७६
२ ,, ,, ,, 'ईश्वरीय न्याय', पृ०२५७
३ कुमारी मालती शर्मा : 'मालती माला', 'दुपारस', पृ०१२३ ।

कभी-कभी तो कहानी का अन्त भी लोककहानियों की ही भांति ," जैसे उनके दिन फिरे, वैसे सब के फिरें " के ढंग पर, पद्य में ही होता है , उदाहरणार्थ --"क्या आश्चर्य जो मैं किसी जेल की एकान्त कोठरी में बैठे गाते हों--

आवेंगे बौर रसाल में अरु कोकिल बागन में बिहरैंगे ।

एक दिना न तु एक दिना, कबहूं गये दिन फेरि फिरेंगे ।"[1]

फेरी वालों की लटके की शैली

लोक में जीवन-निर्वाह हेतु गा-गाकर अथवा हांक लगाकर अपनी वस्तुओं का विक्रय करने की शैली से भी लोक परिचित ही होंगे । बेचने वाले एक निश्चित लटके में, आकर्षक वाक्य का जोर-जोर से उच्चारण कर ग्राहकों को आकर्षित करते हैं और इच्छा न रहते हुए भी लोग वस्तुओं को खरीदने के लिए विवश हो जाते हैं । इस विवशता से ही बेचने वालों का जीवन निर्वाह होता है । आज के वैज्ञानिक युग में भी `कपड़े वाला बजाज' की बोली यदा-कदा सुनाई पड़ जाती है । प्रेमचन्दयुगीन कहानीकारों ने बेचने वालों की लटके की लोकशैली के महत्व को पहचाना और लोकमानस का ध्यान रखते हुए पाठकों तथा श्रोताओं के ध्यान को आकृष्ट करने के लिए, अपनी कहानियों में इस शैली का भी प्रयोग किया । यह अवश्य है कि इस शैली में लिखी गई कहानियों की संख्या कम है,फिर भी जितनी भी कहानियां लिखी गई हैं,वे सफल हैं । इस दृष्टि से सर्वाधिक सफल कहानी श्री सत्यजीवन वर्मा की "रंग गुलाबी बादामी रंग" शीर्षक कहानी है । कहानी का शीर्षक ही बेचने वाले की शैली का मूल लटका या वाक्य है । कहानी का आरम्भ भी कहानीकार इसी चरम वाक्य से करता है-- "रंग गुलाबी बादामी रंग "की करुण पुकार सुनायी पड़ जाती थी । यह पुकार किसी फेरी वाले की थी ।

---

१ ठाकुर श्रीनाथ सिंह :"पार्थिका"--"लाड़िली",पृ०१३८ ।

कहानी में इसी वाक्य की बारम्बार आवृत्ति हुई है, जो लोकप्रवृत्ति के अनुकूल है, जिसका वर्णन लोक प्रवृत्ति के अन्तर्गत किया गया है। फेरी वाले ने अपने जीवन की घटना, मेरे हठ करने पर सुनाते हुए कहा--'बाबू जी, आज तक किसी से मैंने अपनी राम कहानी न कही, पर आप हठ करते हैं तो सुनिए, पर हंसियेगा नहीं, इसी डर से मैंने किसी को अपना राज नहीं बतलाया। कहने से लाभ भी क्या ? सिर्फ अपनी हंसाई होती।' और अपनी बीती सुनाने के पश्चात् वह पुन: फेरी लगाने के लिए गली में 'आगे बढ़कर मुड़ गया'। उसने आवाज दी-- 'रंग-गु-ला-बी-सा- डा- मी- रंग।' और यहीं पर कहानी भी समाप्त हो जाती है -- उसी फेरी वाले के लटट लटके के साथ-हिसाब।[1]

बेचने वालों की ही शैली से प्रारम्भ होने वाली दूसरी कहानी विनोदशंकर व्यास की 'विधाता' है। देखिए, कहानीकार ने फेरीवाले की शैली के मूल मन्त्र 'चीनी के खिलौने, पैसे में दो, खेल लो, खिला लो, टूट जाय तो ला लो-- पैसे में दो।' सुरीली आवाज में यह कहता हुआ खिलौने वाला एक छोटी-सी घंटी बजा रहा था--[2] से प्रारम्भ करता है। आकर्षण एवं चमत्कार से परिपूर्ण उपर्युक्त आवाज सुनने के बाद जैसे ही बालकों के कानों में घण्टी की ध्वनि सुनायी पड़ी कि फेरी वाला बालकों से घिर ही जाता है और इच्छा न रखते हुए भी माता-पिता को बालकों की हठ पूरी करनी पड़ती है। फलस्वरूप लोक में कितने ही फेरी वालों की जीविका चलती है।

कभी-कभी लोक में ऐसे भी फेरी वाले देखने को मिल जाते हैं, जो सदा एक ही सामान नहीं बेचते और न एक ही गली में प्रतिदिन फेरी लगाते हैं। मिठाई वाला ऐसा ही फेरीवाला है। बहुत ही मीठे स्वरों के साथ वह गलियों में घूमता हुआ कहता --'बच्चों को बहलाने वाला, खिलौनेवाला'।

---

१ पूर्वोक्त -- 'कुमकुम', पृ०४५-४७ ।

२ ,, -- सम्पा० पूर्णानन्द ! 'गल्पपारिजात', पृ०१७८ ।

और जब वह कुछ दिनों बाद पुन: आता है तो बच्चों के लिए नई वस्तु लेकर । वह नई वस्तु क्या है ? `बच्चों को बहलाने वाला मुरलिया वाला` तथा अन्त में मिठाई वाला अपने नाम को सार्थक करता हुआ मिठाई ही लेकर आता है--[१] `बच्चों को बहलाने वाला, मिठाई वाला` । इस प्रकार वह गा-गाकर अपनी अलमस्त शैली में बच्चों की प्रिय वस्तुएं बेचता है और सुख का अनुभव करता है ।

लोकजीवन में मानव इतना व्यस्त रहता है कि उसे कभी-कभी अपना भी ध्यान नहीं रह जाता । ऐसी स्थिति में जब कभी चिर-परिचित फेरी वाले की आवाज सुनायी पड़ जाती है तो जिह्वा को रोक पाना कठिन हो जाता है-- `मिस्त्री इधर-उधर जल छिड़क रहा था । सहसा `गरम गरम चना, ताजी ताजी पकौड़िया` की सुमधुर काकली कानों में बज उठी । मैं पुकार ही तो पड़ा --`ओ पकौड़ी वाले ! चने वाले ! इधर आओ ।` लेकिन सड़क पर तो फेरी वाले रुक जाते हैं, रुक जाते हैं, यही तो लगा रहता है । कहां तक कोई बुलाये ? और कहां तक खरीदे ? पकौड़ी वाला गया कि कुछ ही देर बाद मिठाई वाला--`ताजी जलेबी ताजी जलेबी` कहता हुआ फाटक से निकल जाता है ।[२] ठीक भी है, जब खरीदार ही नहीं बुलाता, तो वह रुक कर क्या करेगा ?

इसी शैली में लिखी गई वीरेश्वरसिंह की `परिवर्तन` शीर्षक कहानी भी उल्लेखनीय है । रामू फेरी लगाने निकला था, वह मोम की चिड़िया बनाता, उनमें लाल, पीला, हरा रंग देता और उन्हें एक डोरे के सहारे अपनी लकड़ी से लटका देता । रंग-बिरंगी झूलती हुई चिड़ियों की पंक्ति में बालकों के मन उछल कर उलझ जाते और रामू ललचाती हुई आवाज से गाता --

`लल्ला की चिरैया हैं, मुन्ना की चिरैया हैं ।
जिसके होवैंगे रुपैया, वही लेगा चिरैया ।।
वाह वाह री चिरैया ।`

चलते-चलते रामू ने आवाज लगायी --` लल्ला की चिरैया हैं मुन्ना की चिरैया हैं ।

---

१ भगवती प्रसाद वाजपेयी : `किशोर` के `मिठाई वाला`, पृ०८१,८२,८७ ।
२ राजा राधिकारमणप्रसाद सिंह : `कुसुमांजलि`-`सुरबाला`, पृ०७,१२ ।

उसकी भरी बेचती आवाज गांव के घरों में गूंज उठी । बच्चे उछल पड़े । कितने ही घरों में 'अम्मा'... ऊं... ऊं' और रोना ठुनकना मच गया । यही तो इस 'लटके की शैली' की विशेषता है । बालक के कान में धुन पड़ी नहीं कि वह बाहर-भीतर एक करने लगता है । रामू कहता जा रहा था --'जिसके होवेंगे लिठिया, वही लेवेगा चिरैया, वाह वाह री चिरैया'-- लटके का पूर्वार्द्ध यदि बालक को ठुनकने के लिए विवश करता है तो उत्तरार्द्ध नि:सन्तान के हृदय में एक टीस और माताओं के हृदय में अनिर्वचनीय सुख उत्पन्न करने में समर्थ है । भला जिसके सन्तान ही न होगी, खेलने वाला ही न होगा, वह क्या करेगा, बेचारा ? एकाएक किसी ने[1] पुकारा --'ओ चिरैया[2] वाले !' और देखते-देखते उसका सब माल बिक[3] गया । श्री वनमाली की 'खिलौना' और आदर्श कुमारी द्वारा लिखित 'दरिद्रता' शीर्षक कहानियां इसी शैली में लिखी गई हैं ।

वार्ता शैली

लोककथाओं में वार्ता शैली का प्रयोग भी देखने को मिलता है। इस शैली के मूल उत्स -- यम-यमी, उर्वशी-पुरूरवा इत्यादि-- वैदिक उपाख्यान ही हैं । वर्तमान समय में संवाद अथवा वार्ता कहानी के मूल तत्वों में परिगणित हैं, परन्तु शैली के रूप में लोककथाओं में इसका प्रयोग बहुत पहले से होता रहा है । प्रस्तुत शैली में सम्पूर्ण कहानी ही वार्ता के रूप में कही[4] जाती है । इस दृष्टि से आचार्य चतुरसेन शास्त्री द्वारा लिखित 'राजपूतनी की रात', शिवरानी देवी की 'समझौता'[5] शीर्षक कहानियां विशेष महत्व की हैं । इन कहानियों की रचना आद्यन्त संवाद शैली में ही की गई है । इस दृष्टि से

---

१ द्रष्टव्य-- सम्पा० रायकृष्णदास : 'नई कहानियां', पृ०१४७-१४८ ।
२ ,, --'हंस', वर्ष४, संख्या १२, सितम्बर१९३४ई०, पृ०३३ ।
३ ,, --'हंस', वर्ष४, संख्या६, मार्च, १९३४ई०, पृ०१३-१४ ।
४ ,, --'दुखवा मैं कासे कहूं', पृ०७७-९६ ।
५ ,, --'नारी हृदय', पृ०१२०,१२४ ।

शिवरानी देवी द्वारा लिखित `लर्का`[1] शीर्षक कहानी भी द्रष्टव्य है ।

<u>पुनरावृत्ति की प्रवृत्ति : वाक्य,शब्द तथा वर्ण</u>

लोककहानियों की अन्यतम विशेषता है -- पुनरावृत्ति की प्रवृत्ति । यद्यपि यह विशेषता मूलरूप से लोकगीतों की है,जिनका सम्बन्ध संगीत से है तथापि लोकमानस की ही विधा कहानी भी है ,अतएव कहानी में भी पुनरावृत्ति की प्रवृत्ति पाई जाती है । इस प्रवृत्ति में वाक्य,शब्द अथवा वर्ण की आवृत्ति के साथ-ही-साथ वस्तुओं की भी आवृत्ति अथवा दुहरावट होती है । गीतों में जिस प्रकार `टेक`का विशेष महत्व होता है,उसी प्रकार कहानी में भावबोधन की स्पष्टता के लिए इनका प्रयोग किया जाता है । जिस प्रकार गीतों के टेक में गीत का केन्द्रीय भाव निहित रहता है, उसी प्रकार वाक्य-विशेष में सम्पूर्ण कहानी का केन्द्रीय भाव (सेण्ट्रल आइडिया) निहित रहता है जिसे कहानीकार कहानी में प्रभाव उत्पन्न करने के लिए, बार-बार दुहराता है ।

इस दृष्टि से प्रेमचन्दयुगीन कहानीकार श्री मोहनलाल महतो `वियोगी`[2] द्वारा लिखित `सूनी गोद` शीर्षक कहानी बहुत सुन्दर बन पड़ी है । शीर्षक से ही कहानी के मूलभूत भाव की एक झलक मिल जाती है और जब -- `उसके बाल था,न बच्चा`- जैसे चरम वाक्य से कहानी आरम्भ होती है,वैसे ही पाठक के समक्ष `माँ `सम्बोधन सुनने के लिए व्याकुल नारी का चित्र उभर कर सामने आ जाता है, जिसका कल्पना-लोक उदास रहता है । `उसके बाल था न बच्चा` यही वाक्य कहानी का मूर्धन्य वाक्य है ,जिसमें कहानी का मूलभूत भाव निहित है और जिसकी आवृत्ति कहानीकार ने कहानी में अनेक बार की है ।`उसके बाल था,न बच्चा`, इसीलिए वह कठकट्ठे के प्राणहीन पुतले को हृदय से लगाये रखती है और उसी की सुरक्षा हेतु अपने प्राणों से हाथ धो बैठती है ।

भारतीय धर्म-साधना के अन्तर्गत देवमन्दिरों में `देवदासी` रखने की व्यापक प्रथा प्रचलित रही है । देवदासी भगवान की मूर्ति के समक्ष

---

१ द्रष्टव्य-- `चाँदनी`,पृ०२ ।

२ ,, -- `रेखा`,पृ०१-५ ।

नृत्य-गान करतीं , उन्हें रिझातीं,प्रसन्न करतीं । उनके अतिरिक्त किसी सहृदय प्राणी के चरणों पर प्रेम-पुष्प चढ़ाना उसके लिए भयंकर पाप था । ऐसा पाप कि जिसका कोई प्रायश्चित्त नहीं । ऐसी देवदासी के हृदय की अकथ कहानी कहने के लिए कहानीकार ने "वह देवदासी थी", जैसे मूर्धन्य वाक्य का सहारा लेकर, वाक्य की पुनरावृत्ति[1] के द्वारा, कहानी में जो प्रभाव उत्पन्न किया है, वह श्लाघनीय है ।

वाक्यों की पुनरावृत्ति के समान ही कहानियों में शब्दों की भी पुनरावृत्ति की प्रवृत्ति पाई जाती है । विवेच्यकालीन कहानियों में प्रभावोत्पादन के लिए शब्दों की पुनरावृत्ति अत्यधिक मात्रा में की गई है -- "क्या क्या आशाएं थीं सब पर पानी फिर गया । क्या-क्या उमंगें थीं, सब सपना हो गया[2] ।... ..."गोया हम बेकार घूमा करते हैं । गोया हमारा दिमाग़ ख़राब है । गोया हम गधे हैं[3] ।" इसी प्रवृत्ति का प्रयोग आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने "जीवन्मृत" शीर्षक कहानी में किया है :-- "पन्द्रह वर्ष का समय एक भयानक स्वप्न की तरह व्यतीत हो गया । एक-एक क्षण, एक-एक श्वास, जीवन की एक-एक घड़ी हजारों बिच्छुओं की दंश वेदना में तड़प तड़प कर व्यतीत हुई है[4] ।" बोलचाल गत इसी प्रवृत्ति का आश्रय लेकर श्री भारतीय ने अपनी कहानी "पड़ोसिन" में जो प्रभाव उत्पन्न किया है, वह द्रष्टव्य है --" जब मेरी गृहिणी जी जब देखो तभी पड़ोसिन की राग अलापती । जी, बड़ी हँसमुख हैं, बड़ी मिलनसार हैं,बड़ी हठीली हैं,बड़ी भलीमानुष हैं, बड़ी उदार--सारांश यह कि सारे गुणों[5] की खान अगर कोई स्त्री हो सकती है,तो वह हमारी पड़ोसिन ही थीं ।"

---

१ "वियोगी" : "रेखा"-"दो स्वप्न",पृ०६०-६५ ।
२ सुदर्शन : "पनघट"-"पुरस्कार",पृ०५१ ।
३ ,, : ,, -"प्रायश्चित की घड़ी",पृ०१३७ ।
४ द्रष्टव्य -- "दुखवा मैं कासे कहूँ",पृ०६७ ।
५ ,, -- "मुण्डमाल",पृ०१५३ ।

इस प्रकार शब्दों की आवृत्ति तो होती ही है,कभी-कभी 'कुण्डलियां' छन्द के ही समान पूर्वकथित शब्द एवं भाव की भी पुनरावृत्ति होती है, जिससे कहानी में विचित्र आनन्द की सृष्टि होती है और पाठक कहानी पढ़ने के लिए विवश हो जाता है । उदाहरणार्थ--

'जहां शोखी वहां शुल्क-- जहां शुल्क वहां नखरा--जहां नखरा वहां नजाकत, जहां नजाकत वहां अदा । जहां अदा, वहां लोच । फिर लोच के झटके में दिल नहीं बचता । आवाज की लोच ने दिल छिनाया। कमर की लोच ने दिल छिनाया । कमर की लोच ने जरा सहारा दिया ।चाल की लोच ने ले चली कि इधर निगाह की लोच देखते ही देखते साफ़ उड़ा दिया[1] ।'

लोकमानस अशिक्षित,अर्द्धशिक्षित या ग्रामीण होने के कारण उसका ज्ञान अपूर्ण रहता है । परिणामत: पर्यायवाची शब्दों के द्वारा अर्थ की आवृत्ति भी हो जाया करती है । आचार्यों की दृष्टि में यह दोष के अन्तर्गत परिगणित किया जाता है, किन्तु यही दोष लोकमानस की शैलीगत विशेषता के अन्तर्गत गुण का स्थान ग्रहण करती है । यथा--'शीला लाचार थी, विवश थी, वह क्या करे[2] ।'

आशीर्वादात्मकता की प्रवृत्ति

लोक-जीवन में प्रचलित आशीर्वादात्मकता की प्रवृत्ति अति व्यापक एवं महत्वपूर्ण भी है । लोककहानीकार लोक में शान्ति की स्थापना कर संसार में सभी को सुखी देखना चाहता है, यह उसकी चिर अभिलाषा है । अपनी अभिलाषा की पूर्ति के लिए उसने लोक-विश्वास के आधार पर ही आशीर्वाद की प्रवृत्ति का आश्रय ग्रहण किया । लोकमानस का विश्वास है कि आशीर्वाद सत्य होता है,इससे अनिष्ट नष्ट होता है और इष्ट की प्राप्ति होती है,जिससे प्राणी सुखी होता है । इस दृष्टि से आशीर्वाद के मूल में लोकमानस की कल्याण-भावना ही निहित रहती है । लोककहानी की ही

---

१ वी०वी० श्रीवास्तव : 'इन्दु',कला६,खण्ड२,किरण १,जुलाई१९१५ई० 'स्वामी जीवदानन्द',पृ०४० ।

२ श्रीमती तारा पाण्डेय :'उत्सर्ग'-'सौन्दर्य',पृ०१०१ ।

भांति प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी कहानी में भी इसी प्रवृत्ति का बहुतायत से प्रयोग किया गया है, जो प्रायः कहानी के मध्य या अन्त में देखने को मिलता है । कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं--

रग्घू की सौतेली विधवा मां पन्ना ने जोर देकर बहू मुलिया को विदा करा लिया । मुलिया मैके से ही जली-भुनी आई थी । उसके मन में यह बात बैठी थी कि मेरा शौहर छाती फाड़ कर काम करे और पन्ना रानी बनी बैठी रहे, उसके लड़के रईसजादे बने घूमें। अतएव चिक-चिक खिचखिच मचाने लगी तथा अलग होने की ज़िद करने लगी । पारिवारिक जीवन अशान्त हो गया । उसे शान्त करने के लिए रग्घू ने हरसम्भव प्रयत्न किया परन्तु मुलिया के आगे एक न चली । एक दिन रग्घू और मुलिया की बातचीत सुनकर पन्ना से न रहा गया । उसने कह ही तो दिया --'जब वह अलग होने पर तुली हुई है तो फिर उसे बांधकर जबरदस्ती क्यों मिलाये रखना चाहते हो ? तुम उसे लेकर रहो हमारे भगवान मालिक हैं ।' यह सब होते हुए भी वह सौतेले पुत्र रग्घू के उपकारों को न भूल सकी । यही कारण है कि वह अपने प्राणों को दे सकती है,किन्तु उसका 'अनभल' नहीं देख सकती । उसकी तो एकमात्र यही अभिलाषा है--'भगवान करें तुम दूधों नहाओ,पूतों फलो । मरते दम तक यही आशीष मेरे रोयें रोयें से निकलती रहेगी ।'[1]

इसी प्रकार विधवा फूलमती की भले ही कुछ न चलती हो, भले ही उसे अनेक कमाऊ पुत्रों के रहते हुए भी दिन-रात खटना पड़े,परन्तु उसकी आत्मा से[2] यही आशीर्वाद निकलता है--'जाओ बेटी भगवान तुम्हारा सोहाग अमर करें ।'[3] .... 'तुम चिर सौभाग्यवती हो सुखी रहो यही मेरा आशीर्वाद है ।' इसी प्रकार सजनसिंह ने सुभागी के माथे पर हाथ रखकर कहा --'बेटी, तुम्हारा सुहाग अमर हो । तुमने मेरी बात रख ली । सुभागा

---

१ प्रेमचन्द :'मानसरोवर' भाग१ -'अलग्योझा' ,पृ०११ ।
२ ,, : ,, ,, -'बेटों वाली विधवा' ,पृ०७५ ।
३ ईश्वरीप्रसाद शर्मा :'गल्पमाला' -'निःस्वार्थ प्रेम' ,पृ०२८ ।

भाग्यशाली संसार में और कौन होगा[1]।' इसी प्रकार 'विछुड़ा' शीर्षक कहानी में पति-भक्ति के आदर्श की स्थापना पर प्रत्यक्ष रूप से बल देते हुए ईश्वर से प्रार्थना करती हुई, आशीर्वादात्मकता से कथा का अन्त करते हुए लेखिका ने कहा है--'ईश्वर करे, हमारी पाठिकाओं में भी इसी प्रकार की भक्ति और पवित्र भाव उत्पन्न हों[2]।' जो मूलतः लोकप्रवृत्ति के अनुकूल है ।

अपने स्नेही के उपकारों के प्रति कृतज्ञ कृतज्ञताज्ञापन हेतु भी इसी प्रवृत्ति का प्रयोग किया गया है । अनुसूया अपनी सखी अन्नपूर्णा के पति डाक्टर साहब के सफल आपरेशन से अपने पति के नेत्रों की खोयी हुई ज्योति पुनः वापस देख, उल्लसित मन से, अपनी सतीत्व की सखी देती हुई कहती है --'भगवान से यही प्रार्थना है कि मेरा लाल (सखी का पुत्र अरुण) राजराजेश्वर हो । अगर सती के शब्दों में कुछ असर रह गया है तो यह अवश्य होगा[3]।'

यह प्रवृत्ति लोक में इतनी अधिक व्यापक है कि चाहे स्त्री हो या पुरुष, साधु हो या गृहस्थ, विधवा हो या सधवा, राजा हो या रंक, कुलवधू हो या वारांगना-- जैसे ही किसी के प्रति दया-भाव से प्रेरित होकर उचित व्यवहार किया कि वह ईश्वर से प्रार्थना करते हुए वह आशीर्वाद अवश्य देता है और यह मानकर कि निश्चय ही उसका आशीर्वाद सत्य होगा । समाज के द्वारा प्रताड़ित घृणित जीवनयापन करने वाली वेश्या के प्रति सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करने के कारण, उसकी आत्मा से भी शुभकामना के लिए आशीर्वादात्मक शब्द --'बाबू जी, यह नहीं सोचा था कि दुनिया में अभी दया, हमदर्दी और इन्सानियत बाकी है । भगवान आपका भला ही करें[4]।'-- निकल पड़े तो आश्चर्य क्या ?

---

१ द्रष्टव्य--'मानसरोवर' भाग१ -'सुभागी', पृ०२५८ ।

२ हरिकाकुमारी देवी : 'गल्पविनोद'-'विछुड़ा', पृ० ७ ।

३ प्रागनारायण श्रीवास्तव : 'इन्दु' कला८, किरण२, फरवरी१६१७- 'आशीर्वाद' पृ०६६।७०

४ भगवतीचरण वर्मा : 'इन्स्टालमैण्ट'-'एक अनुभव', पृ०७५ ।

प्रसिद्ध उक्ति : कथन की पुष्टि

अपनी बात कहकर लोकोक्ति, दोहा, शेर, कोई नीति-वाक्य अथवा कवि की प्रसिद्ध उक्ति द्वारा, उसकी पुष्टि करने की प्रवृत्ति भी लोक की अत्यधिक व्यापक प्रवृत्ति है । इस प्रवृत्ति के प्रयोग द्वारा कहानीकारों ने विवेच्ययुगीन हिन्दी कहानी को लोककहानी के समीप लाने में महत्वपूर्ण योगदान किया है । इस प्रवृत्ति का सुन्दर उदाहरण प्रेमचन्द द्वारा लिखित `सुभागी` शीर्षक कहानी में देखने को मिलता है -- तुलसी महतो अपनी पुत्री सुभागी को [पुत्रवत्] स्नेह करते थे । वह ग्यारह वर्ष की अल्पायु में ही इतनी अधिक चतुर तथा खेती-बारी के काम में ऐसी निपुण हो गई थी कि उसे देखकर कोई भी व्यक्ति आश्चर्यचकित हो सकता था । इसके विपरीत सुभागी का भाई रामू था पूरा काठ का उल्लू । विधि का विधान, सुभागी इसी अवस्था में विधवा हो गई । यौवनावस्था में लोगों के लाख कहने पर भी वह `घर नहीं करना चाहती`, वरन् आत्मविश्वासपूर्ण शब्दों में -- `अब मेरा बात दुबारा देखना तो मेरा सिर काट लेना... अगर मैं अपने बाप की बेटी हूँगी, तो बात की भी पक्की हूँगी ।` -- कहकर सभी का मुँह बन्द कर देती है । लेकिन रामू और उसकी धर्मपत्नी का मुँह कौन बन्द करे ? वे दोनों आठ दिन उसके कानों में कुबड़ निकालते रहते । प्रतिदिन के किचकिच का परिणाम हुआ अलग्योझा । इस रूप में जहाँ एक ओर रामू ने धर्मपत्नी के साथ अलग घर बसाकर मानो `पितृ-ऋण` से मोक्ष पा लिया, वहीं दूसरी ओर बाल-विधवा सुभागी हाड़ तोड़कर काम करती और माता-पिता की तहेदिल से सेवा । फलस्वरूप तुलसी महतो को भी सोचना पड़ा कि पुत्र को रत्न समझा था और पुत्री को पूर्व जन्म के पापों का दण्ड, लेकिन रत्न कितना कठोर निकला और यह दण्ड कितना मंगलमय । अन्ततः उन्हें जीवन के प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर कहना ही पड़ा, `भगवान ! ऐसा बेटा चाहे बैरी को भी न दे -- `लड़के से लड़की भली, जो कुलवंती होय ।`

१ द्रष्टव्य -- `मानसरोवर` भाग १, पृ० २४१-२५४ ।

इस दृष्टि से प्रेमचन्द की 'बासी भात में खुदा का साझा'[1], 'विस्मृति'[2], 'पछतावा'[3], 'आगापीछा'[4], सुदर्शन की 'बलिदान'[5], डा० धनीराम 'प्रेम' की 'मातृमन्दिर'[6], सुमित्रानन्दन पन्त की 'दम्पति'[7] तथा राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह की 'सुरबाला'[8] इत्यादि शीर्षक कहानियां विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं ।

लोक प्रचलित बोलचाल के लहजे

लोकमानस की सबसे बड़ी विशेषता सहज विश्वसनीयता की है । लोक-मानस ईश्वर में विश्वास रखता है और भाग्य पर भरोसा । पाप और पुण्य की भावना हर समय उसके मन में बनी रहती है । संसार की निस्सारता का उसे ज्ञान है, किन्तु आत्म-गौरव की भावना उसका प्राण है । यही कारण है कि नित्यप्रति बोलचाल की भाषा में भी वह इन्हीं विश्वासों और भावनाओं से परिपूर्ण तथा परिपुष्ट एक विशेष लहजे में अपनी अभिव्यक्ति करता है । ऐसे लोकप्रचलित बोलचाल के लहजे प्रेमचन्दयुगीन कहानी में यत्र-तत्र सर्वत्र बिखरे पड़े हैं । इन लहजों से शैली में जान आ गई है और भाषा में चमत्कार । विवेच्यकालीन कहानीकारों की शैली को लोकशैली के निकट लाने का श्रेय इन बोलचाल के लहजों को भी है । ऐसे वाक्यों को पढ़कर पाठक आत्मीयता का अनुभव कर, लेखक का सुख-दुःख अपना ही सुख-दुःख मान लेता है । यही तो लोक-शैली की विशेषता है।

---

१ द्रष्टव्य--'मानसरोवर भाग२', पृ०२०२ ।
२ ,, -- ,, भाग ७', पृ०२५१ ।
३ ,, -- ,, भाग ६', पृ०२३४ ।
४ ,, -- ,, भाग४, पृ० ११३ ।
५ ,, -- 'तीर्थयात्रा', पृ०१०८ ।
६ ,, -- 'वल्लरी', पृ० ७१ ।
७ ,, --'पांच कहानियां', पृ०६८ ।
८ ,, --'कुसुमांजलि', पृ०११ ।

कुछ उदाहरण उपर्युक्त कथन की पुष्टि में प्रस्तुत किए जा रहे हैं--

`मर्यादा की वेदी` शीर्षक कहानी में प्रेमचन्द ने विवाह के वातावरण का जो चित्रण किया है, उसका अन्तिम वाक्य --`बड़े भाग्य से ऐसी बातें सुनने में आती हैं`- वस्तुत: लोक में प्रचलित बोलचाल का उदाहरण ही है, जिससे कार्याधिक्य से फ़ल्लायी, परजों की लगन और स्वर्णमुद्राओं की लूट के बावजूद भी रानी के हृदय के सुख एवं सन्तोष की एक फलक मिल जाती है।[1]

भारतीय सती नारी अपने स्वामी को पाकर सन्तोष का अनुभव करती है और अपने भाग्य की सराहना करते हुए कहती है---`मेरे धन्य भाग कि तुम जैसा स्वामी मिला`[2]- जो वर्तमान युग में भी लोकजीवन में प्रचलित भारतीय नारी-भावना का प्रतीक एवं जनप्रचलित उदाहरण भी है। इसी प्रकार--

`समय का फेर है, नहीं तो ऐसों को उससे ऐसा प्रस्ताव करने का साहस ही कैसे होता।`[3]

` एक दिन यह थे, एक दिन यह है कि आप लोगों की गुलामी कर रहे हैं। दिनों का फेर है।`[4]

` जो अपने हैं, वे भी न पूछें तो भी अपने ही रहते हैं। मेरा धरम मेरे साथ है, उनका धरम उनके साथ है। मर जाऊंगी तो क्या छाती पर लाद कर ले जाऊंगी ?`[5]

` न कोई साथ लाया है, न साथ ले जायगा`[6]।

`हंह! अब मैं इसकी चिन्ता कहां तक करूं ? जहां जी चाहे चला जाय, जैसा किया है, वैसा भोगे।`[7]

`और मैं तुम्हें क्या समझाऊं! तुम स्वयं समझदार हो`[8]- इत्यादि विभिन्न कहानियों में प्रयुक्त बोलचाल के उदाहरण ही हैं।

---

१ द्रष्टव्य--`मानसरोवर भाग` ६, पृ०६६
२ ,, -- ,, भाग ४, पृ०१५१
३ ,, -- ,, भाग ४, पृ०१६८
४ ,, -- ,, ,, पृ०२८
५ ,, -- ,, ,,१ पृ०१९६
६ ,, -- ,, ,,२ पृ०४२
७ द्रष्टव्य- मानस०भाग२, पृ०१८६
८ ,, - ,, ,, ६, पृ०१२

(४) अलंकार योजना

सामान्य विवेचन

अलंकारों की लोकपरक विवेचना करते हुए डा० सत्येन्द्र का कथन है --"अलंकार-विधान का समस्त रूप ही लोकवार्ता से सम्बन्धित है, बिना उस तत्व के अलंकारों की अलंकारिकता ही समाप्त हो जायगी और काव्य की शोभा में कमी आ जायगी ।[1]" इस कथन से दो बातें स्पष्ट होती हैं-- एक तो यह कि अलंकारों के मूल में लोकवार्ता की स्थिति रहती है और दूसरे यह कि अलंकार कविता की वस्तु है । यह ठीक है कि अलंकार कविता की वस्तु है, इसीलिए आचार्यों ने अलंकार का विवेचन काव्य के सम्बन्ध में ही किया है और गद्यात्मक विधा से उसकी संगति नहीं बैठती- ऐसा माना है । किन्तु यह सिद्धान्त भ्रामक है । पूर्वी और पाश्चात्य, प्राचीन एवं अर्वाचीन सभी विद्वानों ने अलंकारों की उपयोगिता गद्य क्षेत्र में भी स्वीकार की है, क्योंकि भाषा का अध्ययन करने वाले विद्वानों ने बताया है कि हम अपने दिन-प्रतिदिन के व्यवहार में जिस भाषा का व्यवहार करते हैं, उस भाषा का निर्माण ही उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, उदाहरण आदि सादृश्यमूलक अलंकारों के आधार पर हुआ है । श्री हर्बर्ट रीड का तो यहाँ तक कहना है कि चाहे साधारण भाषा हो अथवा काव्यात्मक, उसके शब्दों का अर्थ के साथ संयोजन रूपक निर्माण की कलात्मक क्रिया द्वारा ही सम्भव हो सका है[2] । रूपक निर्माण की प्रक्रिया है, जिसके द्वारा भाषा का निर्माण होता है और जब भाषा का निर्माण ही रूपक, उपमा आदि के आधार पर हुआ है, तब उनके सम्यक् प्रयोग से भाषा में सौन्दर्य का आना भी स्वाभाविक है । इतना ही नहीं, वरन् उनके माध्यम से अभिव्यक्ति में स्पष्टता आ जाने के कारण कथ्य वस्तु का दुरूपंगम होना और भी सरल हो जाता है । इसलिए गद्यात्मक विधाओं में भी अलंकारों की महत्ता है और सदा रहेगी ।

---

१ द्रष्टव्य --"मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोकतात्त्विक अध्ययन", पृ०५८२

२ डा० श्याम शर्मा : "आधुनिक हिन्दी गद्य शैली का विकास" से उद्धृत, पृ०११८ ।

गद्यात्मक-विधा में अलंकारों के प्रयोग के कारणों पर विचार करते हुए, ध्यान देने योग्य बात यह भी है कि जिस समय आचार्य द्विवेदी भाषा का संस्कार कर रहे थे, उस समय हिन्दी भाषा पर बहुमुखी प्रभाव पड़ रहा था और युग की परिस्थितियों के अनुकूल नैतिकता तथा सुधारवादी दृष्टिकोण के कारण भाषा नीरस तथा शुष्क होती जा रही थी । भाषा की उस नीरसता, शुष्कता एवं जड़ता को एक ओर द्विवेदी-युगीन छायावादी कवियों ने तथा दूसरी ओर उर्दू से हिन्दी में आने वाले कथाकारों ने बड़ी चतुराई के साथ दूर किया । छायावादी काव्य की प्रमुख प्रवृत्ति अमूर्त को रूप प्रदान करने की रही है, जिसकी सफलता के लिए छायावादी कवियों को अलंकारों का सहारा लेना आवश्यक हो गया । इस प्रवृत्ति के प्रभाव से कथा-साहित्य भी अछूता न रह सका । कथासाहित्य में जो काव्यमय अलंकृत भाषा मिलती है, उसका यही कारण है । जयशंकर 'प्रसाद', सुमित्रानन्दन पन्त, महादेवी वर्मा, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' तथा चण्डीप्रसाद 'हृदयेश' आदि सफल कथाकारों का गद्य इसी श्रेणी का है । संस्कृत की अलंकृत काव्यमयी आख्यायिकाओं का अप्रत्यक्ष प्रभाव भी इसका कारण माना जा सकता है ।

इस प्रकार अमूर्त को रूप देने की प्रवृत्ति विवेच्ययुगीन युग में दो धाराओं में विभक्त हो जाता है-- एक तो उर्दू से आने वाले प्रेमचन्द जैसे अनेक सफल कथाकार, जिन्होंने मात्र भावों को स्पष्ट से स्पष्टतर बनाने के लिए ही अलंकारों का प्रयोग किया है, दूसरे उपर्युक्त छायावादी कथाकार जिन्होंने साहित्यिक कलात्मकता की दृष्टि से अलंकारों का प्रयोग किया है । ध्यान देने योग्य बात यह है कि ऐसा करने में भी ये कथाकार पूर्णरूप से प्रथम वर्ग के कथाकारों की स्पष्ट भावाभिव्यक्ति हेतु अलंकारों के प्रयोग की प्रवृत्ति से अपने को एकदम अलग नहीं कर सके हैं । अतएव प्रेमचन्द युगीन हिन्दी कहानी में लोकतत्व का अन्वेषण करते समय अलंकारों का विवेचन भी आवश्यक हो जाता है ।

इस दृष्टि से विचार करने पर ज्ञात होता है कि प्रेमचन्द-युगीन कहानीकारों ने उपमा,उत्प्रेक्षा,उदाहरण और रूपक जैसे सादृश्यमूलक अलंकारों काही मुख्यरूप से प्रयोग किया है । स्वयं प्रेमचन्द ने भी भावों को स्पष्ट करने के लिए तथा उन्हें साकार रूप देने के लिए उपमा आदि अलंकारों का सर्वाधिक प्रयोग किया है । ये उपमान उन्होंने बहुधा ग्रामीण जीवन से लिए हैं, जो ग्रामीण सौन्दर्य भावना के प्रतीक हैं ।

प्रेमचन्द संस्थान के कहानीकारों और विशेषकर प्रेमचन्द की एक अन्यतम विशेषता यह भी रही है कि मुहावरों के प्रयोग में अधिकांशत: उदाहरणअलंकार की सहायता ली गई है । उपमा और उत्प्रेक्षा का भी प्रयोग किया गया है । इतना ही नहीं,बल्कि शब्दावली के साथ-साथ समस्त क्रियाएं भी ग्राम्य जीवन से ली गई हैं । इन अलंकारों के प्रयोग में प्रमुखता स्वाभाविकता की ही है ।

इस दृष्टि से स्वाभाविकता तथा स्पष्ट भावाभिव्यक्ति के प्रयास में अलंकार प्रमुख साधन हैं[१] । जिसका प्रयोग प्राचीनकाल से ही मानव ने अपने आरम्भिक भाषा के साथ-साथ भावों की अभिव्यक्ति के लिए किया होगा । आदिम मानस या लोकमानस तथा शिशु मानस के अध्येताओं ने भी इसी बात को स्वीकार करते हुए कहा है कि आदिम मानस या लोकवर्ग जब किसी अमूर्त रूप की अभिव्यक्ति नहीं करा पाता तभी वह उपमानों का सहारा लेता है । इसीलिए उसे जब नीले रंग का बोध कराना होता है तो वह आसमान के समान नीला अर्थात् नीले रंग के समान वह आसमान को, जिससे सब परिचित हैं, बताता है । इसी प्रकार जब उसे सफेद अथवा लाल रंग की अभिव्यक्ति करनी होती है, तब वह जल के समान सफेद और खून जैसा लाल कहता है । इस प्रकार स्पष्ट है कि वह उपमानों के रूप में उन्हीं वस्तुओं को ग्रहण करता है, जिनसे सभी परिचित हैं और समझ सकते हैं ।

---

१ "सिमलीज़ आर यूज्ड फार इण्ट्रोड्यूसिंग सिम्प्लीसिटी एण्ड विवड्नेस आफ एक्सप्रेशन ।" -- पराडकर, एस०डी० : "सिमलीज़ इन मनुस्मृति",पृ०१।

इस रूप में वह श्रोता को परिचित वस्तु से तुलना कर बताता है कि उसके मन में कल्पित वस्तु का रूप-रंग,आकार-प्रकार कैसा है ? इसी आधार पर गौंड[1] आदि विद्वानों ने उपमान को विकसित मस्तिष्क की उपज न मानकर आदिम मानस की उपज माना है । इस प्रकार जितना ही आदिम या असभ्य वर्ग होगा, वह उतना ही अधिक अमूर्त वस्तुओं या विषयों का बोध कराने के लिए उपमानों का प्रयोग करेगा ।

'उपमा एक ऐसा अलंकार है,जिसकी उपयोगिता न केवल पढ़े-लिखे लोगों को होती है,वरन् नित्य की साधारण बातचीत में भी बिना उपमा के काम नहीं चलता । उच्च श्रेणी के लोग जिन्हें हम विदग्ध नागरिक या तरबियत याफ़्ता कहते हैं,उनके बीच तो इस उपमा की बड़ी-बड़ी बारीकियां निकाली गई हैं,किन्तु ग्रामीण और घरेलू बोलचाल में भी इसका अद्भुत प्रयोग किया जाता है, जैसे (तोर बैटौना साँड़)-- (लम्बा जैसे खजूर)-- (फाला जैसे बाल) इत्यादि । अंग्रेजी में इस प्रकार के कथन को 'सिमिली' कहते हैं और यह साहित्य की पहिली सीढ़ी है ।'[2] उपमा के प्रयोग को देखकर ऐसा लगता है कि लोक-वर्ग बिना उपमानों के भावों की स्पष्ट अभिव्यक्ति ही नहीं,कर पावेगा । उदाहरणार्थ जब बालकों को किसी विशालकाय वस्तु की व्यंजना करानी होती है तो वह यही कहता है कि वह इतना बड़ा है,जैसे आसमान । इसी प्रकार अधिक संख्या का बोध कराने के लिए आसमान के तारों को उपमानरूप में प्रयुक्त कर अपने भावों को अभिव्यक्त करता है । लम्बाई,चौड़ाई,गहराई अथवा ऊंचाई आदि को नापने के लिए वह गज,फीट इंच या मीटर के स्थान पर चार हाथ लम्बा, तीन हाथ चौड़ा, दस हाथ गहरा अथवा दो अंगुल मोटा इत्यादि ही कहता है । यह प्रवृत्ति वर्तमान समय में भी देखी जा सकती है । यही बात रंग,ध्वनि और गंध आदि के विषय में भी कही जा सकती है ।

---

१ द्रष्टव्य--'रिमार्क्स आन दि सिमलीज़ इन संस्कृत लिट्रेचर', गौंड,जे०पी० पृ०१२ ।

२ 'भट्ट निबन्धावली',भाग१, 'उपमा', पृ०५२
सम्पा० देवीदत्त शुक्ल, धनञ्जय भट्ट, ले०- बालकृष्ण भट्ट ।

इस प्रकार स्पष्टरूप से कहा जा सकता है कि जब कभी वक्ता अपने भावों की स्पष्ट अभिव्यक्ति में अपने को असमर्थ पाता है, तो सादृश्यमूलक अलंकारों के माध्यम से उपमानों का आश्रय ग्रहण करता है। भाषा विज्ञान वेत्ता जेस्पर्सन[१] ने भी इस बात को स्वीकार करते हुए कहा है कि आदिम मानव तथा सामान्य जनवर्ग पूर्णरूप से सादृश्यता के आधार पर ही सोचता है। आदिवासियों की भाषा में उपमानों की तथा तुलना करने की विशेषता अत्यधिक मात्रा में पायी जाती है। उनके पास स्पष्ट भावाभिव्यक्ति के साधनों में से एक यह भी है, जिसके आधार पर अपने विचार दूसरों तक पहुंचाता है। उसके द्वारा प्रयुक्त उपमानों में कलात्मकता की खोज करना बुद्धि का दिवालियापन ही कहा जायगा। यह भ्रम इसीलिए उत्पन्न होता है कि आदिम असभ्य मानव के समान ही अत्यधिक शिष्ट समुदाय के लोग भी भावों की स्पष्ट से स्पष्टतर अभिव्यक्ति के लिए उपमानों का प्रयोग अवश्य करते हैं, जिसमें कभी-कभी कलात्मकता की दृष्टि भी विद्यमान रहती है। इस सम्बन्ध में ध्यान देने योग्य बात यह है कि यद्यपि ग्रामीण, असभ्य और शिष्ट वर्ग दोनों ही उपमानों का उसी समय प्रयोग करते हैं, जब किसी स्थिति विशेष या वस्तुओं को उसी रूप में व्यक्त करने में अपने को असमर्थ पाते हैं। ऐसी स्थिति में उसी से मिलती-जुलती घटना या वस्तुओं का वर्णन कर अपने भावों की स्पष्ट अभिव्यक्ति के लिए उपमानों का प्रयोग करते हैं, तथापि दोनों के उपमानों में अन्तर आ जाता है।

<u>शिष्ट साहित्य एवं लोक साहित्य में प्रयुक्त अलंकारों में अन्तर</u>

शिष्ट साहित्य एवं लोक साहित्य दोनों में ही अलंकारों का प्रयोग किया जाता है, किन्तु जहां शिष्ट साहित्य में अलंकारों का प्रयोग प्रयत्नपूर्वक एवं कलात्मक दृष्टि रखने के कारण चमत्कारिक गूढ़ार्थ व्यंजक तथा संकर जैसे अलंकारों का प्रयोग होता है, वहीं लोक साहित्य में भावों की स्पष्ट अभिव्यक्ति करते समय सादृश्यमूलक अलंकार-उपमा, उत्प्रेक्षा तथा उदाहरण आदि-स्वत: आ जाते हैं।

---

१ द्रष्टव्य -- जेस्पर्सन : "लैंग्वेज", पृ० ४३२ ।

शिष्ट साहित्य में प्रयुक्त अलंकारों के मूल में मुनि मानस रहता है, अत: वे बौद्धिक होते हैं और उनमें कलात्मकता की प्रधानता होती है । इसके विपरीत लोक साहित्य में प्रयुक्त अलंकारों के मूल में लोक मानस का योग रहने के कारण भावाभिव्यक्ति की दृष्टि ही प्रधान रहती है, अत: चमत्कार के स्थान पर उनमें एक विचित्र प्रकार की सरलता, स्वाभाविकता, नवीनता तथा मौलिकता विद्यमान रहती है, जिसका शिष्ट साहित्य में प्रयुक्त अलंकारों में अभाव पाया जाता है । यह बात उपमानों के प्रयोग के आधार पर स्पष्ट की जा सकती है ।

उपमा एक ऐसा अलंकार है जिसका प्रयोग ग्रामीण एवं शिष्ट दोनों ही वर्ग में होता है और लोक साहित्य तथा शिष्ट साहित्य दोनों में ही उसका प्रयोग देखा जा सकता है । यह होते हुए भी दोनों ही साहित्यों में प्रयुक्त उपमानों में महान अन्तर होता है । लोक साहित्य एवं लोक जीवन में प्रयुक्त उपमानों में कृत्रिमता नहीं होती, अतएव वे अधिक प्रभावशाली होते हैं और शिष्ट साहित्य में अलंकृत रूप में प्रस्तुत किए जाने के कारण उपमान सामान्य जीवन से सम्बद्ध नहीं होते । यही कारण है कि वे रूढ़ हो जाते हैं और उनमें बनावटीपन की झलक मिलने लगती है, फलस्वरूप वे आकर्षणहीन हो जाते हैं । ऐसी स्थिति में इन उपमानों को समझने के लिए विकसित मस्तिष्क की आवश्यकता पड़ती है । उदाहरण के लिए--शिष्ट साहित्य में नेत्रों की उपमा मत्स्य, खंजन और चकोर से दी गई है । ये सभी उपमाएं नेत्रों के आकार पर आधारित नहीं हैं । इनमें गुण और उनकी क्रियाएं भी लक्षित हैं । किन्तु लोक कथावाचक और लोक गायक को प्रयासपूर्वक उपमानों के अन्वेषण की आवश्यकता नहीं होती और न तो उसके पास इतना समय ही होता है । उसकी दृष्टि तो उपमेय की आकृति-साम्य और स्पष्ट अभिव्यक्ति पर ही टिकी रहती है । अतएव वे उपमान चाहे प्रकृति से सम्बन्धित हों अथवा उसके जीवन में नित्यप्रति के प्रयोग में आने वाली वस्तुएं हों, इस बात की उसे तनिक भी चिन्ता नहीं होती । देखिए किसी स्त्री का पति परदेश जा रहा है । वियोग की भावी कल्पना से दुखी, अपने प्रेम के लोभी प्रियतम के सौन्दर्य का वर्णन करती हुई कहती है :--

'आंखि तोरि अहै ए ढोलनिया, अमवा के फरिया ।
नाक तोरि अहै ए ढोलनिया, सुगवा के ठोरवा ।।

अवरू तोर रूप ए लोम्बिया, कही-कही मोछिया ।
बांहि तोर जैइए लोम्बिया , सोवरन सोंटवा ।।

इन पंक्तियों में आंख के लिए आम की फांक, नाक के लिए तोता के नाक के अग्र भाग के समान नुकीली तथा बांह के लिए सोने की लाठी के समान सुन्दर, आदि उपमान रूप में प्रयुक्त हुए हैं, जो सुने सुनाए शास्त्रीय उपमानों से भिन्न देहाती दुनियां से सम्बन्ध रखने वाले तथा देहाती सौन्दर्य का बोधन कराने में समर्थ हैं ।

इसी प्रकार लोक साहित्य में,जहां अमूर्त के लिए भी, स्थूल वस्तुओं से ही उपमा दी जाती है, वहीं शिष्ट साहित्य में अमूर्त की उपमा अमूर्त से भी दी जाती है, फलस्वरूप भावाभिव्यक्ति में सहजता के स्थान पर और अधिक क्लिष्टता आ जाती है । ऐसे उपमान लोक साहित्य में ढूंढने से भी न मिलेंगे । उपमा ही नहीं बल्कि अतिशयता के प्रसंग में भी ये उपमान स्थूल ही ग्रहण किये जाते हैं । लोक साहित्य में प्रयुक्त उपमानों की यह स्थूलता लोकमानस के तत्व के रूप में गृहीत है ।

<u>प्रेमचन्दयुगीन कहानी में प्रयुक्त उपमान--</u>

प्रेमचन्दयुगीन कहानीकार जनजीवन से सम्बद्ध थे । उनके द्वारा लिखित कहानियां किसी वर्ग विशेष के लिए नहीं थीं । उनकी दृष्टि में तो समग्र जनवर्ग था, अतएव भावों को स्पष्ट करने के लिए उन्होंने बहुधा ग्रामीण जीवन से ही उपमानों का चयन किया है । विवेच्य युगीन कहानी में प्रयुक्त उपमानों को तीन वर्गों में विभक्त किया गया है--

(अ) प्राकृतिक वर्ग
(ब) पशु-पक्षी वर्ग
(स) मानव-जीवन से सम्बद्ध वर्ग

<u>(अ) प्राकृतिक वर्ग</u>

लोक मनोविज्ञान वेत्ताओं के अनुसार लोकमानस की यह विशेषता रही है कि वह प्रकृति को अपने ही समान समझता था । प्रकृति तो उसकी सहचरी थी । अतः वह अपने और प्रकृति के मध्य, किसी भी प्रकार की मध्यस्थ

ऐसा सोचने में, स्वयं को असमर्थ पाता था । यही कारण है कि वह अपने ही समान प्रकृति को हंसते, गाते तथा रोते आदि विभिन्न रूपों में देखता था । फलस्वरूप उससे अपनी समानता या किसी सजीव वस्तु की तुलना भी नि:संकोच भाव से करता था । लोकमानस की यह विशेषता वर्तमान समय के आदिमवासियों में भी देखी जा सकती है । भले ही मुनि मानस ने इस प्रवृत्ति की उपेक्षा की हो, किन्तु लोक मानस की सहजात्वृत्ति होने के कारण वह इसकी उपेक्षा नहीं कर सका । यही कारण है कि जिस प्रकार प्राकृतिक ध्वनियों के आधार पर शब्दों का निर्माण कर उसने अपने भावों की अभिव्यक्ति का प्रयास किया, उसी प्रकार भावाभिव्यक्ति में सरलता का अनुभव कर अपने भावों को सुनने वाले तक पहुंचाने के लिए प्राकृतिक वस्तुओं को उपमान के रूप में भी प्रयुक्त किया । इस प्रकार लोक कथककड़ों, लोकगायकों आदि ने अपने हृदय की भावनाओं से प्रकृति का सम्बन्ध स्थापित कर विभिन्न प्रकार के प्राकृतिक उपमानों का प्रयोग अपनी भाषा और साहित्य में किया । प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी कहानी में उपमान रूप में ग्रहण की गई प्राकृतिक वस्तुएं इस प्रकार हैं :—

सूर्य, पहाड़, चट्टान, बादल, समुद्र, नदी, तालाब, पाला, लू, कुहरा, आंधी, हवा, धूल इत्यादि । अवधेय है कि ध्वनि, रूप, रंग आदि की समानता के आधार पर ही उपमान रूप में इनका प्रयोग किया गया है, उदाहरणार्थ —

सूर्य — विवेच्यकालीन कहानियों में सूर्य का उपमान रूप में अनेक बार प्रयोग हुआ है । सूर्य की से मुख की तुलना में मुखमंडल की गोलाई, प्रकाश और कान्ति के साथ-साथ कहीं लाल एवं पीत-वर्णता के और कहीं ज्ञान के प्रकाश के रूप में उपमान प्रयुक्त हुआ है । यथा -

'मुख डूबते हुए सूर्य की भांति लाल हो रहा था ।'[2]

'डूबे हुए सूर्य की भांति बुढ़ी का मुख-मंडल पीला है ।'[3]

'पढ़ी पत्नी का वादा सुनकर केशव को अपना हृदय इस तरह बैठता हुआ, मालूम हुआ जैसे सूर्य का अस्त होता है ।'[4]

१- कृष्णलाल : प्रस्तुत प्रबन्ध का अध्याय चार - 'लोकशब्दावली' ।
२- प्रेमचन्द : मानसरोवर, भा० ६ 'शाप', पृ० ६८
३- ,, ,, भाग ७ 'त्रिमूर्ति', पृ० २४४
४- ,, ,, भाग ५ 'कौशल का कर्म', पृ० २३०

इसी प्रकार ढलते हुए यौवन के लिए भी सूर्य का उपमान रूप में प्रयोग मिलता है--[1]

'ढलते हुए सूर्य में मध्याह्न का-सा प्रकाश आ सकता है ?'

इसी होते समय-'राजनन्दिनी का चेहरा सूर्य की भाँति प्रकाशमान था ..... उसी का मुंह आग में यों चमकता था, जैसे सवेरे की ललाई में सूर्य चमकता है।'[2]

पहाड़

इसी प्रकार पहाड़ को पार करने में अधिक समय लगता है और कठिनाई भी होती है। इसी आधार पर पहाड़ का उपमान रूप में भाव को स्पष्ट करने के लिए प्रयोग कहानीकारों ने भी किया है। दु:खमय जीवन तथा दु:ख के दिन भी बड़े कष्ट से व्यतीत होते हैं और वह समय काटे नहीं कटता। कभी-कभी सुख की स्थिति में भी यदि प्रतीक्षा करनी पड़ती है तो भी समय की अधिकता इसी से व्यंजित की गई है --

'वह दिन मेरे लिए पहाड़ हो गया'[3]।

'पचास वर्ष के चिर सहवास के बाद अब यह एकान्त जीवन उसके लिए पहाड़ हो गया'[4]।

'उसका यौवन रूप-रंग कुछ नहीं रहा। अब रहा थोड़ा-सा पैसा और घड़ा-सा पेट और पहाड़ से आगे वाले दिन।'[5]

इसी प्रकार विभिन्न प्राकृतिक उपमानों का प्रयोग भी कहानियों में उपलब्ध होता है, जिसका संक्षिप्त उल्लेख आगे तालिका में किया जायगा।

प्राकृतिक जगत के समान ही वनस्पति जगत से भी अनेक उपमान ग्रहण किए गए हैं। लोक-मानस अति प्राचीनकाल से ही प्रकृतिप्रदत्त वस्तुओं का उपयोग शृंगार-प्रसाधन के रूप में करता आ रहा है। आदिम जातियों में आज भी कौड़ी, सीपी तथा अस्थियों के द्वारा निर्मित आभूषणों से शृंगार करने की प्रथा व्यापक रूप से प्रचलित है। फूलों से भी सौन्दर्य की उपमा, शृंगार करना, लोक-सज्जा प्रसाधन तथा लोकमानस की ही

---

१ प्रेमचन्द : 'मानसरोवर' भाग ५-'देवी', पृ०२८४
२ ,, : ,, भाग ६-'पाप का अग्निकुण्ड', पृ०१३७, १३८
३ नर्मदा प्रसाद मिश्र : 'मृत्यु के पश्चात्', 'इन्दु', कला ४, खण्ड१, किरण ६, जून १६११, पृ०५
४ द्रष्टव्य --'मानसरोवर' भाग१-'सुजान भगत', पृ०२५६
५ 'प्रसाद'-'आँधी' -'घीसू', पृ०७२।

क शैली है । कालान्तर में इसी शैली के आधार पर शिष्ट साहित्य में भी अनेक उपमाएं फूलों से दी जाने लगीं और कितनी ही उपमाएं रूढ़ भी हो गईं, जैसे मुख, हाथ, पांव आदि के लिए कमल इत्यादि । इस प्रकार फूल तथा विविध वनस्पतियों से सौन्दर्य की उपमा देना तथा उनका शृंगार-प्रसाधनों के रूप में प्रयोग करना मात्र भारत की ही नहीं, वरन् विश्वव्यापी विशेषता है । प्राय: विश्व के प्रत्येक देश के लोक-गीतों एवं लोक-कथाओं में फूलों तथा वनस्पतियों से उपमाएं दी गई हैं । प्रेमचन्दयुगीन कहानीकारों ने भी इसी आधार पर फूल तथा वनस्पति जगत से सम्बन्धित अनेक उपमानों का प्रयोग अपनी कहानियों में किया है । इस प्रकार के उपमानों के ग्रहण करने में रंगसाम्य, आकृतिसाम्य, कोमलता, मधुरता आदि पर ही दृष्टि केन्द्रित रही है । कभी-कभी वृक्ष की सघनता, शीतलता, विशालता आदि के लिए भी उपमान रूप में प्रयोग किया गया है । इस दृष्टि से उपेक्षा भाव से प्रेरित होकर उपमानरूप में तिनका का प्रयोग भी छोड़ा नहीं गया है ।

(ख) पशु-पक्षी वर्ग

प्राकृतिक जगत के समान ही विवेच्ययुगीन कहानी में पशु-पक्षी, कीड़े-मकोड़े तथा विविध जीव-जन्तुओं का भी उपमान रूप में प्रयोग किया गया है । क्योंकि प्रकृति के सब समान ही ये सभी आदिकाल से ही आदिम मानव के सहयोगी रहे हैं, अतएव उनकी ध्वनियों तथा क्रिया-कलापों को देखकर अपने भावों की अभिव्यक्ति के लिए उपमान रूप में इनका भी प्रयोग किया गया है । ऐसे उपमानों का प्रयोग शिष्ट साहित्य में भी होता रहा है, परन्तु लोक-साहित्य में जहां भावाभिव्यक्ति के लिए ही ये उपमान रूप में ग्रहण किए गए हैं, वहीं शिष्ट साहित्य में अतिरंजना एवं कलात्मकता के लिए ही इनका प्रयोग किया गया है, यही कारण है कि उपमानों के प्रयोग में जितनी स्वाभाविकता, सरलता तथा स्वच्छन्दता लोकसाहित्य में प्रयुक्त उपमानों में मिलती है, उतनी शिष्ट साहित्य में नहीं । शिष्ट साहित्य में जब नेत्रों के लिए मृग, खंजन एवं मीन की उपमाएं प्रस्तुत की जाती हैं, तो वे सूक्ष्म विवेचन एवं सूक्ष्म पर्यवेक्षण की अपेक्षा रखते हैं । इसके विपरीत यदि लोककथाकार को नेत्रों की शोभा का वर्णन करना होता है तो वह आम की फांक, कौड़ी का उपमान रूप में प्रयोग करता है । यद्यपि ऐसे उपमान स्थूल होते हैं, तथापि

वह इनसे चिरपरिचित है, अत: उसकी भावाभिव्यक्ति में अधिक सहज और समर्थ होते हैं । खाने-पीने की वस्तुओं को देखकर टूट पड़ने वाले लोगों की समानता उसे टिड्डियों के दल में मिलती है, जो हरी-भरी खेती पर टूट पड़ते हैं और कुछ ही देर में सब कुछ चट कर जाते हैं । इसी प्रकार सांड़, कुत्ता, गाय, भैंस, भैंसा, बन्दर, अजगर, सांप, चींटी, जोंक, सिंह, सिंहिनी, शेर, चील्ह, बाज, बिच्छू इत्यादि विभिन्न पशु-पक्षियों का उपमान रूप में प्रयोग हुआ है ।

क्रिया-कलापों के अतिरिक्त साम्य-रूपता के आधार पर भी इस वर्ग से उपमान ग्रहण किए गए हैं, उदाहरणार्थ लोकसाहित्य में मूंछों की उपमा बीछी से दी गई है, जिसका आधार रंग-साम्य के साथ-ही-साथ ऐंठी हुई मूंछ और बिच्छू के डंक की बनावट तथा दोनों को देखकर त्रासोत्पादकता की भावना भी निहित है । इसी वर्ग से गृहीत उपमानों के सम्बन्ध में लोकमानस की एक विशेषता यह भी रही है कि वह उन्हीं पशु-पक्षियों तथा उनकी उन्हीं क्रियाओं का उपमान रूपमें प्रयोग करता है, जिनसे साधारण जन भली भांति परिचित रहता है । यही कारण है कि साधारण जन वर्ग वक्ता के भावों को बड़ी सरलता से ग्रहण कर लेता है यह अवश्य है कि ऐसे उपमान कहीं-कहीं अशिष्ट-से लगते हैं । इस सन्दर्भ में यह नहीं भूलना चाहिए कि स्वाभाविकता और अपरिष्कार की प्रवृत्ति भी लोकमानस की ही विशेषता है । परिष्कार और संस्कार तब करना तो शुचि-मानस की प्रवृत्तिगत विशिष्टता है । प्रेमचन्दयुगीन कहानीकारों ने उपर्युक्त वर्ग से भी अनेकानेक उपमान ग्रहण किए हैं । इन उपमानों का भी उल्लेख आगे तालिका में किया गया है ।

(ख) मानव जीवन से सम्बद्ध वर्ग

प्रेमचन्दयुगीन कहानीकारों ने स्पष्ट भावाभिव्यक्ति के लिए, लोकमानस की प्रवृत्ति के अनुरूप ही, मानव तथा मानव जीवन के विविध पक्षों से भी अत्यधिक मात्रा में उपमान ग्रहण किए हैं । इस वर्ग से सम्बन्धित, विवेच्यकालीन कहानी में उपलब्ध उपमानों को दो प्रमुख वर्गों में विभक्त किया जा सकता है --प्रथम वर्ग में वो उपमान आते हैं, जो व्यक्तिविशेष से सम्बन्धित हैं, और जिनके विशिष्ट क्रिया-कलापों का सूक्ष्म पर्यवेक्षण करते हुए उपमान रूप में प्रयोग किया गया है । इस वर्ग में गृहीत उपमान "नई बहू", "चोर", "बालक", "सिपाही", "राँड़ सांड़", "झक्की"-सनकी इत्यादि तथा राजा भोज राजा परीक्षित जैसे ऐतिहासिक पुरुष और कभी-कभी अगस्त्य ऋषि, परशुराम तथा

अंगद सरीखे पौराणिक व्यक्ति-विशेष से भी सम्बन्धित हैं । दूसरे वर्ग में वे उपमान रखे गये हैं, जो मानव जीवन के विश्वासों, शृंगार-प्रसाधनों, खाद्य पदार्थों, हथियारों, संस्कारगत रीति-रिवाजों और जीवन के नित्यप्रति काम में आने वाली असंख्य वस्तुओं से संबंधित हैं ।

प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी कहानी में प्राप्त इन समस्त उपमानों का विवेचन यहाँ प्रासंगिक नहीं है, क्योंकि विवेचन प्रस्तुत शोध-विषय की सीमा से परे की वस्तु है । यहाँ तो मात्र उद्देश्य यह है कि लोक-उपमानों का प्रयोग कहाँ तक विवेच्यकालीन कहानीकारों ने किया है । वस्तुत: गद्य-विधाओं में अप्रस्तुत विधान स्वयं में एक शोध का विषय है, अतएव यहाँ पर सभी वर्गों से सम्बन्धित उपमानों की एक सम्मिलित संक्षिप्त तालिका अवलोकनार्थ प्रस्तुत की जा रही है--

प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी कहानी में गृहीत लोक-उपमानों की संक्षिप्त तालिका

उपमान	प्रयोग	सन्दर्भ
मेघ	मेघ की भाँति गरज कर बोले	'मानसरोवर' भाग३, पृ०७
बादल	'अल्लाहो अकबर' चिल्लाया मानो बादल गरज उठा हो ।	,, भाग६, पृ०१६
नदी	सेठ जी का हृदय इस समय नदी की भाँति उमड़ा हुआ था ।	,, भाग५, पृ०२८३
,,	रमेश और दिनकर का प्रेम दिन-प्रतिदिन बरसाती नदी की तरह बढ़ता जा रहा था ।	'मालती माला', पृ०१४६
,,	उसकी भावुकता बरसाती नदी की तरह वेगवती थी ।	'अन्तर्नाद', पृ०७
हवा	मीलों का रास्ता हवा की तरह तय किया ।	'मानसरोवर' भाग८, पृ०२२१
आँधी	सेना विद्रोही दल को ऐसे भगा देगी जैसे आँधी पत्तों को उड़ा देती है ।	,, भाग ३, पृ०१५७
	राम स्वामी के वाक्य में लू-जैसी झुलस थी ।	'आकाशदीप', पृ०६०

उपमान	प्रयोग	सन्दर्भ
समुद्र	गंगा ऐसी बढ़ी हुई थीं, जैसे समुद्र हो	मानसरोवर भाग१, पृ०७७
नाला	वैवों का ज्ञान बरसाती नाले की तरह बढ़ता जाता है ।	,, भाग ७, पृ०७०
तालाब	सन्यासी की दो शान्त आँखें जंगल में मीठे जल से भरे हुए दो मीठे तालाब ।	"पनघट", पृ०१०
बरफ	उसका मुंह बरफ के समान उजला हो गया ।	"इन्दु", कला४, खंड१, किरण १, जनवरी १९१३ई०
धूल / पानी	पानी की तरह शराब पीता था और धूल की तरह रुपया उड़ाता था।	"हिन्दी गल्प मंजरी", पृ०११३
फूल	पृथ्वी सिंह का चेहरा खिला हुआ था जैसे कमल का फूल ।	"मानसरोवर" भाग६, पृ०१३५
फूल, आम	कुंद का फूल सा सुकुमार शरीर और आम की फांक सी आँखें ।	"बेलपत्र", पृ०५१-५२
तिनका	इस मद प्रीत में रमानाथ तिनके की तरह बह गया ।	"गल्प पंचदशी", पृ०१८
पत्ता, पतझड़	माया के फंदों में फंसा हुआ मन पतझड़ का पत्ता है।	"मानसरोवर", भाग५, पृ०२५६
पान	पान से लाल पतले-पतले ओंठ	"आकाशदीप", पृ०११३
शुष्क लता	वह शुष्क लता के समान मुर्छित होकर गिर पड़ी ।	"इन्दु" कला ६, किरण १, खंड२, जुलाई १९१५ पृ०४७ ।
छुई मुई	नवागत बहू छुई मुई की तरह	"पांच कहानियां", पृ०९५
सूखा काठ	मालती सूखे काठ की तरह पड़ी सुन रही थी ।	"डायरी", पृ०९५
कटा पेड़	वह कटे पेड़ की तरह गिर पड़े	"मानसरोवर" भाग२, पृ०८०
आम	मैं पका आम हूँ	,, भाग ७, पृ०१६६ "पुरस्कार", पृ०१३८, "बेलपत्र", पृ०५३
आम की फांक	कभी कभी उसकी आम की फांक जैसी सुन्दर आँखें भर आतीं ।	,, ,, ,, "आशीर्वाद" पृ०१३४

उपमान	प्रयोग	सन्दर्भ
सेब	विमला के कपोल का रंग पके कश्मीरी सेब की तरह था ।	`बनारसी इक्का तथा अन्य कहानियाँ` पृ०११ ।
कद्दू	बच्चा कद्दू सा लुढ़क कर नीचे आ गिरा	`पिंजरे की उड़ान`, पृ०१००
मटर का दाना	रानी ने सुना तो मटर के दानों से आंसू गिराने लगी ।	,, पृ०१४१
छिपकली	बेचारा यात्री किवाड़े में सहसा दबी हुई छिपकली की भांति चिपकर रह जाता ।	`हिन्दी गल्प मंजरी`, पृ०२५४
चींटे	दिल चले व्यक्ति भोली युवती स्त्री के घर के आस पास ऐसे फिरा करते हैं जैसे गुड़ की तलाश में चींटे ।	`हंस`, वर्ष ३, संख्या ८, मई१९३३ई० पृ०४५ ।
चींटी	वह व्याकुल हो गई जैसे खांड़ की गंध पाकर चींटी ।	`मानसरोवर` भाग५, पृ०२३२
जोंक	यह सरकार धीरे-धीरे जोंक की तरह हमारे देश का धन चूसती चली जा रही है ।	`मधुकरी`, खंड १, पृ०३०४
चिड़िया	राजकुमारी का मन फुदकने वाली चिड़िया की भांति इधर उधर उड़ता फिरता था ।	`मानसरोवर` भाग६, पृ०१०३ ।
सांड़	लाल सिंह ज्यों ही घर में कदम रखता चारों ओर कांव कांव मच जाती .. मानों घर में कोई सांड़ घुस आया ।	,, भाग ५, पृ०३१३
भैंसा	मोहनराय शास्त्री भैंसे की भांति हांफते थे ।	,, पृ०१९

उपमान	प्रयोग	सन्दर्भ
बन्दर	वाह बन्दर का सा मुंह हो गया है	"मानसरोवर" भाग३,पृ०३६
बैल	मैं तो तुम्हें बैल समझती हूं	,, भाग २,पृ०२३३
सिंह	तुम सिंह की भांति न गरजते हो	,, भाग ३, पृ०२११
सिंहनी	जैसी सिंहनी की भांति मनहर पर टूट पड़ी ।	,, भाग २, पृ०१४०
शेर	कालेखां और कादिरखां दोनों लंगोट कसे शेरों की तरह अखाड़े में उतरे ।	,, भाग६ , पृ०१५
घायल बाघिन	वह घायल बाघिनी की तरह तड़प उठी	"आकाशदीप", पृ०१०६ ।
सांप	तुम विषैले सांप हो	"मानसरोवर" भाग५,पृ०२५२
नागन	तू नार नहीं नागन हो	"मधुकरी" भाग१,पृ
लाल सांप	लाल मोरम की सड़क चक्कर खाती हुई लाल सांप जैसे विकल गई थी ।	"मानसरोवर" भाग२,पृ०३७
बिच्छू	पड़ी सुईं बिच्छू के डंक की तरह	"इन्द्रजाल", पृ०६१
	बिच्छू के डंक का-सा ठंडी हवा का झोंका ।	"मानसरोवर भाग १,पृ०१५१
बिल्ली	कैसा इस प्रकार झपटा, जैसे भूखी बिल्ली चूहे पर झपटती है ।	"इन्स्टालमेण्ट", पृ०८० ।
चूहा	"छोटा बच्चा खिड़की से चूहे की तरह झांक रहा है ।	"मानसरोवर" भाग१,पृ०११८ ।
अजगर	विशाल सफेद अजगर सी पड़ी हुई	"आंधी", पृ०६६
कुत्ता	निर्दयी ने ऐसे घर से निकाला जैसे कोई कुत्ते को निकाले ।	"मानसरोवर" भाग५,पृ०६६
	बच्चा बोटी लेने के लिए पहुंचे श्मशान के कुत्तों की भांति ।	"हंस", वर्ष ३, संख्या७ अप्रैल१६३३, पृ०३५

उपमान	प्रयोग	सन्दर्भ
कुतिया	रुपया है तो यश है और कीर्ति तुम्हारे पीछे कुतिया की तरह दुम हिलाती सी फिरेगी ।	'हंस', वर्ष ३, संख्या ८, मई १९३७ई०, पृ०७
गाय	जानकी की मां रो रही है, जैसे कुर्बानी के पूर्व गाय रोए ।	'मधुकरी', खण्ड१, पृ०३१०
स्त्री	स्त्री-सास बनते ही मानो ब्याई हुई गाय हो जाती है ।	'मानसरोवर', भाग२, पृ०२९६
बनैला सुअर	तुम सारे बनैले सुअर मालूम होते हो	,, भाग ३, पृ०३२८
दीपक	मुखमण्डल दीपक की भांति चमक उठा	,, भाग३, पृ०१६२
टिड्डी	इन लोगों का दल टिड्डियों की तरह पीताम्बरकी दुकान पर टूट पड़ा ।	'पांच कहानियां', पृ०११
बाज	सुलेमा बाज की तरह झपटी	'मानसरोवर' भाग७, पृ०२२३
सन	दाढ़ी काफी लम्बी थी और सन की तरह सफेद ।	'इन्स्टालमेंट', पृ०१८८
रुई	रुई की पूनी जैसी सफेद भौंहें हैं	'हंस', वर्ष८। अंक७, अप्रैल १९३८, पृ०६०२
ककड़ी	अमीर ने सलीम की कलाई ककड़ी की तरह तोड़ ही दी ।	[illegible] 'इन्द्रजाल', पृ०२५
कौड़ी	कौड़ी सी आंख	'हंस', अंक६, मार्च१९३२ई०, पृ०२५
कटोरा	आंखें बड़ी-बड़ी कटोरे सी हैं	'वातायन', पृ०४१; 'पनघट', पृ०४२
	पेट कटोरे की तरह गहरा हो गया है।	'मानसरोवर' भाग५, पृ०१९१
खिचड़ी	बाल खिचड़ी हो गये	,, भाग२, पृ०३६३, २७५ ,, भाग१, पृ०२६७
थप्पड़	प्रश्न का उत्तर थप्पड़ सा लगा	'इन्द्रजाल', पृ०११२
बाघ, बकरी	डाक कभी तो अपनी पत्नी जैसे बाघ कभी उसकी गाड़ी जैसे बकरी ।	'मानसरोवर' भाग२, पृ०३४२
फुहारा	मेरा कलेजा फूट कर फुहारा हो गया	,, भाग २, पृ०११९

उपमान	प्रयोग	सन्दर्भ
काजल	काले-काले बादल मानो काजल के पर्वत उड़े जा रहे हों ।	"मानसरोवर" भाग६,पृ०६
चिता	विवाह क्या हुआ मानो उसकी चिता बनी	,, भाग२, पृ०१८
सन्दूक	सन्दूक की तरह बनी हुई छोटी सी कोठरियाँ।	"उन्माद",पृ०६६
मुसलमानी	मुसलमानी सी एक झोंपड़ी थी	"आँधी",पृ०१
बालक सिपाही	सुलाकर बालक की तरह सो जाते और सिपाही की तरह उठ बैठते	"हिन्दी गल्प मंजरी",पृ०१२३
राँड़	कहने को तो वह नई दुलहिन है पर ऐसा जान पड़ता है मानो जन्म की राँड़ हो ।	"मारीचिका",पृ०१८
नई बहू	आचार्य उस घर में ऐसे रहते जैसे कोई नई बहू अपनी ससुराल में रहे	"मानसरोवर" भाग३,पृ०२२१
बाण	पति के शब्द उसके मर्म स्थल में बाणों की तरह चुभे हुए थे ।	,, भाग २,पृ०३७४
भाला	भाले की नोकों के सदृश तनी हुई मूँछें	,, भाग ६, पृ०८४
कुम्भकरण	कुम्भकरण की भाँति पड़ा सो रहा था	,, ,, २, पृ०२६४
परशुराम	बादल के अनुयायी सशंक होकर उसी सतर्कता के साथ खड़े हो गए, जैसे परशुराम को देखकर धनुष भंग के समय क्षत्रिय राजा खड़े हो गए थे ।	"हिन्दी गल्प मंजरी",पृ०२५५
अगस्त्य ऋषि	स्वार्थ-प्रेम वह प्यास है, जो कभी नहीं बुझती, वह अगस्त्य ऋषि की भाँति सागर को पीकर भी शान्त नहीं होती।	"मानसरोवर" भाग३,पृ०२१६
अंगद	[illegible] का [illegible] अंगद की तरह पैर जमाए रास्ता रोके हुए था ।	"[illegible]",पृ०८१-८२
बीरबल	बीरबल की भाँति पं०श्रीधर भी सब कुछ कर सकते हैं ।	"मानसरोवर" भाग६,पृ०८५-८६

उपमान	प्रयोग	सन्दर्भ
इन्द्र-शची	चम्पा और बुधगुप्त-इन्द्र और शची के समान पूजित हैं।	`आकाश दीप`, पृ०१३
कंजूस का धन	आँसू कंजूस के धन की तरह जहाँ से आए थे वहीं वापस चले गए।	`हंस`, वर्ष १, अंक २, अप्रैल १९३०, पृ०१३
नरक	विपिन को अपना जीवन नरक सा जान पड़ता है।	`मानसरोवर` भाग ३, पृ०३२।
कारागार	यह घर अब मुझे कारागार सा लगता है।	,, भाग ८, पृ०१३८
मुर्दा	जगत पांडे का स्वरूप इतना भयानक था मानो श्मशान से कोई मुर्दा भागा जाता हो	,, भाग ३, पृ०१३७
दाह-क्रिया	आज सबके सब मौन थे, जैसे किसी शव की दाह-क्रिया करके लौटे हों।	`पनघट`, पृ०१५९

उपर्युक्त संक्षिप्त विवेचन एवं तालिका को देखते हुए स्पष्ट हो जाता है कि प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी कहानीकारों ने सभी वर्गों से गृहीत उपमानों का प्रयोग किया है। इन उपमानों का प्रयोग करते हुए उनका ध्यान, लोकमानस की प्रवृत्ति के अनुकूल, स्पष्ट भावाभिव्यक्ति पर ही रहा है। यही कारण है कि कुत्ता, कुतिया, कीड़े सुअर तथा राँड़, श्मशान का मुर्दा इत्यादि जैसे अशिष्ट लगने वाले एवं अशोभनीय कहे जाने वाले उपमान भी उनकी कहानियों में प्रयुक्त हुए हैं। शिष्ट साहित्य में ये उपमान भले ही भोंड़े से लगें किन्तु लोक-मानस एवं लोककहानीकार की कलात्मकता की चिन्ता नहीं रहती। उसका ध्यान तो अपने भावों को स्पष्ट से स्पष्टतर अभिव्यक्ति द्वारा पूर्णता प्राप्त करने में ही रहता है। ऐसा करने में यदि अशिष्ट एवं अशोभनीय उपमान भी आते हैं तो भी उनको ग्रहण कर लेता है। अभिप्राय है कि प्रेमचन्दयुगीन अन्यान्य कहानीकारों ने भी शिष्ट साहित्य में प्रयुक्त बहु उपमानों का प्रयोग न कर, लोकमानस की प्रवृत्ति के अनुकूल ही लोक-उपमानों को प्रयोग में लाए हैं। उपर्युक्त उपमानों की तालिका के अतिरिक्त भी लोकजीवन के विविध पक्षों से गृहीत उपमानों का प्रयोग विवेच्ययुगीन कहानीकारों ने किया है।

(चतुर्थ खण्ड)

अध्याय पांच

-0-

लोकजीवन के विविध पक्ष

(चतुर्थ खण्ड)

अध्याय पांच

-०-

लोकजीवन के विविध पक्ष

प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी कहानी में प्राप्त लोक-वार्ता-तत्वों का एक अत्यधिक विस्तृत खण्ड लौकिक रीति-रिवाजों, प्रथाओं, संस्कारों, व्रत-पर्व-उत्सवों, शकुन-अपशकुनों, भविष्यवाणियों, आकाशवाणियों आदि से सम्बद्ध है। वस्तुत: ये सभी लोक-जीवन के विशिष्ट तत्व हैं और तो "सब कुछ मिट सकता है, किन्तु जीवन के तत्वों को मिटाने में समय भी सफल नहीं हो सकता। लोक-जीवन और लोक-संस्कृति की परम्परा युग के अनुरूप बदल तो जाती है, मिटती नहीं। जनता की संस्कृति को कोई नष्ट नहीं कर सकता, उसका तत्व वास्तविक अमरता प्राप्त करते हैं, क्योंकि उनमें मिट्टी के चिरन्तन विकासमय जीवन की शक्ति होती है। जन-जीवन से उसका सीधा सम्पर्क होने के कारण सम्बन्ध का यह सूत्र कभी टूटने नहीं पाता।.... जन संस्कृति, अनुभूति, भावना और विचार की एक अटूट किन्तु अमिट डोर के समान है, जिसे एक पीढ़ी दूसरी पीढ़ी को थमाती हुई चली जाती है।"[1] लोक-संस्कृति की यह परम्परा चलती ही नहीं चली जाती, बल्कि विकसित होकर अग्रसर होती है। यह देश की सीमाओं का उल्लंघन भी करती है, क्योंकि मानव की सामाजिक समस्याएं और उसकी मूल भावनाएं अब तक अधिकांश में एक-सी रही हैं। लोक-संस्कृति अमर इसलिए नहीं है कि वह प्राचीन को साथ लिए चली जाती है, बल्कि इसलिए कि प्राचीन उसमें प्राचीन तत्वों को छोड़कर नये तत्व अंगीकृत करके नया बन जाता है। विवेच्ययुगीन हिन्दी कहानीकारों ने उन्मुक्त हृदय से लोक संस्कृति और लोक-जीवन के विविध पक्षों से सम्बद्ध लोक-तत्वों को फिर से अपना कर ही अपने

---

१ देवेन्द्र सत्यार्थी : "बाजत आवे ढोल" (आमुख), पृ०१८।

प्राय सब्बे बन सके हैं । यही कारण है कि लोक के साथ सम्पर्क में आकर हमारे जीवन के रुके हुए सोते एक बार पुन: फूट-फूट कर बह निकले हैं और रस-ग्रहण के टूटे हुए तन्तु फिर अपने तार से झुक्कर रससिक्त करने में समर्थ हो सके हैं । अस्तु, प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी कहानी में लोकतत्वों का अनुसंधान करते हुए , उपर्युक्त लोकतत्वों का विवेचन भी आवश्यक हो आता है । इन्हीं तत्वों का विवेचन प्रस्तुत खण्ड में किया गया है ।

(१) लोकपर्व : व्रत-उत्सव

भारतीय लोक-जीवन में पर्व-व्रत और उत्सवों का अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान रहा है । इसीलिए प्राय: कहा जाता है कि हिन्दुओं का प्रत्येक दिन त्यौहार ही होता है । व्रज मण्डल में तो इस सम्बन्ध में एक लोकोक्ति -- 'सात वार , नौ त्यौहार' -- बहुत अधिक प्रसिद्ध है । त्यौहार का ही दूसरा नाम पर्व है । वर्ष भर में निश्चित तिथियों पर पौराणिक अथवा लोक-कथाओं पर आधारित उत्सव मनाये जाते हैं । यह वह उत्सव है, जिनको आज भी सम्पूर्ण समाज एक साथ मनाता है । वस्तुत:, इन उत्सवों का मूल कारण सामूहिक अनुष्ठान ही है[१] । जादू-टोने पर विश्वास करने की प्रवृत्ति आदिम मानव की थी, अतएव अत्यधिक प्राचीनकाल में लोक मानव सामूहिक अनुष्ठान करता था । ये अनुष्ठान सामूहिक इसलिए होते थे, क्योंकि इनसे समस्त जनवर्ग सम्बद्ध था और इनके कारण होने वाले हानि या लाभ से समस्त जनवर्ग सम्बद्ध रहता था । अस्तु, यह सामूहिक अनुष्ठान ही उत्सवों का रूप धारण करते थे । कालान्तर में इन जादू, टोने तथा टोटके का सम्बन्ध धर्म से जोड़ा गया और इस प्रकार पर्व की उत्पत्ति हुई । इस प्रकार आदिम मानव द्वारा सामूहिक अनुष्ठानों के रूप में किये जाने वाले टोने टोटकों, उत्सवों का रूप धारण किया और कालान्तर में इनका सम्बन्ध धर्म से

१ द्रष्टव्य--"इनसाइक्लोपीडिया आफ रीलिजन इथिक्स", वाल्यूम ६, पृ०१६८ ।

से जोड़ दिया गया । परिणामत: लोकोत्सवों पर धर्म का मुलम्मा चढ़ाकर,धार्मिक लोकोत्सवों के रूप में इन्हें स्वीकार किया जाने लगा । इन उत्सवों में जैसे-जैसे धर्म तत्व की प्रधानता बढ़ने लगी, वैसे-वैसे आनुष्ठानिक पक्ष की जटिलता बढ़ने लगी और इन उत्सवों का समय तथा क्रम भी निश्चित होने लगा तथा लोकोत्सवों का प्रधान तत्व मनोरंजन का स्थान गौण हो गया । सामाजिक बन्धनों तथा रोजमर्रा की एक-सी कार्यप्रणाली के कारण मानव जीवन नीरस हो जाता है और मनुष्य इससे ऊब जाता है । इसीलिए लौकिक जीवन को सरस बनाने तथा मनोरंजन हेतु त्यौहारों का विधान किया गया है । आदिम जातियों में आज भी धार्मिक उत्सवों की अपेक्षा समय और काल-क्रम में अनिश्चित तथा मनोरंजक और आनुष्ठानिक तत्वों की प्रधानता रहती है । वर्तमान समय में भि जंगली तथा असभ्य जातियों में उत्सवों की कोई निश्चित तिथि नहीं होती, वे सुविधानुसार घटती-बढ़ती रहती है ।[1]

प्रारम्भ में इन उत्सवों का सम्बन्ध कृषि और ऋतु परिवर्तन से था ।[2] विद्वानों का विचार है कि आदिम-मानव-जीवन के एकमात्र आधार कृषि को लहलहाती हुई देख , प्रसन्नता से नाच उठता था और अपनी आनन्दाभिव्यक्ति के लिए सामूहिक मनोरंजन के रूप में नृत्य गीतादिकों का आयोजन करताथा । इतना ही नहीं,बल्कि अपने परिश्रम से की हुई कृषि को अधिक उन्नत तथा रक्षा के लिए समय-समय पर नाना प्रकार के अनुष्ठानों का भी आयोजन किया करता था, जो सामूहिक उत्सव का रूप लेते थे ।

इसी प्रकार ऋतु-परिवर्तन से भी लोकोत्सवों का सम्बन्ध जोड़ा गया है । मानव मात्र की स्वाभाविक वृत्ति है कि वह प्रत्येक ऋतु परिवर्तन के समय गत ऋतु की कटुता को भुलाने तथा नई ऋतु के आगमन पर प्रसन्न होना । ऐसे अवसरों पर उल्लास से परिपूर्ण मानव सब की सुविधा का ध्यान रखते हुए ,किसी भी दिन ,सामूहिक मनोरंजन का आयोजन करता था, जिसे उत्सव के रूप में मनाया जाता था । इस दृष्टि से उत्सव,ऋतु परिवर्तन का सूचक माना जाता था । क्योंकि

---

१ "इनसाइक्लोपीडिया आफ सोशल साइंसेज, वाल्यूम ६,पृ०१९८

२ "द इनसाइक्लोपीडिया आफ रैलिजन एण्ड एथिक्स, वाल्यूम ५,पृ०८६८-८६९ ।

ऋतु -परिवर्तन का सम्बन्ध कृषि से भी है, इसलिए उत्सवों का भी सम्बन्ध दोनों से जोड़ा गया, तथा ऋतु परिवर्तन सम्बन्धी उत्सवों का समय फसल के आने के अनुसार निश्चित किया जाने लगा[1]। यही कारण है कि आज भी विश्व के अनेक उत्सव ऐसे भी हैं, जिनका सम्बन्ध मूलत: ऋतु-परिवर्तन तथा कृषि से ही था। यह असत्य है कि आज उनपर धार्मिक मुलम्मा चढ़ जाने के कारण बहुत कुछ भिन्न प्रतीत होते हैं। हिन्दुओं के प्रसिद्ध त्यौहार-- होली, दीवाली, दशहरा आदि मूल रूप से उत्सव ही हैं, जिनका सम्बन्ध भी कृषि तथा ऋतु परिवर्तन दोनों से ही है।

विवेच्ययुगीन हिन्दी कवियों में इन उत्सवों तथा उनसे सम्बद्ध रीति-रिवाजों का भी यथास्थान वर्णन हुआ है, जिनका वर्णन नीचे किया जा रहा है।

होलिकोत्सव

भारतवर्ष का अत्यन्त प्राचीन त्यौहार होली को "फाग", "फागु" या "फगुआ" भी कहा जाता है। महर्षि जैमिनीय के "कर्ममीमांसा शास्त्र" में "होलाकाधिकरण" नामक एक स्वतन्त्र अधिकरण की ही रचना की गई है। वात्स्यायन के "कामसूत्र" में इसे "होलाका" कहा गया है तथा आर्यों के प्राचीन पारम्परिक उत्सव में इसे मनोरंजन माना है। टीकाकार जयमंगल ने इस अवसर पर पिचकारी द्वारा किंशुकादि पुष्पों के रस से निर्मित रंग छोड़ने की प्रथा का उल्लेख किया है[2]। "होलाका" महापर्व भी ऋतुओं की अन्याबुद्धि के लिए बसन्तकाल में निरवच्छिन्न संवत्सरक्रम "मधु" नामक अग्नि के पार्थिव रूप: कण्डों में प्रज्वलन का अनुकरणमात्र है। फाल्गुन पूर्णिमा की रात्रि में एक वर्ष प्राचीन संवत् में अग्नि लगती है और वह जलकर जब भस्म हो जाता है तथा दूसरे दिन चैत्र कृष्ण प्रतिपदा को यह त्यौहार सम्पूर्ण भारतवर्ष में बड़े राग-रंग के साथ मनाया जाता है।

---

१ द्रष्टव्य--"इंसाइक्लोपीडिया आफ रीलिजन ऐथिक्स", भाग ५, पृ०१९८।
२ वात्स्यायन : "कामसूत्र", टीका० जयमंगल, १।४।४२।

पुराणों में "होलिका" का लौकिक स्वरूप इस रूप में प्राप्त होता है-- चक्रवर्ती सम्राट रघु के शासनकाल में `ढुण्ढा' नामक एक राक्षसी ने बालकों को उत्पीड़ित कर दिया था । उसकी उपशांति का उपाय पूछने पर भगवान नारद ने कहा-- राजन्! ढुण्ढा नाश का एकमात्र उपाय होलिका नामक अग्नि ही है, जिसमें `सर्वदुष्टापह'[1] होम करना आवश्यक है । इस होम की इतिकर्तव्यता का वर्णन करते हुए अन्त में कहा गया है कि अग्नि जलाने के साथ ही बालकों को उच्च स्वर से गाते और हँसते हुए तीन बार प्रदक्षिणा करना चाहिए । इतना ही नहीं, बल्कि सभी बाल-वृद्ध इच्छानुसार निःसंकोच रूप से जिसके मन में जैसे भी भाव हों, जिसकी वाणी में जैसा भी शब्दकोश हो, निःसंकोच अपनी-अपनी भाषा में यथेच्छ उद्घोष करते रहें । ऐसे स्वतन्त्र, स्वच्छन्द, उन्मुक्त शंकारहित, अभय उद्घोष से वह पापिनी `ढुण्ढा' राक्षसी इस शब्दाग्नि की ज्वाला से अवश्य ही पलायित हो जायगी । अट्टाट्टहास-परिहासों एवं असभ्यवादों से उच्चाटनगत बनती हुई अवश्य ही नष्ट होजायगी ।

`होलिका' से ही इस राक्षसी का नाश होता है, अतः इसका नाम भी `होलिका' पड़ गया है । विद्वानों के मतानुसार न केवल `होलिकानुगता' `होलिका' राक्षसी ही बल्कि अन्य उसके सहयोगी दुष्ट राक्षसगण भी इस अग्निहोम रूप "होलिका पर्व" से नष्ट हो जाते हैं । "ढुण्ढा" का तात्विक निरूपण करते हुए, स्वामी श्री वेंकटाचार्य जी तर्कशिरोमणि ने कहा है-- "पुराण द्वारा `ढुण्ढा' नाम की राक्षसी के भय से बाल बन्धुओं का परित्राण करने के लिए ही होलिका महोत्सव के आधिभौतिक लौकिक स्वरूप का स्थापन हुआ है । वह सौम्य प्राण जो अग्नि से सर्वथा पृथक् होकर बालकों में क्षयरोग उत्पन्न कर देता है, वह राक्षस नाम से प्रसिद्ध है, जिसे सौम्य शक्ति के अनुबन्ध से राक्षसी कहा जा सकता है । सोमप्रधानत्व ही इस प्राण का स्त्री-धर्मत्व है । अतएव इसे "राक्षसी" कहना सार्थक है । इसी के आक्रमण से क्षय का सम्बन्ध है, जिससे मानव का रक्त ही सूख जाता है । सौम्यावस्था ही बालावस्था है। अत्यन्त छोटे शिशुओं में यह रोग "सूखा" रोग कहलाता है । यही रोग ढुण्ढा राक्षसी है ।

---

1 सर्वदुष्टापहो होमः सर्वरोगोपशान्तये ।
क्रियते यस्यां द्विजैः पार्थ तेन सा `होलिका' स्मृता ॥

द्विवेदीयुगीन हिन्दी कहानियों में होलिकोत्सव के विविध लौकिक अनुष्ठानों का उल्लेख यथाप्रसंग किया गया है ब० जैसे-- होलिका दहन करना, होलिका की परिक्रमा, फाग खेलना, होलिका की राख लगाना, होली माता से आशीर्वाद मांगना इत्यादि । शिवरानी देवी की 'विध्वंस की होली' शीर्षक कहानी में स्वर्गवासी निर्मलचन्द्र की विधवा पत्नी उत्मा जब अर्द्ध रात्रि में गाती हुई होलिका दहन करने चली तो सारा गांव आप-ही-आप उसके पीछे चल पड़ता है । जब ज्वाला लंबी होने लगी, तो उत्मा होली की परिक्रमा करने लगी । सभी स्त्री-पुरुष उसके पीछे-पीछे घूमने लगे । सभी होली का स्वागत करते हुए --'माता हमको दो वरदान, हमारा जिससे हो कल्यान'। और जब होलिका ठण्डी हो गई, तो उत्मा ने उसकी एक-एक चुटकी राख उठाकर प्रत्येक स्त्री-पुरुष के माथे पर लगाई और होली माता से प्रार्थना की-- माता अपने इन बालकों की रक्षा करो । दूसरे दिन सायंकाल उत्मा के झोंपड़े के द्वार पर होली मनाई गई[1] । इस प्रकार प्रस्तुत कहानी में होलिकोत्सव की अनेक लौकिक रीतियों का एक साथ वर्णन किया गया है ।

होलिकोत्सव के राग-रंग का वर्णन द्विवेदीयुगीन कहानी में बहुत अधिक मात्रा में किया गया है । प्रेमचन्द द्वारा लिखित 'आंसुओं की होली' शीर्षक कहानी में राग-रंग का वर्णन इस प्रकार हुआ है--'होली का दिन है । बाहर हाहाकार मचा हुआ है । पुराने जमाने में अबीर गुलाल के सिवा और कोई रंग न खेला जाता था। अब नीले, हरे, काले सभी रंगों का मेल हो गया है और इस संगठन से बचना आदमी के लिए सम्भव नहीं । किन्तु सिलबिल महाशय अब तीन दिन घर से ही नहीं निकले तब क्या हो ? ऐसी स्थिति में राग-रंग में मस्त टोली ने सिलबिल महोदय के सारे कपड़े, जो ताला में बन्द थे, निकाल-निकाल कर रंग डाला । यहां तक कि रूमाल तक न छोड़ा[2] । लोक-रीति के अनुसार होली के दिन लोग झुंड बनाकर इष्टमित्रों के द्वार पर मिलने जाते हैं, वहां लोक-प्रथा के अनुसार उनका आदर-सत्कार भी किया जाता है । इसका

---

१ द्रष्टव्य--'हंस' वर्ष४, अंक ६, जून १९३४ई०, पृ०२३

२ ,, --'मानसरोवर' भाग५, पृ०१४२-४८ ।

चित्रण पण्डित इलाचन्द्र जोशी ने `दीपावली और होली` शीर्षक कहानी में किया है --`होली की पूर्णिमा के एक दिन पहले मेरी ससुराल वाले उत्सव मनाया करते थे। होली के रंग में रंगे हुए शहर के सभी पुरुष मेरे यहां आये हुए थे। पान बंट रहा था, इत्र सुंघाया जा रहा था। गांजा और सुल्फा के साथ-साथ भंग भी पिलाई जा रही थी। गाने वालियों की एक जोड़ी कभी नाच रही थी, कभी गा रही थी। हस्ता पुड़ियां उड़ रही थीं। ऐसे अवसर पर मोहन भय्या आये और हाथ में हार्मोनियम ले, सभी को मन्त्रमुग्ध करके, भावमयी आंखों को आकाश की ओर उठा कर आकाश की ओर, उमाका गाने लगे --

सांझ भयी, घर आओ लला।
मुरली न बजाओ बिहारी लला।।
कंचन की झड़ लाग रही है,
तन से छूटत चिनगारी,
मधुर रसायें जोगन बन बैठी,
हमरी सुध बिसराई लला।
मुरली न बजाओ बिहारी लला [१]।।

होली के हुड़दंग का वर्णन करते हुए श्रीमती शिवरानी देवी ने `निराला भाव` शीर्षक कहानी में सबल सिंह को रात भर खूब नचाया है, जिससे उनकी `कबीर` गाने की आदत ही छूट जाती है। सबल सिंह होली में बड़ा हुड़दंग मचाते थे। शराब पीकर द्वार-द्वार कबीर गाते, अपनी भाभी का नाता जोड़ते, दिल्लगी करते और पन्द्रह दिन पहले से ही दस-पांच लौंडों को लेकर औरतों पर रंग डालने लगते। बेचारियों का घर से निकलना मुश्किल हो जाता। ऐसी -ऐसी गालियां और फब्बड़ बकते कि कान के कीड़े मर जाते, लेकिन वह गालियां गीत और कबीर के रूप में होती, इसलिए हंसी में उड़ जाती थी। स्त्रियों ने सलाह की कि इन्हें ठीक किया जाय। ऐसा सबक बनाया जाय कि सारी शरारत भूल जाय।

आज होली की रात है। मर्दों ने सारे दिन कीचड़, कबीर, रंग अबीर गुलाल उड़ाया है, किसी ने एक गधा बनाया है, किसी ने दो, किसी ने तीन।

---

[१] द्रष्टव्य--`होली और दीवाली`, पृ०१८-१९।

सहुनासिंह इसी पुरुष श्रेणी के हैं । गालियां तो उन्होंने आज इतनी बकी हैं, औरतों को ऐसे-ऐसे कबीर सुनाये हैं, बेचारी मारे लाज के पानी-पानी हो जाती थीं । उन्हें कबीर जोड़ना भी आता था खूब । एक-एक के नाम से कबीर बनाते हैं[1]। किन्तु आज स्त्रियों ने ऐसा नाच नचाया कि सारी हेकड़ी भूल गई ।

इसी प्रकार प्रेमचन्द की 'अभिलाषा'[2], 'मागे की पगड़ी'[3] तथा अमृत राय की 'हम रसैल'[4], 'प्रसाद' की 'अमिट स्मृति'[5] और दुर्गाप्रसाद खत्री की 'अपर्णा'[6] शीर्षक कहानियों में भी लोकोत्सव का वर्णन एवं उल्लेख किया गया है । वर्तमान समय में भी हिन्दी कहानियों में वर्णित लोकोत्सव की रीतियां सामान्य लोकजीवन में प्रचलित हैं ।

दीपावली

दीपावली भी हमारे देश का एक अत्यधिक लोकप्रिय पर्व है । यह त्योहार कार्तिक कृष्ण पक्ष अमावस्या को बड़े उल्लास के साथ मनाया जाता है। दीपावली भगवती लक्ष्मी की अर्चना का पवित्र पर्व है । श्री लक्ष्मी को ही तो हम शोभा, समृद्धि, सुरुचि एवं सम्पन्नता का भण्डार मानते हैं । धन-सम्पत्ति की अधिष्ठात्री लक्ष्मी के रूप में हम सदा से इसी की कामना करते आए हैं । क्या करोड़पति, क्या मजदूर, क्या भिखारी-- सभी दीपावली के अवसर पर लक्ष्मी की आराधना कर उनकी प्रसन्नता की एक समान आशा करते हैं । एक किंवदन्ती के अनुसार 'लक्ष्मी उन्हीं स्थानों

---

१ द्रष्टव्य--'कौमुदी', पृ०११७- १२६

२ ,, --'मानसरोवर' भाग४, पृ०६६

३ ,, -- ,, ,, पृ०२७१

४ ,, -- 'जीवन के पहलू', पृ०३

५ ,, -- 'आंधी', पृ०५५-६६ ।

६ ,, --'बाबा', पृ०२५ ।

को पसन्द नहीं करती और जहां अधिक प्रकाश तथा जगमगाहट देखती है, वहीं रम जाती है । सम्भवत: इसीलिए दीपावली के दिन दिए जलाए जाते हैं । अलबेरूनी अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ "इण्डिया" में दीपावली का उल्लेख करते हुए लिखा है कि इस दिन भारतीय जन स्नानादि के उपरान्त सज-धज कर देवमन्दिरों में जाते हैं, दान-दक्षिणा देते हैं, आनन्द-उल्लास के साथ एक-दूसरे से मिलते हैं तथा रात्रि में हर स्थान पर दीप जलाते हैं[१] । दिए जलाने की रीति से सम्बद्ध एक पौराणिक लोक-विश्वास भी प्रचलित है-- अकाल मृत्यु से बचने के लिए यमराज की प्रसन्नता हेतु इस दिन संध्या समय दिए जलाने या "दीप-बलि" देने का विधान किया गया है[२] । इस सम्बन्ध में श्रीकण्ठशास्त्री का विचार भी उल्लेखनीय है । इस त्योहार के विषय में उनका निष्कर्ष रूप में यह कथन है कि "ऐतिहासिक पर्यालोचन बताता है कि कृषि प्रधान भारत में आज से हजारों वर्ष पूर्व इस पर्व का प्रचलन ऋतु पर्व के रूप में हुआ होगा । चूंकि इस समय तक सारी फसल पककर तैयार हो जाती है, अतः अन्न भंडार धन-धान्य से भर जाते हैं, रुई कपास के आ जाने से लोगों को वर्ष भर के लिए कपड़ों की चिन्ता से छुटकारा मिल जाता था, अत: जनता के हृदय का उल्लास दीपमालिका के रूप में फूट पड़ना स्वाभाविक था[३] ।"

विवेच्ययुगीन हिन्दी कहानी "अमावस्या की रात्रि" में दीपोत्सव का उल्लेख इस रूप में किया गया है--"दीवाली की सन्ध्या थी । श्रीनगर के घरों और खण्डहरों के भी भाग्य चमक उठे थे । कस्बे के लड़के और लड़कियां श्वेत थालियों में दीपक लिए मन्दिर की ओर जा रही थीं[४] । दीपों से उनके मुखारविन्द प्रकाशमान थे । प्रत्येक गृह रोशनी से जगमगा रहा था ।"

इस अवसर पर जुआ खेलने की रीति का भी उल्लेख हुआ है--

---

१ द्रष्टव्य-- "इण्डिया" भाग२, पृ०१५५ ।

२ मन्मथराय : "प्राचीन लोकोत्सव", पृ०५५ ।

३ द्रष्टव्य-- "हमारे पर्व और त्योहार", पृ०६०

४ प्रेमचन्द : "मानसरोवर" भाग ६, पृ०२०६

'दीपमालिका अपनी अल्पजीवनी समाप्त कर चुकी थी । चोरों और जुआरियों के लिए यह शकुन की रात्रि थी, क्योंकि आज की हार साल भर की हार होती है । लक्ष्मी के आगमन की धूम थी । कौड़ियों पर अशर्फियाँ लुट रही थीं ... जीतने वाले अपने बच्चों को गोद में लेकर इनाम देते थे । हारने वाले अपनी रूष्ट और क्रोधित स्त्रियों से क्षमा प्रार्थना कर रहे थे ।[1]' इसी प्रकार सुदर्शन द्वारा लिखित '[illegible]' शीर्षक कहानी में भी दीपावली की रीतियों का वर्णन किया गया है । 'दीपावली की रात थी, पृथ्वी ने आकाश की छवि धारण की थी, जहाँ तक दृष्टि जाती थी, दीपकों के सिवा कुछ दिखायी न देता था, जैसे आकाश के तारों की गिनती नहीं । .... पूरनचन्द दिन-रात जुआ खेलता रहता था । दीपावली के दिन में तो उसे खाने पीने की भी सुध न रहती थी । दीपावली की रात को जब लक्ष्मी-पूजा हो चुकी तब वह दीपमाला देखने के बहाने घर से चला और जुए के अड्डे पर जा पहुँचा, किन्तु जाते ही सब कुछ हार गया ।[2]'

इस महान उत्सव के साथ द्यूत क्रीड़ा का सम्बन्ध कैसे जुड़ा, इस सम्बन्ध में खेलने के विधान की प्रामाणिकता में एक पौराणिक कथा का उल्लेख मिलता है । इस कथा के अनुसार धनतेरस से लेकर दीपावली तक असुर राज बलि का राज्य माना जाता है । अतएव लोग आसुरी प्रवृत्तियों को अनैतिक नहीं मानते । आसुरी प्रवृत्तियों में जुआ खेलना भी एक है । एक बार शंकर-पार्वती में द्यूत क्रीड़ा हुई, जिसमें भगवान शंकर सब कुछ हार गये, वे वल्कल वस्त्र धारण कर उदास मन गंगा तट पर बैठ गये । इस बात का पता जब स्वामी कार्तिकेय को चला, तब वे माता के पास समस्त वस्तुएँ वापस लेने गए, किन्तु पार्वती ने जुए में जीती वस्तुओं को देने से इनकार कर दिया, अतः स्वामी कार्तिकेय ने पार्वती से जुआ खेलकर सब कुछ जीत लिया । इससे पार्वती जी को महा दुःख हुआ और उन्होंने अपने प्रिय पुत्र गणेश से अपने मन की व्यथा कही । गणेश जी ने पार्वती जी से द्यूत विद्या सीखकर

---

1 प्रेमचन्द : 'मानसरोवर' भाग ६, पृ० २०६-२१३ ।

2 सुदर्शन : 'तीर्थयात्रा' - '[illegible]', पृ० [illegible] ।

स्वामी कार्तिकेय को हरा दिया । सामान पाकर पार्वती जी प्रसन्न हुईं किन्तु भगवान शंकर को न देख दु:खी भी हुईं ।

भगवान शंकर नारद और विष्णु सहित हरिद्वार में वास करते हुए पार्वती जी को हराने की योजना बना रहे थे । शंकर की आज्ञा से विष्णु पासा बने । इसी समय गणेश जी ने पहुंचकर भगवान शंकर से विनय की । शंकर जी चलने के लिए राजी हो गए, किन्तु शंकर के भक्त रावण ने बिल्ली बनकर गणेश के वाहन मूष को डरा दिया । वह गणेश को गिराकर भाग खड़ा हुआ । वे बड़े धीरे-धीरे चलने लगे । इधर शंकर ने नये पासा द्वारा सब कुछ जीत लिया । इसी समय प्रिय वत्स पुत्र गणेश ने नवीन पासा के रहस्य का उद्घाटन कर दिया । परिणामत: पार्वती ने क्रुद्ध होकर - शंकर को शाप दिया -- " तुम सदा गंगा की धारा का बोझ ढोते रहोगे ।" नारद को " तुम चुगली करते हो इसलिए किसी भी स्थान पर एक घड़ी जम कर न बैठ सकोगे " और विष्णु को यह शाप दिया "यही रावण तुम्हारा परम शत्रु होगा । तथा रावण को यह शाप दिया कि तुम्हारा विनाश यही विष्णु करेंगे । अन्ततोगत्वा अपने पुत्र स्वामी कार्तिकेय को भी नहीं छोड़ा । और उन्हें "तुम कभी भी जवान न होगे ।" का शाप दे ही दिया ।

नारद की अनुनय-विनय को स्वीकार कर पार्वती ने प्रसन्न होकर सभी को मनोवांछित वरदान दिया । भगवान शंकर ने यही मांगा कि "आज के दिन कार्तिक मास शुक्ल प्रतिपदा को द्यूत क्रीड़ा में जीतने वाला प्राणी वर्ष भर विजयी हो ।"[१] इस कथानक के आधार पर यही कहा जा सकता है कि उस महोत्सव में जीतने वाला व्यक्ति वर्ष भर विजयी रहने की अभिलाषा से ही द्यूत क्रीड़ा में भाग लेता है ।

<u>वसन्तोत्सव</u>

वसन्तोत्सव भारतवर्ष का प्राचीन ऋतु-उत्सव है । माघ मास शुक्ल पक्ष की पंचमी को श्री पंचमी या वसन्त पंचमी की संज्ञा प्रदान की गई है ।

---

१ द्रष्टव्य--हिन्दुओं के व्रत- पर्व और त्यौहार, पृ०८६-८८ ।

इस दिन देवी माँ सरस्वती, शक्ति और शिव की पूजा का विधान किया जाता है। जनवर्ग पूजन आदि से निवृत्त होकर नृत्य-गान में तल्लीन होता हुआ नवीन ऋतु का स्वागत करता है[१]। प्राचीन भारत में यही उत्सव सम्भवतः "मदन महोत्सव" के रूप में मनाया जाता था। जिसमें अनंग पूजा का विधान किया जाता था। इसका कारण यह है कि पुराणों में पंचमी और कामदेव-दोनों को परस्पर अनन्य मित्र तथा सहचर के रूप में वर्णित किया गया है। रति-काम की प्रार्थना में अपने दाम्पत्य एवं पारिवारिक जीवन को सुख-समृद्धि से परिपूर्ण करने की प्रार्थना की जाती है।

प्रेमचन्दयुगीन सुप्रसिद्ध कहानीकार जयशंकर "प्रसाद" ने वसन्तपंचमी या श्री पंचमी से सम्बद्ध वसन्तोत्सव का वर्णन "सालवती" शीर्षक कहानी में किया है। वसन्त की मंजरियों से पराग बरसने लगा। वैशाली के स्वतन्त्र नागरिक आमोद-प्रमोद में उन्मत्त हो उठे तथा कुल-पुत्रों के साथ वसन्तोत्सव के लिए,वनों-उपवनों में फैल गए। वसन्तोत्सव के प्रधान चिन्ह-स्वरूप दूर्वा और मधूक पुष्पों की सुरचित मालिका आदान-प्रदान तथा धारण किया जाने लगा। इस उत्सव को देखने के लिए दूर-दूर से आने वाले लोगों का वर्णन भी "प्रसाद" ने किया है --
"ये हैं मगध राज के महामन्त्री। वैशाली का वसन्तोत्सव देखने आये हैं।" इसी प्रसंग में अनंग-पूजा का भी संकेत किया गया है--तूर्यनाद सुनाई पड़ा। साथ में एक राजपुरुष उच्च कण्ठ से पुकारता था-- आज अनंग पूजा के लिए वज्जियों के संघ में [से] सबसे सुन्दरी चुनी जायगी। जिसको चुनाव में आना हो, संस्थागार में एक प्रहर के भीतर आ जाय।" इसके[२] पश्चात् आनन्दोल्लास और नृत्य गान आदि का वर्णन कहानीकार ने किया है।

विजयादशमी

विवेच्ययुगीन हिन्दी कहानी में, आश्विन शुक्ल पक्ष की दशमी को मनाया जाने वाला विजयादशमी अथवा दशहरा त्यौहार का वर्णन अधिक विस्तारपूर्वक किया गया है। यह हर्ष और उल्लास का उत्सव है, जो आश्विन

---

१ मन्मथराय :"प्राचीन लोकोत्सव",पृ०४७।
२ द्रष्टव्य --"इन्द्रजाल",पृ०१२०-२५।

शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से प्रारम्भ होकर दशमी को रावण के जल जाने पर समाप्त होता है । वस्तुत: यह पर्व एक स्मारक है, जो रावण पर राम की विजय का स्मरण दिलाता है । इसी दिन मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्री रामचन्द्र जी ने रावण पर विजय पाने के लिए प्रस्थान किया था । तभी से यह पवित्र तिथि "विजय" के नाम से विख्यात हुई और इस दिन को विजय-यात्रा के पर्व के रूप में मनाया जाने लगा । लोककथन है कि विजयादशमी को आरम्भ किया हुआ कार्य कभी असफल नहीं होता । इस उत्सव में मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम की लीलाएं तथा झांकियां प्रदर्शित की जाती हैं । यह परम्परा आधुनिक जन-जीवन में आज भी ज्यों-की-त्यों सुरक्षित है । रामनगर की रामलीला तथा प्रयागराज के रामदल की झांकियां आज भी प्रसिद्ध हैं । ज्वालादत्त शर्मा द्वारा लिखित "मालिनी" शीर्षक कहानी में इलाहाबाद के चौक में विजयादशमी के रामदल तथा मेले का सचित्र वर्णन करते हुए कहानीकार ने इसी मेले के बीच से कथानक को आगे बढ़ाने का सूत्र भी बड़ी ही कुशलता के साथ ढूंढ निकाला है[1] ।

इस पर्वोत्सव से सम्बद्ध रामलीला का भी वर्णन अनेक कहानियों में हुआ है । प्रेमचन्द की "रामलीला"[2] शीर्षक कहानी में[3] रामनगर की सुप्रसिद्ध लीला का सुन्दर वर्णन किया ही गया है । इसी प्रकार "आप-बीती" तथा जयशंकर "प्रसाद" की "विजया"[4] शीर्षक कहानियों में भी इस पर्व का उल्लेख किया गया है ।

विजया दशमी के दिन कहीं-कहीं जई (जवारा,जरई) खोंसने का भी प्रचलन है । आश्विन शुक्ल प्रतिपदा को लोग नवदुर्गा की पूजा हेतु कलश स्थापित करते हैं । इसी कलश के नीचे मृत्तिका में "जरई" या "जई" बोई जाती है, जो विजयादशमी के दिन प्रसाद रूप में ग्रहण की जाती है । इस रीति का वर्णन "ग्राम-गीत" शीर्षक कहानी में इस प्रकार किया गया है -- "विजया का त्योहार था, घर में गाना-बजाना

---

१ द्रष्टव्य --"गल्पमंजरी", पृ०५५-५८
२ ,, --"मानसरोवर" भाग ५, पृ०३६-३८
३ ,, -- ,, भाग ६, पृ०२१२
४ ,, --"आँधी", पृ०६३

हो रहा था । मैं अपनी श्रीमती के पास जा बैठा । उन्होंने कहा --सुनते हो ? मैंने कहा -- दोनों कानों से ।... कुछ समय पश्चात् मैं "हूं" कहकर बाहर जाने लगा, देखा तो रोहिणी जवारा लिए खड़ी है । मैंने सिर झुका दिया । यव की पतली पतली लम्बी धानी पत्तियां मेरे कानों से अटका दी गईं । मैं उसे बिना कुछ दिये बाहर चला आया ।"[1] विजया दशमी से सम्बन्धित यह प्रथा आज भी विद्यमान है । ब्राह्मण वर्ग जरई लेकर अपने यजमानों के यहां जाते हैं और उनके कानों में अटकाते हुए आशीर्वादात्मक मन्त्रों का उच्चारण भी करते हैं । इस सम्बन्ध में लोक-विश्वास है कि वर्ष पर्यन्त विजय की प्राप्ति तथा अमंगल का नाश होगा ।

व्रतोत्सव

लोकोत्सवों के समान ही भारतीय समाज में अनेक व्रतोत्सवों का भी महत्वपूर्ण स्थान है, जिनका वर्णन विवेच्ययुगीन कहानी में यत्र-तत्र उपलब्ध होता है। इन व्रतों एवं उनसे सम्बद्ध अनुष्ठानों पर यहां विचार किया जा रहा है । वस्तुत: व्रत एक प्रकार का संकल्प है,जो प्रत्येक मानव किसी उद्देश्य अथवा कामना से करता है । यद्यपि कामना रहित व्रत का महत्व अधिक है फिर आधुनिक युग में ऐसा व्रत कम ही दिखाई देता है । हिन्दुओं का प्रसिद्ध व्रतोत्सव कृष्ण जन्माष्टमी वास्तव में कामना रहित ही है, जिसका वर्णन कुछ अधिक विस्तार से विवेच्ययुगीन हिन्दी कहानी में हुआ है ।

जन्माष्टमी

प्रति वर्ष भाद्रपद मास की कृष्ण पक्ष की अष्टमी को,भगवान श्रीकृष्ण की जन्मतिथि के रूप में जन्माष्टमी मनाई जाती है । जन्माष्टमी के दिन व्रत रखने का नियम है । अर्द्धरात्रि में भगवान श्रीकृष्ण का जन्मोत्सव मनाया जाता है । इस अवसर पर श्रीकृष्ण की लीलाओं की भव्य झांकियां आज भी सजायी जाती हैं । मन्दिरों में तो यह उत्सव मनाया ही जाता है, इसके साथ-ही-साथ घर-गृहस्थ लोग भी अपने-अपने घरों में बड़े धूम-धाम के साथ इस उत्सव का आयोजन करते हैं ।प्रेमचन्द की "शांति" शीर्षक कहानी में इसका वर्णन इस प्रकार किया गया है--" भाद्र मास था।

---

१ द्रष्टव्य-- जयशंकर "प्रसाद" :"आंधी", पृ०८९-९० ।

जन्माष्टमी का त्यौहार आया । घर में सब लोगों ने व्रत रखा । मैंने भी सबकी भांति व्रत रखा । ठाकुर जी का जन्म रात्रि को बारह बजे होने वाला था, हम सब बैठी गाती-बजाती थीं ।"[1]

जन्माष्टमी के शुभ अवसर पर झांकी सजाने की परम्परा लोक-प्रचलित है, जिसका विस्तृत वर्णन प्रेमचन्द ने "झांकी"[2] शीर्षक कहानी में किया है । जहां झांकी सजायी जाती है, वहां छठी तक नित्यप्रति भजन-पूजन होता रहता है । अष्टमी के दिन तो निश्चितरूप से अर्द्धरात्रि पर्यन्त भजन गाये जाते हैं और जब ठीक बारह बजे कृष्ण-जन्म हो जाता है, तब बधाई या "बधैया" गीत आज भी गाया जाता है । श्री गोपाल नेवटिया की "मन्दिर की ओर" शीर्षक कहानी में इस परम्परा का यथातथ्य चित्रण किया गया है--- जन्माष्टमी का दिन था, मन्दिर में उत्सव हो रहा था, वहीं से "नन्द घर बाजे बधैया" की चिर-परिचित मधुर ध्वनि आ रही थी । मन्दिर में भक्त-जन भाव-विह्वल होकर चिरपरिचित लोकगीत गा रहे थे---

"नन्द के आनन्द भयो,
जय कन्हैया लाल की ।"[3]

आज भी जन्माष्टमी के शुभ अवसर पर कृष्ण-जन्म के उपरान्त यह गीत अवश्य ही गाया जाता है । ऐसा लगता है, कि बिना इस गीत के व्रतोत्सव पूर्ण ही न होगा ।

शिवरात्रि

भारतीय व्रतोत्सवों में महाशिवरात्रि का अपना विशिष्ट महत्व है । फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी के दिन यह उत्सव मनाया जाता है, इसे "शिव तेरस" भी कहते हैं। कदाचित फाल्गुन कृष्ण त्रयोदशी को भी लोकजीवन में इसे मनाया जाता है ।

---

१ द्रष्टव्य---"मानसरोवर" भाग ७, पृ०८५ तथा भाग ८, पृ०२५५-५६ ।

२ ,, --- ,, भाग १, पृ०१५६-५८ ।

३ ,, ---"दीपिका", पृ०५३-५८ ।

वैसे तो सभी शिवालयों[१] में बड़ी धूम-धाम से आज के दिन पूजन होता है, किन्तु भगवान् शिव के ज्योतिर्लिंग मन्दिरों में इस दिन बहुत बड़ा मेला लगता है, जिसमें देश के कोने-कोने से सहस्रों नर-नारी दर्शनार्थ आते हैं। पौराणिक कथन है कि शिव जी आशुतोष हैं, केवल भांग-धतूरा चढ़ाने तथा गाल बजाने से ही वह प्रसन्न हो जाते हैं। उनकी प्रसन्नता के लिए शिवरात्रि पावन पर्व है। जो भी व्यक्ति इस दिन निर्जला व्रत रखकर शिव का पूजन करता है और रात्रि भर जागरण करके सत्संग एवं शिव-कीर्तन करता है, वह शिव-धाम को प्राप्त करता है। भगवान शिव से सम्बन्धित अनेक लोकगीत प्रचलित हैं। विवेच्ययुगीन हिन्दी कहानी में शिवरात्रि से सम्बद्ध विभिन्न अनुष्ठानों का वर्णन किया गया है। उदाहरणार्थ ईश्वरीप्रसाद शर्मा की "वीर बालक" शीर्षक कहानी में प्रस्तुत व्रतोत्सव का विशद् वर्णन हुआ है -- "आज शिवरात्रि है। सवेरे से ही शिवजी के भक्तगण स्नान, संध्या कर शिव जी की पूजा-अर्चा करने में लगे हैं। महादेव के मंदिर में भोर से ही हजारों आदमियों की भीड़ नजर आने लगी। सूर्योदय होते-होते महादेव के मन्दिर के आस-पास बड़ा भारी बाजार बैठ गया।... मैं भी पूजा-अर्चा से निश्चिन्त हो मेले में चला। उस दिन मैंने व्रत किया था, इससे खाना-पीना तो था नहीं, सीधा घर बैठने से मेले में घूमना कहीं अच्छा है। वहां पहुंचकर देखा सड़क के दोनों ओर नाना प्रकार की वस्तुओं की दुकानें सजी हैं और बीच-बीच में टिड्डी दल की भांति मनुष्यों की आवा-जाही लगी है। बीच-बीच में कहीं रामायण गाई जा रही है, कहीं सितार और तबला बज रहा है... उधर सहस्र-सहस्र मनुष्य हाथ में जलपात्र लिए "शिव-शिव" कहते मन्दिर की ओर जाते और भक्तिपूर्ण हृदय से

---

१ सौराष्ट्रे सोमनाथं च श्री शैले मल्लिकार्जुनम् ।
उज्जयिन्यां महाकालमोंकारममलेश्वरम् ॥१॥
परल्यां वैद्यनाथं च डाकिन्यां भीमशंकरम् ।
सेतुबन्धे तु रामेशं नागेशं दारुकावने ॥२॥
वाराणस्यां तु विश्वेशं त्र्यम्बकं गौतमीतटे ।
हिमालये तु केदारं घुश्मेशं च शिवालये ॥३॥
एतानि ज्योतिर्लिंगानि सायं प्रातः पठेन्नरः ।
सप्तजन्मकृतं पापं स्मरणेन विनश्यति ॥४॥

— स्तोत्र रत्नावली, पृ०३९-४४

युत भगवान विश्वनाथ की पूजा करके लौटते हैं। रात को जब आठ बजे, तब देखा मन्दिर के सामने वाले सहन में, वेश्याओं[1] के नाचने का प्रबन्ध हो रहा है। चंदोवा ताना गया। गैस की रोशनी जलाई गई।"

<u>हरितालिका व्रत (तीज)</u>

भाद्रपद मास के शुक्ल पक्ष की तृतीया को हरितालिका अथवा तीज का व्रतोत्सव मनाया जाता है। यह सौभाग्यवर्द्धक तथा हिन्दू स्त्री समाज में अत्यधिक प्रचलित है। इस व्रत में स्त्रियां निर्जला व्रत रखकर, भगवान शंकर एवं पार्वती की उपासना करती हुई, अपने समस्त पापों के विनाश की प्रार्थना करते हुए, कुल, कुटुम्ब, पुत्र एवं पौत्रादि की कुशल कामना के साथ-साथ अहिवात की कामना करती हैं। इसमें स्त्रियां रातभर जागरण करती हुई भजन और गीत गाती हैं। लोक-प्रथा के अनुसार तीज के दिन नववधू के लिए, पूजन के निमित्त नवीन वस्त्र, फल-फूल मिठाई तथा सौभाग्य सूचक सामग्री ससुराल वाले अवश्य भेजते हैं। प्राय: इस पर्व पर स्त्रियां अपने मायके अवश्य जाती हैं। विवेच्ययुगीन हिन्दी कहानी में यत्र-तत्र, इस व्रतोत्सव से सम्बद्ध लौकिक रीतियों का भी वर्णन किया गया है। प्रेमचन्द की 'अभिलाषा' शीर्षक कहानी में इसका वर्णन इस रूप में मिलता है--
"मैंने तीजे का व्रत किया था। मैंने देवी के सम्मुख सिर झुकाकर वन्दना की थी-- देवि, मैं तुमसे केवल एक वरदान मांगती हूं। हम दोनों प्राणियों में कभी वियोग न हो और मुझे कोई अभिलाषा नहीं, मैं संसार की कोई वस्तु नहीं चाहती[2]। तबसे चार साल हो गए हैं और इनमें एक दिन के लिए भी विच्छेद नहीं हुआ।"

इसी प्रकार स्त्री के लिए इस दिन नवीन वस्त्र लाने की रीति का उल्लेख 'सती'[3] शीर्षक कहानी में हुआ है। इसी कहानी में इस व्रत से सम्बन्धित 'रतजगा' का भी वर्णन किया गया है। यह परम्परा आज भी विद्यमान है।

---

१ प्रेमचन्द--'गल्पमाला', पृ०१२-१५।

२ ,, --'मानसरोवर' भाग ४, पृ०८७।

३ ,, -- ,, ,, पृ०१९४-९५।

'झांकी'[1] शीर्षक कहानी में लोक-प्रचलित 'तीज' भेजने का उल्लेख किया गया है और यशपाल की 'पराई' शीर्षक कहानी में इससे सम्बद्ध अन्य रीतियों का वर्णन किया गया है, जो उल्लेखनीय है--'तीज का त्यौहार था । रिमझिम-रिमझिम पानी बरस रहा था । लड़के-लड़कियां, गांव की मनचली नई ब्याही हुई बहुएं नंबरदार के आंगन में लगे शहतूत के बड़े पेड़ पर झूला डालकर झूल रही थी और गीत गा रही थीं । रज्जी बहुत मनाने पर भी इस हर्षोल्लास में भाग नहीं लेती, क्योंकि आज मीठ पर उसका मायका है, परन्तु पहली तीज पर भी एक दिन के लिए उसे मायके न भेजा गया । उसका भाई आकर लौट गया । इसी बात का उसे दु:ख है । इसके विपरीत जब अपनी ननद धीरो का ब्याह हुए चार बरस हो चुका है, फिर भी वह हर वर्ष तीज पर मायके आती है, इस बार भी आई है ।'[2]

<u>करवा चौथ</u>

करवा चौथ व्रत का अनुष्ठान केवल स्त्रियां ही करती हैं । यह व्रत कार्तिक कृष्ण चतुर्थी को मनाया जाता है । सुहाग की रक्षा हेतु स्त्रियां शिव-पार्वती, गणेश तथा स्वामी कार्तिकेय की पूजा करने के पश्चात् रात्रि में चन्द्रमा को अर्घ्यदान देकर खुल जाती है । प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी कहानी में इसका भी उल्लेख किया गया है । उदाहरणार्थ 'चिड़ियार' शीर्षक कहानी में प्रस्तुत व्रतोत्सव से सम्बद्ध लोक-अनुष्ठान एवं रीतियों का सुन्दर वर्णन हुआ है । यथा-- आज करवा चौथ है । स्त्रियों ने सुहाग का व्रत रखा है । ठाकुर सिंह की पत्नी गुजरी ने भी व्रत रखा है । सुहागिन स्त्रियां अपने-अपने थालों में मिठाई, बादाम, घी के दीपक, रखकर सुहागन रानी की कथा सुनने जा रही थीं । आज इन्होंने सुहाग का व्रत रखा ह था । आज वह पति की मंगल कामना करने जा रही थीं । रात के साढ़े आठ बजे थे । करवा-चौथ का चांद निकलने में थोड़ी देर बाकी थी । हर मकान पर स्त्रियां खड़ी थीं

---

१ द्रष्टव्य-- 'मानसरोवर' भाग १, पृ०१९६ ।

२ यशपाल :'पराई कहानी' (नई कहानियां), पृ०१६५

और आसमान की तरफ देखती थीं कि चांद निकला है या नहीं ? चन्द्रदेव निकले चावल लेकर अर्घ्य दिया और हाथ बांध कर पति की दीर्घायु के लिए प्रार्थना की । तत्पश्चात् गड़ियां और कच्ची लस्सी से व्रत खोला ।[१]

रक्षा-बन्धन : श्रावणी

श्रावण की पूर्णिमा के दिन दो त्यौहार एक साथ ही होते हैं -- श्रावणी और रक्षा-बन्धन । इसे 'राखी' तथा 'सलौनो' भी कहते हैं । इस दिन बहनें अपने भाई के हाथ में अथवा पुरोहित तथा निर्धन ब्राह्मण अपने यजमानों के हाथ में 'राखी' बांधते हैं और दक्षिणा स्वरूप कुछ प्राप्त करते हैं । धर्म-ग्रन्थों के अनुसार श्रावणी को ब्रह्मचारी और द्विजों को करना चाहिए । इस दिन ब्राह्मण-वर्ग किसी जलाशय के निकट शास्त्रोक्त विधि के अनुसार सर्वप्रथम पंचगव्य(दूध,दही,घी,गोबर,गोमूत्र) द्वारा शरीर-शुद्धि करने के उपरान्त हवन-पूजन आदि करते हैं ।

श्रावणी की अपेक्षा रक्षा-बन्धन लोकवर्ग में अधिक प्रचलित एवं सर्वमान्य त्यौहार है । कहीं-कहीं इस अवसर पर कुछ लौकिक आचार भी सम्पन्न किए जाते हैं । पुराणों के अनुसार भगवान श्रीकृष्ण ने धर्मराज युधिष्ठिर को जो कथा सुनाई थी, उसी के आधार पर रक्षा-बन्धन त्यौहार आरम्भ हुआ । इस सम्बन्ध में यह भी ध्यातव्य है कि इस दिन जैन मतावलम्बियों में साधुओं,मुनियों, विशेषकर विष्णुकुमार की पूजा की जाती है, कथा पढ़ी जाती है[२] । इन दोनों ही मतों के अनुसार रक्षा-बन्धन इस लोक-विश्वास के साथ किया जाता है कि 'धर्म' पर दृढ़ रहने से कल्याण की प्राप्ति होगी ।' राखी का ऐतिहासिक महत्व भी कम नहीं है। रानी कर्मवती ने हुमायूं को राखी भेजी थी और हुमायूं ने भी भाई बनकर उसकी रक्षा का प्रयत्न किया था, इसी आधार पर सुप्रसिद्ध कहानीकार श्री वृन्दावनलाल वर्मा ने 'राखी बंद भाई' शीर्षक कहानी की रचना की है ।

द्विवेदीयुगीन कहानीकार विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' ने उपर्युक्त दोनों त्यौहारों का वर्णन इस प्रकार किया है -- 'श्रावणी की शुभ-वाम है ।

---

१ सुदर्शन : 'करवाचौथ', 'विकार', पृ०१९-२५ ।

२ द्रष्टव्य -- 'हिन्दुओं के व्रत पर्व और त्यौहार', पृ०७१
सम्पा० - सन्तोष कुमार

नगरवासी स्त्री-पुरुष बड़े आनन्द तथा उत्साह से श्रावणी का उत्सव मना रहे हैं। बहिनें भाइयों के और ब्राह्मण अपने यजमानों के राखियां बांध-बांध कर चांदी कर रहे हैं।[1] इस दिन प्रत्येक बहन अपने भाई के हाथ में राखी बांधती है और यह अपेक्षा रखती है कि आवश्यकता पड़ने पर वह उसकी रक्षा करेगा। प्रस्तुत कहानी में भी दस वर्षीया बालिका अपनी मां से राखी बांधने का आग्रह करती है, किन्तु उसका एकमात्र भाई घनश्याम बहुत पहले ही मां-बाप को छोड़कर चला गया था। बच्ची की बात सुनकर मां का हृदय व्याकुल हो उठता है, संयोगात् इसी शुभ त्यौहार के दिन बालिका का खोया हुआ भाई उसे मिल जाता है और वह 'भैया-भैया' कहती हुई अपने भाई से लिपट जाती है। कहानीकार ने कई वर्षों बाद पुनः श्रावणी एवं रक्षा-बन्धन का वर्णन करते हुए कहानी का अन्त इस प्रकार किया है --

'श्रावण का महीना है और श्रावणी का महोत्सव। घनश्यामदास की कोठी खूब सजाई गई है। घनश्याम अपने कमरे में बैठे एक पुस्तक पढ़ रहे हैं। इतने में एक दासी ने आकर कहा--'बाबा, भीतर चलो।' घनश्याम भीतर गये। माता ने उन्हें एक आसन पर बिठा दिया और उनकी भगिनी सरस्वती ने उनके तिलक लगाकर राखी बांधी।'[2]

वर्तमान समय में भी ब्राह्मण वर्ग में श्रावणी कर्म आज भी बहु-प्रचलित है। इसी प्रकार कनवजों में रक्षा-बन्धन का त्यौहार भी कनवजों में अत्यधिक प्रचलित है। इस दिन प्रत्येक बहन अपने भाई के हाथ में स्नेहसिक्त भाव से युक्त राखी बांधती है।

लोक-पर्व

व्रतोत्सवों के पश्चात् लोक-जीवन में लोकपर्वों का विशेष महत्व है। पर्व के माने हैं गांठ। जैसे बांस या ईख में समान दूरी पर गांठ होती है,

---

१ विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक': 'गल्प-मन्दिर', 'रक्षा-बन्धन', पृ०१

२ ,, ,, ,, ,, पृ०१५

इसी प्रकार समय की समान दूरी पर पर्व होते हैं । पर्व किसी मुख्य तिथि या ज्योतिष-गणना के अनुसार ग्रहों की विशेष स्थिति पर, जिसका संयोग किसी निर्दिष्ट समय में होता है, घूम-फिर कर बराबर आते हैं । जैसे कुम्भ-पर्व, संक्रान्ति इत्यादि । वैसे तो सारे व्रत और त्योहार भी पर्व ही हैं,क्योंकि ये सभी समय-चक्र के निर्धारित अंक हैं, लेकिन इनकी लौकिकता तथा मान्यता अलग-अलग है । विवेच्य-युगीन हिन्दी कहानीकारों ने यत्र-तत्र पर्वों का भी उल्लेख या वर्णन किया है । कभी-कभी तो कहानीकार इन्हीं के बीच से बड़ी कुशलता के साथ कथानक को आगे बढ़ाने का सूत्र भी ढूंढ़ लेता है ।

<u>कुम्भ-पर्व</u>

सम्पूर्ण भारतवर्ष में हिन्दुओं का यह सबसे बड़ा पुण्यदायिनी पर्व माना गया है । यह पर्व बारह वर्ष बाद पड़ता है । इसके लिए प्रयाग,हरिद्वार, नासिक और उज्जैन ये चार स्थान निर्दिष्ट हैं । महीने भर लोग गंगा किनारे झोंपड़ी बनाकर"कल्पवास" करते हैं । देश के कोने-कोने से लाखों स्नानार्थी इस अवसर पर संगम-स्नान करने आते हैं । जनगण का विश्वास है कि कुम्भ-पर्व के अवसर का स्नान जन्म-जन्मान्तर के पापों को धो डालता है । इसका भी एक कारण है । समुद्र-मन्थन के समय अमृत-घट निकलने पर देवासुरों में छीना-झपटी के फलस्वरूप अमृत की कुछ बूंदें इन चार स्थानों पर छलक कर गिर गयी थीं, जिसका प्रभाव इस अवसर के स्नान पर व्यक्ति के मनोभाव और शरीर पर प्रत्यक्ष रूप से होता है ।

यह वस्तुत: हमारे देश का प्राचीनतम पर्व है । इस पर्व[1] की विशालता और प्राचीनता का प्रमाण हमारे वेदों में सुरक्षित है । इन मंत्रों में "कुम्भ" शब्द का"कुम्भ पर्व" अर्थ विद्वानों ने अनुवाद के अनुरोध से किया है ।

---

१ जघान वृत्रं स्वधितिर्वनेव रुरोज पुरो अरदन्न सिन्धून् ।
बिभेद गिरिं नवमिन्न कुम्भमा गा इन्द्रो अकृणुत स्वयुग्भिः ।।
— ऋग्वेद १०।८९।७

अथर्ववेद के एक मन्त्र में कुम्भ के चार भेदों का भी उल्लेख है[१]। वेदों में कुम्भ पर्व अथवा कुम्भ की चर्चा केवल उसके उल्लेख से ही मिलती है, किन्तु पुराणों में तथा अन्य धार्मिक ग्रन्थों में कुम्भ पर्व से एक विचित्र कथा 'समुद्रमंथन' की मिलती है। द्विवेदीयुगीन[२] हिन्दी कहानी 'ईश्वरी न्याय' में कुम्भ का मात्र उल्लेख किया गया है।

गंगा दशहरा

'गंगादशहरा' का पर्व भी विशेषरूप से उल्लेखनीय है। इस अवसर पर काशी के मणिकर्णिका घाट का प्रस्तुत वर्णन द्रष्टव्य है--

'काशी के मणिकर्णिका घाट पर आज बड़ी भीड़ है। गंगा ही हिन्दुओं की इष्ट देवी है। भारतवासी गंगा की धारा देखकर क्षणमात्र के लिए संसार के समस्त कष्टों को भूल जाते हैं। सभी के मुंह से यह पवित्र वाक्य निकल रहा है-- बोलो बाबा विश्वनाथ की जय। कारण आज हिन्दुओं का पवित्र[३] त्योहार गंगा दशहरा है, इसीलिए गंगा-स्नान पर सभी मग्न हो रहे हैं।'

सोमवती अमावस्या

हिन्दू पर्वों में सोमवती अमावस्या का अपना एक विशिष्ट सांस्कृतिक महत्व है। यह पर्व प्राय: सोमवार को ही पड़ता है, इस तिथि पर व काशी, प्रयाग, गढ़मुक्तेश्वर आदि धार्मिक स्थानों पर स्त्री-पुरुषों का विशेषरूप से जमघट रहा करता है और जनगण सोमवती अमावस्या को एक महत्वपूर्ण पर्व मानते हैं। जो लोग उपर्युक्त धार्मिक स्थलों तक नहीं पहुंच पाते वे भी इस दिन किसी नदी अथवा सरोवर में ही स्नान एवं व्रत करते हैं। लोकविश्वासानुसार इस व्रत से सन्तान-सुख और धन-ऐश्वर्य सुख की उपलब्धि होती है। सौभाग्यवती स्त्रियां इस व्रत को अत्यधिक निष्ठा-पूर्वक करती हैं, क्योंकि उनका विश्वास है कि इस व्रत से उनके पति की आयु-वृद्धि होती

---

१ 'चतुर: कुम्भांश्चतुर्धा ददामि' -- अथर्ववेद ४।३४।७

२ प्रेमचन्द : 'मानसरोवर' भाग५,पृ०२५८

३ कुमारी मल्लिका : 'प्रतिभा'-'अवतार', नवम्बर १९१८,पृ०२४७ ।

राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह : 'कुसुमांजलि'-'मरीचिका', पृ०४३-४४ ।

है और असमय में ही वैधव्य से मुक्ति प्राप्त हो जाती है ।

इस सम्बन्ध में भविष्योत्तर पुराण की एक कथा उल्लेखनीय है, जिसमें सोमानाम की रजकी(धोबिन) प्रति सोमवती अमावस्या पर्व के समय अश्वत्थ(पीपल) में विष्णु पूजन पूर्वक एक सौ आठ फलादि सहित परिक्रमा करने वाली विष्णुभक्तिरता और पति-परायणा का उल्लेख आया है । इस व्रत के प्रभाव से वह परम सौभाग्ययुक्ता हो गई थी और इसी व्रत के प्रभाव से गुणवती नामक ब्राह्मण-पुत्री के मृत पति को पुनः जीवित कर देती है तथा इसी व्रत के प्रभाव से अपने पति और मृत-पुत्र आदि को भी जीवित करने में समर्थ होती है[1] । इसी आधार पर लोकजीवन में सोमवती अमावस्या का विशेष महत्व माना गया है और परम नीच जाति वाली सभी साधारण धोबिनें वैधव्य नाश करने वाली मान ली गई हैं । यही कारण है कि आज भी रजकी द्वारा विवाह के अवसर पर, कन्या को 'सोहाग' दिलाने की बहु प्रचलित रीति पाई जाती है, जिसका शुभ-विवाह में अपना एक विशिष्ट स्थान पाया जाता है ।

विवेच्ययुगीन कहानीकार डा० धनीराम 'प्रेम' द्वारा लिखित 'मातृमंदिर' शीर्षक कहानी में सोमवती अमावस्या का वर्णन किया गया है[2] । इसी प्रकार 'संक्रान्ति' जिसे लोकजीवन में 'सकुआ संक्रान्ति' भी कहा जाता है तथा ज्वालादत्त शर्मा द्वारा लिखित "भाग्य का फेर" शीर्षक कहानी में 'नवरात्रि' जैसे विशिष्ट पर्व का उल्लेख एवं वर्णन किया गया है[3][4] ।

इस रूप में विवेच्ययुगीन हिन्दी कहानी के अन्तर्गत भारतीय जनजीवन के व्रत, पर्व तथा लोकोत्सवों एवं उनसे सम्बद्ध अनुष्ठानों और रीतियों का भी वर्णन किया गया है । क्योंकि ये कहानीकार सामान्य जनवर्ग से सम्बद्ध थे, इन्होंने इन त्योहारों एवं पर्वों में उन्मुक्त हृदय से भाग लिया था, इसीलिए अपनी कहानियों में

---

१ द्रष्टव्य —'विवाहसौभाग्यविधिः'–'अथ रजकी द्वारा सौभाग्यदान प्रयोगः', पृ०२००-३।
  ,, —'हिन्दुओं के व्रत, पर्व और त्योहार', पृ०२७६-२७६ ।
२ ,, —'वल्लरी', पृ०४६-६१ ।
३ ,, —~~[illegible]~~ 'मानसरोवर' भा०८–'विश्वास', पृ०१७६-८० ।
४ ,, —'हिन्दी गल्प मंजरी', पृ०१३३-३५

यथास्थान उल्लेख तथा वर्णन भी किया है । सुशिक्षित सभ्य समाज में इन कुल-धर्म-उत्सवों का भले ही कोई महत्व न हो, किन्तु वर्तमान काल के वैज्ञानिक युग में भी लोक का प्राणी इनके प्रति आस्थाशील है ।

(२) रीति-रिवाज : लोकाचार

भारतीय जन-जीवन में, मुख्यरूप से हिन्दू समाज में व्यक्ति को समुन्नत और सुसंस्कृत बनाने के लिए जिन सोलह[१] संस्कारों की व्यवस्था मनु तथा व्यास द्वारा की गई है, इनमें से तीन विशेष महत्व के हैं --

(क) जन्म संस्कार ।

(ख) विवाह संस्कार ।

(ग) मृत्यु संस्कार अथवा अन्त्येष्टि क्रिया ।

इन शास्त्रीय संस्कारों से सम्बद्ध कुछ लौकिक रीतियाँ भी हैं, जो लोकाचारों पर निर्भर करती हैं । विवेच्ययुगीन हिन्दी कहानी में शास्त्रीय विधि-विधानों के साथ-साथ इन लोकाचारों का भी यथास्थान उल्लेख किया गया है । इन विविध प्रकार के लोकाचारों, अनुष्ठानों और प्रथाओं का विवेचन लोक के सांस्कृतिक अनुशीलन तथा लोकमानस की वास्तविक प्रवृत्ति ज्ञान के लिए आवश्यक है । हम देख चुके हैं कि उपर्युक्त तीन प्रमुख संस्कारों में से जन्म और मृत्यु का सम्बन्ध आदिम मानव की आश्चर्य वृत्ति से था, और विवाह आवश्यकता की दृष्टि से महत्वपूर्ण था, जिनका विवेचन प्रस्तुत प्रबन्ध में पूर्वखण्ड के अन्तर्गत किया जा चुका है ।

(क) जन्म संस्कार

भारतीय समाज में उच्च कुलोद्भव सुसंस्कृत लोगों में जन्म सम्बन्धी चार कर्म -- (१) जात कर्म, (२) नाम कर्म, (३) अन्न प्राशन और (४) चूड़ा कर्म -- सुसम्पन्न किए जाते हैं । ये चारों कर्म पौरोहित्य से सम्बन्धित हैं, जिनका

१"गौतम स्मृति" में चालीस संस्कार और अंगिरस स्मृति में पच्चीस संस्कार गिनाए गए हैं("[illegible]", पृ०१४)किन्तु प्रायः सोलह संस्कार ही हैं ।

(अगले पृष्ठ पर देखें)

सीधा सम्बन्ध शास्त्रीय पद्धति से है[1]। जन्म से सम्बद्ध इन शास्त्रीय विधानों के साथ-साथ लोकजीवन में कुछ लौकिक रीति-रिवाजों का भी प्रचलन है। ये लौकिक कर्म उपर्युक्त शास्त्रीय कर्मों के सहचारी तो होते हैं, किन्तु उनसे कुछ भिन्न होते हैं, जिनका लोकजीवन में पालन करना आवश्यक माना जाता है। पुत्र-जन्म से पूर्व सातवें महीने में गर्भवती स्त्री की 'साध' पूजी जाती है। लोक में इसी को 'गोद भरना', 'चौक बैठना' आदि भी कहा जाता है। पुत्र-जन्म के पश्चात् कलावन द्वारा 'नारि' काटी जाती है, फिर बधाई के गीत गाये जाते हैं और 'सोहर' की धूम मच जाती है। पुत्र-जन्म के छठें दिन जच्चा-बच्चा को स्नान कराया जाता है, जिसे 'छठी' कहते हैं। ब्रज-प्रदेश में जन्म और छठी के बीच 'चरुआ' रखने और 'सांतिये' रखने की प्रथा प्रचलित है। डा० सत्येन्द्र ने 'चरुआ' का वर्णन करते हुए लिखा है—'चरुआ' में बच्चे की दादी मिट्टी के घड़े पर गोबर के 'स्वस्तिक' लगाती है और उसी घड़े में जच्चा को पीने का पानी गरम करती है। कोरों पर गोबर के सांतिये बना रखती है[2]।" इसके बाद बारहवें दिन जच्चा-बच्चा को पुनः स्नान कराया जाता है, जिसे 'बरही' कहते हैं। 'बरही' के दिन घर-द्वार लीप-पोतकर स्वच्छ किया जाता है, 'सोहर' गाया जाता है, भोज-भण्डारा होता है। इसी के पश्चात् जच्चा शुद्ध हो जाती है। कहीं-कहीं बरही के बाद बीसवें दिन पुनः स्नान कराया जाता है, जिसे 'निकारा का नहान' कहते हैं और इसी नहान के बाद जच्चा की शुद्धि मानी जाती है। इसके बाद से जच्चा सौर-गृह के बाहर आने लगती है, किन्तु उसकी पूर्ण शुद्धता सवा माह पश्चात् मानी जाती है। इसी के पश्चात् कुलदेवी-देवताओं की पूजा कराई जाती है, फिर 'नामकरण' तथा 'मुण्डन' आदि संस्कार सम्पादित किए जाते हैं।

(पूर्व पृष्ठ की अवशिष्ट टिप्पणी)
सोलह संस्कार इस प्रकार हैं—(१) गर्भाधान, (२) पुंसवन, (३) सीमन्तोन्नयन, (४) जातकर्म, (५) नामकरण, (६) निष्क्रमण, (७) अन्नप्राशन, (८) चूडाकर्म, (९) कर्णवेध, (१०) उपनयन, (११) वेदारम्भ, (१२) समावर्तन, (१३) विवाह, (१४) वानप्रस्थ, (१५) सन्यास, (१६) अन्त्येष्टि।—'मनुस्मृति' २।१६ —'व्यास स्मृति', १।१५

१ एब जे० ए० डुबॉयस :'हिन्दू मैनर्स, कस्टम्स एंड सेरेमोनीज़', आक्सफोर्ड, १९०६, तृतीय संस्करण, पृ०१५६-५८।

२ डा० सत्येन्द्र—'ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन', पृ०१२०-१२१।

प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी कहानीकारों ने जन्म से सम्बन्धित विभिन्न शास्त्रीय विधानों के साथ-साथ लौकिक रीति-रिवाजों[1] का भी उल्लेख किया है। सुदर्शन द्वारा लिखित "पुनर्जन्म" शीर्षक कहानी में नामकरण, शिवरानी देवी की "जीवन"[2] में मुण्डन, श्री भारतीय की "मुनमुन" में मुण्डन तथा कर्णछेदन[3], हंसराज द्वारा लिखित "भवतारता"[4] में यज्ञोपवीत तथा प्रेमचन्द की "गृह-दाह"[5] कहानी में विद्यारम्भ आदि शास्त्रीय विधानों के उल्लेख के साथ-साथ लोक-प्रचलित लौकिक रीति-रिवाजों का भी उल्लेख किया गया है। पुत्र-जन्म के समय बधाई बजाना आज भी लोकजीवन में प्रचलित है। प्रेमचन्द की[6] "दूध का दाम" शीर्षक कहानी में गुरहू द्वारा बधाई बजाने का उल्लेख हुआ है। जन्म से ही संबंधित लोक-रीति "बरही" का उल्लेख "भिक्षा"[7], "स्वामिनी"[7(क)] तथा "लैलर"[8] आदि शीर्षक कहानियों में किया गया है।

लोकजीवन में जच्चा-बच्चा के लिए वस्त्राभूषण, खिलौने, फल मिठाइयों से सजे थालों को बाजा-गाजा के साथ ससुराल अथवा मायके से ले जाने की प्रथा वर्तमान समय में भी प्रचलित है। इसे "बधावा" कहते हैं। प्रेमचन्द की "माँ कड़ी" शीर्षक कहानी में बधावा का वर्णन इस प्रकार हुआ है -- "सुलोचना की कोख से पुत्री ने जन्म लिया, तो बड़े धूम-धाम के साथ प्रीतिभोज[9] का आयोजन किया गया। इसी अवसर पर गुलनार बधावा लेकर आती है।

---

१ द्रष्टव्य --"सुदर्शन सुधा", पृ०१२७

२ ,, --"कौमुदी", पृ०३१

३ ,, --"मधुकरी", भाग२, पृ०३०५-१३

४ ,, --"आदर्श कथा मंजरी", पृ०३४ ३८ ३७

५ ,, --"मानसरोवर" भाग ६, पृ०१७३

६ ,, -- ,, भाग २, पृ०१३

७ शिवरानी देवी : "कौमुदी", पृ०४४-४५

७(क)"मानसरोवर" भाग१, पृ०११८

८ ,, भाग ३, पृ०११२

९ द्रष्टव्य -- ,, भाग ६, पृ०४१।

लोकगीतों में जन्मोत्सव के अवसर पर प्रथासियों का नेग माँगना, भावज से ननद का झगड़ना आदि अनेक लोक-प्रथाओं का वर्णन बहुतायत से किया गया है। एक भोजपुरी गीत में ननद अपनी भावज से कहती है कि मैं तुम्हारे पुत्र होने पर मथिया, कुण्डी, हार, जौसन, हसुला, हंसुली, कंगना, कंठ और टीका आदि अनेक गहनों को उपहार (नेग) में लूँगी[1]। विवेच्ययुगीन 'जीवन' शीर्षक कहानी में दुखिया की ननद राधिया अपनी भावज से कहती है--'मैं भी एक भैंस और हाथ का कंगन लूँगी। अब नहीं छोड़ूँगी[2]।' और 'विधवा' में तो जब बरही के दिन भोज और उत्सव समाप्त हो गया तो ललिता ने सुखदा को गले लगा लिया और अपने गले का हार उसके गले में डालते हुए कहा--'इसे स्वीकार करो, बीबी[3]।' इसी प्रकार प्रेमचन्द की 'दूध का दाम' शीर्षक कहानी में प्रथाओं का झगड़न चित्रित है। उन्हें सोने के कड़े तथा सुन्दर साड़ियाँ देने का उल्लेख भी किया गया है[4]।

(ख) विवाह संस्कार

भारतीय जन-जीवन में जन्म के बाद दूसरा महत्वपूर्ण संस्कार विवाह है। इस संस्कार का मूल सम्भवतः जैसा कि शास्त्रों में कहा गया है कि काम-भावना को सीमित करने के लिए तथा व्यभिचार को नियंत्रित करने के लिए न होकर नवजात शिशु की असहायावस्था तथा विभिन्न आधि-व्याधियों के लिए माता व नवजात शिशु की रक्षा ही रही होगी। प्रसवावस्था के कठिन समय में अपने शिशु तथा अपनी संरक्षा हेतु स्त्री को अपने जीवन के लिए स्थायी साथी ढूँढने की चेष्टा करना पड़ा और सम्भवतः यही कारण विवाह के मूल में अति-प्राचीनकाल से ही रहे होंगे, जिसके कारण विवाह जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग बन गया[5]। बिना इस संस्कार के सम्पन्न हुए, कोई भी व्यक्ति न तो समाज में आदर

---

1 जाहु होरिलए भउजी होरिला होइहैं, लेबै आपन होरिला जोगनवा।
मथिया भी लेबौं, कुण्डी भी लेबौं, लेबौं बहुवा कंगनवा ।
कंठा भी लेबौं, टीका भी लेबौं, लेबौं सब सोना के गहनवा ।।
--भोजपुरी ग्राम गीत, भाग२, डा०कृष्णदेव उपाध्याय, पृ०७१
2 शिवरानी देवी : 'कौमुदी', पृ०३०
3 ,, ,, पृ०४५
4 प्रेमचन्द--'मानसरोवर' भाग२, पृ०२१२-१५
5 विनीताकान्ति वर्मा : 'भारतेन्दुयुगीन काव्य में लोक-तत्व' (अप्रकाशित)

की दृष्टि से देखा जाता है और न तो समाज के लिए ही उपयोगी होता है । अविवाहित व्यक्ति से किसी भी महत्वपूर्ण विषय पर किसी प्रकार का परामर्श नहीं लिया जाता और न तो उसे किसी प्रकार का उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य-भार ही सौंपा जाता है[1] । इस संस्कार से सम्बद्ध विविध प्रकार के कृत्यों एवं रीतियों को मुख्यत: दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है-- एक तो शास्त्रीय और दूसरी लौकिक । विवाह सम्बन्धी लोकाचारों की संख्या अत्यधिक है । विभिन्न प्रदेशों, जातियों और उनकी परम्पराओं के अनुसार इन लोकाचारों के रूप में भेद भी पाया जाता है, किन्तु लोकजीवन में इनका महत्वपूर्ण स्थान है ।

प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी कहानी में विवाह से सम्बद्ध विविध प्रकार के लोकाचारों का वर्णन किया गया है । लोकसंस्कृति की दृष्टि से दहेज प्रथा विशेषरूप से उल्लेखनीय है । लोकवार्ताविदों का अनुमान है कि आदिम तथा असंस्कृत जातियों में धन देकर वधू को खरीदने की प्रथा का दहेज प्रथा एक अवशिष्ट तत्व है । यह बात अलग है कि जहां पहले वरपक्ष धन देकर लड़की खरीदता था, वहां अब लड़की का पिता अपनी पुत्री के लिए धन देकर वर खरीदता है । यह परिवर्तन सभ्यता के विकासक्रम का ही परिणाम कहा जा सकता है । आज भी ग्रामीण तथा असभ्य जातियों में वरपक्ष ही लड़की के पिता को धन देकर विवाह द्वारा उसे पत्नीरूप में ग्रहण करता है । इसका प्रत्यक्ष उदाहरण इस प्रकार प्राप्त हुआ है कि प्रयाग के खटिकों में आज भी वरपक्ष लड़की की खोज करता है और लड़की के पिता को धन देकर विवाह कर लेता है । इसके विपरीत सभ्य तथा सुशिक्षित कहे जाने वाले समाज में कन्या पक्ष वाले वर पक्ष को दहेज देकर विवाह सम्पन्न करते हैं । यह रीति विवाह के पूर्व ही सम्पन्न की जाती है । वस्तुत: इस रीति का मुख्य उद्देश्य विवाह पक्का करना है । 'सगाई', 'फलदान' या 'वरच्छा' तथा 'तिलक' इसी प्रथा के भिन्न - भिन्न रूप माने जा सकते हैं । विवाह से सम्बद्ध यही सर्वप्रथम लोकप्रचलित रस्म है । स्थान-भेद के अनुसार इसी को 'ठहरौनी' भी कहते हैं । इसके अतिरिक्त विवाह से सम्बद्ध कुछ अन्य प्रमुख

---

१ ए बौबे एंड ब्यू पैम्प : 'हिन्दू मैनर्स कस्टम्स एण्ड सेरिमोनीज़', पृ०२०५

लौकिक रीतियों का उल्लेख प्रस्तुत प्रसंग में समीचीन होगा । 'वरच्छा' के पश्चात् 'लगन' रखी जाती है और फिर तिलक की रस्म निभाई जाती है, जिसका विशेष महत्त्व है । इसमें वर कन्या को ग्रहण करने की प्रतिज्ञा करता है[1] । कन्या पक्ष के लोग इस अवसर पर वर को सगुन की वस्तुओं सहित रुपया, वस्त्राभूषण, पात्र आदि भेंटस्वरूप प्रदान करते हैं । इसके पश्चात् ही वैवाहिक आचार तथा अनुष्ठान आरम्भ होते हैं, जिनमें द्वार-चार, चढ़ाव, कन्यादान, भाँवर, सिन्दूरदान, कलेवा, विदाई आदि प्रमुख हैं । उल्लेख्य है कि इन रीतियों के बीच कुछ अन्य छोटी-मोटी रीतियों का भी पालन किया जाता है, उदाहरणार्थ माल मेंथना, मण्डप छाना, तेल चढ़ना, विभिन्न देवी-देवताओं सहित कुल-देवताओं तथा कुआँ आदि पूजना, नहछू, नहावन, लार छुड़ाना आदि[2] ।

प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी कहानी में जहाँ कहीं भी विवाह का प्रसंग आया है, कहानीकारों ने उपर्युक्त लौकिक रीति-रिवाजों तथा इनसे सम्बद्ध लोकाचारों को अपनी कहानियों में वर्ण्य-विषय बनाया है । विवाह सम्बन्धी इन लोकाचारों पर विचार करते हुए विवेच्ययुगीन कहानी में वर्णित सर्वप्रथम ध्यान सगाई की रस्म की ओर जाता है । प्रेमचन्द द्वारा लिखित 'सद्गति'[3], 'अलग्योझा'[4], 'उपदेश'[5] तथा 'सुहाग'[6] आदि शीर्षक कहानियों में सगाई करने का उल्लेख हुआ है । इस अवसर पर बताशे बाँटना शुभ माना जाता है । वर्तमान समय में भी उत्तरप्रदेश तथा मध्यप्रदेश में सगाई के अवसर पर बताशे बाँटे जाते हैं और कुछ सगुन की वस्तुएं तथा वस्त्राभूषण देने की प्रथा है जिसका वर्णन 'सुहाग' शीर्षक कहानी में हुआ है । कृष्णानन्द गुप्त द्वारा लिखित 'ब्याह' शीर्षक कहानी में इस रीति का विशद् वर्णन किया गया है ।

'शिवदीन माली के दरवाजे बाजे बज रहे थे । आज उसके पुत्र हरिदास

---

1 'वाचा दत्ता मया कन्या पुत्रार्थं स्वीकृता मया ।
   वराकस्यै कन्यावेनी नि[illegible] त्वं सुखी भव ।।
   अथवा
   वरकन्या सुमंगिता वर्धं [illegible] ।
   [illegible] गुह्य धर्मिणी ।।—विवाहपद्धति, पृ०३८
2 विशेष अध्ययन के लिए द्रष्टव्य है— डा०सत्येन्द्र
   'ब्रजलोकसाहित्य का अध्ययन' आगरा, १९४९, पृ०१६०-१६५ तथा विद्यावती कोकिल कृत 'सोहाग गीत', इलाहाबाद, १९५१, पृ०३०-४०।
3 'मानसरोवर भाग४', पृ०१६
4 ,, भाग १, पृ०१
5 ,, भाग४, पृ०७०
6 'मानसरोवर' भाग ३, पृ०२५३ ।

की चोटी टूटेगी । सगाई गांव में हुई थी । बालक से लेकर वृद्ध तक और स्त्री से लेकर पुरुष तक दिनभर भाले के दरवाजे पर मौजूद थे । ...पुत्र की सगायी के समय भाले के घर एक-एक अंजलि बताशे बटेंगे, इसमें सन्देह नहीं था । इसीलिए सभी खुश थे ।"[1] इस अवसर पर कुछ सगुन की वस्तुएं दी जाती हैं, सम्भवत: इसीलिए इसे सगाई की संज्ञा लोकवर्ग में प्रदान की गई है । यह बात अलग है कि गरीब व्यक्ति "दो चार गज़ के वस्त्र के लिए कपड़े,उधार ले लिया और दो-चार भाई-बंदों के साथ सगाई करने जा पहुंचे ।"[2] और सगाई हो गई, किन्तु अमीर के यहां सगुन की वस्तुएं बहुत अधिक प्रदान की जाती हैं । आचार्य चतुरसेन शास्त्री द्वारा लिखित "बड़ाबकी" शीर्षक कहानी में --"ठाकुरों के घर में आज बहार थी । कुंवर साहब की सगाई चढ़ रही थी ।[3] हाथी,घोड़े,रथ,पालकियों का तांता लग रहा था । शहनाई बज रही थी ।" स्थान-भेद से इसी को फलदान या बरच्छा भी कहा जाता है ।

तिलक

बरच्छा के बाद "तिलक" की रस्म पूरी की जाती है । इसी को "टीका" भी कहा जाता है । प्रेमचन्द द्वारा लिखित[4] "बूढ़ी काकी" शीर्षक कहानी में इस रीति का विस्तृत वर्णन किया गया है ।

नहछू

तिलक के पश्चात् मण्डपच्छादन,हल्दी-तेल की रस्म पूरी की जाती है,तत्पश्चात् "नैहछू" की रीति निभाई जाती है ।"नैहछू" अथवा "नेहू" की लौकिक रीति आज भी उत्तरी भारत के सब प्राय: सभी प्रान्तों में दिल्ली से बिहार तक प्रचलित है । श्रीमती विद्यावती "कोकिल" के शब्दों में--"यह एक बहुत बढ़ी रीति है... इसी समय कई दिनों की "लगन" के बाद लड़की-लड़की नहलाये भी जाते हैं ।

---

१ द्रष्टव्य--"पुरस्कार",पृ०१०५-१०८
२ ,, --"मानसरोवर",भाग२,"सुजा",पृ०३५२ ।
३ ,, --"कहानी खत्म हो गई",पृ०७५
४ ,, --"मानसरोवर"भाग ८,पृ०१९५

कहार या बारी कहलाता है और नाउन नाखून काट कर बड़ी ही कलात्मकता के साथ'महावर' लगाती है । इसी समय सभी स्त्रियां न्यौछावर करती हैं ।[1]" इस रीति में होने वाले चित्ताकर्षक लोकाचारों का वर्णन श्रीमती शिवरानी देवी ने अपनी 'अनोखा ब्याह' शीर्षक कहानी में किया है । नहछू होते समय एक स्त्री हंसकर बोली -- लाला, ठीक से ससुराल जाना । देखो वहां की स्त्रियां मजाक करेंगी । सोच समझकर जवाब देना ।

गंगाधीन हंसकर बोले -- सब को देख लूंगा । क्या लड़का हूं ? दरजी ने आकर जोड़ा पहनाया और अपना नेग ले गया । चमार ने जूते पहनाये । माली ने माला गले में डाली । बूढ़ी बुआ ने काजल लगाकर सावा सुन्दर बना दिया और बोली-- बेटा, मेरी भी नेग दे जो ।

'बुआ, जो गाड़ रखी है, वह मुझे दे दो, तो मैं तेरी बहू पर न्यौछावर करता जाऊंगा ।[2]' इसके बाद ही वर बारात सहित कन्या के घर की ओर प्रस्थान करता है, जिसे लोक में'बारात बिदा करना'या'वर को बिदा करना' कहते हैं । इस रीति का वर्णन प्रेमचन्द ने 'स्वत्वरक्षा' शीर्षक कहानी में किया है-- वर वस्त्राभूषण पहने घोड़े की प्रतीक्षा कर रहा था । मोहल्ले की स्त्रियां उसे बिदा करने के लिए आरती लिए खड़ी थीं ।... वर ज्यों ही घोड़े पर सवार हुआ, स्त्रियों ने मंगल गान किया, फूलों की वर्षा हुई ।.. पंडित जी ने कहा -- 'जल्दी कीजिए नहीं तो मुहूर्त टल जायगा ।[3]'

द्वारचार -- जब वर बारात लेकर गाजे-बाजे के साथ कन्या के द्वार पर पहुंचता है, तभी 'द्वारचार' की रीति सम्पन्न की जाती है, जिसमें वर तथा कन्या का पिता अथवा भाई देवताओं आदि का पूजन करते हैं । कन्या का पिता वर के स्वागतार्थ नारियल और कुछ द्रव्य तथा[4] वस्त्राभूषण प्रदान करता है । इसका उल्लेख 'दो सखियां' शीर्षक कहानी में हुआ है । इस रीति के सम्पन्न करने के बाद वर बारात सहित

---

१ द्रष्टव्य--'सोहाग गीत', पृ०१८ ।   २ द्रष्टव्य, 'कौमुदी', पृ०२१५

३ ,, --'मानसरोवर' भाग ८, पृ०१८६-८८

४ ,, -- ,, भाग ४, पृ०२१८

वनवास कहा जाता है । इसका वर्णन शिवरानी द्वारा लिखित 'विश्वास'[1] शीर्षक कहानी में हुआ है ।

चढ़ावा

मण्डप के नीचे वर के समान ही वधू का मङ्गल-नहावन तथा महावर की रीति सम्पन्न की जाती है, तत्पश्चात् विवाह की तैयारियां होने लगती हैं, जिसमें सर्वप्रथम 'चढ़ाव' चढ़ाया जाता है । इसी को लोक में 'डाल' चढ़ाना भी कहा जाता है । इस रीति के अनुसार वर पक्ष की ओर से कन्या के लिए वस्त्राभूषण तथा सौभाग्य-शगुन की लाई गई सभी वस्तुएं मण्डप के नीचे कन्या के हाथ में दे दी जाती हैं । यदि आभूषण कम होता है तो वरपक्ष की निन्दा स्त्रियों द्वारा मण्डप में की जाती है । इस अवसर पर गाली गाने की भी प्रथा है, जिसमें वर पक्ष की मीठी चुटकी ली जाती है । प्रेमचन्द द्वारा लिखित 'दो सखियां' शीर्षक कहानी में प्रस्तुत रीति का वर्णन इस प्रकार हुआ है-- 'जनवासे से गहनों और कपड़ों का डाल आया है... कोई कहता है-- कपड़ा तो लाए बढ़ ही नहीं, कोई हार के नाम को रोता है... वरपक्ष वालों की दिल खोलकर निन्दा होने लगी[2] ।' इसी रीति का वर्णन 'धिक्कार'[3] शीर्षक कहानी में भी हुआ है ।

कन्या-दान

चढ़ावा के बाद विवाह प्रारम्भ हो जाता है, जिसमें कन्यादान विशेष महत्व का है । वस्तुतः यह कृत्य शास्त्रीय परम्परा के रूप में गृहीत है, किन्तु भाई द्वारा जल-धार छोड़ना, कन्या-दान करने वाले को व्रत रखना लोकरीति से ही सम्बद्ध जान पड़ती है, जिसका उल्लेख प्रेमचन्द की 'गिला'[3(क)] और 'प्रसाद' की 'आंधी'[4] शीर्षक कहानी में उपलब्ध है ।

---

१ द्रष्टव्य--'कौमुदी', पृ०१३०
२ ,, --'मानसरोवर' भाग५, पृ०२१८
३ ,, -- ,, ,,१, पृ०२०४
३(क) ,,-- ,, ,, पृ०३२१
४ ,,-- 'आंधी' पृ०७

मांवर

"मांवर" या "मंवरी" की रीति भी आज शास्त्रीय प्रथा के रूप में गृहीत है । "मनुस्मृति" में इसका उल्लेख "सप्तपदी" के नाम से मिलता है । सप्तपदी के सातवें मण्डल में पग रखने ही से कन्या का कन्यापन छूट कर उसमें स्त्रीत्वभाव पूर्ण रूप से पूरा हो जाता है[1] । लोक में भी सात मांवरें घूमने की प्रथा, विवाह सम्बन्धी कृत्यों में आवश्यक है । कुछ विद्वानों ने इस बात की सम्भावना व्यक्त की है कि पहले यह लोक कृत्य ही था, जिसका कालान्तर में शास्त्रीय करण किया गया । वर के पीछे-पीछे चलने की क्रिया, वस्तुत: इस बात का प्रतीक है कि वधू प्रत्येक कार्यों में पति का अनुसरण करेगी और किसी क्रिया को प्रतीक रूप में ग्रहण कर लेना लोक-मानस के लिए अति स्वाभाविक है[2] । विवेच्ययुगीन कहानी में इस रीति का भी उल्लेख मिलता है । प्रेमचन्द की "बिद्रोही"[3] शीर्षक कहानी में इस रीति का उल्लेख तथा वर्णन किया है ।

सिन्दूरदान

मांवर के पश्चात् वैवाहिक कृत्यों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण लोकरीति सिन्दूरदान की है । इस रीति में वर कन्या के मांग को सिन्दूर से भरता है । सिन्दूर पड़ने के बाद लड़की विवाहिता मान ली जाती है । विवेच्ययुगीन "सुधारक" शीर्षक कहानी में इस रीति का वर्णन निम्नलिखित प्रकार से हुआ है --

"अमीरों की शादी थी, पहिले ही से बड़ी धूम मच गई । ... विवाह मण्डप में, पीढ़े पर बैठा-बैठा जीवन जरा -जरा सी बात पर झुंभला उठता था । कन्या ने उसके हाथ में सेंदुर की डिबिया दी गई । किसी तरह झुंभला कर जीवन

---

१ पाणिग्रहणिका मन्त्रा नियतं दार लक्षणम् ।
तेषां निष्ठा तु विज्ञेया विद्वद्भिः सप्तमे पदे ।।--"मनुस्मृति" अ०८, श्लोक२२७
-- "[illegible]" भाग [illegible], पृ० [illegible]
२ डा० [illegible] वर्मा : "भारतेन्दुयुगीन काव्य में लोकतत्व", पृ०५८-५९(अमुद्रित)
३ द्रष्टव्य -- "मानसरोवर", भाग२, पृ०११६ ।

उठा । औरतें सिर से पैर तक लाल कपड़े से ढंकी, वधू की मांग खोलने का उपक्रम करने लगीं । जीवन ने कसकर आँखें बन्द कर ली और अंधों की तरह जहां तहां स उसकी मांग में सेंदुर डाल कर बैठ गया ।"[1] नृत्यशास्त्रियों ने सिन्दूरदान की इस प्रथा को हरण-विवाह-प्रथा का अवशेष माना है । इनके अनुसार सिंदूर का प्रतीक यह है कि वर ने वधू का सिर फोड़कर उसे वश में कर लिया है और वह उसके आधीन हो गयी है । इस प्रकार सेंदुर लड़की के पति के अधिकार में होने का सूचक है ।[2]

कोहबर-गमन

विवाह सम्पन्न होने के बाद वर और वधू कोहबर जाते हैं, जहां कुछ अन्य लौकिक कृत्य सम्पादित किए जाते हैं । द्विवेदीयुगीन कहानी में इस रीति का मात्र उल्लेख 'नि:स्वार्थ प्रेम'[3] शीर्षक कहानी में हुआ है, अन्यथा कोहबर की अन्य रीतियों का वर्णन उपलब्ध नहीं होता ।

विदाई

कोहबर-गमन के बाद वैवाहिक कृत्य प्राय: समाप्त हो जाते हैं और उसी दिन अथवा दूसरे दिन लड़की की विदाई की जाती है । यह प्रथा 'डोली' के नाम से भी लोक में प्रसिद्ध है । विदाई के अवसर पर कन्या अपने माता-पिता, भाई-बन्धुओं के गले लगकर रोती है । कन्या की विदाई का यह दृश्य बड़ा ही करुणो-त्पादक होता है । लोकगीतों में भी इस दृश्य का बड़ा ही कारुणिक चित्रण किया गया है । एक भोजपुरी लोकगीत में माता, पिता, भाई सभी विह्वल होकर

---

१ कुमारी मालती वर्मा : 'मालती माला', पृ०११८

२ विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य-- डाल्टन कृत 'डिस्क्रिप्टिव एथनालाजी ऑफ बंगाल'।

३ ईश्वरी प्रसाद शर्मा : 'मनमाला', पृ०२३ ।

रोते दिखाए गए हैं । परन्तु माधव के आंखों में आँसू की एक बूंद भी नहीं है[1]।
विदाई के अवसर पर कन्या एवं कन्या पक्ष के लोगों का रोना एक प्रथा का रूप
धारण कर चुका है । विवेच्ययुगीन "बेटों वाली विधवा"[2], "विध्वंस"[3], "दो सखियां"[4],
"उन्माद"[5], "जीवन-पथ"[6] तथा "धोखा"[7] आदि शीर्षक कहानियों में इस प्रथा का उल्लेख
एवं वर्णन हुआ है । दुर्गाप्रसाद खत्री द्वारा लिखित "कैदी" शीर्षक कहानी में
विदाई के अवसर का जो चित्र खींचा गया है, वह लोकगीतों से काफी साम्य
रखता है-- वैवाहिक कृत्य समाप्त हो चुके हैं । विदाई की बेला आ पहुंची और
लक्ष्मी पागलों की तरह रो रही है । उसकी मां ने अपनी आंखों के आंसुओं को
रोकते हुए, स्नेहमय शब्दों में कहा --"रो मत बेटी । मैं बहुत जल्द तुम्हें वापस
बुला लूंगी ।" पड़ोस की स्त्रियों ने उसे तरह-तरह के उपदेश दिए और सुखी होने
का आशीर्वाद दिया । लक्ष्मी की मां की आंसू भरी आंखें पालकी की ओर तब तक
ताकती रहीं, जब तक वह टेढ़ी-मेढ़ी पगडंडियों पर पेड़ों की झुरमुट में छिप न गई ।

---

१ "केकरा के रोवले गंगा बाढ़ि अइली,
केकरा के रोवले अन्होर ।
केकरा के रोवले चरन धोती भीजे,
केकरा नयनवा ना लोर ।
बाबा के रोवले गंगा बाढ़ि अइली,
आमा के रोवले अन्होर ।
भइया के रोवले चरन, धोती भीजे,
भउजी नयनवां न लोर ।।"
--डा० कृष्णदेव उपाध्याय : "भोजपुरी ग्रामगीत", भाग १, पृ० १११ ।

२ प्रेमचन्द : "मानसरोवर" भाग १, पृ० ७४

३ शिवरानी देवी : "कौमुदी", पृ० १३४

४ प्रेमचन्द : "मानसरोवर" भाग ४, पृ० २२८

५ ,, : ,, भाग २, पृ० १३४

६ कुमारी मालती वर्मा : "मालती माला", पृ० ५४

७ प्रेमचन्द : "मानसरोवर" भाग ६, पृ० ११७

.... एक दीर्घ नि:श्वास छोड़कर वह घर के भीतर गई ।... और बिछौने पर पड़ तकिये में मुंह छिपाकर फूट-फूट कर रोने लगी ।`[1]

अन्य रीतियां

कन्या जब विदा होकर अपने ससुराल पहुंचती है तब वर के गृह में मंगल गाने के साथ-साथ कुछ लोकाचारों का सम्पादन किया जाता है । इन लोकाचारों के सम्पादन में `मुंह दिखाई`, `बधाई गाना` आदि प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं । प्रेमचन्दयुगीन कहानी में इन लोकाचारों के उल्लेख तथा वर्णन को छोड़ा नहीं गया है । प्रेमचन्द द्वारा लिखित `अलग्योझा` शीर्षक कहानी में जब `तीसरे दिन मुलिया मैके से आ गई[2] । दरवाजे पर नगाड़े बजे, शहनाइयों की मधुर ध्वनि आकाश में गूंजने लगी`। इस अवसर पर घर के बाहर ही नहीं, बल्कि घर के भीतर भी मंगल गीत गाना आवश्यक होता है —`चौबे जी के घर[3] मंगल गान हो रहा था, क्योंकि विन्ध्येश्वरी आज बहू बनकर इस घर में आई है`। `मंगलगान के साथ[4] ही मुंह दिखाई की रस्म पूरी की जाती है`। प्रेमचन्द द्वारा लिखित `दो सखियां`, `अलग्योझा` तथा `घर जमाई`[5] आदि शीर्षक कहानियों में इस रीति का उल्लेख किया गया है । इस रीति के अनुसार गांव-घर की स्त्रियां बहू का मुंह देखती हैं और उपहारस्वरूप उसे कुछ देती हैं । वस्तुत: इस रीति के मूल में वरपक्ष की सम्मति तथा उत्सुकता की भावना - बहू कैसी है? - ही निहित जान पड़ती है ।

(ग) मृत्यु संस्कार अथवा अन्त्येष्टि क्रिया

भारतीय जन-जीवन में तीसरा महत्वपूर्ण संस्कार अन्त्येष्टि अथवा मृतक संस्कार है । विवेच्ययुगीन हिन्दी कहानी में मृत्यु तथा उससे सम्बद्ध

---

१ द्रष्टव्य— `माया`, पृ०१९५-९६
२ प्रेमचन्द : `मानसरोवर भाग १ – `अलग्योझा`, पृ०७४-५
३ ,, : ,, भाग ४– `मुक्त`, पृ०१८५ ।
४ ,, : ,, भाग३, पृ०२१७ ।
५ ,, : ,, भाग१, पृ०१३६

लोकाचारों का उल्लेख नाममात्र के लिए किया गया है । मरणासन्न व्यक्ति द्वारा गोदान कराना, उसे चारपाई से नीचे लिटाना, अर्थी सजाना या शव यात्रा, कंधा देना, श्मशान, मातम पुरसी करना अथवा मुकाम देना, पिंडदान, श्राद्ध-क्रिया इत्यादि लौकिक तथा शास्त्रीय रीतियों का, कथा के प्रवाह में ,मात्र उल्लेख किया गया है । ऐसे अवसर पर लोक-जीवन में किए जाने वाले लोकाचारों का वर्णन बहुत कम हुआ । सम्भवत: इसका कारण यह है कि मानव की चित्तवृत्ति हर्षोल्लास के वातावरण में ही अधिक रमती है, किन्तु जैसे ही दु:खद दृश्य उसके समक्ष आता है कि वह छटपटाहट से व्याकुल हो यथाशीघ्र उस वातावरण से अपने को मुक्त करने के लिए व्याकुल हो जाता है । यह होते हुए भी विवेच्ययुगीन कहानी में अन्त्येष्टि क्रिया से सम्बद्ध जिन लोकाचारों का यत्र-तत्र उल्लेख हुआ है, उसका विवरण नीचे दिया जा रहा है—

गोदान

लोक में मरणासन्न व्यक्ति के हाथ से गोदान कराने की प्रथा बहुत व्यापक है । जन-जीवन में लोक-विश्वास है कि गाय की पूंछ यदि अंतिम योग्य व्यक्ति को पकड़ा दिया जाय तो वह तर जाता है , वैतरणी पार हो जाता है । बुन्देलखण्ड में किसी व्यक्ति से किसी अपराध अथवा पाप को स्वीकार कराने के लिए गाय की पूंछ पकड़ाई जाती है । विश्वास किया जाता है कि गाय की पूंछ पकड़ने पर व्यक्ति कैसा भी पतित हो, झूठ बोलने का साहस नहीं करेगा । यदि उनसे प्रश्न किया जाय कि भाई ऐसा क्यों करते हो तो भोले-भाले लोग कुछ न कह सकेंगे विवेचन से दूर अपना विश्वास प्रकट करेंगे, अपनी परम्परा की दुहाई देंगे । इस सम्बन्ध में प्राय: एक कथा कही जाती है, जिसमें भगवान विष्णु ने गऊ को शाप दिया है कि तेरा मुंह[१] अपवित्र रहेगा ,किन्तु तेरी पूंछ में सब प्रकार की पवित्रता का वास रहेगा । यही सत्य लोकजीवन में उतर कर मरणासन्न व्यक्ति

---

१ डा० पूरनचन्द्र श्रीवास्तव : "बुन्देलखण्ड की लोकसंस्कृति और जीवन", पृ०१४३-४५

को स्वर्ग पहुंचाने में सहायक होता है । गऊ के पूंछ की यही पवित्रता प्राणी को असत्य बोलने से रोकती है । उसके भय का कारण बनती है ।

विवेच्ययुगीन "सुभागी" शीर्षक कहानी में कहानीकार प्रेमचन्द ने इस प्रथा का उल्लेख किया है । मरणासन्न तुलसी महतो से सजनसिंह ने कहा-- राम् को बुलाकर लाता हूं । उससे जो भूल-चूक हुई हो क्षमा कर दो, किन्तु महतो उसका मुंह भी नहीं देखना चाहता । उसके बाद गोदान की तैयारी होने लगी[1] । इसी प्रकार मरणासन्न मंगला ने अपने पति पंडित सीतानाथ चौबे से, साल के भीतर विन्नी का विवाह करने की बात कही और पंडित जी ने आश्वासन देते हुए कहा कर दूंगा । उसके बाद गोदान की तैयारी होने लगी[2] ।

मरणासन्न को जमीन देना

लोकजीवन में यह भी देखा जाता है कि मरणासन्न व्यक्ति को चारपाई से उतार कर जमीन पर लेटा दिया जाता है । सम्भवत: यह लोकाचार इस बात की सूचना देता है कि अमुक व्यक्ति जिस लोक से आया था, उसी लोक को पुन: जाने वाला है, अतएव उसे पृथ्वी पर लिटा देना चाहिए, क्योंकि वह इसी पृथ्वी पर आया था । प्रेमचन्द ने अपनी "बैर का अन्त" शीर्षक कहानी में इस लोकाचार का दो बार उल्लेख किया है[3] ।

विवेच्ययुगीन हिन्दी कहानी में अन्त्येष्टि संस्कार से सम्बद्ध अन्य लोकाचारों--"अर्थी सजाना"[4], "शव धोना"[5], "कंधा देना"[6], "शव पड़े रहने पर गांव

----
१ द्रष्टव्य-- "मानसरोवर" भाग१, पृ०२५५
२ प्रेमचन्द : "मानसरोवर" भाग४- "सुभागी", पृ०१७९
३ द्रष्टव्य-- "मानसरोवर" भाग ७, पृ०२०६ तथा २११
४ प्रेमचन्द : "मानसरोवर" भाग२- "बेटी", पृ०९५-९६
५ ,, : ,, ,,४ - "प्रायश्चित", पृ०३०२ "मृत्यु के पीछे", मा०भा०६, पृ०१२४
६ ,, : ,, ,, - "भाइयों की होली", पृ०१६८ तथा मोहनसिंह सेंगर : "वर्षों के बाद" - "प्रतिनिधि कहानियां", पृ०१२५
७ ,, : ,, ,, ४- "सद्गति", पृ०२५

घातों का पानी न पीना'[1], 'मातम पुरसी'[2] आदि विभिन्न लोकाचारों का उल्लेख मात्र किया गया है। शव पड़े रहने पर गांव में पानी नहीं पिया जाता। इस लोकाचार का वर्णन प्रेमचन्द ने इस प्रकार किया है--' पंडित घासीराम की लकड़ी चीरते-चीरते दुखिया चमार जब चल बसा, तो 'एक क्षण में गांव भर में खबर हो गई। पुर में ब्राह्मणों की ही बस्ती थी। केवल एक घर गोंड़ का था। लोगों ने उधर का रास्ता छोड़ दिया। कुएं का रास्ता उधर ही से था, पानी कैसे भरा जाय। चमार की लाश के पास से होकर पानी भरने कौन जाये। एक बुढ़िया ने पंडित[3] से कहा-- अब मुर्दा फेंकवाते क्यों नहीं। कोई गांव में पानी पीयेगा या नहीं।'

<u>दाह-संस्कार</u>

दाह-संस्कार का वर्णन अत्यधिक बार हुआ है। यह संस्कार न केवल भारत में बल्कि ग्रेट ब्रिटेन, जर्मनी, डेनमार्क आदि विभिन्न देशों में प्रचलित है। वहां मृत शरीर के अग्नि संस्कार गृह (क्रामेटोरियम) विद्यमान हैं[4]। प्रेमचन्द द्वारा लिखित 'सुभागी'[5], 'बैंक का दिवाला'[6], 'बहिष्कार'[7], 'लांछन'[8], 'प्रायश्चित'[9]

१। प्रेमचन्द : 'मानसरोवर' भाग ४ -'सद्गति', पृ०२५
२ ,, : ,, भाग २ -'वेश्या', पृ०४० तथा भाग ५ --'लांछन', पृ०१४०
३। द्रष्टव्य--'हंस', वर्ष १, अंक६, अगस्त१९३०, अग्निसंस्कार -'मुक्तमंजूषा' शीर्षक से पृ०४७
४। द्रष्टव्य--'मानसरोवर' भाग १, पृ०२४४
५ ,, -- ,, भाग ७, पृ०११६
६ ,, -- ,, भाग ५, पृ०११०
७ ,, -- ,, ,, पृ०१३८
८ ,, -- ,, ,, २०६
९

तथा प्रफुल्लचन्द्र ओझा 'मुक्त' की 'चितामस्म'[1] और 'वैरागी'[2], दुर्गाप्रसाद खत्री की 'शीर्षक हीन'[3], जयशंकर 'प्रसाद' की 'गुदड़ी में लाल'[4] तथा 'पाप की पराजय'[5] आदि कहानियों में इस संस्कार का वर्णन किया गया है।

पिण्डदान : गया श्राद्ध

श्राद्ध संस्कार से सम्बद्ध पिण्डदान तथा गया श्राद्ध की रीतियाँ मूलतः शास्त्रीय मानी गई हैं, किन्तु जैसा कि रिवर्स आदि विद्वानों का मत है कि आदिम जातियों के बीच यह विचार बहुत दृढ़ है कि जीव मर कर नष्ट नहीं होता, वरन् वह दूसरे लोक में चला जाता है। वह लोक इसी संसार के समान है। अतः मृतकों को वहां भी उन्हीं वस्तुओं की आवश्यकता पड़ती है। इस दृष्टि से तर्पण, पिंडदान तथा श्राद्धादिकों में जल देने के मूल में भी लोकमानस का यही विश्वास माना जा सकता है कि इससे मृतक तृप्त होते हैं। विवेच्ययुगीन कहानी में पिंडदान का उल्लेख प्रेमचन्द द्वारा लिखित 'प्रायश्चित'[6] शीर्षक कहानी में हुआ है।

अन्त्येष्टि संस्कारों से सम्बद्ध श्राद्ध में गया श्राद्ध का विशेष महत्व स्वीकार किया गया है। प्रेमचन्द ने इसका भी उल्लेख 'दुर्गा'[7] का मन्दिर' तथा 'अमावस्या'[8] की रात्रि' शीर्षक कहानियों में किया है। इस संस्कार से सम्बद्ध एक लोकरीति-विशेष का वर्णन प्रेमचन्द ने किया है। लोक प्राणी का विश्वास है कि पूर्वजों

---

१ द्रष्टव्य--'शैलपत्र', पृ०४५-४६
२ ,, -- ,, पृ०७७
३ ,, --'माया', पृ०१०८
४ ,, --'प्रतिध्वनि', पृ०१६
५ ,, -- ,, पृ०२६
६ ,, --'मानसरोवर' भाग ५, पृ०३१०
७ ,, -- ,, ,, पृ०१८३
८ ,, -- ,, ,, ६ पृ०२१५

के ऋण का बिना भुगतान किए गया श्राद्ध नहीं किया जा सकता । 'अमावस्या की रात्रि' शीर्षक कहानी में रामनगर का नवयुवक ठाकुर अपने पूर्वजों का श्राद्ध करना चाहता था, इसलिए आवश्यक था कि उनके जिम्मे जो कुछ ऋण हो, उसकी एक-एक कौड़ी चुका दी जाय । ठाकुर को पूर्वजों के पुराने बहीखाते में पच्चीस सहस्र रुपयों का ऋण दिखायी दिया । ठाकुर मय ब्याज के पचहत्तर हजार ऋण का रुपया पंडित देवदत्त को सौंप कर कहता है-- आशीर्वाद दीजिए कि हमारे पूर्वजों का मोक्ष हो जाय ।

(३) लोक प्रथाएं

प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी कहानी में भारतीय जनजीवन की कुछ लोक-प्रथाओं का भी वर्णन हुआ है, जिनमें से कुछ का सम्बन्ध इस देश की मध्यकालीन संस्कृति से है । वर्तमान समय में ये प्रथाएं या तो समाप्त हो चुकी हैं या समाप्तप्राय हैं ।

सती प्रथा

यहां पर सर्वप्रथम 'सती प्रथा' पर विचार किया जा रहा है । प्राचीन भारत में सती प्रथा प्रचलित थी, जिसका चरमोत्कर्ष भारतीय इतिहास के राजपूत युग में पाया जाता है । प्राचीनकाल में पति के प्रति प्रगाढ़ प्रेम प्रेम से अभिभूत होकर स्त्रियां पति की मृत्यु के उपरान्त, उसके शव के साथ सती हो जाया करती थीं । राजपूतों में यह प्रथा अत्यधिक लोकप्रिय थी । राजपूत स्त्रियां इस प्रथा का पालन करते हुए न केवल गर्व का अनुभव करती थीं, बल्कि वे इसे अपना धर्म एवं कर्तव्य भी समझती थीं । सती होते समय वे सुहागन स्त्री के समान अपना श्रृंगार कर अग्नि में प्रवेश करती थी । इस प्रथा का प्राचीन उल्लेख 'हर्षचरित' में मिलता है । 'हर्ष चरित' में हर्ष की माता अग्नि में जल मरती है । इसी प्रकार हर्षकृत 'प्रियदर्शिका' में विन्ध्यकेतु की स्त्री के सती होने का वर्णन मिलता है । इतिहासकार अलबेरूनी ने भी अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'इण्डिका' में इस प्रथा का वर्णन करते हुए लिखा है

कि " पति की मृत्यु के बाद स्त्रियाँ दूसरा विवाह नहीं कर सकती थीं । उनके लिए दो ही मार्ग थे-- एक तो आजीवन वैधव्य व्यतीत करें या जल मरें... राजाओं की स्त्रियों को तो उनकी इच्छा के अनुकूल अथवा प्रतिकूल सती होना ही पड़ता था ।"[1]

इस प्राचीन,सती प्रथा का वर्णन लोकगीतों में भी मिलता है । इन गीतों में सती का स्वरूप अत्यन्त भव्य और दिव्य रूप में चित्रित किया गया है । पति के स्वर्गारोहण का समाचार सुनते ही स्त्री उसकी चिता सजाती है और अपना शृंगार कर धधकती हुई अग्नि में प्रवेश कर, उसी की लपटों के साथ स्वयं भी स्वर्ग चली जाती है । विशेषता तो इस बात में है कि सती होते समय इन्हें लौकिक अग्नि की आवश्यकता ही नहीं पड़ती । उनके सतीत्व के प्रताप से ही 'कुकुरी' में अग्नि की लपटें निकलने लगती हैं और वे पति के साथ जलकर सती हो जाती हैं ।[2]

विवेच्ययुगीन हिन्दी कहानी में भी लोकगीतों के समान ही सती प्रथा का अति सुन्दर वर्णन किया गया है । उदाहरणार्थ प्रेमचन्द द्वारा लिखित 'पाप का अग्नि कुण्ड' शीर्षक कहानी में सती प्रथा का वर्णन इस प्रकार हुआ है-- "राजनन्दिनी के पति धर्मसिंह की हत्या पृथ्वी सिंह ने कर दी--"अब राजनन्दिनी सती होने जा रही है । उसने सोलहों शृंगार किए हैं और मांग मोतियों से भरवाई है । कलाई में सोहाग का कंगन है, पैर में महावर लगाई है और लाल चुनरी ओढ़ी है । उसके अंगों से सुगन्धि उड़ रही है,क्योंकि आज वह सती होने जा रही है ।

राजनन्दिनी का चेहरा सूर्य की भांति प्रकाशमान है, उसकी ओर देखने से आंखों में चकाचौंध लग जाती है । प्रेममद से उसका रोयाँ-रोयाँ मस्त हो गया है, उसकी आंखों से अलौकिक प्रकाश निकल रहा है । वह आज स्वर्ग की देवी जान पड़ती है । उसकी चाल बड़ी मदमाती है । वह अपने प्यारे पति का सिर

---

१ अलबेरूनी :"इण्डिया",भाग२,पृ०१५५ ।

२ "बब इन चतुर आगि आगे गइलें,
कुकुरी से निकले अंगरवा हू हे भी ।
लौटि चलली नारि जरता हूरे भी ॥
-- डा०कृष्णदेव उपाध्याय : "भोजपुरी ग्रामगीत"भाग१,पृ०३४५ ।

अपनी गोद में लेती है और उस चिता पर बैठ जाती है, जो चन्दन, घृत आदि से बनाई गई है। सारे नगर के लोग यह दृश्य देखने के लिए उमड़े चले आ रहे हैं। बाजे बज रहे हैं, पुष्पों की वृष्टि हो रही है। सती चिता पर बैठ चुकी है। ... एकाएक चिता में आग लग गई। जयजयकार के शब्द गूंजने लगे ... थोड़ी देर में वह राख के ढेर के सिवा और कुछ न रहा[1]। इसी प्रकार 'सती'[2] शीर्षक कहानी में भी इस प्रथा का बहुत ही सुन्दर चित्रण हुआ है और 'शाप'[3] शीर्षक कहानी में तो एक डाकू की स्त्री भी सती होती हुई चित्रित की गई है।

लोकगीतों के वर्णन के अनुरूप ही 'कान्ता' शीर्षक कहानी में कल्याणी नगर के राजकुमार कर्ण ने पतिपरायणा कान्ता को कारावद्ध करके उसका सतीत्व नष्ट करना चाहा, किन्तु कान्ता के दृढ़ व्यक्तित्व के समक्ष जब सफल न हो सका, तब कर्ण के आदेशानुसार उसकी दूती तरला ने कान्ता को उसके पति की मृत्यु का झूठा समाचार दिया। फलस्वरूप कान्ता ने अपने सतीत्व के प्रभाव से बिना अग्नि के ही चिता प्रज्वलित कर भस्म हो गई[4]।

लोकगीतों में सती होने की इस भावना का आरोप पशुओं में भी किया गया है। कोई हिरनी शिकारी से निवेदन करती हुई कहती है कि तुम हिरन का मांस भले ही ले लो, परन्तु उसके हाड़ को मुझे दे देना, जिसे लेकर मैं सती हो जाऊं -- कहते हैं

'हाड़ लेके सती होइबी, बैठि जमुना के तीर[5]।।'

प्रस्तुत गीत की पंक्ति ही इस बात को सूचित करती है कि लोकजीवन में सतीप्रथा का कितना महत्व एवं आदर था।

---

१ द्रष्टव्य-- 'मानसरोवर' भाग ६, पृ०१३७-३८।

२ प्रेमचन्द : 'मानसरोवर' भाग ५, पृ०८३-८५
(अ) द्रष्टव्य-- आचार्य चतुरसेन शास्त्री : 'भीतर-बाहर' - 'सती रानी', पृ०१४२-४३।

३ प्रेमचन्द : 'मानसरोवर' भाग ६, पृ०७५।

४ श्रीमती कमलरानी पं० रामगोपाल : कान्ता - 'नवजीवन', अप्रैल-मई, १९१४, पृ०६६-६८

५ डा० कृष्णदेव उपाध्याय : 'भोजपुरी [illegible] लोकसाहित्य का अध्ययन', पृ०२५२

जौहर प्रथा

मध्ययुगीन क्षात्रिय जीवन में 'सती प्रथा' के समान ही जल मरने की एक प्रथा और भी प्रचलित थी, जिसे जौहर प्रथा कहते हैं। क्षात्रिय सेनानी रण में पीठ दिखाना न जानते थे। वे केसरिया बाना पहन कर जब रणभूमि में उतरते तब या तो विजयश्री प्राप्त करके ही लौटते अथवा लड़ते-लड़ते युद्ध स्थल में प्राण त्याग देते थे और उनकी स्त्रियाँ राजभवनों में चिता सजाकर सामूहिकरूप से जल मरती थीं। इस सामूहिक सतीप्रथा को ही 'जौहर' की संज्ञा प्राप्त है। ए०जी० शेरिफ ने 'जौहर' को वह 'सामूहिक आत्महत्या' कहा है, जिसके द्वारा राजपूत सिपाही रणस्थल में और उनकी स्त्रियाँ चिता की ज्वाला में अपना प्राणान्त कर देती थीं[1]।

द्विवेदीयुगीन कहानीकार आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने 'राजपूतनी की राख' शीर्षक कहानी में चित्तौड़ की अद्वितीय सुन्दरी महारानी पद्मिनी के चौदह सहस्र क्षत्राणियों के साथ जौहर व्रत लेने का सुन्दर वर्णन किया है। उसके रूप का लोभी क्रूर सुल्तान अलाउद्दीन ने रक्तरंजित तलवार लेकर जब रंगमहलों में प्रवेश किया तो उसे राजपूतनी की राख ही मिल सकी[2]।

इसी प्रकार रूपनारायण पाण्डेय द्वारा लिखित 'उच्च:चाउ-चरित्र' शीर्षक कहानी में प्रतिशोध की भावना से प्रेरित गुर्जर राज बहादुर खाँ ने विक्रमजित के राज्य पर चढ़ाई कर दी। युद्ध में पराजय की स्थिति आने पर राठौर कुमारि राजरानी जौहर बाई ने वीरों का वेश धारण कर शत्रुओं के नाक में दम कर दिया। अन्त में युद्धस्थल में ही अनन्त निद्रा में लीन हो गई। अब

---

१ ए०जी०शेरिफ : 'पद्मावती' (कलकत्ता) १९४४ ई०, पृ०२९।

२ द्रष्टव्य—'तुलसा मैं कासे कहूँ', पृ०८७-९६।

तब म्लेच्छों की सेना आगे बढ़ी । सत्तू और दूदू नामक दो चन्द्रावत वंशीय वीरों ने मार्ग रोका, किन्तु असफल रहे । फलस्वरूपवीरवर अर्जुनहार की भगिनी एवं राज-माता कर्णवती तेरह हजार राजपूत ललनाओं के साथ जौहर व्रत लेने का वर्णन हुआ है[1] ।

दिव्य प्रथा

प्राचीनकाल से ही भारतवर्ष में दिव्य की प्रथा अत्यधिक प्रचलित थी । चोरी, ऋण, सीमा निर्धारण, भूमिदान इत्यादि विभिन्न अपराधों में अपराधियों का निर्णय करने के लिए "दिव्य" का प्रयोग किया जाता था । इस क्रिया के अनुसार जब किसी अपराधी के निर्णय में साक्ष्य, लिखित प्रमाण आदि साधारण साधन असफल हो जाते थे तो अलौकिक साधनों का प्रयोग किया जाता था । इन्हीं अलौकिक साधनों के होने के कारण ही इन्हें "दिव्य" कहा जाता है । नारद ने लिखा है कि जब किसी विवाद में साक्षी न मिले[1] तो भिन्न-भिन्न प्रकार से दिव्य और शपथ के द्वारा उसका निर्णय करना चाहिए ।

कुछ आचार्यों ने दिव्य और शपथ को दो भिन्न क्रियाएं माना है । उनके अनुसार दिव्य द्वारा तत्क्षण निर्णय लिया जाता है, परन्तु शपथ के द्वारा अधिक समय लगता है । परन्तु व्यास ने[2] दोनों को एक ही माना है और दिव्य के लिए "शपथ" शब्द का प्रयोग किया है । दिव्य के लिए ग्राम गीतों में "किरिया लेना" शब्द का प्रयोग किया गया है । जो सम्भवत: संस्कृत शब्द "दैविकी" क्रिया का अपभ्रंश रूप है[3] । धीरे-धीरे "दैवी" शब्द का लोप हो गया और "क्रिया" शब्द को "किरिया" रूप में परिवर्तित कर लोक ने ग्रहण कर लिया । भोजपुरी भाषा में शपथ खाने के लिए "किरिया लेना" या "किरिया खाना" शब्द बहु प्रचलित है । वर्तमान युग में अपनी बात को प्रामाणिक सिद्ध करने के लिए सौगंध खाने की जो प्रथा चल पड़ी है, वह इसी से उद्भूत मानी जा सकती है, जिसका वर्णन प्रस्तुत प्रबन्ध में "लोकविश्वास" के अन्तर्गत "सौगंध खाना" शीर्षक में किया गया है । "नारद की स्मृति"

---

1 "यदा साक्षी न विद्येत, विवादे वदतां नृणाम्, तदा दिव्यैः परीक्षेत शपथैश्च पृथग्विधैः" "नारद स्मृति" ७।२४७ ।
2 "स्मृति चन्द्रिका-- २ पृ०११ में व्यासका उद्धरण
3 पं०रामनरेश त्रिपाठी : "कविता कौमुदी" भाग५, (ग्रामगीत) प्रका० "हिन्दी मंदिर, प्रयाग

के अनुसार प्रस्तुत दिव्य क्रिया[1] का प्रयोग किसी स्त्री के सतीत्व में सन्देह होने पर भी किया जा सकता है । लोकगीतों में भी सतीत्व की शुद्धता प्रमाणित करने के लिए विभिन्न प्रकार के दिव्यों का प्रयोग मिलता है, उदाहरणार्थ-- अग्नि को हाथ में लेना और उसे बुझा देना, सूर्य को हाथ में लेकर उसे अस्त कर देना, सर्प को पकड़ना और उसके दंश से बच जाना गंगा जल को[2] हाथ में लेकर उसे सुखा देना और तुलसी को हाथ में लेना तथा उसका सूख जाना । कहीं-कहीं खौलते हुए तेल के कड़ाहे के शीतल होने से भी चरित्र की शुद्धता प्रमाणित करने का उल्लेख पाया जाता है । अग्नि दिव्य अर्थात् अग्नि में प्रविष्ट होने और बिना जले ही उसमें से सकुशल बाहर निकल आने का विश्वास तो सर्वाधिक प्रचलित रहा है ।

प्राचीनभारत की इस विचित्र प्रथा का तीन रूपों में या विविध रूपों में वर्णन या उल्लेख द्विवेदीयुगीन कहानी में हुआ है ।

(अ) मूल रूप ।

(ब) परिवर्तित रूप ।

(स) विकसित रूप ।

(अ) मूलरूप-- श्री नाथूराम "प्रेमी" ने "दिव्य" के मूल रूप का ही प्रयोग अपनी "कुणाल" शीर्षक कहानी में किया है । युवराज कुणाल को नेत्रहीन देखकर महाराज अशोक शोकावेग में जब यह कहते हैं कि ऐसे सुन्दर नेत्र जिसके नष्ट किए हैं, क्या वह अपने नेत्र अक्षत रख सकता है ? तब सात्विकी वेश धारण किये हुआ युवराज कुणाल मधुरहास्य विकीर्ण करताहुआ कहता है कि मेरे नेत्रों को निकलवा कर यदि माता को संतोष हुआ है, तो उनके सन्तोष[3] से ही मैं फिर नेत्र पा लूंगा और उसी समय उसे नेत्र व प्राप्त हो जाते हैं ।

श्री विश्वम्भर की बुढ़िया कुसुम नाम से लिखने वाली लेखिका ने "कुलटा कुमारी" शीर्षक कहानी में दिव्य का वर्णन किया है । प्रस्तुत कहानी में पतिपरायणा कुमारी कड़ाहे के पास जाकर प्रसन्नमुख कहती है कि यदि इस भावक को छोड़कर और किसी अन्य पुरुष से मेरा संसर्ग न हुआ हो, तो तप्त तेल मेरे

---

१ द्रष्टव्य-- "नारद स्मृति" ३।२८२

२ डा० कृष्णदेव उपाध्याय : "भोजपुरी ग्राम गीत", पृ०१६७ ।

३ द्रष्टव्य--"गल्पपारिजात", सम्पा०सुदर्शन, पृ०१७३ ।

लिए शीतल सलिल के समान हो जाय । यह कहते ही तप्त तेल शीतल जल के समान हो गया[1] ।

(ख) परिवर्तित रूप

द्विवेदीयुगीन कहानी में इस प्रथा का वर्णन यत्किंचित् परिवर्तन के साथ भी हुआ है । प्रेमचन्द द्वारा लिखित 'राजा हरदौल' शीर्षक कहानी में बुन्देलखण्ड के ओरछा-नरेश राजा जुझार सिंह को अपनी रानी कुलीना तथा छोटे भाई राजा हरदौल के सम्बन्ध में अनुचित सन्देह उत्पन्न हो जाता है । इस बात का पता चलते ही कुलीना रोती हुई कहती है—'मैं आपके इस सन्देह को कैसे दूर करूं ? राजा बोले —'हरदौल के खून से ...'। देखो, इस पानदान में पान का बीड़ा रखा है, तुम्हारे सतीत्व की परीक्षा यही है कि तुम हरदौल को इसे अपने हाथों से खिला दो । मेरे मन का भ्रम उसी समय निकलेगा, जब इस घर से हरदौल की लाश निकलेगी । ... रानी सोचने लगी— क्या निर्दोष सच्चरित्र वीर हरदौल की जान लेकर अपने सतीत्व की परीक्षा दूं ? जो मुझे बहन समझता है । इस बात का पता चलते ही पाक्षिक कुमार हरदौल का हृदय 'एक निर्दोष और सती अबला के लिए अपने शरीर का खून देने के लिए' मचल उठा और दूसरे दिन शिकार का बहाना लेकर स्वयं जुझार सिंह से बीड़ा लेकर मुंह में रख लिया । इस प्रकार कहानीकार ने अन्त में 'उजेले और अंधेरे का मिलाप हो गया था'— वाक्य के द्वारा इस बात का संकेत दे दिया है कि हरदौल पवित्र तथा रानी सती है । वास्तविकता सामने थी, सन्देह दूर हो चुका था[2] ।

दिव्य का एक अन्य परिवर्तित रूप मोहनलाल महतो 'वियोगी' द्वारा लिखित 'कुरूपा' शीर्षक कहानी में मिलता है । कंचनराय अपनी कुरूपा भार्या से किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रखते । अनुनय-विनय के पश्चात् उसे राजा का जूठन खाने भर का अधिकार मिल सका है । सती-साध्वी उसी में संतुष्ट

---

१ द्रष्टव्य—'कथाकुंज' संवत् १९८९, पृ०३६ ।

२ ,, —'मानसरोवर' भाग ६, पृ०२२-२६ ।

है । प्रेमपूर्वक राजन् का जूठन खाती हुई एक दिन उसने सुना कि राजा ने विषपान किया है । वह व्याकुल होकर राजा के समीप पहुंची । शैय्या के नीचे स्वर्णपात्र में थोड़ा सा हलाहल विष रखा था, मानों जूठन छोड़ा गया हो । रानी ने देखा कि राजा का प्राणहीन शरीर शैय्या के एक भाग में पड़ा है । उसने हाथ जोड़कर कहा-- 'देव ! चरणों तक पहुंचने का सौभाग्य आज तक दासी को न मिला । अतः अब इस समय में आपकी पवित्र देह को छूना अक्षम्य अपराध होगा । मैं इसकी अधिकारिणी नहीं । हां, आपका जूठन खाने का दासी को अधिकार है । अतएव आज अंतिम बार आपका पवित्र प्रसाद पाकर मैं अपना जीवन धन्य करना चाहती हूं ।' इतना कहकर सती रानी ने बचे हुए विष को उठाकर ज्यों ही पीना चाहा, त्यों ही शैय्या से उठकर राजा ने उसके हाथों से विषपात्र छीनकर फेंक दिया और उसे अपनी भुजाओं में बांध लिया ।[१]

कहने की आवश्यकता नहीं कि उपर्युक्त कहानी में सती नारी के सत की परीक्षा का ही प्रकारान्तर से वर्णन किया गया है, जिसमें सफल होने के कारण ही राजा उसे हृदय से लगाता है ।

(स) विकसित रूप

ऊपर कहा जा चुका है कि प्राचीनकाल में दिव्य अथवा शपथ का प्रयोग न्याय संबंधी मामलों में ही नहीं किया जाता था, बल्कि साधारण परिस्थितियों में अपनी बात को प्रामाणिक सिद्ध करने के लिए भी किया जाता था । वर्तमान युग में इसी से विकसित एक नवीन प्रथा चल पड़ी है-- सौगन्ध खाने की । बात-बात में अपनी बात को सत्य प्रमाणित करने के लिए लोग अपने प्रिय वस्तु की सौगन्ध खाने लगते हैं । न केवल असभ्य या अर्द्ध सभ्य बल्कि पढ़े-लिखे सुसभ्य कहे जाने वाले समाज में भी 'बाई गाड', 'बाई फादर' आदि कहना 'फैशन' बन गया है और कचहरियों में तो बिना शपथ दिलाए किसी गवाह की गवाही तक नहीं ली जाती ।

विवेच्ययुगीन हिन्दी कहानी में 'दैविकी क्रिया' के अन्तर्गत 'क्रिया'

[illegible]

१ प्रसाद -- 'रेखा', पृ०३१-३३ ।

अर्थात् "किरिया खाना" की प्रथा से विकसित सौगंध खाने की प्रथा का अत्यधिक उल्लेख हुआ है। स्वयं प्रेमचन्द की कहानियों में ही--"भवानी की सौगंध है जो पण्डित बैजदत्त ने आपकी निन्दा की हो"[1], "हमारा ही लहू पिए जो खाने न उठे"[2], "आँखों की कसम"[3], "कसम कुरान शरीफ की"[4] इत्यादि सैकड़ों उदाहरण भरे पड़े हैं। लोक-प्राणी का विश्वास है कि वह झूठी सौगंध खाने से दैवी कोप का भाजन बनना पड़ता है। इस विश्वास के मूल में आदिम मानव-मानस की भयप्रवृत्ति निहित है। यही कारण है कि प्रेमचन्द द्वारा लिखित "पशु से मनुष्य" शीर्षक कहानी का पात्र डाक्टर मेहरा के बाग का माली दुर्गा फलों की चोरी करने के पश्चात् "गंगा-तुलसी" लेकर सौगंध खाने से मुकर जाता है[5]। निश्चय ही पवित्र जल की शपथ खाना "जलदिव्य" का ही परिवर्तित रूप है।

अवधेय है कि सौगंध खाने वाला व्यक्ति जिस धर्म का मानने वाला होता है, उसी के अनुरूप धार्मिक आस्था एवं विश्वास के आधार पर "किरिया" खाता है और लोगों का उसपर विश्वास भी हो जाता है। फलस्वरूप सौगंध खाने वाले को निरपराधी मानकर मुक्त भी कर दिया जाता है। प्रेमचन्दयुगीन कहानीकार प्रतापनारायण श्रीवास्तव द्वारा लिखित "आशीर्वाद"[6] शीर्षक कहानी में भद्रपुरुष इसी आधार पर मुसलमान-युवक को मुक्त कर देता है। इसी प्रकार "कौशिक" की "अशिक्षित हृदय"[7], कृष्णानन्द गुप्त की "अपराधी"[8] तथा जयशंकर "प्रसाद" की "आकाशदीप"[9] आदि शीर्षक कहानियों में भी इसी प्रथा का वर्णन किया गया है।

---

१ द्रष्टव्य-- "मानसरोवर" भाग६-"पछतावा", पृ०२३७।
२ ,, -- ,, भाग१-"अलग्योझा", पृ०१५-१६।
३ ,, -- ,, भाग२-"न्याय", पृ०१५६।
४ ,, -- ,, भाग८ - "बौड़म", पृ०२१५।
५ ,, -- ,, ,, - "पशु से मनुष्य", पृ०१०४-१०६।
६ ,, -- "आशीर्वाद", पृ०११-१२।
७ ,, --"चित्रशाला", पृ०१०५।
८ ,, -- "पुरस्कार", पृ०२५३।
९ ,, --"आकाशदीप", पृ०१।

भोज प्रथा

प्राचीनकाल से लेकर आज तक प्रचलित रहने वाली भोज-प्रथा का लोकजीवन में प्रमुख स्थान है । इसी को "जेवनार" भी कहते हैं । विवाह आदि के अवसर पर बिरादरी के लोगों को जो दावत दी जाती है, उसे ही "भोज" या "जेवनार" कहते हैं । परम्परा द्वारा प्राप्त ज्योनार प्रथा अति प्राचीनकाल से चली आ रही है और न केवल भारत में बल्कि विश्वभर में यह प्रथा किसी-न-किसी रूप में प्रचलित है । इस व्यापक प्रथा के मूल में समाज तथा बिरादरी की उन्नति की भावना निहित थी । अपनी जाति में अन्य वर्ग को लाना और बादली रूप में "भोज" की व्यवस्था, उस समय की प्रथा का परिचायक है, जब एक व्यक्ति एक वर्ग समझा जाता था । प्रेमचन्दयुगीन कहानीकारों ने जन्म-विवाह तथा मृत्यु आदि विविध अवसरों पर भोज का उल्लेख किया है, जिसका विवेचन इस प्रकार है --

जन्मोत्सव-भोज

प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी कहानी में पुत्र-जन्म के अवसर पर बिरादरी को भोज देने की प्रथा का उल्लेख किया गया है । मकुआ के घर में पुत्र-जन्म हुआ तो उसके हर्ष का ठिकाना न रहा । आज मकुआ के घर में भोज है । हलवाई आंगन में पूरी मिठाई बना रहा है, गांव की स्त्रियां गाना गा रही हैं । गांव के पुरुष वहीं दरी-चटनी ठीक कर रहे हैं, दरवाजे पर बाजा बज रहा है । पत्तल पड़ गईं, लोग आकर खाने बैठ गये, तो मकुआ थाल से आम निकालने लगा[1] । इसी प्रकार कुंवर साहब के घर लड़का पैदा हुआ, तो बरही के दिन का भोज का सुन्दर वर्णन "विधवा" शीर्षक कहानी में हुआ है[2] । "स्वामिनी" शीर्षक कहानी में भी दुलारी को पहलौठी का लड़का हुआ तो प्यारी ने धूम-धाम से जन्मोत्सव

---

१ शिवरानी देवी : "जीवन - कौमुदी", पृ० २६

२ ,, : ,, पृ०६४-६५

मनाने का प्रस्ताव किया[1]। धूमधाम से जन्मोत्सव मनाया गया। बरही के दिन सारी बिरादरी का भोज हुआ।

नामकरण संस्कार के अवसर पर भोज

विवेच्ययुगीन कहानीकार श्री सुदर्शन की "पुनर्जन्म" शीर्षक कहानी में अयोध्यानाथ के पुत्र द्वारकानाथ के नामकरण संस्कार के शुभ अवसर पर एक बड़े भोज का उल्लेख उपलब्ध हुआ है[2]।

विवाह-भोज

जन्मोत्सव के समान ही विवाह के अवसर पर भी बिरादरी के लोगों को भोज देना आवश्यक होता है। विवाह के पूर्व तिलकोत्सव पर भी भोज देने की भारतीय प्रथा अत्यधिक व्यापक है। विवेच्य-युग के अगुआ कहानीकार प्रेमचन्द ने अपनी "बूढ़ी काकी" शीर्षक कहानी में बुद्धिराम के बड़े लड़के सुखराम के के तिलकोत्सव पर आयोजित भोज का सुन्दर चित्रण किया है। इस भोज में अपेक्षित बिरादरी के व्यक्तियों, बाजे वाले, धोबी, चमार आदि सभी का सम्मिलित होना बताया है[3]। इसके पश्चात् विवाह में भोज देने की प्रथा का उल्लेख प्रेमचन्द ने "सोहाग का शव" शीर्षक कहानी में किया है[4]।

मृतक-भोज

उपर्युक्त वर्णित भोज की प्रथा के अतिरिक्त मृतक-भोज की परम्परागत प्रथा का वर्णन भी विवेच्ययुगीन कहानीकारों ने किया है, इसे "तेरही" भी कहते हैं। प्रेमचन्द की "मृतक-भोज" शीर्षक कहानी में इस प्रथा का सुन्दर वर्णन किया गया है। सेठ रामनाथ की मृत्यु के बाद बिरादरी में निमंत्रण-पत्र भेजा गया और इस अवसर पर ब्राह्मण-भोजन के अतिरिक्त बिरादरी का भी ज्योनार का आयोजन सम्पन्न किया गया। इस बृहद् आयोजन का सजीव चित्र अंकित किया गया है[5]।

१ प्रेमचन्द : "मानसरोवर" भाग १, पृ०११६
२ सुदर्शन : "सुदर्शन-सुधा", पृ०११७
३ द्रष्टव्य -- "मानसरोवर" भाग ८, पृ०१३५-३६।
४ ,, -- ,, भाग ५, पृ०२२३।
५ ,, -- ,, भाग ४, पृ०१४७-४३

इसी प्रकार 'बेटों वाली विधवा'[1], 'झाँकी'[2], 'सुभागी'[3], 'नया विवाह'[4], 'प्रायश्चित'[5], और 'बलिदान'[6] शीर्षक कहानियों में भी भोज की प्रथा का उल्लेख मिलता है ।

<u>बरसी-भोज</u>

मृत-व्यक्ति के एक वर्ष बाद मृतक व्यक्ति की तिथि पर बरसी के भोज की प्रथा लोक-प्रचलित है । इस भोज का भी उल्लेख प्रेमचन्द की 'मृत्यु के पीछे' शीर्षक कहानी में किया गया है । ईश्वरचन्द्र की पहली बरसी थी । शाम को ब्रह्मभोज हुआ । आधीरात तक गरीबों को खाना दिया गया । प्रातःकाल मानकी अपनी बैलगाड़ी से गंगास्नान करने गयी[7] ।

<u>गया श्राद्ध का भोज</u>

कुछ वर्षों तक मृत-व्यक्ति को जल तथा पिण्डदान आदि देने के पश्चात् गया जी में पितरों को पिण्डदान किया जाता है । गया जी से लौटने के पश्चात् ब्राह्मण भोजन तथा बिरादरी का भोज आवश्यक माना गया है । लोक-विश्वास है कि इसके अभाव में श्राद्धपूर्ण ही न होगा । प्रेमचन्द ने 'सुजान भगत' शीर्षक कहानी में इसका उल्लेख किया है । एक दिन गांव में गया के यात्री आकर ठहरे । ... सुजान के मन में गया करने की बहुत दिनों से इच्छा थी । यह अवसर देखकर वह भी चलने को तैयार हो गया। प्रातःकाल स्त्री-पुरुष गया करने चले । वहां से लौटे तो यज्ञ और ब्रह्मभोज की ठहरी । सारी बिरादरी निमंत्रित हुई, ग्यारह गांवों में सुपारी बंटी । इस धूम-धाम से कार्य हुआ कि चारों ओर वाह वाह मच गई[8] ।

---

१ द्रष्टव्य -- 'मानसरोवर भाग१', पृ०५७-६१
२ ,, -- ,, ,, पृ०१५७
३ ,, -- ,, ,, पृ०२५५
४ ,, -- ,, भाग २ पृ०२३८
५ ,, -- ,, भाग ५ पृ०३१०
६ ,, -- ,, भाग ८ पृ०६४
७ ,, -- ,, भाग ६ पृ०१२६
८ ,, -- ,, भाग ५, पृ०१८२-८३

बहु विवाह-प्रथा

विवेच्ययुगीन हिन्दी कहानी में बहुविवाह प्रथा का भी उल्लेख हुआ है । डा० कृष्णानन्दगुप्त के शब्दों में—"भोजपुरी समाज में बहु विवाह की प्रथा आज भी प्रचलित है । यद्यपि यह प्रथा धीरे-धीरे कम होती जा रही है और पढ़े लिखे लोग इसकी बुराइयों को समझकर इसे छोड़ने लगे हैं फिर भी इसकी सत्ता विद्यमान है । एक स्त्री के मर जाने के बाद दूसरा और तीसरा विवाह करना तो साधारण सी बात है । यह संख्या चार, पांच, छः तक बढ़ती जाती है । कुछ लोग तो एक स्त्री के जीवित रहते ही दूसरी स्त्री से विवाह कर लेते हैं । ऐसे विवाह प्राय: नि:सन्तान लोग ही किया करते हैं । परन्तु समाज ऐसे विवाहों को सम्मानित नहीं समझता यद्यपि इसका निषेध भी नहीं करता ।"[1] विवेच्ययुगीन कहानी में स्त्री के न रहने पर तथा एक के रहते हुए दूसरा विवाह करने का भी उल्लेख मिलता है ।

दूसरा विवाह

प्रेमचन्द द्वारा लिखित "नया विवाह"[2] शीर्षक कहानी का नायक लाला डंगामल, "गृह-दाह"[3] का नायक सत्यप्रकाश प्रथम पत्नी के मृत्योपरान्त दूसरा विवाह करते हैं । इसके विपरीत "सौभाग का शव"[4] शीर्षक कहानी का नायक केशव, "सौत"[5] के पंडित देवदत्त, "बन्ध्या"[6] के नायक पंडित रामेश्वर प्रसाद शुक्ल, तथा "[illegible] का अर्थ"[7] शीर्षक कहानी में महाराज [illegible] आदि प्रथम पत्नी के रहते हुए

---

१ द्रष्टव्य—"भोजपुरी लोकसाहित्य का अध्ययन", पृ०२८५
२ ,, — "मानसरोवर" भाग२, पृ०३१८ ।
३ ,, — ,, भाग ६, पृ०१७५ ।
४ ,, — ,, भाग ५, पृ०२२३-२४।
५ ,, — ,, भाग ८, पृ०२४७-४८ ।
६ कौशिक—"गल्प मंदिर"-"बन्ध्या", पृ०६१
७ रायकृष्णदास : "सुधांशु", पृ०७३

दूसरा विवाह रचाते हैं । राजा-महाराजाओं के रनिवास में अनेक सपत्नियों का[1] होना तो आश्चर्य की बात नहीं है, किन्तु प्रेमचन्द की "निमंत्रण" शीर्षक कहानी के नायक पंडित चिंतामणि की तीन महिलाओं के स्वामी हैं और प्रेमाभिभूत बड़ी स्त्री को "अमिरती", मझली को "गुलाब जामुन" तथा छोटी को "मोहन भोग" नाम से सम्बोधित करते हैं ।

द्विवेदीयुगीन हिन्दी कहानीकार ठाकुर श्रीनाथ सिंह द्वारा लिखित "मौसी" शीर्षक कहानी की नायिका सुमागी अपने पति माताबीन से इसलिए सम्बन्ध विच्छेद कर लेती है कि वे उसे इच्छित आभूषण नहीं दे सके[1(क)] । इसीलिए माताबीन दूसरा विवाह कर लेते हैं ।

<u>कर लेने की प्रथा</u>

सवर्णों के साथ-ही-साथ छोटी जातियों में बहुविवाह के अतिरिक्त "कर लेने" की प्रथा भी मिलती है । कर लेने से अभिप्राय है कि विधवा या दूसरे की स्त्री का अपहरण कर अथवा परित्यक्त होने के कारण स्वेच्छा से अपने साथ किसी स्त्री को रख लेने से है । उल्लेख्य है कि यह अधिकार समानरूप से स्त्री और पुरुष दोनों को है । लोकजीवन में इस प्रथा के अनुसार लाई गई स्त्री को यदि बिना ब्याह के ही रख लिया जाता है, तो उसे "ढरकी" या "रखैल" की संज्ञा प्रदान की जाती है ।

प्रेमचन्द ने अनेक कहानियों में इस प्रथा का वर्णन किया है । "अग्नि समाधि" शीर्षक कहानी में पयाग जब वापस लौटकर आता है, तब उसके पीछे-पीछे एक स्त्री (कौशल्या) भी आती है । यह नवीन पत्नी "ढरकी" ही है[2] । इसके विपरीत "घर जमाई" शीर्षक कहानी में हरिधन और सुगानी में खटपट होने पर जब हरिधन उसे छोड़कर अपनी काकी के पास चला जाता है, तो सुगानी द्वारा घर कर लेने का उल्लेख मिलता है[3] ।

---

१ द्रष्टव्य--"मानसरोवर" भाग ८, पृ०२१ । १(क) द्रष्टव्य--"माधविका", पृ०२५
२ ,, -- ,, भाग ८, पृ०१७०-७२
३ ,, -- ,, भाग १, पृ० ६६५ ।

निम्नवर्गों में यह कार्य प्राय: देवर-भाभी में भी सम्पादित हो जाता है। इस प्रथा का उल्लेख 'अलग्योझा' शीर्षक कहानी में बड़े सुन्दर ढंग से हुआ है। पन्ना अपने पुत्र केदार के लिए, सौतेले बड़े भाई की दो बच्चों की माँ, विधवा मुलिया से विवाह के विषय पर चर्चा करते समय, केदार की इच्छा व्यक्त करती हुई कहती है—'बता दूं ! वह तू ही है।'

मुलिया — 'तुम तो अम्मा जी गाली देती हो।'

पन्ना — 'गाली कैसी, देवर ही तो है।'

मुलिया — 'मुझ जैसी बुढ़िया को वह क्यों पूछेगा।'

पन्ना — 'वह तुझी पर दांत लगाये बैठा है। तेरे सिवा कोई और उसे भाता ही नहीं, डर के मारे कहता नहीं, पर उसके मन की बात मैं जानती हूं।'

इतना सुनते ही मुलिया प्रसन्न हो उठी।[1]

पर्दा-प्रथा

लोकजीवन में पर्दा अथवा घूंघट की प्रथा व्यापक रूप से पाई जाती है। बुन्देलखण्ड में गांव के बड़े लोगों के प्रति आदर अभिव्यक्त करने के लिए स्त्रियाँ घूंघट काढ़ लेती हैं, किन्तु घूंघट उन्हें घर के भीतर बन्द नहीं कर रखता।[2] इसके विपरीत भोजपुरी समाज में कोई भी कुलीन परिवार की स्त्री अपने घर से बाहर नहीं निकल सकती। यहां तक कि मांगलिक अवसरों तथा लोकोत्सवों आदि पर भी बूढ़ी स्त्रियां तो इधर-उधर के घर आती जाती हैं, परन्तु घर की बहू कहीं भी नहीं जा सकती। जो बहू जितनी अधिक लज्जा करती है, वह उतनी ही कुलीना समझी जाती है।[3]

विवेच्ययुगीन कहानीकारों ने प्रस्तुत प्रथा का यथावसर विविध रूपों में वर्णन किया है। इस दृष्टि से न केवल प्रेमचन्द ने वरन् उनके सम-सामयिक

---

१ प्रेमचन्द— 'मानसरोवर' भाग१, पृ०२१-२२।

२ डा० कृष्णचन्द्र श्रीवास्तव : 'बुन्देलखण्ड की लोकसंस्कृति और जीवन', पृ०१३६।

३ डा० कृष्णदेव उपाध्याय : 'भोजपुरी लोक साहित्य का अध्ययन', पृ०२०६।

स्पष्ट है कि जब 'जेठ' शब्द का उच्चारण ही नहीं कर सकती तो नाम कैसे लिया लिया जा सकता है । इसी संदर्भ में उन्होंने एक लोककथा का भी उल्लेख किया है --'बहू दुकान पर जीरा खरीदने जाती है, परन्तु 'जीरा' शब्द अपने मुँह से नहीं निकालती, क्योंकि उसकी सास का नाम 'जीरा' है । वह दुकानदार से कहती है --

'भाय लागे मैं लगीं, बैठाये मीठ बिकाय ।
यही सहाये कहीं वे, तिन घर मांग पठाय[१] ।।'

इस रूप में बहू परम्पराप्रथित मर्यादा का निर्वाह करती हुई चतुराई से जीरा खरीद कर घर वापस आ जाती है । इसी प्रथा का वर्णन 'रामचरितमानस' में गोस्वामी तुलसीदास जी ने 'राम-वन-गमन' प्रसंग में बड़ी ही कुशलता के साथ किया है--

'कोटि मनोज लजावनि हारे । सुमुखि कहहु को आहिं तुम्हारे ।।
सुनि सनेहमय मंजुल बानी । सकुची सिय मन महुँ मुसुकानी ।।
क्या उत्तर दें? कैसे पति का नाम लें ? अस्तु बड़ी चतुराई से कहा --
सहज सुभाय सुभग तन गोरे । नामु लखनु लघु देवर मोरे ।।
बहुरि बदनु बिधु अंचल ढाँकी । पिय तन चितइ भौंह करि बाँकी ।।
खंजन मंजु तिरीछे नयननि । निज पति कहेउ तिन्हहिं सियँ सयननि[२] ।।'

प्रेमचन्दयुगीन कहानी में भी प्रस्तुत प्रथा का अत्यधिक वर्णन हुआ है । इस दृष्टि से श्रीमती रामप्यारी देवी की 'चतुर बहू' शीर्षक पारिवारिक कहानी वस्तुत: लोककहानी की साहित्यिक अभिव्यक्ति मात्र है, जिसमें बहू द्वारा पति, जेठ, आदि का नाम न लेने की प्रथा का वर्णन बड़ी सुन्दरता के साथ किया गया है[३]।

---

१ द्रष्टव्य-- 'बुन्देलखंड की लोकसंस्कृति और जीवन', पृ०१३६ ।

२ ,, -- 'रामचरितमानस' (अयोध्या काण्ड) बजन संस्करण, पृ०४८२ ।

३ ,, -- 'स्त्री धर्मशिक्षक,' वैशाख, १९६६, पृ०१८--१९

विस्तृत विवरण के लिए प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध का द्वितीय खण्ड --'मूल रूप में गृहीत लोककथा -- कहानियाँ' देखें ।

प्रेमचन्द द्वारा लिखित `स्वामिनी`[1], `बहिष्कार`[2], `पिसनहारी का कुआं`[3], `त्यागी का प्रेम`[4], `मर्यादा की वेदी`[5], `बड़े घर की बेटी`[6] तथा `नागपूजा`[7] आदिशीर्षक अनेक कहानियों में प्रस्तुत परम्परागत प्रथा का निर्वाह किया गया है। भले ही वर्तमान समय में प्रस्तुत प्रथा मूर्खतापूर्ण समझी जाय, किन्तु लोकजीवन में आज भी बहू द्वारा अपने से बड़ों का नाम लेना अनुचित मानकर परम्परा द्वारा प्राप्त इस प्रथा का पालन उसी श्रद्धा और दृढ़ विश्वास के साथ किया जाता है।

बलि-प्रथा

लोकविश्वास पर आधृत लोकव्यापी बलिप्रथा का वर्णन विवेच्य-कालीन कहानियों में किया गया है। इस प्रथा पर विचार करते हुए स्वयं प्रेमचन्द ने `स्मृति का पुजारी` शीर्षक कहानी में लिखा है — "मुसलमानों में भी कुछ खास-खास जानवरों की कुर्बानी शरीयत में दाखिल है और हर मुसलमान के लिए अपनी-अपनी सामर्थ्य के अनुसार भेड़, बकरी, गाय या ऊँट की कुर्बानी फर्ज बताई गई है ... यहूदियों, ईसाइयों और अन्य मतों में भी कुर्बानी की बड़ी महिमा गायी है। हिन्दुओं में भी एक सम्प्रदाय पशु-बलि को अपना धर्म समझता है। इसी तरह एक समय नर-बलि का भी रिवाज था, आज भी कहीं-कहीं उस सम्प्रदाय के नाम लेवा मौजूद हैं।"[8]

प्रस्तुत प्रथा का उल्लेख `प्रेम का उदय` शीर्षक कहानी में स्वयं प्रेमचन्द ने किया है[9]। इसीप्रकार श्री भारतीय की `गुनगुन` शीर्षक कहानी में

---

१ द्रष्टव्य— `मानसरोवर` भाग १, पृ०१२३
२ ,, — ,, ,, ५ पृ०६८
३ ,, — ,, ,, पृ०१६५
४ ,, — ,, भाग ६ पृ०४०
५ ,, — ,, ,, पृ०६६
६ ,, — ,, ,, ७ पृ०१५४
७ ,, — ,, ,, पृ०२७१
८ ,, — ,, ,, ४ पृ०२६६
९ ,, — ,, ,, पृ०१३६-३८

माधो के मुण्डन संस्कार के अवसर पर बलि का उल्लेख हुआ है[1]। "वियोगी" की "दुर्गापूजा" शीर्षक कहानी में सामूहिक बलि-प्रथा का वर्णन मिलता है। प्रस्तुत कहानी में राजा की ओर से विश्वेश्वरी के विशाल मन्दिर में दस सहस्र पशुओं की बलि दी गई है। इसीलिए पण्डितों एवं पुरोहितों ने राजा के लिए इन शब्दों का प्रयोग किया है-- "धन्यकाशी राज कलियुग में यदि सतयुग का कहीं दृश्य देखा तो यहीं[2]।" यह प्रथा वर्तमान समय में भी किसी-न-किसी रूप में प्रचलित है।

जाति-विशेष की प्रथाएं

विवेच्ययुगीन हिन्दी कहानी में कतिपय जाति-विशेष की प्रथाओं का भी वर्णन मिलता है। प्रेमचन्द ने अपनी "प्रेम का उदय" शीर्षक कहानी के अन्तर्गत कंजड़ जाति की प्रथा-विशेष --चोरी करके कबूल न करना और कबूल करने वाले को जाति से बहिष्कृत कर देना-- का सुन्दर एवं विस्तृत वर्णन किया है[3(क)]। जयशंकर "प्रसाद" ने भी "आंधी" शीर्षक कहानी में घूम-घ फिर कर जीवनयापन करने वाली जाति कंजरों की तरह, गुजरों की अपराधों सम्बन्धी जातिगत एक अनुचित अविश्वसनीय प्रथा का उल्लेख किया है[3]।

"कोलों के प्रदेश में" शीर्षक कहानी के अन्तर्गत कृष्णानन्द गुप्त ने कोल जाति की विवाहगत विशेष प्रथा का वर्णन किया है। बिरादरी के मध्य दाम्पत्य-सूत्र में बंधने वाले वर एवं वधू को बिठाकर उनके हाथों में शराब का प्याला दिया जाता है। तत्पश्चात् कोई वृद्ध उन्हें समझाता हुआ कहता है--"तुम अपना प्याला आधा पीकर वर को दे देना"। इसी प्रकार वह वर को भी समझा देता है। और दोनों ही यही क्रिया सम्पादित करते हैं। दोनों का विवाह हो जाता है। इनका यही कुलाचार है।

---

१ प्रसाद--"पहुरी",भाग२,पृ०११२
२ ,, -- "देवी",पृ०७६
३(क),, --"मानसरोवर भाग ६",पृ०१३७-४२
३ ,, --"आंधी",पृ०१
४ ,, --"पुरस्कार",पृ०२२ ।

(४) लोकविश्वास : मूढ़ाग्रह

लोकवार्ता के व्यापक क्षेत्र के अन्तर्गत स्वतन्त्र विचारणीय विषय के रूप में लोक-प्रचलित विश्वासों का क्षेत्र भी बहुत विस्तृत है। डा० सत्येन्द्र ने तो इन विश्वासों को लोकवार्ता की आधार-शिला कहा है।[1] वर्तमान समय में पढ़े लिखे तथा सभ्य कहे जाने वाले लोगों की दृष्टि में, भले ही यह विश्वास मूढ़ाग्रह और अन्धविश्वास की संज्ञा प्राप्त करें, चाहे इन विश्वासों को ढोंग और वहम समझा जाय, किन्तु लोकजीवन के दैनिक कार्यों में यही लोक-विश्वास मनोवैज्ञानिक सत्य का काम देते हैं। मानवीं सभ्यता के आरम्भिक युग से ही लोकजीवन में विभिन्न प्रकार के विश्वास प्रचलित रहे हैं, जिन्हें न तो बुद्धि की तुला पर तौला जा सकता है, न तर्क की कसौटी पर कसा ही जा सकता है। तर्क की कसौटी पर कसकर किसी वस्तु को ग्रहण करना परिनिष्ठता का द्योतक है और परिनिष्ठित साहित्य की प्रवृत्ति है। लोक-समाज में तो परम्परा द्वारा प्राप्त तत्वों को बिना किसी मीनमेख के ज्यों-का-त्यों ग्रहण कर लिया जाता है। उसे इस बात की भी चिन्ता नहीं होती कि इनमें कोई तथ्य, सत्य है भी या नहीं। इन्हें ग्रहण करते समय यदि उसके पास कोई तर्क है, तो यही कि उसके पूर्व पुरुषों ने इनका पालन किया था, इसलिए वह इन्हें क्यों छोड़ दे ? यदि ये विश्वास व्यर्थ होते तो इनका परित्याग पूर्वजों ने ही कर दिया होता। उन्होंने अपने पूर्वजों से उत्तराधिकार रूप में क्यों ग्रहण किया होता ? क्योंकि उसके बाबा-दादा ने अपने पूर्वजों की इस लोक-सम्पत्ति को स्वीकार किया था, इसलिए उसे भी ज्यों-का-त्यों ग्रहण करना चाहिए।

नगर का एक शिक्षित एवं सुसभ्य नागरिक भले ही इन लोकविश्वासों को न माने और चाहे तो उल्लंघन भी कर सकता है, किन्तु एक ग्रामीण जन इन लोक-विश्वासों का उल्लंघन नहीं कर सकता जिसका जीवन ही इन्हीं पूर्व प्रचलित परम्परागत विश्वासों में बंधा रहता है। इनकी अवहेलना की कल्पनामात्र से वह कांप उठता है।

---

१ द्रष्टव्य--'मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोकतात्त्विक अध्ययन', अध्याय७ (लोकविश्वास), पृष्ठ१०।

वैदिक काल से ही भारतीय लोक-जीवन में लोकविश्वासों के प्रचलन का उल्लेख मिलता है । अथर्ववेद के मन्त्र इस बात के प्रमाण हैं कि उस समय भी भूत-प्रेत, पिशाच, असुर, राक्षस आदि अलौकिक शक्तियों में विश्वास किया जाता था । जादू-टोना के साथ ही साथ मारण मोहन वशीकरण और उच्चाटन आदि अलौकिक क्रिया-व्यापारों को लौकिक मान्यता प्राप्त थी । उक्त वेदों में इन समस्त विषयों से सम्बद्ध मन्त्रों के साथ-साथ उनकी प्रयोग-विधि का भी वर्णन किया गया है । इसमें ऐसे भी मन्त्र उपलब्ध हैं, जिनसे ह पुत्र-सम्पत्ति और व्यापार आदि में सफलता प्राप्त की जा सकती है[1] । आज भी भारतीय जन-जीवन में इस प्रकार के अनेकानेक प्रयोग किए जाते हैं । की

श्रीमती शार्लट सोफिया बर्नीसमस्त लोकविश्वासों को दस वर्गों से सर्व विषयों से सम्बद्ध माना है[2], जिन्हें डा० सत्येन्द्र ने निम्नलिखित प्रकार से अभिव्यक्त किया है--[3]

(क) प्रकृति के वैतन तथा जड़-जगत से सम्बद्ध ।

(ख) मानव स्वभाव तथा मनुष्य के पदार्थों से सम्बद्ध ।

(ग) भूत-प्रेतों की दुनिया से सम्बद्ध ।

(घ) जादू-टोना, सम्मोहन, वशीकरण, ताबीज और भाग्य से सम्बद्ध ।

(ङ०) शकुन-अपशकुन से सम्बद्ध और

(च) रोग तथा कुदृष्टि से सम्बद्ध ।

एक अन्य स्थान पर लोक-विश्वासों के वर्गीकरण पर विचार करते हुए डा० सत्येन्द्र ने लोक-विश्वासों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया है--[4]

(१) धर्म सम्बन्धित लोक-विश्वास ।

(२) समाज सम्बन्धित लोक-विश्वास ।

(३) व्यक्ति सम्बन्धित लोक-विश्वास ।

किन्तु वास्तव में लोक-विश्वासों का वर्गीकरण करना अत्यन्त व्यापक [illegible]

---

१ विस्तार के लिए द्रष्टव्य-- [illegible] : "[illegible]", पृ०२२
२ सी०[illegible] : [illegible] -इण्ट्रोडक्शन, पृ०[illegible]
३ द्रष्टव्य-- ब्रज लोकसाहित्य का अध्ययन, पृ०[illegible]
४ ,, "मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोकतात्विक अध्ययन", पृ०४८१

`बिना किसी वर्गीकरण का प्रयत्न किए लोक-विश्वासों और उनपर कुछ विचार देने की चेष्टा की`[1] बात कहकर लोक-विश्वासों का विवेचन किया है ।

उपर्युक्त मतों के आधार पर स्पष्ट है कि लोकविश्वासों को सीमाबद्ध कर वर्गीकृत करना असम्भव है । अतएव यहां पर प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी कहानी में उपलब्ध लोकविश्वासों का विवेचन किया जा रहा है ।

प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी कहानी में लोकविश्वास

प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी कहानी में विविध लोकतत्वों के समान ही परम्परागत प्राप्त लोकविश्वासों का भी यथास्थान वर्णन किया गया है, जिनका यहां पर संक्षिप्त विवेचन किया जा रहा है ।

शकुन-अपशकुन

शकुन-विचार की परम्परा वस्तुत: लोकजीवन की विश्वासगत अपनी निजी विशेषता है । `शकुन` शब्द पक्षी का पर्यायवाची है । प्राचीनकाल में पक्षियों की गतिविधि द्वारा ही शुभाशुभ ज्ञान प्राप्त किया जाता था । कालान्तर में इस शब्द का अर्थ-विस्तार हुआ और इसकी सीमा में विविध प्रकार के आकस्मिक एवं असाधारण क्रिया-व्यापारों को समाहित कर लिया गया, जिनका लोकजीवन में व्यापक स्थान पाया जाता है । इन शकुन-अपशकुन सूचक विभिन्न उपादानों का विस्तृत विवेचन कथानक रूढ़ियों के प्रसंग में किया जा चुका है, यहां उसकी पुनरावृत्ति समीचीन नहीं है ।

विवेच्ययुगीन हिन्दी कहानी में शुभ शकुन सूचक उपादानों का यथास्थान वर्णन किया है । चण्डीप्रसाद `हृदयेश` की `विश्वास` कहानी की नायिका शैलाक्षिनी शरत्पूर्णिमा के दिन नीलकण्ठ का दर्शन करती है । लोक-विश्वासानुकूल ही उसको शुभ फल की प्राप्ति यह होती है कि उसका बिछुड़ा हुआ प्रियतम उसे प्राप्त हो जाता है ।[2] इसी प्रकार शिवपूजनसहाय द्वारा लिखित `तूती मैना` की नायिका तूती

१ डा० सत्येन्द्र : `मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोकतात्विक अध्ययन`, पृ०४९१
२ द्रष्टव्य -- `नन्दननिकुंज`, पृ०१०४-१११ ।

की मधुर वाणी सुनकर उसपर मोहित राजकुमार की दक्षिण भुजा तथा आंखों फड़कने का उल्लेख किया गया है। लोकविश्वासानुसार ही शुभ परिणाम दोनों के परिणय में हुआ है[1]।

शुभ शकुन सूचक उपादानों के समान ही अशुभ सूचक उपादानों की भी सं०विस्तृत व विवेचन कथानक रूढ़ियों के प्रसंग में किया जा चुका है। लोकजीवन में बहुप्रचलित अपशकुन सम्बन्धी संकेत इस प्रकार हैं-- किसी कार्यवश जाते समय छींक होना, बिल्ली अथवा गीदड़ का रास्ता काट जाना, शूद्र अथवा काने व्यक्ति का सम्मुख आना, चलते समय किसी का टोक देना, पुरुषों का बायां तथा स्त्रियों का दायां अंग फड़कना इत्यादि। विवेच्ययुगीन हिन्दी कहानी में इन अपशकुनों का भी यथास्थान वर्णन किया गया है -- सुदर्शन द्वारा लिखित 'सायकिल की सवारी'[2], प्रेमचन्द द्वारा लिखित 'पाप का अग्निकुण्ड'[3] शीर्षक कहानियों में लोक-विश्वासानुकूल ही यात्रा के समय छींक होती है, जिसका अशुभ परिणाम निकलता है। इसी प्रकार 'प्रणय-परिपाटी'[4] के नायक का बाम नेत्र फड़कना, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' द्वारा लिखित 'गोई बीबी'[5] शीर्षक कहानी में सियार का रोना, विनोदशंकर व्यास की कहानी 'विधाता'[6] में बिल्ली का रास्ता काटना, प्रेमचन्द की 'धिक्कार'[7] शीर्षक कहानी में विवाहोत्सव के समय विधवा का सामने आना इत्यादि विभिन्न प्रकार के अपशकुनों का वर्णन किया गया है। ये वर्णन लोकविश्वासानुमोदित एवं प्रसंगानुकूल हैं, जिनका फल भी लोकविश्वास के अनुसार ही घटित होता है।

---

१ द्रष्टव्य--'विभूति', पृ०५६-५८
२ ,, --'पनघट', पृ०१११-१६
३ ,, --'मानसरोवर' भाग ६, पृ०१३४-४५
४ ,, --'कल्पनानिकुंज', पृ०७७-८०
५ ,, --'मधुकरी' भाग १, पृ०२१६-२४
६ ,, --'गल्प पारिजात', पृ०१४४
७ ,, --'मानसरोवर' भाग १, पृ०२०८

स्वप्न-विचार

आधुनिक समाज के अभिजात्य वर्ग में भले ही सुषुप्तावस्था में रात्रि में देखे गये स्वप्नों की उपेक्षा की जाय, किन्तु लोकजीवन में इन पर विश्वासपूर्वक विचार किया जाता है। अनेक प्रकार के स्वप्नों से सम्बन्धित अनेक विश्वास जन-जीवन में प्रचलित रहे हैं। इस दृष्टि से कुछ स्वप्न सम्बन्धी विश्वास उल्लेखनीय हैं। श्वेत वस्त्र धारण किए हुए स्त्री को स्नान करते देखने से धन की प्राप्ति और रक्त वस्त्र धारण किए हुए स्त्री को स्नान करते देख निकट भविष्य में मृत्यु का संकेत माना जाता है। सन्यासी द्वारा भीख मांगना और न मांगी हुई वस्तु को बलात् उठाना, बिना सिर, बिना पांव किसी का दिखाई पड़ना तथा सूर्य, चन्द्र आदि का निस्तेज दिखाई पड़ना इत्यादि स्वप्न अशुभसूचक माने गये हैं। इसी प्रकार समुद्र, हाथी, मछली, धेनु और सूर्यादि का स्वप्न में दिखायी पड़ना शुभ माना जाता है।

उल्लेख है कि विवेच्ययुगीन हिन्दी कहानी में स्वप्न द्वारा भविष्य के विषय में ज्ञान लेने का विश्वास कथानक रूढ़ि के रूप में ग्रहण किया गया है[1], जिनका विस्तृत विवेचन कथानक रूढ़ि के अध्याय में किया जा चुका है। इस प्रसंग में एक बात अवश्य उल्लेखनीय है कि विवेच्ययुगीन हिन्दी कहानी में लोकजीवन के लोकविश्वास सम्बन्धित विश्वासों को कहानी में कथानकों की गति, विस्तार अथवा मोड़ देने के लिए विषयानुकूल स्वप्नों की आयोजना की गई है, फिर भी लोक-समाज में प्रचलित इन विश्वासों के फल को घटित करते हुए अंध विश्वास व्यक्त किया गया है।

प्राकृतिक महोत्पात

विवेच्ययुगीन हिन्दी कहानी में लोकविश्वासानुमोदित प्राकृतिक महोत्पातों का भी यत्र-तत्र वर्णन किया गया है। "हर्ष चरित" में[2] भूकम्प, धूमकेतु, वज्रपात, दिग्दाह, अतिवृष्टि, अनावृष्टि आदि अनेक प्रकार के अशुभ प्राकृतिक महोत्पात बताए गए हैं। प्रस्तुत प्रसंग में राधाकृष्ण दास की "शान्ति के हेतु" शीर्षक

1 द्रष्टव्य -- प्रस्तुत प्रबन्ध का द्वितीय खण्ड, अध्याय-३(ख) भविष्यसूचक स्वप्न संबंधी कथानक रूढ़ि।

2 डा० वासुदेवशरण अग्रवाल : "हर्षचरित" -- एक सांस्कृतिक अध्ययन", पृ०७६

3 द्रष्टव्य -- "सुदर्शन", पृ०४४-४६

कहानी विशेष उल्लेखनीय है । आकाश में धूमकेतु का निकलना अशुभ माना जाता है । इसे लोक में पुच्छलतारा भी कहा जाता है , जो रात्रि के चतुर्थ प्रहर में ठीक झाड़ू के आकार का प्रकाश-पुंज आकाश में दिखाई देता है । लोकविश्वास है कि जब किसी सम्राट का अनर्थ होना होता है तब यह निकलता है । उपर्युक्त कहानी में भी जब तक अत्याचारी शासक का अन्त नहीं हो जाता, तब तक यह निकलता रहता है[1] । इसी प्रकार प्राकृतिक महोत्पात भूकम्प का वर्णन श्रीमती शिवरानी देवी की 'विध्वंस की होली'[2], कुमारी सुशीला आगा की 'भूकम्प आया'[3] और श्री सुधाकर दीक्षित की 'प्राणों का प्रश्न'[4] आदि कहानियों में किया गया है । इन कहानियों में जन,धन की विशेष हानि हुई दिखाई गई है ।

<u>तन्त्र,मंत्र ,यन्त्र,तावीज</u>

तन्त्र,मंत्र,यंत्र ,तावीज,झाड़,फूंक तथा टोने-टोटके आदि से संबंधित लोक जीवन में प्रचलित लोकविश्वास लोकमानस की निजी सम्पत्ति है । विवेच्ययुगीन अग्रगण्य कहानीकार प्रेमचन्द द्वारा लिखित 'मन्त्र'[5] शीर्षक कहानी में सर्पदंश के प्रभाव को दूर करने के लिए मन्त्रोपचार सम्बन्धी लोकविश्वास का विस्तृत वर्णन किया गया है । निश्चय ही प्रेमचन्द ने यह विश्वास लोकजीवन से ग्रहण किया होगा,जिसका प्रचलन ग्रामीण जन-जीवन में आज भी विद्यमान है । ग्राम्य समाज में तो छोटी-छोटी बातों पर भी झाड़-फूंक प्रारम्भ हो जाता है ।यह विश्वास मानव समाज तक ही सीमित नहीं रह गया है,वरन् गाय,बैल,भैंस आदि पशुओं तक भी पहुंच गया है । दूध न देने अथवा चारा-भूसा न खाने पर झाड़-फूंक करने वालों द्वारा मन्त्र फुंकवा कर चारा आदि में मिलाकर खिलाया जाता है और प्रायः इसके शुभ परिणाम भी देखे गये हैं ।

---

१ पुस्तक--'पुरवाई',पृ०५०-६६
२ ,, --'कौमुदी',पृ०१६-२५
३ ,, --'अतीत के चित्र',पृ०५३-६०
४ ,, --'नई कहानियाँ',पृ०३३
५ ,, --'मानसरोवर' भाग५,पृ०१६०,६७ ।

लोकजीवन में झाड़-फूंक के समान ही जन्त्र,तावीज अथवा गण्डा में भी अगाध विश्वास किया जाता है । निम्नवर्ग से सम्बद्ध अशिक्षित लोग तो जन्त्र और तावीज पहिनने के आदी होते ही हैं, किन्तु वर्तमान वैज्ञानिक युग में पढ़े-लिखे शिक्षित समुदाय के लोग भी बांह, गले अथवा कमर में,नानाप्रकार के अनिष्ट एवं विघ्न-विनाश हेतु सुदृढ़ कवच के रूप में धारण किए हुए देखने में आते हैं । विवेच्ययुगीन हिन्दी कहानी में लोकजीवन की इस विश्वास भावना से युक्त तावीज धारण करने का वर्णन भी उपलब्ध होता है । उल्लेख्य है कि मुस्लिम साधकों द्वारा दिए जाने वाला 'तावीज' हिन्दुओं के अ अन्तर से भिन्न नहीं है ।[1]

प्रेमचन्द की 'मन्दिर' शीर्षक कहानी में पुजारी द्वारा सुखिया को जन्तर देने का ,[2] 'डांमुल' कहानी में स्वामियां अपने मित्र मुन्नू को तावीज देते हुए कहते हैं कि मुन्नू देख, यह तावीज ले जाकर बहू जी को दे दे । इसे अपने जूड़े में बांध लेंगी । खुदा ने चाहा तो उन्हें किसी तरह की दहशत या खटका न रहेगा । उन्हें डरे-बुरे ख्वाब दिखायी देते होंगे, रात को नींद उचटजाती होगी दिल घबराया करता होगा, ये सारी शिकायतें दूर हो जायेंगी । मैंने एक पहुंचे हुए फकीर से यह तावीज लिखाया है ।'

छोटे-छोटे बच्चों को तो लोकजीवन में दो-एक जन्त्र अवश्य ही पहनाया जाता है,क्योंकि उन्हें नजर आदि लगने का भय अधिक रहता है । 'महातीर्थ' शीर्षक कहानी में दाई कैलाशी रुद्र को बुरी नजर से बचाने के लिए आए दिन तावीज और गण्डे लाते रहने का उल्लेख मिलता है ।[3] इसी प्रकार गण्डा इस डोरे-विशेष को कहते हैं ,जिसमें मन्त्र पढ़कर सात,नौ अथवा ग्यारह गाठें लगाई जाती हैं और भय तथा रोग आदि के निवारणार्थ धारण किया जाता है। इसमें विशेष कार्य के लिए विशेष रंग का डोरा प्रयोग में लाया जाता है ।

---

१ द्रष्टव्य—'मानसरोवर' भाग५,पृ०१२
२ ,, — ,, ,, पृ०२५०
३ ,, — ,, ,,७,पृ०२२६

चण्डीप्रसाद 'हृदयेश' की 'प्रणय परिपाटी'[1] शीर्षक कहानी का मरणासन्न नायक ऐसे ही एक गण्डे को धारण कर आरोग्य-लाभ करता है ।

भूत-प्रेत

भूत-प्रेत आदि विभिन्न अमानवीय शक्तियों के विषय में लोक-प्रचलित धारणा है कि ये रोगी को नीरोग और धनहीन को धनाढ्य बनाने में भी समर्थ हैं । विवेच्ययुगीन कहानी-लेखिका श्रीमती सुभद्रा देवी ने 'मियां साहिब'[2] कहानी में भूत-प्रेतों के अस्तित्व का समर्थन [illegible] से किया है । स्वयं लेखिका के अनुसार यह कहानी एक सत्य घटना पर आधारित है । इसमें मियां जी भूत के रूप में एक नाई के सिर आकर अपने भाव व्यक्त करते हैं । उन्हीं की कृपा से नायक का पुत्र अपनी स्त्री सहित बिना दवा-दारू के स्वास्थ्य-लाभ करता है ।

मान-मनौती

विवेच्ययुगीन हिन्दी कहानी में वर्णित देवी-देवताओं की मान-मनौती भी बिल्कुल लोक-विश्वास की वस्तु है । लोकजीवन में संकट-निवारण, रोगनाश, पुत्र एवं धन प्राप्ति, ऐश्वर्य वृद्धि आदि विभिन्न अभिलाषाओं की पूर्ति के लिए आज भी देवी-देवताओं की मान्यताएं मानी जाती हैं । विवेच्ययुगीन कहानीकारों ने अनेक कहानियों में लोकविश्वासानुकूल ही भावना मानने का उल्लेख किया है । प्रेमचन्द द्वारा लिखित 'सती'[3], 'बासी भात में खुदा का साझा'[4] तथा 'चोरी'[5] आदि विभिन्न कहानियों में विभिन्न कार्यों की पूर्ति हेतु मान-मनौती

---

१ द्रष्टव्य — 'मन्मथनिकुंज', पृ०७२-७४

२ ,, — 'स्त्री दर्पण', अक्टूबर १९७१, पृ०१८८

३ ,, — 'मानसरोवर' भाग ५, पृ०७८

४ ,, — ,, भाग २, पृ०२०६

५ ,, — ,, भाग ५, पृ०११६

का उल्लेख किया गया है ।

जीव के बदले जीव

लोकजीवन में माता-पिता अपने पुत्र की रक्षा के लिए उसके प्राण के बदले स्वयं अपने प्राणों को देने की मान्यता भी मानते रहे हैं । इस सम्बन्ध में एक ऐतिहासिक किम्वदन्ती का उल्लेख उचित होगा, जिसके अनुसार " हुमायूं की बीमारी से बाबर को बड़ी चिन्ता हुई और उसने यह निश्चय किया कि अपने प्राण देकर भी मैं अपने पुत्र की रक्षा करूंगा । ज्योतिषियों ने बाबर से कहा कि ऐसे अवसर पर किसी बहुमूल्य वस्तु के त्याग करने से हुमायूं की रक्षा हो सकती है । बाबर के विचार में अपने प्राणों से अधिक मूल्यवान अन्य कोई वस्तु उसके पास न थी, अतएव अपने पुत्र के प्राणों की रक्षा के लिए वह अपने प्राण त्याग देगा । ... कहा जाता है कि अपने रोगी पुत्र की शैय्या की तीन बार परिक्रमा करके उसने ईश्वर से प्रार्थना की कि हुमायूं स्वस्थ हो जाय और उसके बदले में बाबर के प्राण ले लिए जायं । उसी समय से हुमायूं का स्वास्थ्य सुधरने लगा और बाबर का स्वास्थ्य उत्तरोत्तर बिगड़ने लगा ... और अन्त में वह इस असार संसार से चल बसा ।"[1]

कहना न होगा कि उक्त किम्वदन्ती का मूलाधार लोकविश्वास ही है । विवेच्ययुगीन अग्रणी कहानीकार प्रेमचन्द की "मृतक भोज" शीर्षक कहानी में प्रस्तुत लोकविश्वास का सुन्दर वर्णन किया गया है । इस कहानी में विधवा सुशीला अपने ज्वरग्रस्त पुत्र मोहन की खाट के सात फेर करके हाथ बांधकर बोली-- भगवन्, यही मेरे जन्म की कमाई है । अपना सर्वस्व खोकर भी मैं बालक को छाती से लगाए हुए संतुष्ट थी, लेकिन यह चोट न सही जायगी । तुम इसे अच्छा कर दो । इसके बदले मुझे उठा लो । ... सुशीला को उसी दिन रात को ज्वर आया । चौथे दिन मोहन चारपाई से उठकर माँ के पास आया और उसकी छाती पर सिर रखकर रोने लगा । माँ ने प्यार किया और उसी रात वह परलोक सिधार गई । माँ की याचना अक्षरशः पूरी हुई ।"[2]

---

१ श्रीनेत्र पाण्डेय : "भारत का बृहत् इतिहास", द्वितीय भाग, पृ०३८१

२ प्रेमचन्द-- "मानसरोवर" भाग४, पृ०२७१-७२ ।

मृतात्मासम्बन्धी विश्वास

लोक-विश्वास के अनुसार जब किसी मनुष्य की अकाल मृत्यु हो जाती है अथवा किसी प्रबल इच्छा की पूर्ति के पूर्व ही काल के कराल गाल में चला जाता है, तब वह मृत्योपरान्त प्रेत-योनि को प्राप्त करता है और उसकी आत्मा विभिन्न प्रकार की आकांक्षाओं, तृष्णाओं के मध्य भटका करती है। भूत, प्रेत या दैत्य में कोई विशेष अन्तर नहीं है। ये सभी मृत व्यक्तियों की अतृप्त आत्माओं के प्रतीक हैं।[१] लोक प्राणी इनके अस्तित्व को स्वीकार करता है, इनसे भयभीत रहता है और इनकी पूजा भी करता है। स्वैच्छ्युगीन हिन्दी कहानी में उपर्युक्त लोकविश्वास समन्वित अनेक कहानियां लिखी गई हैं। स्वयं प्रेमचन्द की "बलिदानी" शीर्षक कहानी का ताना-बाना इसी विश्वास के आधार पर बुना गया है। प्रस्तुत कहानी में गिरधारी की आत्मा खेतों के चारों ओर मड़राया करती है। फलस्वरूप अंधेरा होते ही वह मेड़ पर आकर बैठ जाता है और कभी-कभी रात को उधर से रोने की आवाज आती है। वह किसी से बोलता नहीं, किसी को छूता नहीं, फिर भी दिया जलने के बाद उधर का रास्ता बन्द हो जाता है।[२]

इसी प्रकार "पिसनहारी का कुआं" शीर्षक कहानी में बुढ़िया गोमती अपने स्वर्गीय पति के नाम से कुआं बनवाने की अभिलाषा से रुपये एकत्रित करती है, किन्तु अपनी अभिलाषा हृदय में संजोये चल बसती है। चौधरी विनायकसिंह की नियत बिगड़ गई और वे रुपये की थैली लेने कोठरी में पहुंचे ही थे कि गोमती बिछावन बैठी है। वे दूसरी बार भी प्रयत्न करते हैं, परन्तु गोमती की भयानक मुखाकृति को देख बेहोश होकर गिर पड़ते हैं। यही दशा उनकी स्त्री की भी होती है। बुढ़िया गोमती की मृतात्मा तब तक दिखलायी पड़ती है, जब तक कुआं नहीं बन जाता।[३] इसीप्रकार मृतात्मा से बातचीत करने का वर्णन "सौदा" शीर्षक कहानी में हुआ।

---

१ डॉ० वी० ठेकर : "इन्द्रपीलाजी" भाग २, अप्रैल १९५४, पृ०८१
२ प्रेमचन्द -- मानसरोवर भाग ८, पृ०६७-७१
३ ,, -- ,, भाग ६, पृ०१९७-२०१
४ ,, -- आचार्य चतुरसेनशास्त्री : "सोया हुआ शहर", पृ०१९७-२०४।

भाग्य तथा कर्म-लेख

प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी कहानी में उल्लिखित लोकविश्वास से सम्बद्ध एक अन्य विषय है-- भाग्य तथा कर्म-लेख । इस सम्बन्ध में लोकविश्वासानुमोदित सर्वमान्य लोक-धारणा है कि मानव के जन्म से पूर्व ही विधाता उसके भाग्य में जो कुछ भी सुख-दुःख लिख देता है, उसमें जन्म के पश्चात् किसी भी प्रकार का परिवर्तन असम्भव है । वह तो पूर्वयोजित, सर्वशक्तिमान्, सर्वोपरि, अपरिवर्तनीय तथा अवश्य घटित होने वाला कहा गया है[1] ।

लोकगीतों तथा कथा-कहानियों में भी भाग्यवाद की एक अमिट रेखा सी खिंची दिखायी पड़ती है । इनमें कर्म और भाग्य शब्द का एक ही अर्थ ग्रहण किया गया है । एक लोकगीत में "कर्म की रेख अमिट है, उसे मिटाने की सामर्थ्य किसी में नहीं है ।" इस भाव का सुन्दर वर्णन हुआ है । गोपीचन्द के जन्म के अवसर पर जब कोई ज्योतिषी आकर उसके भविष्य का लेखा-जोखा प्रस्तुत करता हुआ कहता है कि यह जोगी हो जायगा । इसपर उसकी माता क्रोधावेश में कहती है कि तुम्हारे पोथी पत्रे में आग लग जाय । ज्योतिषी ने उत्तर देते हुए नम्रतापूर्वक कहा कि कागज को तो फाड़कर फेंका जा सकता है, किन्तु कर्म (भाग्य) को कौन मिटा सकता है । वह तो पत्थर की लकीर है, जो कभी नष्ट नहीं की जा सकती । ब्रह्मा ने जो कुछ लिख दिया है, भला उसे कौन मिटा सकता है[2] ।

---

1 "स्टैण्डर्ड डिक्शनरी आफ फोकलोर माइथालोजी एण्ड लीजेण्ड", वाल्यूम२, पृ०४५१

2 "कागद होय राजा फारि कै फेंकौं,
कर्म न मेटो जाय हो राम ।
+ + +
"लिखने वाले लिख गये छाँड़ै
को है मेटनहार हो राम ॥"

-- पं० रामनरेश त्रिपाठी : "ग्रामगीत", पृ०३२९-३१

लोककथा-कहानियों के समान ही, बात-बात में भाग्यवाद की दुहाई देने का उल्लेख विवेच्ययुगीन हिन्दी कहानियों में उपलब्ध होता है । कहीं तो शीतला जैसी नारी आभूषणों का रोना रोती हुई कहती है कि "जिनके भाग्य में लिखा है वे यहीं सोने से लदी हैं, मेरी भांति सभी के करम थोड़े ही फूटे हैं ।"[1] और कहीं "कुसुम" की नायिका 'जहां भाग्य लिए जाता है, वहीं चली जा रही हूँ'[2] द्वारा अपनी मनोव्यथा एवं लाचारी व्यक्त कर रही है । कहीं भिखद्दू गुमान भाग्य पर भरोसा करते हुए अपने पिता से कहता है--"जिसके भाग्य में चक्की पीसना बदा हो, वह पीसे । मेरे भाग्य में चैन करना[3] लिखा है, मैं क्यों अपना सिर ओखली में दूं । मैं तो किसी से काम करने को नहीं कहता" और कहीं मिस्टर नसीम जैसे लखनवी महाशय भाग्य की महिमा का बखान करते हुए कहते हैं --" यहां सुबह से शाम तक के बीच भाग्य ने कितनों को धनी से निर्धन और निर्धन से भिखारी बना दिया । जो लोग सवेरे महल में बैठे थे, उन्हें इस समय वृक्ष की छाया[4] भी नसीब नहीं । जिनके द्वारा सदावर्त खुले थे, उन्हें इस समय रोटियों के लाले पड़े हैं ।" असहाय बालिका कुन्नी को बुढ़िया स्नेहसिक्त शब्दों में यही तो समझाती है--"बेटी, भाग्य में जो कुछ लिखा है, वह तो होकर ही रहेगा, किन्तु कब तक यहां बैठी रहोगी । मैं दीन ब्राह्मणी हूं, चलो मेरे[5] घर रहो, जो कुछ भिक्षा मांगन मांगी मिलेगा उसी में हम दोनों निर्वाह कर लेंगी ।यहां तक कि संसार के समस्त कार्य-व्यापार, नाते-रिश्ते,[6] लाभ-हानि, सुख-दुःख, जीवन-मरण, यश-अपयश, 'सब कुछ भाग्य के आधीन है' । ठीक भी है "जो होनी होती है, वह होकर ही रहती है[7] ।"

---

१ प्रेमचन्द	:	"मानसरोवर"	भाग ६, पृ०१५७
२ ,,	:	,,	भाग २, पृ०३५६
३ ,,	:	,,	भाग ७, "शंखनाद", पृ०१६६
४ ,,	:	,,	भाग ७ "बैंक का दीवाला", पृ०१०६
५ ,,	:	,,	,, "विस्मृति", पृ०२४५
६ ,,	:	,,	भाग १ "कायर", पृ०२२४

७ त्रिभुवन प्रसाद : "विभूति" - "छायाभिनी चन्द्रतारा", पृ०१०७

(५) लोक देवता : देवियाँ

लोकजीवन धर्ममय है। यद्यपि आजकल की नवीन शिक्षा-पद्धति तथा समय के प्रवाह ने प्राचीन भावनाओं में महान परिवर्तन उपस्थित कर दिया है तथापि लोकजीवन में आज भी धर्म का एकछत्र राज्य है। लोकजीवन में देवी-देवताओं का बहुत अधिक महत्व है। अतः उनका विवेचन प्रस्तुत प्रसंग में समीचीन होगा।

सामान्य विवेचन

लोकजीवन को सर्वाधिक प्रभावित करने वाली प्रकृति के साथ मानव-समाज का बड़ा गूढ़ परिचय है। प्रकृति के सभी उपयोगी और अनुपयोगी तत्व मानव-जीवन के साथ घुल-मिलकर एक हो गये हैं। अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए मानव ने चिरकाल से दोनों तत्वों की उपासना की है। "मैलिनोवस्की ने इसी को मानव धर्म कहा है। उनके विचार से आत्मरक्षा की भावना से प्रेरित होकर अपने जीवन के शैशवकाल में ही आदि मानवों ने प्रकृति से डरते हुए, भय, आश्चर्य और उल्लास से भर कर मानव ने धर्म को जन्म दिया। यही धर्म उसका आश्रय था और इसी में निहित था प्रकृति-शक्ति-सम्बन्धी उसका सारा अनुभव जो बाहर की विरोधी शक्तियों से संघर्ष द्वारा उसे प्राप्त हुआ था।[1] यही प्रकृत धर्म नाना प्रकार के विश्वासों के उद्गम का मूल स्रोत था। कालान्तर में, मानव ने अपने अवबोध के क्षणों में, सूर्य, चन्द्र, आकाश, पृथ्वी, ऊषा, रात्रि, विद्युत, वायु, वरुण आदि सभी प्राकृतिक उपादानों में देवत्व की प्राणप्रतिष्ठा की थी और इन्हीं के मध्य से ब्रह्मा, विष्णु, महेश जैसे त्रिदेवों की उत्पत्ति हुई। लोकमानस ने अपनी श्रद्धा और विश्वास के बल पर इनके सुनिश्चित रूप, आकार-प्रकार और क्रिया-व्यापारों की कल्पना की। सभ्यता के विकास के साथ-साथ इनकी संख्या बढ़ती गई। लोक विश्वास के अनुकूल ही, लोक का प्राणी, इन विभिन्न देवी-देवताओं की पूजा-अर्चना इसलिए करता है, क्योंकि ये उसे धन-धान्य से परिपूर्ण करते हैं, कठिन कार्यों के सम्पादन में उसकी सहायता करते हैं और संकट की घड़ियों में उसकी रक्षा भी करते हैं। यही कारण है कि आज भी देवी-देवताओं के प्रति लोक-मानस के हृदय में अटूट श्रद्धा तथा अगाध विश्वास की भावना भरी हुई है।

१- डा० [illegible] : "सूरसागर में लोकजीवन के अनुकूल, पृ० ५८४

परिणामतः न केवल एक साधारण अपढ़ तथा गंवार व्यक्ति इनकी उपासना में लगा रहता है, वरन् शिक्षित तथा सुसभ्य समुदाय के लोग भी एक साधारण पत्थर के टुकड़े की पूजा, तुलसी की पूजा और सूर्य-सूरज देवता को जल चढ़ाते हुए देखे जाते हैं ।

विवेच्ययुगीन हिन्दी कहानी साहित्य में अनेक लोक-देवताओं तथा लोक-देवियों का उल्लेख उपलब्ध है । प्रस्तुत प्रसंग में एक बात उल्लेखनीय है कि अनेक लोक-वर्ग अर्थात् अशिक्षित, असभ्य, ग्रामीण तथा असंस्कृत वर्ग के देवताओं को कालान्तर में पौराणिक स्वरूप प्रदान किया गया है तथा उनके विषय में विभिन्न अन्तर्कथाएं तथा धार्मिक पृष्ठभूमियां आदि जोड़ दी गई हैं । इसी प्रकार अनेक पौराणिक देवताओं को लोक-वर्ग ने भी अपनाकर, उनका लौकिकीकरण करते हुए, उनके धार्मिक तथा पौराणिक स्वरूप को गौणरूप प्रदान किया है । यह होते हुए भी कुछ लौकिक देवी-देवता ऐसे भी हैं जिन्हें पौराणिक या शास्त्रीय स्वरूप नहीं दिया गया है । ये केवल लोकवर्ग में ही प्रचलित हैं, जिनका पुराणों में उल्लेख तक नहीं किया गया है । इसी प्रकार कुछ ऐसे भी पौराणिक देवता हैं जिनकी नामावली केवल धर्म-ग्रन्थों में ही अंकित है, किन्तु लोक-वर्ग में उनका तनिक भी प्रचलन नहीं है । इस प्रकार प्रस्तुत निबन्ध में लोक देवी-देवताओं से तात्पर्य निम्नलिखित कोटि के देवताओं तथा देवियों से ही है :--

(क) जो देवता तथा देवियां मात्र लोकवर्ग में ही प्रचलित हैं, और जिनका कोई भी पौराणिक स्वरूप नहीं है ।

(ख) जो देवता तथा देवियां मूलतः लोक-वर्ग के हैं और जिनका व्यापक प्रचार आज भी लोक-वर्ग में है, इसके साथ ही साथ साथ जिनकी पौराणिक स्थिति भी है ।

(ग) वे देवता तथा देवियां जिनके उल्लेख अत्यन्त प्राचीन ग्रन्थों में उपलब्ध हैं, परन्तु जिनका स्वरूप विकसितरूप से पौराणिक काल में ही बना और वे पौराणिक देवता ही अधिक हैं तथा कालान्तर में वे लोक-वर्ग द्वारा अपना लिये गये और उनके साथ लोक प्रकृति के अनुरूप ही विभिन्न लोक-विश्वास तथा लोकगाथाएं आदि जुड़ गईं ।

प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी कहानी में उक्त तीनों कोटि के देवताओं का उल्लेख मिलता है, जिनका विवेचन नीचे किया जा रहा है :--

(क) <u>प्रथम कोटि</u>

<u>डीह बाबा</u>

डीह बाबा एक लोक देवता हैं, जिनकी उपासना इस

छोटे तथा अत्यधिक सीमित वर्ग में ही होती है । वस्तुतः इनकी पूजा ग्राम देवता के रूप में की जाती है । प्रत्येक गांव में इनका स्थान बना रहता है और गांव में किसी भी प्रकार का संकट आने पर इनकी पूजा अवश्य की जाती है । यात्रा आदि के समय, विवाहादि शुभअवसरों पर भी इन्हें लोक-प्राणी भुला नहीं पाता । प्रेमचन्द ने "चोरी" शीर्षक कहानी में डीह का उल्लेख किया है ।" गांव के पास पहुंचा, तो गांव के डीह का सुमिरन किया, क्योंकि अपने हलके में डीह की इच्छा सर्वप्रधान होती है ।"

राहुल सांकृत्यायन जी ने तो "डीह बाबा"[1] शीर्षक कहानी की ही रचना की है जिससे लोक वर्ग में "डीह बाबा" के महत्व का अनुमान लगाया जा सकता है । डीह बाबा की पूजा आज भी ग्राम्य जीवन में प्रचलित है और लोक-जीवन में इनका विशिष्ट स्थान है ।

<u>ठाकुर बाबा</u>

डीह बाबा के समान ही, लोक-जीवन में ठाकुर बाबा या ठाकुर जी भी एक लोक-देवता हैं, जिनका उल्लेख प्रेमचन्द ने "विद्रोही",[2] "ठाकुर का कुआं",[3] "लॉटरी",[4] "क्षमा परमोधर्मः",[5] "मंदिर",[6] तथा "शाप"[7] आदि अनेक कहानियों में किया है । वस्तुतः इनकी पूजा कुलदेवता अथवा ग्राम देवता के रूप में की जाती है । लोक निष्ठा के अनुसार वर्ष में एक या दो बार इनकी पूजा आवश्यक है, अन्यथा ये रुष्ट होकर परिवार अथवा ग्राम पर भारी संकट ढा सकते हैं । लोक-जीवन में, बिना ठाकुर जी का भोग लगे, भोजन नहीं किया जाता । यह चाहे निमंत्रण ही क्यों न हो ? लोकविश्वासानुकूल ही ठाकुर जी का भोग लगाने का उल्लेख प्रेमचन्द की "निमंत्रण" शीर्षक कहानी में हुआ है ।[8]

---

१. द्रष्टव्य : 'मानसरोवर', भाग-[illegible], पृ० [illegible] - १(क) 'सतमी के बच्चे' - पृ ७-१८
२. ,, : ,, , भाग-२, पृ० [illegible]
३. ,, : ,, , भाग-[illegible], पृ० [illegible]
४. ,, : ,, , भाग-[illegible], पृ० [illegible]
५. ,, : ,, , भाग-[illegible], पृ० [illegible]
६. ,, : ,, , भाग-[illegible], पृ० [illegible]
७. ,, : ,, , भाग-[illegible], पृ० [illegible]
८. ,, : ,, , भाग-[illegible], पृ० [illegible]

चौरा

लोकजीवन में चौरा पूजने का विधान बहुत व्यापक है। प्राय: प्रत्येक गांव में, किसी न किसी लोक-देवता का स्थान, किसी वृक्ष अथवा जलाशय के किनारे, चबूतरारूप में बना रहता है, जिस पर लाल-पीली पताकाएं फहराती रहती है। लोक-विश्वास के अनुसार किसी ओझा, पंडित आदि द्वारा निर्मित पूजा स्थान पर चौरा पूजता है, जिसमें जनसमुदाय बड़ी संख्या में एकत्रित होते हैं और ओझा चौरा देवता को प्रकट कर उनके द्वारा विभिन्न कार्य सम्पादित कराता है। प्रेमचन्द की "मुठ"[१] शीर्षक कहानी में इसी प्रकार के एक चौराका उल्लेख मिलता है।

नागदेवता

नाग का पूजन न केवल भारत में, वरन् सम्पूर्ण विश्व में विभिन्न समयों पर तथा विभिन्न प्रकार से होता है। भारतवर्ष में तो श्रावण-शुक्ल पंचमी को नागदेवता के सम्मान में नाग-पूजा का उत्सव मनाया जाता है, इसीलिए इस तिथि को नागपंचमी कहते हैं। इस दिन स्त्रियां घरों में नागों का चित्र बनाकर विशेष अनुष्ठान के साथ उनकी पूजा करती हैं तथा उनको प्रसन्न करने के लिए कच्चा दूध और लावा सारे घर में छिड़कती हैं। लोक-धर्म में नाग देवता के रूप में पूजे जाते हैं। विवेच्ययुगीन अनूठा कहानीकार मुंशी प्रेमचन्द ने "नाग-पूजा" शीर्षक कहानी में नाग देवता का उल्लेख किया है[२]। आज भी लोक का प्राणी नाग-देवता को देखकर प्रणाम करता है, अपने विश्वासानुसार उनका वध नहीं करता।

पीपल

वृक्ष-पूजा लोक धर्म की विशेषता है। न केवल भारत में वरन् विश्व भर में वृक्षों की पूजा के उदाहरण मिलते हैं[३]। भारतवर्ष में लोक-धर्म

१- प्रेमचन्द : "मानसरोवर", पृ० १९०-१९६

२- ,, : ,, , भाग-७, पृ० २८१-८९

३- विस्तृत अध्ययन के लिए देखिये : डब्ल्यू० क्रुक : "इन्ट्रोडक्शन टु पापुलर रिलीजन एण्ड फोकलोर आफ नार्दर्न इण्डिया"।

मास की शुक्ल प्रतिपदा से नवमी तक, वर्ष में दो बार, मनाया जाता है। विवेच्ययुगीन कहानीकारों ने नव-दुर्गा के पूजन तथा अनुष्ठानात्मक पक्ष का विस्तृत वर्णन किया है। राजाराधिकारमण प्रसाद सिंह ने "मरीचिका"[1] शीर्षक कहानी में नवरात्रि में दुर्गा-पूजन का वर्णन किया है।

लोक-जीवन में आज भी इसी रूप में नवरात्र में दुर्गा-पूजन का उत्सव देखा जा सकता है। सामूहिक रूप में दुर्गामाता की पूजा का विधान बंगालियों में विशेष प्रचलित है। व्यक्तिगत जीवन में भी दुर्गा देवी की पूजा-व्रत तथा अनुष्ठान किया जाता है। लोक विश्वास के अनुरूप ही फल की प्राप्ति भी होती है। श्रीमती शिवरानी देवी की "विश्वास"[2(क)] शीर्षक कहानी की नायिका माया देवी जी की कृपा से ही अपने पति की मृत्यु के वज्रपात से छुटकारे में समर्थ होती है और प्रेमचन्द की "सेवा-मार्ग"[2] की तारा दुर्गा की तपस्या द्वारा रातोंरात-सिर से पांव तक हीरे व जवाहिरातों से लद गई।

वनदेवी

लोक-देवियों में, वनदेवी की उपासना भी व्यापक है। लोक-मानस, वनों का देवता तथा स्त्रीरूप में मानवीयकरण कर उनके पीछे विविध मनोरंजक लोक-कहानियां भी जोड़ रखी है। वनदेवियों की उपासना भी प्रकृति की शक्ति मानकर ही की गयी है। कृष्णानन्द गुप्त द्वारा लिखित "प्राण प्रतिष्ठा"[3] शीर्षक कहानी में वनदेवी का वर्णन किया गया है।

(ख) द्वितीय कोटि

सूर्यनारायण

वेदों में सूर्य-देवता का स्थान विशेष है। इन्हें प्रजापति तक कहा गया है। वस्तुतः सूर्य लोक-देवता ही है और वहीं से इनका

---

१. दुलचन्द कुसुमांजलि पृ० ४२-४५

२क. द्रष्टव्य : कौमुदी, पृ० १२०-२१

२. ,, : "मानसरोवर", भाग-८, पृ० ९६-१०७

३. ,, : पुष्पहार, पृ० [illegible]

धार्मिकीकरण करते हुए, विभिन्न धार्मिक पृष्ठभूमियां दी गई हैं। वैदिक काल में तथा उससे पूर्व भी सूर्योपासना प्रचलित थी और सूर्य एक प्राकृतिक शक्ति देवता के रूप में पूज्य थे। कुक ने तो स्पष्टरूप से लिखा है कि वेदों के समय में भी सूरज एक लोक-देवता ही थे और इनका सम्बन्ध आदिम लोकवार्ता तक से है। लोकजीवन में आज भी सुन्दर वर, पुत्र-प्राप्ति आदि विभिन्न अभिलाषाओं की पूर्ति हेतु सूर्य की उपासना की जाती है। डा० कृष्णलाल ने "सूरसागर में लोकजीवन" नामक ग्रन्थ में सूर्य को लोक देवता के रूप में माना है।[1] प्रेमचन्द की 'रानी सारन्धा'[2] तथा 'अमावस्या की रात्रि'[2(क)] शीर्षक कहानियों में सूर्यनारायण का उल्लेख उपलब्ध है।

हनुमान : महावीर

हनुमान अथवा महावीर भी मूलतः लोक-देवता हैं और लोक से ही इनका ग्रहण एवं धार्मिकीकरण हुआ है। आज भी लोक-जीवन में अत्यधिक मान है और बजरंगबली, अंजनिसुत, पवन-पुत्र, लाल लंगोटी वाले, महावीर तथा हनुमान आदि विभिन्न नामों से स्मरण किये जाते हैं। प्रेमचन्द द्वारा लिखित "सूर"[2], "बरदान"[3], "बेटी का धन"[4] तथा "निर्मंत्रण"[5] आदि अनेक कहानियों में इनका उल्लेख मिलता है। अवश्य है कि महावीर के सम्बद्ध आनुष्ठानिक रूप का वर्णन नहीं मिलता, किन्तु लोकविश्वासानुकूल जब पंडित दीनानाथ चौबे ने अपनी पुत्र-वधूनी मंगला को खिड़की से झांकते हुए देखा, तो महावीर जी का नाम जपते हुए कहा - "मैं किवाड़ बन्द किये देता हूं।"[6]

गंगा-यमुना

लोक-जीवन में गंगा तथा यमुना का प्रकृति देवी के रूप में बहुत अधिक महत्व है। विभिन्नयुगीन कलाकारों ने गंगा नदी और गंगा देवी, तथा गंगा माता के रूप में अंकित किया है। लोक-प्रचलित तथा लोकविश्वासानुकूल

१- कृष्णदत्त : "सूरसागर में विश्वास और अनुष्ठान" चतुर्थ अध्याय-पृ० ११६
२क- ,, : "मानसरोवर", भाग-४, पृ० १७६, 2 तथा 2 (क): द्रष्टव्य मानसरोवर भाग-६, पृ० ५६-२१८ क्रमशः
३- ,, : ,, ,,-१, पृ० १९५
४- ,, : ,, ,,-८, पृ० ३१
५- ,, : ,, ,,-५, पृ० २१
६- प्रेमचन्द : ,, ,,-६, पृ० १७६

गंगा-यमुना में स्नान करने का वर्णन विभिन्न कहानियों में हुआ है । प्रेमचन्द ने स्वयं "मंदिर"[1], "सुजानभगत"[2], "शाप"[3], "गृह-दाह"[4], "मृतक-भोज"[5], "दो सखियां"[6] आदि कहानियों में गंगा-स्नान का उल्लेख किया है ।

कहना न होगा कि प्रस्तुत वर्णन लोकविश्वासानुमोदित है और आज भी गीत गाते हुए गंगा स्नान को जाती स्त्रियां, जप-भजन करते हुए लोग, माघ की सर्दी में स्नान किए हुए कांपते-जन, गंगातट पर कुटी बनाकर रहते हुए चौथी अवस्था के प्राणी आज भी देखने को मिल जायेंगे । आज भी प्रत्येक हिन्दू की यही अभिलाषा है कि उसका पार्थिव शरीर गंगा के तट पर ही हो और उसकी अस्थियां, राख की ढेर सब कुछ गंगा माता की लोल-लहरियों में ही विसर्जित हो । इसी प्रकार लोक-विश्वास के अनुकूल ही जयशंकर प्रसाद ने "भिखारिन"[7] शीर्षक कहानी में गंगा स्नान का वर्णन किया है ।

लोकजीवन में गंगा के समान ही यमुना का भी विशेष महत्व है । विवेच्ययुगीन "ममता"[8] शीर्षक कहानी में यमुना का यमुना देवी के रूप में उल्लेख हुआ है । यमुना देवी से सम्बद्ध लोक-प्रचलित विश्वास है कि यमुना के दर्शन-स्नान से पापी मुक्त हो जाते हैं । इसी आधार पर विवेच्ययुगीन कहानीकार जैनेन्द्र ने अपनी "दिल्ली में"[9] शीर्षक कहानी के अन्तर्गत यमुना स्नानार्थियों का उल्लेख किया है । आज भी, कार्तिक मास में यमुना-स्नान तथा मेला का विशेष महत्व है । यह लोक-मन के प्राणी का यमुनादेवी के प्रति अटूट श्रद्धा तथा अगाध विश्वास का प्रमाण है ।

१- द्रष्टव्य : "मानसरोवर", भाग-५, पृ० ५
२- ,, : ,, ,, ,, पृ० १८३
३- ,, : ,, ,, ६ पृ० ७२
४- ,, : ,, ,, ,, ,, १७३
५- ,, : ,, ,, ४ ,, १७४
६- ,, : ,, ,, ,, ,, २२६
७- ,, : "[illegible]" [illegible]
८- ,, : "मानसरोवर", भाग-३, पृ० २०१
९- ,, : वातायन, पृ० ६८

समुद्र देवता

गंगा-यमुना के समान ही लोकजीवन में समुद्र देवता का पूजन भी किया जाता है। आज रामेश्वरम्, गंगासागर की यात्रा करने वाले लोक-प्राणी समुद्र देवता को श्रद्धा से युक्त नारियल तथा यज्ञोपवीत चढ़ाते हैं। लोक-विश्वास है कि नारियल में यज्ञोपवीत लपेट कर चाहे जितनी गांठ लगा दी जाय, समुद्र देवता यज्ञोपवीत ग्रहण कर, नारियल प्रसाद रूप में, लहरों द्वारा जल से बाहर फेंक देते हैं। समुद्र का देव रूप आवाहन किया जाता है। विवेच्ययुगीन कहानीकार जयशंकर प्रसाद द्वारा लिखित "बनजारा" शीर्षक कहानी में धीवरों द्वारा समुद्र देवता की पूजा का उल्लेख उपलब्ध है।[1]

(ग) तृतीय कोटि

श्री रामचन्द्र जी

पुराणों में श्रीरामचन्द्र जी का उल्लेख सुरक्षित है। श्रीमद्भागवत महापुराण के नवम स्कंध में रामचरित भी वर्णित है। जन-जीवन में भी इनकी उपासना, पूजा का प्रचार और प्रसार है। चैत्र शुक्लपक्ष की नवमी के दिन श्रीराम का जन्मोत्सव आज भी बड़े धूमधाम से मनाया जाता है और आश्विन शुक्ल प्रतिपदा से लेकर दशमी-पर्यन्त, उल्लास के वातावरण में श्रीरामचन्द्र की लीलाएं एवं शोभायात्राएं निकाली जाती हैं। आज भी रामनगर की रामलीला तथा तीर्थराज प्रयाग का रामदल बहुत प्रसिद्ध है।[2] विवेच्ययुगीन कहानीकारों में लोकविश्वास के अनुकूल श्री रामचन्द्र का उल्लेख प्रेमचन्द की "शाप" शीर्षक कहानी में हुआ है।[3]

भगवान श्रीकृष्ण चन्द्र

भगवान श्रीराम के समान ही भगवान श्रीकृष्णचन्द्र भी वैष्णव पुनरुत्थान के द्वारा सनातन पौराणिक प्रणाली पर उभरे हैं। किन्तु

१- द्रष्टव्य : "इन्द्रजाल", पृ० १००-१

२- विस्तार के लिए द्रष्टव्य : "प्रस्तुत प्रबन्ध का अध्याय-४ (१ लोकोत्सव)

३- [illegible]

४- द्रष्टव्य : "मानसरोवर", भाग-४, पृ० [illegible]

डा० सत्येन्द्र के अनुसार,"लोकमेला समानधर्मी व्यक्तियों को एक में मिला देने में अत्यन्त कुशल होती है, श्री कृष्ण तो मूलत: लोकवार्ता की देन हैं एवं उनके विस्तृत वृत्त में अनेक सूत्र लोकवार्ताएं हैं ।[1] आज भी लोकजीवन में कृष्ण के प्रति भी अटूट श्रद्धा है । लोकजीवन में उनकी भी आराधना-पूजा का प्रचार है । आज भी प्रतिवर्ष भाद्रपद मास की कृष्ण-अष्टमी को, श्रीकृष्ण जन्मोत्सव, बड़े उल्लास के साथ मनाया जाता है और छ: दिन तक उनके जीवन से सम्बद्ध-कथानकों के आधार पर झांकियां सजाई जाती हैं । श्रावण मास में, मथुरा-वृन्दावन का झूला शृंगार भी प्रसिद्ध ही है । विवेच्ययुगीन हिन्दी कहानीकारों ने श्रीकृष्ण का भी उल्लेख यत्र-तत्र किया है,[2] जिसका विवेचन विस्तारपूर्वक लोक व्रतोत्सवों के प्रसंग में किया जा चुका है ।

<u>भगवान शिव</u>

राम और कृष्ण के समान ही लोकजीवन में भगवान शिव का भी विशेष महत्व है । आज भी भक्ति-भाव से लोकजीवन में शिव की पूजा होती है । लोक-विश्वास है कि भगवान शिव "आशुतोष" हैं, वे बहुत शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं और भक्त की अभिलाषापूर्ण कर देते हैं । लोकगीतों में जिन प्रधान देवताओं की पूजा का उल्लेख मिलता है, उसमें शिव जी का सर्वाधिक वर्णन हुआ है ।

प्रेमचन्द की 'तगादा' शीर्षक कहानी के नायक 'सेठ चेतराम ने स्नान किया, शिवजी को जल चढ़ाया, दो दाने मिर्च चबाये, दो लोटे पानी पिया और सोटा लेकर तगादे पर चले ।[3] जयशंकर प्रसाद की 'प्रतिमा' शीर्षक कहानी में रजनी बिना शिव-पूजन किये, पानी नहीं पीती ।[4]

१- द्रष्टव्य : 'मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोकतात्विक अध्ययन', पृ० ६८

२- ,, : 'प्रस्तुत प्रबन्ध का अध्याय पाँच-१-, 'लोकपर्व, व्रतोत्सव'।

३- ,, : 'मानसरोवर', भाग-४, पृ० ७०

४- ,, : 'प्रतिध्वनि', पृ० ६२-६६

इसी प्रकार चण्डी प्रसाद 'हृदयेश' द्वारा लिखित 'प्रणय-परिपाटी'[1] शीर्षक कहानी में भगवान शिव के पूजन-विधान का वर्णन किया गया है।

<u>सत्यनारायण</u>

सत्यनारायण भगवान की पूजा का प्रचार लोकजीवन में बहुत अधिक है। शायद ही कोई हिन्दू परिवार ऐसा हो, जिसके घर में उनकी पूजा न हुई हो और न होती हो। किसी भी शुभअवसर पर, अथवा कार्य-सिद्ध होने पर उनका व्रत रखकर, उनकी कथा सुनी जाती है। विवाह के उपरान्त तो उनकी पूजा अत्यधिक आवश्यक मानी गई है। प्रत्येक मास की पूर्णिमा, अमावस्या तथा संक्रान्ति के दिन, कितने ही घरों में आज भी सत्यनारायण भगवान की कथा-पूजा का विधान देखा जा सकता है। लोक-प्राणी का विश्वास है कि उनकी कृपामात्र से रोग, शोक, भय तत्काल नष्ट हो जाते हैं और धन-धान्य से परिपूर्ण, सन्तान का सुख भोगता हुआ, अन्त में परमधाम को प्राप्त करता है। विवेच्ययुगीन हिन्दी कहानी में[2] सत्यनारायण की पूजा-कथा का उल्लेख हुआ है। स्वयं प्रेमचन्द की 'खुदाई फौजदार'[2], 'हिंसा परमो धर्मः'[3], 'आत्माराम'[4] आदि विभिन्न कहानियों में सत्यनारायण भगवान का उल्लेख उपलब्ध है। राहुल सांकृत्यायन द्वारा लिखित 'डीह बाबा' शीर्षक कहानी[5] में बड़े समारोह से, सत्यनारायण की कथा, पूरी से कहवाने का उल्लेख किया है।

१- द्रष्टव्य : 'नन्दन-निकुंज', पृ० ४५-५८

२- ,, : 'मानसरोवर', भाग-२, पृ० ७०

३- ,, : ,, , भाग-४, पृ० ८६

४- ,, : ,, , भाग-७, पृ० १२०

५- ,, : 'सतमी के बच्चे', पृ० ८८

(६)- लोक वस्त्राभूषण : शृंगार प्रसाधन :

लोक-जीवन में वस्त्राभूषण तथा शृंगार प्रसाधनों का भी अपना विशिष्ट स्थान है। प्राकृतिक सौन्दर्य से परिपूर्ण धरती माँ की गोद में जन्म लेकर, उन्मुक्त वातावरण में, स्वच्छन्द विचरण करते हुए, जीवन यापन करने वाला प्राणी, यदि सौन्दर्य-प्रेमी होता है, तो इसमें आश्चर्य क्या ? प्राकृतिक सौन्दर्य से अभिभूत आदिम-मानव-मानस अपनी सौन्दर्य-भावना को, अत्यन्त प्राचीन काल से ही, अभिव्यक्त करता रहा है और आज भी लोक-प्राणी, अपनी रुचि के अनुकूल सुन्दर तथा आकर्षक वस्त्र, आभूषण धारण कर, अनेक शृंगार-प्रसाधनों से अपना लोक-शृंगार करता आ रहा है, जिसके मूल में लोक-मानस की सौन्दर्यभावना निहित जान पड़ती है। अस्तु, प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी कहानी में उल्लिखित वस्त्राभूषण तथा शृंगार प्रसाधनों का विवेचन कर लेना भी उपयुक्त होगा।

विवेच्ययुगीन हिन्दी कहानी में, अन्य लोकतत्वों के समान ही, लोक सज्जा प्रसाधनों का भी उल्लेख उपलब्ध है। प्राप्त सामग्री के आधार पर इन प्रसाधनों को तीन प्रमुख वर्गों में विभक्त किया जा सकता है —

(अ) वस्त्रात्मक, (ब) आभूषणात्मक, (स) अन्य शृंगार प्रसाधन

(अ) वस्त्रात्मक

लोक-सज्जा प्रसाधनों की चर्चा करते हुए सर्वप्रथम हमारा ध्यान वस्त्रों अर्थात् वेशभूषा की ओर आकृष्ट होता है। भारतीय जन-जीवन में उत्सवों की प्रधानता होने के कारण, प्रत्येक प्राणी यथावसर, अपनी रुचि के अनुकूल सुन्दर तथा आकर्षक वस्त्र धारण करते हैं। इतना ही नहीं बल्कि विभिन्न संस्कारों के सम्पादन के समय भी विभिन्न प्रकार के वस्त्र पहने जाते हैं। इस दृष्टि से जीवन में वस्त्रों का अपना एक अलग महत्व होता है। निःसन्देह वस्त्र व्यक्ति के सौन्दर्य तथा प्रभाव को बढ़ाने में सहायक होते हैं। अतः यहाँ संक्षेप में बालक, पुरुष तथा स्त्री वर्ग से सम्बन्धित वस्त्रों का विवेचन किया जा रहा है।

(१) बालक, पुरुष : वस्त्र

टोपी, कंटोप, साफ़ा, पगड़ी

लोक-जीवन में सिर पर टोपी, कंटोप, साफ़ा, पगड़ी इत्यादि पहनने की व्यापक प्रथा प्रचलित है। प्राचीनकाल में साफ़ा और पगड़ी का विशेष महत्व था। जब कोई व्यक्ति किसी व्यक्ति के चरण पर अपनी पगड़ी उतार कर रख देता था, तब यह मान लिया जाता था कि वह व्यक्ति उसकी शरण में आ गया, अस्तु उसकी रक्षा तथा कष्ट का निवारण उस व्यक्ति का कर्तव्य समझा जाता था, जिसके चरणों में पगड़ी रखी जाती थी। धीरे-धीरे पगड़ी और साफ़ा का महत्व कम होता जा रहा है, फिर भी लोकजीवन में अभी भी उसका स्थान बना हुआ है। जन-जीवन में टोपी का भी प्रचलन है, जिसे बालक तथा पुरुष दोनों ही पहनते हैं। डा० मोतीचन्द्र ने अपने ग्रन्थ 'प्राचीन भारतीय वेश-भूषा' के अन्तर्गत कुलाहनुमा टोपी का वर्णन करते हुए लिखा है कि विदेशी टोपियां पहनते थे।[1] विवेच्ययुगीन कहानी में टोपी,[2] कंटोप,[3] पगड़ी[4] तथा साफ़ों[5] का अनेक स्थलों पर उल्लेख किया गया है। टोपी के अन्य भेद 'कंटोप' का भी उल्लेख प्रेमचन्द ने किया है। आज भी बालक तथा वृद्ध व्यक्ति जाड़े के दिनों में कनटोप पहनते देखे जा सकते हैं। इसमें दो डोरी होती

१- द्रष्टव्य : प्राचीन भारतीय वेशभूषा, पृ० १०६

२- ,, : (क) 'माँ', मानसरोवर भाग १, पृ० ३८
(ख) 'मोटर के छींटे', मानसरोवर भाग २, पृ० ८०
(ग) 'ममता', मानसरोवर भाग ८, पृ० २०६

३- ,, : (क) 'शान्ति' : मानसरोवर भाग १, पृ० ६५
(ख) 'क्या [illegible]' ,, ,, २, पृ० ३३५
(ग) 'निमंत्रण' ,, ,, ५, पृ० १५
(घ) '[illegible]' वही ,, , पृ० २८७
(ङ) '[illegible]' ,, ,, ८, पृ० १२

४- ,, : (क) '[illegible]' : मानसरोवर भाग ५, पृ० ९५
(ख) '[illegible]' : ,, ,, ७, पृ० १६७
(ग) '[illegible]' : वही पृ० १५२
(घ) '[illegible]' : ,, ,, पृ० २३८

५- ,, : 'प्रकृति का पुजारी', मानसरोवर, भाग ८, पृ० २६७

भारतीय जन-जीवन में शरीर के लिए आरामदायक ढीले-ढाले वस्त्रों को पहनने का प्रचलन अधिक है। बाबू गुलाबराय के मतानुसार हमारी रहन-सहन, पोशाक आदि सभी बातें जातीय परिस्थिति, देश के वातावरण और देश की भावनाओं से सम्बन्धित हैं। जमीन पर बैठना, हाथ से खाना, नहाकर खाना, लम्बे-ढीले कपड़े पहनना, बिना सिले कपड़ों को अधिक शुद्ध मानना, ये सब चीजें देश की आवश्यकताओं और आदर्शों के अनुकूल हैं। .... इस देश में शरीर को अधिक महत्व नहीं दिया जाता है। इसीलिए लम्बे कपड़ों को जो शरीर को उभार में न लावें और उसे पूर्णतया ढकें अधिक महत्व दिया जाता है।[1] यही कारण है कि लोक-जीवन में धोती, कुर्ता, मिरजई, अचकन आदि जैसे ढीले-ढाले वस्त्र ग्रहण किये गये हैं। विवेच्ययुगीन कहानी में इसी प्रकार के ढीले-ढाले, लांग समन्वित धोती,[2] कुर्ता,[3] मिरजई,[4] कटदार नीचा लबादा,[5] अचकन,[6] अंगरखा[7] आदि वस्त्रों का उल्लेख उपलब्ध है।

१- देखिये : "भारतीय संस्कृति" : मुंशी अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० २८४

२- प्रेमचन्द : मानसरोवर भाग ४, "लांछन", पृ० ३५
 ,, : ,, ,, ; "आगा-पीछा", पृ० १२५
 ,, : ,, ,, ; "मांगे की घड़ी", पृ० २८३
 ,, : ,, ,, ६, "नशा", पृ० १०८
जैनेन्द्र : वातायन, "ब्याह", पृ० ८५
प्रेमचन्द : मानसरोवर भाग २, "मोटर के छींटे", पृ० ७९
 ,, : ,, ,, ,, "दूध का दाम", पृ० २११

३- प्रेमचन्द : मानसरोवर भाग १, "स्वामिनी", पृ० १२४
 ,, : ,, भाग ४, "ढपोरसंख", पृ० ६२
 ,, : ,, भाग ४, "पूत", पृ० १८५
 ,, : ,, भाग १, "ईदगाह", पृ० २३-३८
 ,, : ,, भाग ७, "[illegible]", पृ० १६७
जैनेन्द्र : वातायन, "ब्याह", पृ० ८५

४- प्रेमचन्द : मानसरोवर भाग ४, "सवा सेर गेहूं", पृ० १९५
 ,, : ,, ,, ६, "नशा", पृ० १०७
 ,, : ,, ,, २, "[illegible]", पृ० ३५३
 ,, : ,, ,, ५, "निमंत्रण", पृ० १५
 ,, : ,, ,, ५, "बहिष्कार", पृ० ११०
 ,, : ,, ,, ६, "रामलीला", पृ० २४२

५- ,, : ,, ,, ४, "[illegible]", पृ० २९८

६- ,, : ,, ,, ५, "[illegible]", पृ० ८५
 ,, : ,, ,, ६, "[illegible]", पृ० ५५
 ,, : ,, ,, ५, "[illegible]", पृ० २०९

७- प्रेमचन्द : ,, ,, ६, "अमावस्या की रात्रि", पृ० २४३
विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' : "[illegible]"-खण्ड २, पृ० १११
प्रसाद : इन्द्रजाल, "गुंडा", पृ० ५५

जामा-जोड़ा तथा पटका

विवाहादि शुभ अवसरों पर भी लोकजीवन में ढीले-ढाले वस्त्रों को पहनने का प्रचलन है, जिसमें जामा, जोड़े, पटका या फेटका का विशेष महत्व है। जामा ढीला-ढाला कुर्तानुमा होता है और उसी में घेरदार चोली जुड़ी रहती है, जिसे जोड़ा कहते हैं। इस अवसर पर कमर में बांधने के लिए एक दुपट्टा की तरह पीला वस्त्र भी होता है, जिसे पटका या फेटका कहते हैं। विवेच्ययुगीन कहानी में इन वस्त्रों का भी उल्लेख किया गया है। प्रेमचन्द की 'फूल'[१] शीर्षक कहानी में 'भारी जोड़े' तथा रायकृष्णदास द्वारा लिखित 'इनाम'[२] शीर्षक कहानी में 'जामा तथा कमर में फेटका' बांधने का उल्लेख किया गया है। विवाहादिक अवसरों के अतिरिक्त भी पटका बांधने का उल्लेख प्रेमचन्द ने किया है।[३]

पीताम्बर

पीताम्बर को पीली पिछौरी भी कहा जाता है। यद्यपि आज पीताम्बर धारण करने का रिवाज ही उठ-सा गया है फिर भी लोक-जीवन में इसका अपना विशिष्ट महत्व है। पूजा-पाठ तथा विवाह-बारात आदि में आज भी इसका प्रयोग जन-जीवन में किया जाता है। विवेच्ययुगीन अगुआ कहानीकार प्रेमचन्द ने अपनी 'मोटर के छींटे' शीर्षक कहानी में इसका उल्लेख किया है।[४] पीताम्बर का उल्लेख 'कानों में कंगना' शीर्षक कहानी में भी मिलता है। नरेन्द्र गुरुदक्षिणा के रूप में पांच स्वर्ण मुद्राओं के साथ पीताम्बर भी आचार्य के निकट ले जाता है।[५]

१- द्रष्टव्य : 'मानसरोवर' भाग ४, पृ० १८५
२- ,, : 'अनाख्या', पृ० ११६
३- ,, : 'मानसरोवर' भाग ६, 'राज्य-भक्त', पृ० २६१
४- ,, : 'मानसरोवर' भाग २, पृ० ७८
५- ,, : राजाराधिका रमण प्रसाद सिंह : 'कुसुमांजलि', पृ० ७२

[illegible] स्त्रियों से सम्बद्ध वस्त्र

लोकगीतों के समान ही विवेच्ययुगीन हिन्दी कहानी में, स्त्रियों से सम्बद्ध साड़ी, लहंगा, चोली, चुनरी आदि विभिन्न वस्त्रों के प्रयोग का उल्लेख अनेक बार हुआ है । स्त्रियों ने अपने वस्त्रों में लाल, पीला, केसरिया, धानी, हरा, गुलाबी तथा काले जैसे चटकीले तथा गहरे रंगों को विशेष पसन्द किया है ।

रेशमी साड़ी

लोक-जीवन में प्राय: सभी धोतियों को साड़ी कह दिया जाता है, किन्तु रेशमी साड़ी विशेष प्रिय है । प्राय: विवाह, पर्वोत्सवों के अवसर पर स्त्रियां रेशमी साड़ी का ही प्रयोग करती हैं, क्योंकि लोक-जीवन में रेशम पवित्र माना गया है । विवेच्ययुगीन प्रमुख कहानीकार प्रेमचन्द ने अपनी 'मोटर के छींटे'[1], 'कामुनी-कुमार'[2], 'सोहाग का शव'[3], 'ममता'[4], 'जीवन का शाप'[5] आदि विभिन्न कहानियों में रेशमी साड़ी का उल्लेख किया है । सुदर्शन की गुजरी रेशमी साड़ी में ही फबती है ।[6] सुमित्रानन्दन पंत की 'अवगुंठन'[7] कहानी में नवागत वधू भी गहरे लाल रेशम की साड़ी पहने हुए है और श्री प्रताप नारायण श्रीवास्तव द्वारा लिखित 'तीज की साड़ी' शीर्षक कहानी में जान्हवी अपने पतिदेव से रेशमी साड़ी ही मांगती है और शिवनाथ उसकी इच्छापूर्ति करता है ।[8] इसी प्रकार

१- प्रेम चन्द : 'मानसरोवर', भाग २, पृ० ८७

२- ,, : ,, पृ० ३०४

३- ,, : ,, , भाग ५, पृ० २१४

४- ,, : ,, , , पृ० २७६

५- ,, : ,, , भाग २, पृ० २४०

६- ,, : 'चित्रकार', 'पनघट', पृ० ३४

७- ,, : 'पांच कहानियां', पृ० १६७

८- ,, : 'आशीर्वाद', पृ० ६१-६२

राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह की प्रसिद्ध कहानी 'कानों में कंगना' शीर्षक कहानी में किरन हरी साड़ी धारण करती है।[1] और 'बिजली' शीर्षक कहानी में गुलेनार रंग की साड़ी का उल्लेख मिलता है।[2]

चुनरी

विवाह के शुभ अवसर पर रंग-बिरंगी चुनरी पहनने की प्रथा आज भी विद्यमान है। ऐसे अवसरों पर प्रायः रेशमी चुनरी, पीले रंग की साड़ी अथवा केसरियां रंग की साड़ी पहनना शुभ माना जाता है। विवेच्ययुगीन कहानी में इनका भी उल्लेख मिलता है। स्वयं प्रेमचन्द की 'बहिष्कार' शीर्षक कहानी में रेशमी चुंदरी का उल्लेख किया गया है।[3] तथा 'सती'[4] शीर्षक कहानी में धानी चुनरी का उल्लेख है। इसी प्रकार 'सोहाग का शव' शीर्षक कहानी में पीले रंग की साड़ी तथा 'सुहाग की साड़ी' शीर्षक कहानी में केसरिया रंग की रेशम की साड़ी सुहाग सूचक साड़ियां हैं।

'सती' अथवा 'जौहर' के समय भी राजपूत स्त्रियां सौभाग्य सूचक लाल रंग की चुनरी ही पहनती हैं, जिसका उल्लेख 'प्राण का अग्निकुंड'[5] शीर्षक कहानी में हुआ है।

अवधेय है कि जन-जीवन में सौभाग्यवती स्त्रियां ही रंग-बिरंगी साड़ियां पहनती हैं। विधवा स्त्रियों के लिए रंगीन साड़ी के स्थान पर सफेद साड़ी पहनने का ही विधान है। विवेच्ययुगीन कहानी[6] में प्रायः विधवा स्त्रियां सफेद धोतियां साड़ी में ही चित्रित की गई हैं।

१- द्रष्टव्य : 'कुसुमांजलि', पृ० ७२
२- ,, : ,, , पृ० ११
३- ,, : 'मानसरोवर', भाग ५, पृ० ११०
४- ,, : ,, , ,, ४, पृ० १३७
५- ,, : ,, , ,, ८, पृ० १३७
६- प्रेमचन्द : 'मानसरोवर', भाग १, 'धिक्कार', पृ० २६०

लंहगा, ओढ़नी, दुपट्टा

लोक-जीवन में स्त्रियों का प्रिय वस्त्र लंहगा और ओढ़नी भी है। डा० मोतीचन्द्र के अनुसार मध्यकालीन उत्तर और पश्चिम भारत में स्त्रियां लंहगा पहनती थी और आजदिन भी पश्चिमी युक्त प्रान्त, राजपूताना, मालवा तथा गुजरात में यह प्रथा जारी। जहां तक हमें पता चलता है सबसे पहले लंहगा कुषाण युग की मूर्तिकला में दीख पड़ती है। इस युग की मूर्तियों में आये वेश विन्यास से यह प्रायः निश्चित हो जाता है कि लंहगा पहनने की प्रथा साधारण न होकर अपवाद स्वरूप थी। ऐसा लगता है कि इस युग की ग्वालिनें और उन्हीं की श्रेणी की स्त्रियां लंहगा पहनती थीं।[1] किन्तु आज लोक जीवन में लंहगा ने अपना विशेष स्थान बना लिया है। विवाह में तो "चढ़ाव" के अवसर पर लंहगा और चुनरी अत्यावश्यक वस्त्र माना जाता है। विंध्ययुगीन कहानीकार वाचस्पति पाठक द्वारा लिखित 'सांता' शीर्षक कहानी की नायिका महका काही रंग का सुन्दर लंहगा तथा धानीरंग का दुपट्टा ओढ़े हुए चित्रित की गयी है।[2] इसी प्रकार प्रेमचन्द की '[illegible]'[3] तथा जयशंकर प्रसाद की 'आंधी'[4] शीर्षक कहानियों में लंहगे का उल्लेख मिलता है। जयशंकरप्रसाद की 'इन्द्रजाल' शीर्षक कहानी में छींट का घाघरा तथा गोटे से टंकी ओढ़नी का उल्लेख दृष्टिगत है।[5]

चोली

लोकगीतों में चोली पहनने का उल्लेख बारम्बार पाया जाता है, जिससे ज्ञात होता है कि लोक-जीवन में चोली स्त्रियों का प्रिय वस्त्र है। कोई स्त्री अपने पति को सम्बोधित करती हुई कहती है कि मुझे कुसुम्भी रंग की चोली के

१- द्रष्टव्य : 'प्राचीन भारतीय वेश-भूषा', पृ० १२६
२- ,, : 'द्वादशी संग्रह', पृ० ४५ - क पं० ज्वालादत्तशर्मा : 'भाग्यलिपि' 'गल्प-पंचदशी', पृ० ४२
३- द्रष्टव्य : 'मानसरोवर' भाग २, पृ० ३६
४- ,, : 'आंधी', पृ० ३
५- ,, : 'इन्द्रजाल', पृ० ५

अतिरिक्त अन्य किसी भी रंग की नहीं सुहाती।[1] राधाराधिकारमण प्रसाद सिंह द्वारा लिखित "बिजली"[2] शीर्षक कहानी में नायिका "गुलनार साड़ी पर कुसुम्भी चोली" ही पहने हुए, चित्रित की गई है और "कानों में कंगना"[3] की किरन लाल चोली पर हरी साड़ी पहनती है। प्रसाद की कहानी "इन्द्रजाल"[4] में भी चोली का उल्लेख किया गया है।

(ख) आभूषणात्मक

वस्त्रात्मक लोक-सज्जा प्रसाधनों के पश्चात् लोकजीवन में आभूषणात्मक शृंगार प्रसाधनों का स्थान आता है। धन-धान्य तथा ऐश्वर्य समृद्धि से परिपूर्ण भारतवर्ष की नारियों में आभूषण पहनने की परम्परा बहुत प्राचीन है। आभूषण उनका परमप्रिय पदार्थ है और उनके जीवन में स्फूर्ति तथा उत्साह भरने के लिए संजीवनी का काम करते हैं। डा० हरगुलाल के शब्दों में, "ब्रज में स्त्रियां नाक, कान, हाथ और पैरों में इतने आभूषण पहनती हैं कि उनकी गणना कोई सरल काम नहीं है[5], किन्तु प्राचीनकाल से ही उन्हें बारह प्रकारों में समेट लिया गया है।" मूलतः वधू को बारह जेवर पहनायें, यह आवश्यक माना गया है। ये इस प्रकार हुआ करते थे, नूपुर, किंकिणी, चूड़ी, अंगूठी, कंकण, विजायठ, हार, कंठश्री, बेसर, बिरिया, टीका और शीशफूल[6]।" आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने चूड़ी को वलय और विजायठ को अंगद कहा है और इन बारह प्रकार के आभूषणों के चार प्रमुख भेदों का उल्लेख है :—

आवेध्य, बंधनीय, क्षेप्य और आरोप्य।[7]

१- "ए प्रभु ! चोलिया त मगैला कुसुम रंगा,
अवरु ना भावेला हो !"—
डा० उपाध्याय : "भोजपुरी लोकगीत", भाग १, पृ० ६२
२- द्रष्टव्य : "कुसुमांजलि", पृ० ३१
३- ,, : ,, , पृ० ७२
४- ,, : "इन्द्रजाल", पृ० ५
५- ,, : "सूरसागर में लोकजीवन", पृ० १३३
६- कुमारी कामिनी कौशिक ललना : "दीप-चरण", "दीप-किरण", पृ० २८-२९
७- पद्मावत : "जायसी ग्रन्थावली", सम्पादक : आचार्य रामचन्द्रशुक्ल : नागरी प्रचारिणी सभा काशी, पंचम संस्करण, पाद टिप्पणी, पृ० १३०

लोक-जीवन में ये सभी प्रकार के आभूषण आज भी प्रचलित हैं और स्त्रियां बड़ी ही रुचि के साथ इन्हें धारण करती हैं। विवेच्ययुगीन हिन्दी कहानीकारों ने भी विभिन्न अंगों में धारण किये जाने वाले, विभिन्न आभूषणों का वर्णन किया है जो इस प्रकार है :--

नथुनी

नाक में पहनने का गोल स्वर्णाभूषण जिसके मध्य में मोती आदि जड़े रहते हैं, नथुनी कहलाता है। लोकजीवन में विवाह के अवसर पर इसे कन्या को पहनाना शगुन माना जाता है। स्त्रियां इसे बड़े चाव से धारण करती हैं। विवेच्ययुगीन कहानीकार वाचस्पति पाठक द्वारा लिखित "तोता" शीर्षक कहानी में "मलका नाक में सोने की छोटी सी नथनी" पहने हुए चित्रित की गई है[1]।

हार

हार गले का एक आभूषण है, जिसमें हीरा, जवाहरात तथा विभिन्न प्रकार के रत्न आदि बड़े कौशलपूर्ण ढंग से जड़े रहते हैं इन्हीं जड़े हुए कीमती पत्थरों पर हार का समस्त सौन्दर्य अवलम्बित रहता है। प्रेमचन्द युगीन हिन्दी कहानी में हार[2] तथा उसके कई प्रकारों जैसे-चन्द्रहार[3], मोतियों का हार[4], लालों का हार[5] आदि का उल्लेख मिलता है। इसके साथ ही साथ गले में ही पहनने के अन्य आभूषणों में से कंठा[6], कंठी[7], मोतियों की माला[8], जंजीर[9], हाकिट[10] आदि का भी उल्लेख किया गया है।

१- द्रष्टव्य : "द्वादशी", पृ० ६५
२- प्रेमचन्द : "मानसरोवर", भाग ५, "आत्म-संगीत", पृ० २११
३- ,, : ,, ,, , "ऐक्ट्रेस", पृ० २३८
३- ,, : ,, ,, ४, "अभिलाषा", पृ० ६५
४- कृष्णानन्दगुप्त : "दादी की तरकीब", पुरस्कार, पृ० ६७
५- प्रेमचन्द : "[illegible]", "मानसरोवर", भाग १, "न्याय", पृ० १४८
६- ,, : "मानसरोवर", भाग २, "दूध का दाम", पृ० २११
७- सुभद्राकुमारी चौहान : "सोने की कंठी", उन्मादिनी, पृ० ५१
८- प्रेमचन्द : "मानसरोवर", भाग ३, "नया विवाह", पृ० २४६
९- ,, : "मानसरोवर", भाग ६, "अमावस्या की रात्रि", पृ० २११
१०- ,, : "मानसरोवर", भाग ५, "ऐक्ट्रेस", पृ० २३८

करनफूल, बाली, टप

विंशव्युगीन कहानीकारों ने लोक-जीवन में प्रचलित कर्णा-भूषणों में से करनफूल तथा बाली[2] का उल्लेख किया है । वर्तमान समय में करनफूल का स्थानापन्न "टप" का प्रचार अधिक है । प्राचीनकाल में पुरुष वर्ग भी हाथ और कान में आभूषण धारण करते थे । जयशंकर प्रसाद द्वारा लिखित "देवदासी" शीर्षक कहानी में एक ऐसे धनी व्यक्ति का उल्लेख हुआ है, जो कान में हीरे के "टप" पहने हुए है ।[3]

अनंत

भुरवा के समान, अनंत या अनन्ता भी एक आभूषण होता है, जिसे स्त्रियां बाहु में धारण करती हैं । प्रेमचन्द की "स्वामिनी"[6] शीर्षक कहानी में इसका उल्लेख हुआ है ।

कड़ा, भुरवा, तोड़ा, कंगन, चूड़ी

लोक-जीवन लड़कियां तथा स्त्रियां अपने हाथों में भी कुछ न कुछ गहने अवश्य पहनती हैं । साधारण घर की लड़कियां तथा नारियां तो कांच की चूड़ियां अवश्य ही पहनती हैं, किन्तु सम्पन्न परिवारों की लड़कियां सोने की चूड़ियां और नारियां सोने की चूड़ियों के साथ-साथ कड़े, भुरवा, तोड़ा, कंगन आदि विभिन्न आभूषण धारण करती हैं । विंशव्युगीन कहानी लेखिका कुमारी मालती शर्मा द्वारा लिखित "मां" शीर्षक कहानी[5] में अनाथ बालिका का सुन्दर सोने[4] की चूड़ियां[6] पहने हुए चित्रित की गई है । इसी प्रकार अन्य कहानी लेखकों ने कड़े, भुरवा, तोड़ा[8] तथा कंगन आदि का उल्लेख भी किया है ।

१- प्रेमचन्द : "मानसरोवर" - भाग ४, "सती", पृ० १८७
२- वाचस्पति पाठक : "तांगा", द्वापदी, पृ० ६५
[३-] राधाराधिकारमण प्रसाद सिंह : "कुसुमांजलि", "कानों में कंगना", पृ० ७२
३- जयशंकर प्रसाद : "आकाशदीप", पृ० ८७
४- " : "मानसरोवर", भाग १, पृ० १२७
५- " : "मालती-माला", पृ० ४
६- प्रेमचन्द : "मानसरोवर" - भाग १, "स्वामिनी", पृ० १२७
" : " - " ४, "मनता", पृ० २७८ तथा २७६
७-८- " : " - " २, "दूध का दाम", पृ० २११
९-१०-राधाराधिकारमण प्रसाद सिंह : "कुसुमांजलि", "कानों में कंगना", पृ० ७२

अंगूठी, छल्ला, मुंदरी

जन-जीवन में, हाथ की अंगुलियों में छल्ला, मुंदरी तथा अंगूठियां आदि पहनने का अत्यधिक प्रचलन है। प्राय: गरीब और अमीर सभी परिवारों के लोग इसे धारण करते हैं। जहां सम्पन्न परिवार वाले सोने की बनी अंगूठियां पहनते हैं, वहां निर्धन परिवार से सम्बद्ध प्राणी पीतल अथवा अन्य किसी भी धातु की बनी अंगूठी अवश्य पहनते हैं। प्रेमचन्द की "धिक्कार"[1], "रियासत का दीवान"[2], "लाटरी"[3] आदि कहानियों में तथा ऋषभचरण जैन की "दान"[4] शीर्षक कहानी में इस लोकप्रिय प्राचीनतम आभूषण अंगूठी का उल्लेख हुआ है। जैनेन्द्र द्वारा लिखित "चलित-चित्त"[5] में हीरे की अंगूठी का वर्णन हुआ है। अंगूठी के ही अन्य रूप छल्ला[6] तथा मुंदरी[7] का भी उल्लेख विवेच्ययुगीन कहानीकारों ने किया है।

करधनी

कमर में पहनने का आभूषण करधनी का प्रचलन लोक-जीवन में बहुत अधिक था। धीरे-धीरे करधनी पहनने का रिवाज समाप्त होता जा रहा है, फिर भी ग्रामीण नारियां आज भी इसे धारण किये रहती हैं। विवेच्ययुगीन-कहानीकार डा० श्रीनाथ सिंह द्वारा लिखित "मोती"[8] शीर्षक कहानी में चांदी की सुन्दर करधन का वर्णन आया है। प्राय: करधनी चांदी की ही बनाई जाती है, किन्तु आजकल अधिक सम्पन्न घरों की महिलाएं सोने की पेटी (करधनी का ही रूप)

१- द्रष्टव्य : "मानसरोवर" - भाग १, पृ० २१६

२- ,, : ,, - ,, २, पृ० १८३

३- ,, : ,, - ,, , पृ० ३१४

४- ,, : "मधुकरी", खण्ड २, पृ० १५५

५- ,, : "वातायन", पृ० १२४

६- जैनेन्द्र कुमार : "वातायन", "फांसी", पृ० १८८

७- चण्डीप्रसाद हृदयेश "प्रेम-पुष्पांजलि", "नंदन-निकुंज", पृ० ३७

८- द्रष्टव्य : "पार्वतिका", पृ० ८८ तथा
राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह "कुसुमांजलि", "कानों में कंगना", पृ० ७४

भी चलती हैं। वैसे लोक विश्वासानुसार कमर के नीचे सोना धारण करने का निषेध है। इसीलिए सम्भवत: कटि प्रदेश के ऊपर स्वर्णाभूषण तथा उसके नीचे चांदी के आभूषणों का प्रयोग अधिक किया जाता है।

पैजनियां, पाजेब

लोक-जीवन में बालक-बालिकाएं तथा स्त्रियां अपने पैरों में भी कुछ न कुछ आभूषण अवश्य पहनती हैं। बालकगण या बालिकाओं द्वारा पहने जाने वाले आभूषणों में पैजनियां और स्त्रियों में प्रचलित पाजेब बहुत प्राचीन तथा बहुप्रचलित है। विवेच्ययुगीन अनुपम कहानीकार प्रेमचन्द ने "पैजनियां"[1] तथा पं० ज्वालादत्त शर्मा ने "चांदी की पाजेब"[2] का वर्णन किया है।

(ग) अन्य शृंगार प्रसाधन

बारह आभरणों के साथ-साथ सोलह शृंगार का भी प्राय: उल्लेख किया जाता है। यह सत्य है कि आभूषण शारीरिक सौन्दर्य को द्विगुणित कर देते हैं और ये ही बाह्यालंकरण की अन्यतम सामग्री कहे जा सकते हैं। परन्तु सोलह शृंगारों में आभूषण एक उपादान मात्र है, शेष अन्य पंद्रह उपादान जिनका प्रयोग लोकजीवन में प्राचीनकाल से किया जाता रहा है निम्नलिखित हैं -- काजल, पुष्पसज्जा, वेश, परिवेश, वेणी-सज्जा, महावर, मेंहदी, कंचुकी-धारण, सिन्दूर, पान-चर्वण, टीकी या टिकुली, उबटन, राग-सुवास, मंजन और समर्पण। यह समर्पण ही शृंगार की पूर्णाहुति अन्तिमरूप में हुआ करता था। सोलह शृंगार जो स्त्री कर लिया करती थी, वह अनूठी नार कहलाती थी। डिंगल में एक दूहा है --

दिन सोलह, उठा मावरा, सौठां बरसां नार।
सही बड़न, सौळावडा सौळे सब सिंणगार ॥

१- प्रेमचन्द : 'मानसरोवर', भाग ६, 'पूस', पृ० १७६
२- ,, : 'मलय-मंजरी', 'मालकिनी', पृ० ६२
३- कुंवरि केशरी कौशिक 'बहकी', 'दीपमाला: दीप-किरण १, पृ०३०

यहाँ सोलह साल वास्तव में लक्ष्मी के लिये आया है, लेकिन दाम्पत्यजीवन में लक्ष्मी स्वरूपिणी वधू भी सोलह साल की ही हो, यह अतिकामना भारी व्यंजना के साथ भारतीय साहित्य में भी प्रबल मनोवांछना के रूप में अभिमंडित होती रही है ।[1]

डा० रवीन्द्र भ्रमर ने, जायसीकृत 'पद्मावत' के एक दोहे का उल्लेख करते हुए, इन सोलह शृंगारों को, शरीर के सोलह अवयवों से सम्बद्ध माना है । ये सोलह अवयव निम्नलिखित हैं :—

चार दीर्घ - केश, अंगुली, नयन, ग्रीवा

चार लघु - दशन, कुच, ललाट, नाभि

चार मोटे हुए - कपोल, नितम्ब, जांघ, कलाई

चार क्षीण - नाक, कटि, पेट और अधर ।[2]

लोक-जीवन में उक्त सोलह प्रकार के शृंगार-प्रसाधनों का प्रयोग अत्यन्त प्राचीनकाल से ही किया जाता रहा है । वर्तमान समय में भी, ये प्रसाधन किसी न किसी रूप में, जन-जीवन में अपना स्थान बनाये हुए हैं । विवेच्ययुगीन कहानीकारों ने, इन शृंगार-प्रसाधनों का यथा अवसर उल्लेख किया है, जिनका विवेचन नीचे किया जा रहा है ।

उबटन

वर्तमान युग में सौन्दर्य वृद्धि हेतु नाना प्रकार के साबुन शरीर में लगाये जाते हैं किन्तु लोकजीवन में आज भी स्त्रियां उबटन का प्रयोग करती हैं । बच्चों को उबटन अधिक लगाया जाता है । उबटन बनाने की कई विधियां हैं, जिनमें से दो प्रमुख हैं - एक तो सरसों को तेल में भूनकर, उसे सिल पर पीस कर शरीर में लगाया जाता है । दूसरे आटे अथवा बेसन में हल्दी, तथा अन्य सुगंधित पदार्थ मिलाकर शरीर में लगाया जाता है । लोक में पहले को उबटन तथा दूसरे को बुकवा कहा जाता है । इसके प्रयोग से शरीर कोमल तथा कान्ति की वृद्धि होती है ।[प्रेमचन्द]

१- कुमारी कामिनी कौशिक : "कजरा", दीपावरण:दीप-किरण, पृ० १०

२- पूर्वोक्त : "हिन्दी भक्ति साहित्य में लोक-तत्व, पृ० २३४

द्वारा लिखित 'अलग्योझा'[१] तथा 'महातीर्थ'[२] शीर्षक कहानियों में, बच्चों को उबटन लगाने का तथा 'प्रेम का उदय'[३] कहानी में भोंदू की स्त्री बंटी द्वारा मुंह पर उबटन लगाने का वर्णन किया गया है। "नया विवाह"[४] शीर्षक कहानी में भी इसका उल्लेख हुआ है।

काजल

आंखों में काजल लगाना भी श्रृंगार प्रसाधन के अन्तर्गत ही आता है। ग्राम्य-जीवन में तो बालकों को काजल लगाना नित्य का कार्य माना जाता है। स्त्रियां भी प्राय: प्रतिदिन काजल लगाती हैं। इससे नेत्रों की ज्योति बढ़ती है। विवेच्ययुगीन कहानी 'अलग्योझा'[५] तथा "नेउर"[६] शीर्षक कहानियों में काजल लगाने का उल्लेख मिलता है। आजकल काजल का स्थान सुरमा लेता जा रहा है, जिसका वर्णन प्रेमचन्द की 'आभूषण'[७] तथा 'ज्वालामुखी'[८] शीर्षक कहानियों में हुआ है।

कलफी का लुआब

प्रेमचन्द की "प्रेम का उदय" शीर्षक कहानी में कलफी का लुआब लगाने का उल्लेख हुआ है। भोंदू की स्त्री बंटी बाल गूंथ कर, माथे पर कलफी का लुआब लगाती है, जिससे बाल न बिखरने पावें।[९]

१- प्रेमचन्द : 'मानसरोवर', भाग १, पृ० १६
२- ,, : ,, ,, ७, पृ० २२६
३- प्रेमचन्द : 'मानसरोवर' भाग ४, पृ० १३८
४- ,, : ,, ,, २, पृ० ३३६
५- ,, : ,, ,, १, पृ० १६
६- ,, : ,, ,, २, पृ० २०६
७- ,, : ,, ,, ६, पृ० १५५
८- ,, : ,, ,, ८, पृ० ६१
९- प्रेमचन्द : ,, ,, ४, पृ० १३८

बेसन का प्रयोग

साबुन के स्थान पर लोकजीवन में स्नान के लिए बेसन का प्रयोग किया जाता है। आज भी ग्रामीण स्त्रियां व्रत आदि में साबुन का प्रयोग नहीं करतीं। लोक जीवन में साबुन अशुद्ध माना जाता है। प्रेमचन्द द्वारा लिखित 'रसिक सम्पादक' शीर्षक कहानी में 'नवरस' के सम्पादक पं० चोखेलाल शर्मा बेसन से स्नान करते हैं।[1]

तेल एवं इत्र

स्नान के पश्चात् ग्राम्यजीवन में तेल लगाने का विधान है। इसके साथ ही इत्र आदि सुगन्धित पदार्थों का प्रयोग भी किया जाता है। प्रेमचन्द की 'प्रेम का उदय'[2] तथा 'उन्माद'[3] शीर्षक कहानियों में इसका उल्लेख किया गया है। जयशंकर प्रसाद द्वारा लिखित 'चूड़ी'[4] शीर्षक कहानी में केसर, कस्तूरी, अम्बर से बसा हुआ वस्त्र धारण करके इत्र लगाने का उल्लेख हुआ है।

टिकुली, सेन्दुर

इसी प्रकार लोकजीवन में स्त्रियां सेन्दुर तथा टिकुली का भी प्रयोग करती हैं। ये दोनों ही प्रसाधन भारतीय स्त्रियों के सौभाग्य का सूचक हैं। विवेच्ययुगीन कहानीकार राधिकारमण प्रसाद सिंह द्वारा लिखित 'बिजली'[5] शीर्षक कहानी में 'गुलनार साड़ी पर कुसुम्भी चोली और सिन्दूर शोभा' को देखकर ही देखने वाला इस बात का अनुमान लगा लेता है कि यह विवाहिता है। इसी प्रकार प्रेमचन्द की 'नैहर'[6], 'नया विवाह'[7] तथा 'सोहाग का शव'[8] आदि शीर्षक कहानियों में इन प्रसाधनों का उल्लेख किया गया है।

१- द्रष्टव्य : 'मानसरोवर', भाग १, पृ० ३२६
२- ,, : ,, ,, ४, पृ० १३६
३- ,, : ,, ,, ३, पृ० १२७
४- ,, : 'इन्द्रजाल', पृ० ३१
५- ,, : 'कुसुमांजलि', पृ० ३१
६- ,, : 'मानसरोवर', भाग २, पृ० ३०४
७- ,, : ,, ,, २, पृ० ३३१
८- ,, : ,, ,, ४, पृ० २११

मेंहदी

लोक-जीवन में कलात्मक श्रृंगार प्रसाधन के रूप में मेंहदी का भी उपयोग किया जाता है। प्राय: कुमारी कन्याएं तथा विवाहिता स्त्रियां सावन के महीने में मेंहदी द्वारा हाथ की हथेलियाँ तथा पैरों में नाना प्रकार के चित्रों द्वारा श्रृंगार करती है। प्रेमचन्द ने मेंहदी लगाने का उल्लेख 'उन्माद'[1], 'नया-विवाह'[2] तथा 'एक्ट्रेस'[3] आदि विभिन्न कहानियों में किया है।

महावर

सौभाग्यवती स्त्रियां अपने पैरों में महावर लगाती है। देवेन्द्रनाथ ने महावर रंग बनाने की विधि का उल्लेख इस प्रकार किया है —"यह रंग पीपल की लाख से बनाया जाता है। सबसे पहले लाख को पानी में भीगाकर फिर कूट कूटा जाता है। इसमें सुहागा और लोधा मिला कर गरम करना चाहिये। फिर छानने पर जो अर्क निकले उसे रुई में सोख कर धूप में सुखा दे। आवश्यकतानुसार रुई पर पानी डालने से रंग निकलता है, जिसको बंगला भाषा में आलता (महावर) कहते है।[4] वर्तमान समय में भी स्त्रियां प्राय: व्रत, पर्व तथा उत्सवों के दिन पैरों में महावर लगाती हैं, किन्तु महावर रंग के स्थान पर कोई लाल रंग अथवा बना बनाया आलता का ही प्रयोग करती हैं। विवेच्ययुगीन विभिन्न कहानियों में महावर लगाने का वर्णन मिलता है। प्रेमचन्द ने 'नया विवाह'[5], 'एक्ट्रेस'[6], 'पाप का अग्निकुंड'[7] आदि विभिन्न कहानियों में महावर लगाने का वर्णन किया है।

फूल का श्रृंगार

फूलों से श्रृंगार करना आदिम मानव मानस की प्रवृत्ति के अनुकूल है, जिसका वर्णन विवेच्ययुगीन कहानीकारों ने किया है। जयशंकर प्रसाद द्वारा

१- प्रेमचन्द : 'मानसरोवर', भाग २, पृ० १२४
२- ,, : ,, , ,, २, पृ० ३३६
३- ,, : ,, , ,, ,, ४, पृ० २३६
४- ,, : 'महावर का रंग बनाना', भारतीय चित्रकला-पद्धति : प्रथम संस्करण, १९५०
५- ,, : 'मानसरोवर', भाग २, पृ० ३३६
६- ,, : ,, , भाग ४, पृ० २३६
७- ,, : ,, , भाग ६, पृ० १७०

लिखित 'इन्द्रजाल'[1] तथा 'सालवती'[2] शीर्षक कहानियों में फूलों से शृंगार करने का वर्णन आया है। अमृतराय द्वारा लिखित 'उड़ान' शीर्षक कहानी में लाजो का शृंगार देखिये : 'मेरी लाजो ने परवाले के फूल से नाक में सींक, चमेली की चूड़ियां पहनी, जूही की करधनी, मौलसिरी के झुमके, बेले के छल्ले, रजनीगंधा के कंगन और [illegible] लिया करने वाली। मुझे डर था मैं उसे न खो दूं[3]।'

रायकृष्णदास ने 'अन्तःपुर का आरम्भ' शीर्षक कहानी में आदि नारी की कल्पना करते हुए उसके शृंगार का वर्णन किया है — 'कानों में छोटे-छोटे सींग के टुकड़े पड़े रहते थे, हाथों में कुछ जानवरों के मोटे दांतों के टुकड़े पड़े हुए थे'[4] इस प्रकार के आभूषण आदि भी आदिमवासियों में देखे जा सकते हैं। द्विवेदी-युगीन हिन्दी कहानी में वर्णित लोकवस्त्राभूषण तथा अन्य शृंगार प्रसाधन भारतीय परम्परा सापेक्ष एवं लोकानुमोदित है।

लोकजीवन में वस्त्राभूषण तथा सोलह शृंगार करने का विधान न केवल साधारण अवस्था में था, बल्कि विवाहादिक विशेष अवसरों के साथ ही साथ सती आदि विशिष्ट प्रथाओं में भी, इन्हें विशेष महत्व प्रदान किया गया था। — उदाहरणार्थ — द्विवेदीयुगीन कहानीकार चण्डीप्रसाद हृदयेश द्वारा लिखित 'प्रेम पुष्पांजलि' शीर्षक कहानी में साधारण अवस्था में सोलह शृंगार का उल्लेख इस प्रकार हुआ है — 'अब कलावती, सोलह शृंगार — कलाओं का विस्तार करती हुई उस भीषण तम में भी प्रकाश का आभास कराती हुई, मदकल्लोलिनी की भांति नूपुर-रव करती हुई, गाड़ी से नीचे उतरी[5]।' ...और विवाह के अवसर पर 'सोलहों शृंगार किये, सखियों के साथ बैठी' रहने का उल्लेख प्रेमचन्द द्वारा लिखित 'मर्यादा की वेदी'[6] शीर्षक कहानी में हुआ है। इसके विपरीत सती होने के समय राजनन्दिनी द्वारा सोलहों शृंगार किये जाने का उल्लेख 'पाप का अग्नि कुंड'[7] शीर्षक कहानी में हुआ है।

१- हृदयेश : 'इन्द्रजाल', पृ० ७
२- ,, : ,, , पृ० १३०
३- अमृतराय : 'उड़ान', 'जीवन के पहलू', पृ० ४४
४- हृदयेश : ~~नन्दन-निकुंज, पृ० ७४~~ हिन्दी-गल्प-मंजरी, पृ० १४१
५- ,, : 'नन्दन-निकुंज', पृ० ४४
६- प्रेमचन्द : 'मानसरोवर', भाग ८, पृ० १००
७- ,, : ,, , ,, पृ० १३०

(७) लोकजीवन के अन्य पक्ष

लोक-व्यसन

लोक जीवन में प्राय: प्रत्येक प्राणी अपनी रुचि के अनुकूल कोई-न-कोई व्यसन पाल ही लेता है । इसी को लत, चस्का, आदत, तथा अंग्रेजी में हाबी कहते हैं । जीवन की नीरसता अथवा एकरसता को दूर करने के लिए इसकी आवश्यकता पड़ती है और प्रेमचन्द की 'मिस पद्मा'[1] जीवन को सुखी बनाने के लिए किसी-न-किसी व्यसन की जरूरत को खूब पहचानती है । यही व्यसन जब दुर्व्यसन का रूप धारण कर लेता है, तब सुखमय जीवन दु:खमय बन जाता है । विवेच्ययुगीन कहानीकारों ने व्यसन एवं दुर्व्यसन दोनों का ही वर्णन किया है ।

मनुष्य की वृत्ति दुष्प्रवृत्ति की ओर शीघ्रतापूर्वक अनुधावित होती है, यही कारण है कि लोकजीवन में व्यसन की अपेक्षा दुर्व्यसन की ही बहुलायत है । इस दृष्टि से प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी कहानी में गाना-बजाना,[2] बागबानी,[3] चिड़िया पालना,[4] तोता पालना[5] इत्यादि विभिन्न व्यसनों का वर्णन किया गया है । इतना ही नहीं, बल्कि शृंगार प्रसाधनों के रूप में वर्णित पान-बीड़ा[6] तथा काजल लगाना[7] इत्यादि काल के प्रभाव में व्यसन ही हैं, इनका भी वर्णन विवेच्ययुगीन कहानीकारों ने किया है ।

---

१ द्रष्टव्य— 'मानसरोवर' भाग२,- 'मिस पद्मा', पृ०१६ ।
२ ,, — ,, ,, पृ००६ । 'आंधी', पृ०६६ ।
३ ,, — ,, भाग ८, पृ०८७ , १०२
४ ,, — ,, भाग ६, पृ०१५३
५ ,, — ,, भाग ७ पृ०१२२
६ ,, — ,, भाग १ पृ०१७८ , 'आंधी' ,पृ०६६, 'प्रतिमा' पृ०८८
७ ,, — 'मधुकरी' भाग २, पृ०१५५, भाग [illegible] भाग ६, पृ०१५५, भाग८, पृ०१

इसीप्रकार हुक्का[1] लोकजीवन में बहुप्रचलित है, जिसका आदि रूप गुड़गुड़ी[2] है। इसी के अन्य रूप सिगार[3], बीड़ी[4], सिगरेट[5] आदि सभी हैं। इस दृष्टि से ताड़ी[6], भांग[7], गांजा[8], जुआ[9], वैश्या[10] गमन आदि दुर्व्यसनों का वर्णन भी कहानीकारों ने किया है।

लोकजीवन में ५६ व्यंजनों की चर्चा की जाती है, उसी रूप में विवेच्ययुगीन कहानी में उनका वर्णन नहीं हुआ है, फिर भी यथावसर लोकजीवन की प्रिय खाद्य वस्तुओं का भी यथावसर वर्णन हुआ है। यथा-- गुड़[11], लाई[12], लावा[13], सत्तू[14], कचौड़ी[15], तसमई[16], भाटियां[17] आदि।

हर्षोल्लास से परिपूर्ण लोकजीवन में वाद्यों का विशेष महत्व है। विवेच्ययुगीन कहानीकारों ने यथावसर शहनाई[18], बांसुरी[19], ढोलक[20], खंजड़ी[21] आदि का वर्णन किया है।

---

१ द्रष्टव्य --"पुरस्कार", पृ०२६१ ।
२ ,, --"झुझुरोवाबि", पृ०७८ ।
३ ,, --"आशीर्वाद", पृ०२२ ।
४ ,, --"मा० मा०१, पृ०३०७।
५ ,, --"पिंजरे की उड़ान", पृ०३२ ।
६ ,, --"इन्द्रजाल", पृ०१११ ।
७ ,, --"होली और दीवाली", पृ०१८ ।
८ ,, --"अनाख्या", पृ०३७ ।
९ ,, --"इन्द्रजाल", पृ०९३ ।
१० ,, --"पार्थिका", पृ०५४ ।
११ ,, --"मा०मा० ५, पृ०५ ।
१२ ,, --"आंधी", पृ०१०३ ।
१३ ,, -- ,, पृ०१११ ।
१४ ,, --"इन्द्रजाल", पृ०१२३ ।
१५ ,, --"आंधी", पृ०९७ ।
१६ ,, --"मा०मा० ८, पृ०१०८ ।
१७ ,, --"इन्द्रजाल", पृ००६ ।
१८ ,, --"मधुकरी", भाग२, पृ०३४१
१९ ,, --"बेकसी", पृ०६ ।
२० ,, --"पुरस्कार", पृ०२१ ।
२१ ,, --"पार्थिका", पृ०५२ ।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर निष्कर्षरूप में कहा जा सकता है कि प्रेमचन्दयुगीन कहानीकारों द्वारा उल्लिखित एवं वर्णित लोकजीवन के पर्व, व्रत, उत्सव, रीति-रिवाज, लोकाचार तथा प्रथाएं, लोकविश्वास एवं मुहूर्त तथा लोकजीवन के बहु प्रचलित वस्त्रा-भूषण आदि लोक-विश्वास के अनुसार तथा लोकजीवन के अनुकूल ही वर्णित हैं। इन सभी का यथास्थान लोक-संस्कृति के अंगों के रूप में चित्रण किया गया है, जो लोक-तत्वों के अविभाज्य एवं महत्वपूर्ण अंग हैं। शिष्ट साहित्य में उपलब्ध होने वाले लोक-तत्वों के रूप में इन सभी की विचारणा अपेक्षित थी, इसीलिए इस अध्याय में इनका विवेचन किया गया है। इन सभी के संयोग से प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी कहानी में तत्कालीन लोक-जीवन का चित्रण हुआ है और कहानी, लोक-कहानी के अत्यधिक निकट पहुंच गई है। विवेच्ययुगीन हिन्दी कहानी की लोकप्रियता का यह रहस्य भी इसी में निहित है।

-०-

उपसंहार

प्रस्तुत प्रबन्ध में प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी कहानी के निर्माण में योग प्रदान करने वाले तथा लोकवार्ता के विभिन्न तत्वों के अनुसन्धान को लक्ष्य मानकर विवेच्ययुगीन हिन्दी कहानी में उपलब्ध लोक-तत्वों का शोधपूर्ण अध्ययन प्रस्तुत किया गया है । प्रेमचन्द एवं उनके युग पर यद्यपि विभिन्न दृष्टियों से अध्ययन तथा अनुसन्धान किया गया है, तथापि लोकवार्ता की दृष्टि से अभी तक कोई कार्य नहीं किया गया । इस प्रकार लोकशास्त्रीय अध्ययन के अभाव में विवेच्ययुगीन हिन्दी कहानी का अनुशीलन अपूर्ण ही कहा जाता । अतएव प्रस्तुत अध्ययन एवं अनुसंधान कार्य इस दिशा में एक मौलिक प्रयास है ।

प्रेमचन्द-युग का सीमा-निर्धारण करते हुए कथा-साहित्य में प्रेमचन्द एवं उनके युग का विभिन्न दृष्टियों से योगदान तथा महत्व का प्रतिपादन किया गया है और निष्कर्षरूप में कहा गया है कि विवेच्ययुगीन हिन्दी कहानी जन-जन की कहानी है और जन साहित्य के प्रेरणा स्रोत लोक-तत्वों का विवेचन किया गया है । लोक तत्वों के मूल में लोकमानस की महत्वपूर्ण भूमिका निहित रहती है, अतः लोक मानस का अर्थ एवं महत्व निरूपण करते हुए विभिन्न उदाहरणों द्वारा लोक-मानस का स्पष्टीकरण किया गया है तथा लोकतत्व निरूपण की समस्याओं की ओर भी संकेत किया गया है । अन्त में प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी कहानी में उपलब्ध सामान्य लोकतात्विक विशेषताओं का उल्लेख करते हुए उपलब्ध लोकतत्वों को तीन वर्गों में विभक्त किया गया है -- कथा पक्ष में लोकतत्व -- भाषा पक्ष में लोक तत्व तथा लोकजीवन के विविध पक्ष ।

लोकवार्ता की विस्तृत सीमा के अन्तर्गत 'लोक-साहित्य' का क्षेत्र भी अत्यधिक व्यापक है, जिसका एक बहुत बड़ा भाग लोककथा कहानियों का है और लोक-कथासंसार के समस्त कथा-साहित्य का जनक तथा लोक गीत समस्त काव्यों की जननी है, किन्तु लोकप्रिय विधा हिन्दी कहानी के विषय में प्राय: दो धारणाएं रही हैं --हिन्दी कहानी संस्कृत कथा साहित्य, जातक कथाओं आदि की परम्परा में विकसित हुई है अथवा हिन्दी कहानी का जन्म पाश्चात्य प्रभाव के फलस्वरूप यौरोप तथा अमेरिका के कथा-साहित्य के अनुकरण में हुआ है। किन्तु वर्तमान अर्थ-बोध में ही क्या हिन्दी कहानी में प्राचीन कथा-कहानियों के तत्व निहित नहीं हैं ? क्या हिन्दी कहानी पूर्णरूप से लोक कथा कहानी के तत्वों से हीन है ? क्या हिन्दी कहानी के विकास में जनकथाओं का योग नहीं है ? इत्यादि विभिन्न शंकाओं का समाधान करने की दृष्टि से लोककहानी के विकासक्रम का निरूपण करते हुए, इस बात को सिद्ध किया गया है कि किस प्रकार एक लोक कहानी साहित्यिक कहानी के रूप में परिणति पाती है। इस रूप में हिन्दी कहानी के विकास में जन कथाओं का महत्वपूर्ण योग रहा है। न जाने कितनी लोक कहानियां तो अपने मूल रूप में साहित्यिक रूप ग्रहण कर बैठी हैं और न जाने कितनी लोक कहानियां यत्किंचित् परिवर्तन के साथ साहित्यिक कहानियों के रूप में प्रतिष्ठित हो गई हैं। इतना ही नहीं, बल्कि लोक कहानियों की अनेक विशेषताएं अभिव्यक्ति स्वरूपों में छिपकर हैं इस प्रकार घुल-मिल गई हैं कि आज का शास्त्रीय परिपाटी का आलोचक न तो इस प्रभाव को स्वीकार कर पाता है और न [illegible] ही पाता है बल्कि यह कहना कि देख-सुनकर भी उसके महत्व को स्वीकार करने में आनाकानी करता है, अधिक उचित होगा। वस्तुतः आरम्भिक काल की कहानियों का तो प्रेरणास्रोत ही लोक कहानियां और लोक कथानक रहे हैं। इस बात को स्वयं प्रेमचन्द, सुदर्शन तथा जैनेन्द्र

जैसे प्रमुख कहानीकारों ने स्वीकार किया है ।

यही नहीं, बल्कि लोक कथा कहानियों में बारम्बार प्रयुक्त होने वाली समानधर्मा घटनाएं एवं जातीय विचार अभिजात्य कोटि के कथा साहित्य तक यात्रा करते हुए कथानक रूढ़ि बन गये हैं । भारतीय साहित्य में अति प्राचीनकाल से ही कथानक को गति और घुमाव देने के लिए इनका प्रयोग किया जाता रहा है । विवेच्ययुगीन हिन्दी कहानी में इन रूढ़ियों का अत्यधिक मात्रा में प्रयोग किया गया है ।

विवेच्ययुग के अग्रणी कहानीकार प्रेमचन्द दूरदर्शी थे, इसीलिए जनभाषा और जनसाहित्य के महत्व को समझते हुए यहाँ तक और भावाभिव्यक्ति के लिए जनरुचि के अनुकूल जनप्रिय लोकविधा कहानी का चयन किया, वहाँ हिन्दी और उर्दू के स्थान "संस्कीरत" को छोड़कर `भाखा` को अपनाया क्योंकि जो जनसाधारण है, वह जनसाधारण की भाषा में लिखता है । सरल बात सरल ढंग से कहना श्रेष्ठ साहित्य का शायद अनिवार्य गुण है, जो वास्तव में लोककथाओं का प्राण है, और जिसे निश्चय ही अभिजात्य साहित्य ने लोक से ही ग्रहण किया है । यही कारण है कि विवेच्ययुगीन कहानीकारों ने लोक शब्दावली का भी खोलकर प्रयोग किया है । इस दृष्टि से लोकयुक्त अपशब्द एवं गालियों का भी प्रयोग किया गया है ।

न केवल शब्दावली बल्कि लोकभाषा की प्राणशक्ति और लोकसाहित्य की अनन्य निधियाँ, मुहावरे एवं लोकोक्तियों का भी अत्यधिक मात्रा में सफल एवं सटीक प्रयोग हुआ है । इतना ही नहीं, बल्कि अलंकारों की लोकपरम्परा सिद्ध करते हुए -- अलंकार कविता की वस्तु है-- इस भ्रामक धारणा को धराशायी किया गया है । वस्तुतः कविता के समान ही गद्यात्मक विधाओं में भी अलंकारों का महत्व है । अतः विवेच्ययुगीन कहानीकारों ने स्पष्ट भावाभिव्यक्ति के लिए

सादृश्यमूलक अलंकारों का प्रयोग लोकमानस के अनुकूल एवं उपयुक्त ढंग से किया है तथा उपमा अलंकार के प्रयोग में कि- प्रकृति के विस्तृत प्रांगण तथा लोक जीवन के विविध पदार्थों से ही उपमानों का चयन किया है,जो सुन्दर तथा अनूठित हैं ।

भाषा और शैली का अटूट सम्बन्ध है,इसीलिए भाषा के अन्तर्गत ही शैली एवं शैलीगत प्रवृत्तियों का विवेचन भी आवश्यक समझा गया है । चूंकि कहानी का विकास ही मौखिक परंपरा से हुआ है और कहानी का आनन्द भी कहने तथा सुनने में ही है ,अतएव कहने का ढंग शैली है । आज का कहानीकार कहता कम है,लिखता अधिक है । भाषा के समान ही लोक शैली के महत्व को सर्वप्रथम प्रेमचन्द ने समझा और कहानीकारों को समझाया भी । परिणामतः प्रारम्भिक काल में जो कहानी में लोक कहानी की सीधी-सादी वर्णनात्मक शैली का ही प्रयोग होता रहा, किन्तु धीरे-धीरे उसका परिष्कार हुआ, फलस्वरूप लोक शैली तथा शिष्ट शैली का भेद स्पष्ट होता गया । फिर भी विवेच्ययुगीन कहानीकार लोककहानियों के समान ही बड़े सहज एवं स्वाभाविक रूप में कहानी लिखते रहे । इतना ही नहीं,बल्कि लोक प्रचलित व्यंग्य तथा चम्पू आदि परम्परागत शैली के अतिरिक्त कैसी बातों की लटके की शैली का भी प्रयोग किया है । इसके साथ ही साथ लोक शैलीगत विभिन्न प्रवृत्तियों तथा लोक प्रचलित बोलचाल के शब्दों के अत्यधिक प्रयोग द्वारा कहानी को जनसाहित्य की कोटि में स्थान देने के लिए बाध्य कर दिया ।

विवेच्ययुगीन हिन्दी कहानी में उपलब्ध लोकजीवन के पर्व,व्रत,उत्सव,रीति-रिवाज,एवं लोकाचार,प्रथाएं,परम्पराएं,लोक विश्वास एवं शुभाशुभ आदि लोकवार्ता के अविभाज्य अंग हैं । लोकजीवन के

विविध पर्वों के अन्तर्गत लोकतत्वों के रूप में इन सभी पर सविस्तार विचार किया गया है । भारतीय समाज में जन्म, विवाह तथा मृत्यु संस्कार से सम्बद्ध विभिन्न रीति-रिवाजों एवं लोकाचारों के वर्णन के साथ ही साथ दशहरा, दीपावली, होली आदि लोकोत्सवों जन्माष्टमी शिवरात्रि तथा करवा चौथ जैसे व्रतोत्सवों और कुम्भ गंगा दशहरा तथा सोमवती अमावस्या आदि लोकपर्वों का भी वर्णन विवेच्ययुगीन कहानी में हुआ है । अत्यन्त प्राचीनकाल से चली आती हुई 'दिव्य' प्रथा के साथ ही साथ मध्ययुगीन 'सती' और 'जौहर' की प्रथाओं का चित्रांकन भी बड़ी कुशलता के साथ कहानियों में किया गया है । प्राचीनकाल से लेकर वर्तमान काल तक लोक जीवन में प्रचलित नीच, बहुविवाह तथा बलि आदि प्रथाओं का उल्लेख भी किया गया है ।

लोकजीवन में प्रचलित विश्वासों को भले ही आज का शिष्ट समुदाय अन्धविश्वास एवं कुसंस्कार कह दे, किन्तु लोकजीवन में इनका भी अपना विशेष महत्व है । प्रेमचन्दयुगीन लोकप्रिय एवं लोकग्राहिणी प्रतिभासम्पन्न कहानीकारों द्वारा शकुन, अपशकुन, स्वप्न विचार, तन्त्र-मंत्र तथा अलौकिक शक्तियों के अतिरिक्त विभिन्न विषयों से सम्बद्ध विश्वासों का वर्णन किया गया है । लोकप्राणी का जीवन धर्मबद्ध होता है, जिसमें लोक देवी तथा देवताओं का अत्यधिक महत्व है । लोक विश्वासानुसार ये प्रसन्न होकर इच्छित वरदान देते हैं और ज्ञाताज्ञात अपराध द्वारा रुष्ट होकर शाप भी दे देते हैं जिससे सब कुछ नष्ट होने की स्थिति आ जाती है । यही कारण है कि धर्मभीरु लोकप्राणी सदा सर्वदा से इन्हें प्रसन्न करने के लिए सतत् प्रयत्नशील रहा है और जाने किन पूजा-अनुष्ठान का विधान करता रहा है । लोक कहानियों में इसकी परम्परा सुरक्षित है ।

जिस विविध सामान्य लोक जीवन में वस्त्राभूषण शृंगार प्रसाधनों का भी कम महत्व नहीं है । स्त्री वर्ग में आभूषण प्रियता आज भी देखी जा सकती है । लोकगीतों के समान ही विवेच्ययुगीन कहानी में वस्त्राभूषणों के साथ अन्य शृंगार प्रसाधनों का उल्लेख प्राप्त होता है । लोकजीवन में प्रायः सोलह शृंगारों का वर्णन किया जाता है । इन सोलह शृंगारों में से आभूषण एक उपादान मात्र है । अन्य पन्द्रह उपादानों का भी उल्लेख कहानी में मिलता है, जिनमें से पान-चर्वण,काजल लगाना आदि तो वर्तमान समय में लोक व्यसन का रूप धारण कर चुके हैं,जिनका विवेचन लोक व्यसन के अन्तर्गत किया गया है । इसीप्रकार हर्षोल्लास के वातावरण से परिपूर्ण लोकजीवन में वाद्य यन्त्रों का भी विशेष महत्व है । विवेच्ययुगीन कहानीकार जन-जीवन से सम्बद्ध थे । अतएव उन्होंने हर्षोल्लास के वातावरण में विविध अवसरों पर गीतों के साथ ही साथ विभिन्न लोक-वाद्यों का उल्लेख तथा वर्णन द्वारा अपनी कहानी में विशेष आकर्षण उत्पन्न किया है । पाठक इन कहानियों को पढ़ता हुआ आनन्द विशेष का अनुभव करता है और वाद्य यन्त्रों की झनकार के साथ ही साथ उसके हृदय के तार भी झंकृत हो उठते हैं ।

इस प्रकार समग्र रूप से विवेच्ययुगीन हिन्दी कहानी में क्या कथा पक्ष, क्या भावनापक्ष और क्या लोकजीवन के विविध पक्षों से सम्बद्ध लोकवार्ता के प्रायः सभी तत्वों का अंकन हुआ है । इस प्रकार विभिन्न लोक उपादानों से संयुक्त प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी कहानी लोक कहानी के अत्यधिक निकट आ गई है यही कारण है कि इन कहानियों में दादी, व नानी की कहानी का रसानुभव भी निहित ही है, इसके साथ ही साथ लोकतत्वों के गुम्फन में ही विवेच्ययुगीन हिन्दी कहानी की लोकप्रियता का रहस्य भी निहित है ।

-0-

सहायक-ग्रन्थ-सूची

सहायक ग्रन्थ-सूची

परिशिष्ट - १ (हिन्दी)

श्रीकण्ठ शास्त्री	"हमारे पर्व और त्यौहार"
श्रीकृष्णलाल	"आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास"
श्रीनाथ सिंह ठाकुर	"पाथेयिका", प्र० सं०, सं० १९८६ वि० तरुण ग्रन्थावली
श्रीनेत्र पाण्डेय	"भारत का वृहद इतिहास", भाग -२ - प्रथम संस्करण स्टूडेन्ट्स फ्रेण्ड्स-इलाहाबाद
श्रीपतराय (संपादक)	"गल्प-संसार-माला", भाग -१ - चौथा संस्करण १९५६ ई० बनारस
अमरनाथ सिन्हा	"हिन्दी गद्य शैली और विधाओं का विकास" भारतीभवन, पटना, १९६५
अमृतराय	"कलम का सिपाही" -प्रथम संस्करण, १९६२, इलाहाबाद
,, (संकलन रूपान्तरकर्ता)	"प्रेमचन्द विविध प्रसंग", भाग-१, हंस प्रकाशन, प्रथम संस्करण १९६२
,, ,, ,,	"प्रेमचन्द चिट्ठी-पत्री", भाग-२, ,, ,, प्रथम संस्करण १९६२
,, (संपादक)	"प्रेमचन्द स्मृति"
,,	"जीवन के पहलू", द्वितीय संस्करण, हंस प्रकाशन, इला०
अज्ञेय	"विपथगा", १९३७
,,	"अमरवल्लरी", १९४४
इन्द्रा जोशी, डा०	"हिन्दी उपन्यासों में लोक-तत्व", आगरा विश्वविद्यालय द्वारा स्वीकृत शोध प्रबन्ध टंकित
इन्द्रनाथ मदान	"प्रेमचन्द चिन्तन और कला"
इलाचन्द्र जोशी	"दीवाली और होली", सं० १९९८, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
ईश्वरी प्रसाद शर्मा	"गल्पमाला", १९१२, हरिदास एण्ड कं०, कलकत्ता।

ईश्वरी प्रसाद शर्मा	"अभिमेत्री", १९३१ संस्करण
उर्मिला गुप्त, डा०	"हिन्दी कथा साहित्य में महिलाओं का योगदान", १९६६ ई०, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली
उदयनारायण तिवारी, डा०	"कहानी-कुंज", द्वितीय संस्करण, संवत् १९९९ हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
उदयनारायण तिवारी, डा०	"भोजपुरी भाषा और साहित्य", राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना
ओम प्रकाश शर्मा	"हिन्दी साहित्य की लौकिक पृष्ठभूमि" (अप्रकाशित)
ओम प्रकाश शर्मा, डा०	"मुहावरा मीमांसा", बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना
कमलादेवी चौधरी	" गल्प समुच्चय"
कन्हैया प्रसाद सिंह	"चित्रकथा" (कवर नहीं था)
कन्हैया लाल सहल	"लोककथाओं की कुछ रूढ़ियां"
कौशिक	"चित्रशाला" (कवर नहीं था) ८४(५-८४ ।७
कौशिक बरुवा	"कृष्णबामिनी", दीप-चरण: दीप-किरण, बामिनी प्रकाशन, कलकत्ता, १९६६ ई०
कृष्णदेव उपाध्याय, डा०	"लोकसाहित्य की भूमिका", प्रथम संस्करण १९५७, साहित्य भवन, इलाहाबाद
,, ,, (सं०)	"भोजपुरी ग्राम गीत", भाग १, द्वितीय संस्करण, सं० २०११ वि० हि० सा० सम्मेलन, प्रयाग
,, ,,	"भोजपुरी लोकसाहित्य का अध्ययन", हि० प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, प्रथम संस्करण १९६० ई०
कृष्णदेव प्रसाद गौड़ (बेढब बनारसी)	"बनारसी एक्का तथा अन्य कहानियां", प्रथम संस्करण साहित्य सेवक कार्यालय, काशी
कृष्णानन्द गुप्त	"पुरस्कार", प्रथम संस्करण, सं १९९६ वि०, इलाहाबाद
गुलाबराय	"सिद्धान्त और अध्ययन"
गोपाल नेवटिया	"दीपिका", हिन्दी मंदिर प्रयाग, प्रथम संस्करण, सं० १९९१

गोविन्द वल्लभ पन्त	'पांच कहानियां', लीडर प्रेस, सं १९३७, इलाहाबाद
,, ,,	'संध्याप्रदीप, प्रथमावृत्ति, सं १९८८ वि०, गंगा पुस्तक माला, लखनऊ
गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश'	'[illegible]' 'हिन्दी की कहानी लेखिकाएं और उनकी कहानियां', सन् १९३५, प्रदीप पुस्तकमाला, प्रयाग
चतुरसेन शास्त्री, आचार्य	'बाहर-भीतर'-१-प्रथम संस्करण १९४०, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली
,, ,,	'दुखवा मैं कासे कहूं'-२- द्वि० सं० १९६२ ,,
,, ,,	'धरती और आसमान'-३-प्र०सं० १९६१ ,,
,, ,,	'सोया हुआ शहर'-४-द्वि०सं० १९६३ ,,
,, ,,	'कहानी ख़त्म हो गई-५ ,, ,, ,, ,,
,, (सं०)	'हिन्दी-गल्प-मंदिर', भटनागर एण्ड ब्रदर्स, १९४० ई०, उदयपुर
,,	'वीरगाथा' (वीर रस की मौलिक कहानियां) प्रथम संस्करण, १९५१, कलकत्ता
,,	'रजकण - ,, ,,
चन्द्रकुमारी मिश्र	'गुच्छा', प्रथम संस्करण सन् १९३६, प्रकाशक- सच्चिदानन्द चौधरी, लखनऊ
चन्द्रगुप्त विद्यालंकार	'अमावस', १९३८ ई०
चन्द्रभान	'रामचरित मानस में लोकवार्ता', सं० २०१२, सरस्वती पुस्तक सदन, आगरा
चण्डी प्रसाद 'हृदयेश'	'नंदन-निकुंज', १९२३ ई०, गंगापुस्तक माला, लखनऊ
,, ,,	'[illegible]' ,, ,, ,,
जयशंकर प्रसाद	'कामायनी', अष्टम संस्करण-२०१० वि० लीडर प्रेस, इला
,, ,,	'आंधी': चतुर्थ संस्करण, २००७ ,, ,,
,, ,,	'इन्द्रजाल' ,, ,, ,, ,,
,, ,,	'आकाशदीप', पंचम संस्करण २०११ ,, ,,
,, ,,	'प्रतिध्वनि': २००७ : ,, ,,
ज्वालादत्त शर्मा	'गल्पमंजरी' :(प्रकाशक पृष्ठ नष्ट)
जैनेन्द्र कुमार	'वातायन', द्वितीय सं० १९३९ ई०, सरस्वती प्रेस, बनारस (प्र० सं० १९३०)

जैनेन्द्र कुमार — "वातायन" : तृतीय संस्करण, १९५७, बम्बई, (प्र० सं० १९३१ ई०)

तारा पाण्डेय, श्रीमती — "उत्सर्ग" : प्रथम संस्करण, जुलाई १९३७ ई०, विद्याभास्कर बुकडिपो, बनारस

तुलसीदास — "रामचरित मानस" : पंचम संस्करण, सं० २०११, गोरखपुर

,, — "रामायण" आठों काण्ड सटीक : प्रकाशक : बाबू बैजनाथ प्रसाद बुकसेलर, बनारस- १९३७ ई०

देवराज, डा० — "आधुनिक हिन्दी कथा-साहित्य और मनोविज्ञान"

दुर्गाप्रसाद शर्मा — "माया" : १९३० ई० लहरी बुक डिपो, बनारस

दुर्गाप्रसाद झुंझनूं वाला — "मानस-प्रतियाँ" प्रथम संस्करण-सं० १९९५ वि० लक्ष्मी आर्ट प्रेस- इलाहाबाद

देवीदत्त शुक्ल, धनंजय भट्ट (संपादक) — "भट्ट निबन्धावली" - भाग १, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

देवेन्द्र सत्यार्थी — "बाजत आवे ढोल"—एशिया प्रकाशन, दिल्ली

,, ,, — "कला के हस्ताक्षर—प्रथम सं० सन् १९५४, एशिया प्रकाशन, नई दिल्ली

धीरेन्द्र वर्मा — "विचारधारा" - पांचवा संस्करण, १९५६ ई० साहित्य भवन, इलाहाबाद

,, ,, (सं०) — "हिन्दी साहित्य कोश", भाग -१

धनीराम "प्रेम", डा० — "वल्लरी" : प्रथम संस्करण, १९३२ ई०, चांद कार्यालय, इलाहाबाद

नामवर सिंह — "इतिहास और आलोचना", १९६२, नया साहित्य प्रकाशन, इलाहाबाद

नरेन्द्र कोहली — "प्रेमचन्द के साहित्य सिद्धान्त", प्रथम संस्करण १९६६, अशोक प्रकाशन, दिल्ली

निराला — "चतुरी-चमार", १९४५ ई०

,, — "सुकुल की बीवी", प्र०सं० १९९८ वि०, भारती भण्डार, इलाहाबाद

निराला	"लिली", १९३०
पूरनचन्द श्रीवास्तव, डा०	"बुन्देलखंड की लोकसंस्कृति और जीवन"
प्रतापनारायण श्रीवास्तव	"आशीर्वाद", प्र०सं० १९९० वि०, गंगाग्रन्थागार, लखनऊ
प्रफुल्लचन्द्र ओझा "मुक्त"	"बेल-पत्र", प्रथम संस्करण १९३९ ई०, ओझा बन्धु, प्रयाग
प्रेमचन्द	"कुछ विचार" : प्रथम संस्करण १९३९-सरस्वती प्रेस, इला० तथा वर्तमान संस्करण, १९६५ ई०
प्रेमचन्द	"मानसरोवर" : भाग-१, १९६५ ई०
,,	,, : ,, -२ वर्तमान संस्करण, १९६२
,,	,, : ,, -३ सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद
,,	,, : ,, -४ ,, ,,
,,	,, : ,, -५ प्रथम संस्करण- १९६५
,,	,, : ,, -६ हंस प्रकाशन, इलाहाबाद
,,	,, : ,, -७ ,, ,,
,,	,, : ,, -८ ,, ,,
,, (सम्पादक)	"गल्पसमुच्चय", चतुर्थ संस्करण, १९५४ ई०, बनारस
,, ,,	"हिन्दी की आदर्श कहानियाँ", छठां संस्करण, १९५५, बनारस
प्रेमनारायण टंडन	"प्रेमचन्द कृतियाँ और कला"
बाबूराम सक्सेना	"सामान्य भाषा विज्ञान"
ब्रजविलास श्रीवास्तव	"पृथ्वीराजरासो में कथानक रूढ़ियाँ" संस्करण : १९५५, बम्बई
ब्रह्मदत्त शर्मा	"हिन्दी कहानियों का विवेचनात्मक अध्ययन", प्र० सं० १९५८ -सरस्वती पुस्तक सदन, आगरा
भगवतीचरण वर्मा	"इन्स्टालमेन्ट", प्र०सं० १९३६, लीडर प्रेस, प्रयाग
भगवती प्रसाद वाजपेयी	"हिलोर" : प्र० सं० १९३८, गंगाग्रन्थागार, लखनऊ
,, (सम्पादक)	"कहानी संग्रह" : प्र०सं०, हि० सा० सम्मेलन, प्रयाग
भालचन्द्र गोस्वामी "प्रखर"	"कहानी दर्शन" : साहित्यरत्न भंडार, आगरा
भोलानाथ तिवारी, डा०	"भाषा विज्ञान" : तृतीय संस्करण, १९६१, इलाहाबाद
मन्मथराय	"प्राचीन लोकराज्य", इलाहाबाद, १९५३ ई०

मालती शर्मा, कु० — "मालती-माला", साधनासंघ काशी, १९३८ ई०

मोतीचन्द्र, डा० — "प्राचीन भारतीय वेश-भूषा", लीडर प्रेस, प्रयाग, २००७वि

मोहनलाल महतो "वियोगी" — "रेखा" : प्र० सं० १९८६ वि० ग्रन्थमाला, प्रयाग

,, — "मुंशी अभिनंदन ग्रन्थ" - राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, २००९वि०

यशपाल — "पिंजरे की उड़ान", द्वितीय संस्करण, १९४४ ई०, लखनऊ

रमेशचन्द्र त्रिपाठी (सम्पादक) — "भारत-भावना" : प्रथम भाग, १९८३ वि०, हिन्दी पुस्तक एजेन्सी, हरिसनरोड, कलकत्ता

रवीन्द्र भ्रमर, डा० — "हिन्दी भक्ति साहित्य में लोकतत्व" : प्र० सं० १९६५ भारती-साहित्य मंदिर, दिल्ली

राधिकारमण प्रसाद सिंह — "कुसुमांजलि", राजराजेश्वरी साहित्य मंदिर, पटना

रामेश्वर शुक्ल — "प्रेमचन्द: एक अध्ययन", प्र०सं० १९५८, भोपाल

रामनरेश त्रिपाठी, पं० — "ग्राम साहित्य", भाग-२, १९५२, दिल्ली

,, ,, — "कविता-कौमुदी" भाग-५, हिन्दी मंदिर, प्रयाग

रामविलास शर्मा, डा० — "प्रेमचन्द" : अप्रैल १९४१ ई०, सरस्वती प्रेस, बनारस

रायकृष्णदास — "सुधांशु" : प्रथम संस्करण, १९८६ वि०, भारती भंडार, काशी

,, ,, — "अनाख्या" : ,, ,, ,, काशी

रायकृष्णदास एवं पद्मनारायण शर्मा (सं०) — "नई-कहानियाँ" : प्र०सं० १९९८ वि०, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी

रामरतन भटनागर, डा० — "निराला" : युनिवर्सिटी प्रेस, प्रयाग

राहुल सांकृत्यायन — "सतमी के बच्चे", १९३८, इंडियन प्रेस, प्रयाग

रामचन्द्र शुक्ल, आचार्य — "हिन्दी साहित्य का इतिहास", सं० २००५, काशी

,, ,, (सम्पादक) — "पद्मावत : जायसी ग्रन्थावली", पंचम संस्करण, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी

लक्ष्मीनारायण लाल — "हिन्दी-कहानियों की शिल्पविधि का विकास"

वाचस्पति पाठक — "प्रदीप", प्र० सं० १९९२ वि० भारतीय भंडार, इला०

,, ,, — "द्वादशी", १९८८ वि० भारती भंडार, काशी

वासुदेवशरण अग्रवाल, डा० — "हर्षचरित" : एक सांस्कृतिक अध्ययन, १९५३, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना ।

,, ,, — "मेवाड़ की कहावतें" - भाग १

,, ,, — "पृथ्वीपुत्र", १९४९, दिल्ली

विनयमोहन शर्मा, आचार्य — "दृष्टिकोण", सन् १९५० ई०, नन्दकिशोर एण्ड ब्रदर्स, बनारस

विनोदशंकर व्यास (संपादक) — "मधुकरी", भाग- १, सरस्वती प्रेस, बनारस

,, ,, — ,, भाग- २ ,, ,,

,, ,, — "पचास कहानियाँ", प्र०सं० १९९६ वि०, लीडर प्रेस, इलाहाबाद

विमलेश कान्ति वर्मा, डा० — "भारतेन्दु युगीन काव्य में लोकतत्व", टंकित (अप्रकाशित)

विद्याभूषण "विभु" — "अभिधान अनुशीलन", हिन्दुस्तानी एकादमी, १९५८ ई० इलाहाबाद

विद्यावती कोकिल — "सोहाग गीत", १९५३, इलाहाबाद

विश्वम्भर नाथ शर्मा कौशिक — "गल्प-मंदिर", प्र०सं० १९१९ ई०, चौबीसवीं सदी पुस्तक माला, कानपुर

,, ,, — "चित्रशाला, (कवर नहीं)

शचीरानी गुर्टू — "प्रेमचन्द और गोर्की"

सत्यजीवन वर्मा (श्री भारतीय) — "सुनसुन", प्र० सं० १९३५ ई०, सरस साहित्य सदन, प्रयाग

सत्येन्द्र, डा० — "मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोकतात्विक अध्ययन"; प्रथम संस्करण, १९६० ई०, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा

,, — "लोकसाहित्य विज्ञान"

,, — "ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन", १९४९, आगरा

,, — "ब्रज की लोक कहानियाँ", मथुरा

सत्यव्रत अवस्थी — "लोकसाहित्य की भूमिका" : लाला रामदयाल अग्रवाल, इलाहाबाद

सत्यव्रत सिन्हा, डा० — "भोजपुरी लोक गाथा"; प्र० सं० १९५७, हिन्दुस्तानी एकाडमी, इलाहाबाद

सत्यागुप्त, डा० — "खड़ी बोली का लोकसाहित्य", प्र० सं० १९५४, हिन्दुस्तानी एकाडमी, इलाहाबाद

सन्तोषकुमार (संपादक) — "हमारे व्रत-पर्व और त्यौहार"

सावित्री सरीन, डा० — "ब्रजलोक कथाओं के अभिप्रायों का अध्ययन" : अप्रकाशित, काशी विश्वविद्यालय स्वीकृत शोध प्रबन्ध

सांवलिया बिहारीलाल वर्मा — "विश्व-धर्म-दर्शन", पटना, १९५२ ई०

सियाराम शरण गुप्त — "मानुषी" : प्र० सं० १९९० वि०, साहित्यसदन, झांसी

सुदर्शन (श्रीयुत) — "पनघट", तृतीय संस्करण, १९४८ ई०, हीरा एण्ड कम्पनी, बम्बई

,, — "सुदर्शन सुधा", इण्डियनप्रेस, प्रयाग, १९२६ ई०, प्र०सं०

,, — "तीर्थ यात्रा" : तृतीय संस्करण १९४५, सरस्वती प्रेस, बनारस (प्र०सं० १९२७ ई०, इंडियनप्रेस, इलाहाबाद)

सुभद्राकुमारी चौहान — "उन्मादिनी", प्र०सं० १९९१ वि०, उमीनमंदिर, जबलपुर

,, — "बिखरे मोती", १९३२ ई०, साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद (पंचम सं० १९३६ ई०– हंस प्रकाशन, इलाहाबाद)

सुमित्रानन्दन पन्त — "पांच कहानियां", प्र० सं० १९३६ ई०, लीडर प्रेस, इलाहाबाद

सुशीला आगा — "अतीत के चित्र", प्र०सं० १९९३ वि०, गंगाग्रन्थागार, लखनऊ

सूर्यकान्त (सं०) — "गल्प-पारिजात", १९३८, मेहरचन्द लक्ष्मणदास, लाहौर

श्याम परमार, डा० — "भारतीय लोकसाहित्य", १९५४ ई०, बम्बई

श्यामशर्मा, डा० — "आधुनिक हिन्दी गद्य शैली का विकास" प्र० १९७२ ई०, ग्रन्थम, कानपुर

शारदा कुमारी देवी — "शब्द विनोद", प्र० संस्करण, सन् १९२४, चांद कार्यालय, इलाहाबाद

शिवचन्द्र नागर — "गुजराती लोकोक्तियाँ और उनका हिन्दी रूपान्तर"

शिवरानीदेवी — "कौमुदी", प्र०सं० १९३७ ई०, सरस्वती प्रेस, बनारस

,, — "नारी हृदय", द्वितीय संस्करण, प्रवासपुस्तक, बनारस

हिन्दुस्तानी — "भारतीय विवाह पद्धति", प्र०सं० १९३० ई०, इंडियन प्रेस, प्रयाग

शंकरदयाल चौऋषि — "द्विवेदीयुगीन गद्य शैलियों का विकास", १९६५ ई०, भारतीय साहित्य मंदिर, दिल्ली

शिवदान सिंह चौहान, डा० — "हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष"

शिवपूजन सहाय — "विभूति", तृतीय नवीन संस्करण, सं० १९९८ वि०, पुस्तक भंडार, पटना

हजारी प्रसाद द्विवेदी, आचार्य — "हिन्दी साहित्य का आदिकाल", १९५२ ई०, बिहार राष्ट्र भाषा परिषद, पटना

,, — "हिन्दी साहित्य की भूमिका", आठवां संस्करण, १९६१ ई०, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली

,, — "विचार और वितर्क", नवीन संस्करण, १९५४ ई०, साहित्य भवन, इलाहाबाद

हरगुलाल, डा० — "सूरसागर में लोकजीवन", प्रथम संस्करण, १९६७ ई०, हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली

हंसराज — "आदर्श कथा मंजरी", प्रथम संस्करण, सन १९३३ ई०, मेहरचंद लक्ष्मणदास, लाहौर

हंसराज रहबर — "प्रेमचन्द जीवन और कृतित्व"

परिशिष्ट - २ (संस्कृत)

"कामसूत्र" (वात्स्यायन, टीकाकार जयमंगल)

"काव्यमीमांसा" (राजशेखर, पटना, १९५४)

"कथासरित्सागर"

"[illegible]"

"ऋग्वेद"

"नारद स्मृति"

"महाभारत"

"[illegible]"

"[illegible] स्मृति"

"[illegible]"

"[illegible]" — सं० १९९१ वि०, गंगाविष्णु कृष्णदास, बम्बई

"स्तोत्ररत्नावली" — [illegible] संस्करण, गीताप्रेस, गोरखपुर

"साहित्यदर्पण" — आचार्य विश्वनाथ

परिशिष्ट -- ३ (अंग्रेज़ी)

ए०बी० कीथ	"ए हिस्ट्री आव संस्कृत लिटरेचर", लंदन, १९२०
ए० पी० सिरैक	"मधुमालती", कलकत्ता, १९५४
अलबेरूनी	"इण्डिया पास्ट", पार्ट-२,
एमीलिन मार्टिनेंगो	"द स्टडी आवू फ़ोक सांग्स"
बी० के० सरकार	"द फ़ोक एलीमेन्ट इन हिन्दू कल्चर, कलकत्ता, १९१७
ब्लूमफ़ील्ड	"द स्टडी आव ओमेन्स"
सी०एस० बर्न	"द हैंड बुक आव फ़ोक-लोर", १९१४, लंदन
डुबोई एण्ड ब्यूचैम्प	"हिन्दू मैनर्स, कस्टम्स एण्ड सेरिमोनीज़", तृतीय संस्करण, आक्सफोर्ड, १९०६
ई० बी० टेलर	"एन्थ्रोपोलाजी", वाल्यूम-२, लंदन, १९५९ .
,, ,,	"प्रिमिटिव कल्चर", प्रथम संस्करण, १८७१
ई० वेस्टर मार्क	"शार्ट हिस्ट्री आव मैरेज"
,, ,,	"हिस्ट्री आव ह्यूमन मैरेज़, वाल्यूम, १, १९२२-
एफ० डब्ल्यू० फरार	"लैंग्वेज एण्ड आरिजिन आफ लैंग्वेज", लन्दन, १८६०
एच० एल० हरियाणा	"लिंग्विस्टिक स्टडीज़ टू द एज़ेज़"
फ़ाउलर	"शार्टर आक्सफ़ोर्ड इंगलिश डिक्शनरी", वाल्यूम-१
हेनरी आई० ब्राइस्ट	"मिथ एण्ड फ़ोकलोर", यूनिट फ़ोर, फ़ोक टेल्स एण्ड फ़ेबुल्स
जे० जी० फ़्रेज़र	"फ़ोकलोर इन द ओल्ड टेस्टामेंट", लन्दन, १९१८
,, ,,	"द वरशिप आव नेचर", वाल्यूम-१, १९२६
,, ,,	"गोल्डेन बाउ", ओब्रिज्ड प्रकाशन, १९५४
जे० जे० मेयर	"सिम्बालिज्म इन मैरेज कस्टम्स"
जे० पी० गौड	"रिमार्क्स आन द सिमिलीज़ इन संस्कृत लिटरेचर"
जीन एण्ड आन डेविड	" द स्टोरी आव वर्ड्स, लंदन, १९५५
एम० डी० पराडकर	"सिमिलीज़ इन मनुस्मृति"
मेरिया लीच	"स्टैण्डर्ड डिक्शनरी आवू फ़ोकलोर, माइथालाजी एण्ड लीजेन्ड्स", वाल्यूम -१, २, न्यूयार्क, १९४९
आर० के० ज्ञान	"इंडियन प्रावर्ब्स एण्ड इडियम्स"

स्टिथथाम्पसन	"द फ़ोक टेल" : १९४६ न्यूयार्क (द ड्राइडेन प्रेस)
,,	"मोटिफ़ इन्डेक्स आफ फ़ोक लिट्रेचर, १९३२ और १९५५
तारापोरवाला	"एलीमेन्ट आफ साइन्स आफ लैंग्वेज", १९६२
थामस डी क्विन्सी	"स्टाइल एण्ड रेटोरिक"
टी० शिप्ले	"डिक्शनरी आफ़ वर्ल्ड लिटरेरी टर्म्स" : लंदन, १९५५
टानी एण्ड पेंजर	"द ओशन आफ़ द स्टोरी" : वाल्यूम-१,२, ७
डब्ल्यू एच०आर० रिवर्स	"साइकालाजी एण्ड एथनोलाजी"

"ए डिक्शनरी आफ़ लिंग्विस्टिक्स : प्रकाशक : कोलम्बिया युनिवर्सिटी-यू०एस०ए०

"एनसाइक्लोपीडिया आफ़ सोशल साइन्सेज़" : वाल्यूम - ६

"ऐनसाइक्लोपीडिया आफ़ रिलिजन एण्ड एथिक्स" : वाल्यूम-५ तथा वाल्यूम- ७

"एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका" : वाल्यूम ६, ८, २२